समर्पण

देशभक्त देर्वाप विद्याशिरोमणि

डाक्टर भगवानदासजी

को

सादर समर्पित

प्राक्कथन

मनोविज्ञान अध्ययन का एक कठिन विषय माना जाता है। जब कोई व्यक्ति अपने वार्तालाप में मनोविज्ञान की बातों का उल्लेख करने लगता है तो श्रोतागण या तो चकित होकर उन्हें सुनते हैं अथवा एकदम उदासीन हो जाते हैं। श्रोताओं की इस प्रकार की मनोवृत्ति का कारण जनता में बुद्धि की कमी नहीं वरन् मनोविज्ञान सम्बन्धी साहित्य का अभाव है। हमारे साहित्य में अब तक साहित्य के दूसरे अङ्गों से सम्बन्ध रखनेवाले अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। देश में साहित्यिक जाग्रति करने का संकल्प लेकर कार्य करनेवाले अनेक त्यागी विद्वानों ने हिन्दी भाषा में मौलिक ग्रन्थ लिखे, किन्तु अभी तक मनोविज्ञान के पण्डित मौन साधे ही बैठे हुए हैं। लेखक के देखने में हिन्दी भाषा में कोई प्रामाणिक ग्रंथ अभी तक नहीं आया। यह छोटी-सी पुस्तक पाठकों के समक्ष इस साहित्यिक अभाव की पूर्ति करने के हेतु लिखी गई है। रामचरितमानस लिखते समय श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा था :—

भाषा भनिति भोरि मति मोरी, हँसिवे जोग हँसे नहिं खोरी।

मैं तुलसीदासजी के इसी विनीत भाव का अनुभव कर रहा हूँ। हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने और सामान्य जनता ने मेरे ऊपर भारी प्रेम दर्शाया। उन्होंने मेरे लिखे हुए "बाल-मनोविज्ञान" और "नवीन-मनोविज्ञान" को जिस प्रसन्नता से अपनाया उसी का परिणाम है कि मुझे इस नये ग्रन्थ के लिखने का साहस हुआ। मैं मनोविज्ञान का विशेषज्ञ नहीं हूँ; न मैंने मनोविज्ञान का इतना अध्ययन ही किया है और न मैंने कोई नये प्रयोग किये हैं। मुझे इंटर, बी० ए० और बी० टी० क्लास को इस विषय के पढ़ाने का अनुभव अवश्य है, पर किसी विषय पर नये ग्रन्थ को लिखने के लिए यह पर्याप्त नहीं है। मैं इस पुस्तक को इसी हेतु से लिखता हूँ कि हिन्दी जाननेवाली जनता की रुचि इसे पढ़कर मनोविज्ञान में बढ़ेगी। इस हेतु से विषय को जितना सरल हो सका है, बनाया गया है।

लेखक की धारणा है कि जो विषय अँगरेजी भाषा में लिखे रहने के कारण बी० ए० के विद्यार्थियों के लिए समझने में कठिन हो जाता है वही विषय हिन्दी भाषा में लिखे जाने पर सरलता से वर्नाक्युलर मिडिल पास

लिये विद्यार्थी की समझ में आ सकता है। आजकल एक विद्यार्थी को बी० ए० परीक्षा पास करने के लिए मनोविज्ञान के जितने ज्ञान की आवश्यकता है उतना इस पुस्तक में दिखाया गया है; पर मैं विश्वास करता हूँ कि इसमें लिखी कोई बात इण्टरमीडियेट के विद्यार्थी की समझ के बाहर न होगी।

इस पुस्तक का मुख्य हेतु हिन्दी भाषा का ज्ञान रखनेवाले विद्यार्थियों को उस ज्ञान को सुलभ बनाना है जो अँगरेज़ी भाषा में लिखी गई सामान्य मनोविज्ञान की पुस्तकों में है। अतएव विषय के विद्वान् यदि इनमें किसी नवीनता की खोज करें तो सम्भवतः कुछ भी नहीं पायेंगे। न इसमें किसी नये प्रयोग का वर्णन मिलेगा और न किसी नये सिद्धान्त का प्रवर्तन। हाँ, इतना अवश्य है कि मैंने जहाँ कहीं हो सका है किसी सिद्धान्त को सुबोध बनाने के लिए अपने अनुभव में आनेवाले दृष्टान्तों को उदाहरण के रूप में लिख दिया है। जहाँ कहीं हो सका है भारतीय शास्त्रों में उल्लिखित समान सिद्धान्तों का परिचय भी कराने की चेष्टा की है।

मनोविज्ञान की पुस्तकें लिखने में मुझे मेरे गुरु रायबहादुर पण्डित लज्जाशंकर झा और भारतीय संस्कृति के विशेषज्ञ डाक्टर भगवानदासजी से विशेष प्रोत्साहन मिला। डाक्टर भगवानदासजी ने "नवीन मनोविज्ञान" की प्रस्तावना लिखकर मेरे ऊपर बड़ी कृपा की। यह पुस्तक मैं उन्हें उनके प्रति अपनी श्रद्धा के प्रदर्शन स्वरूप समर्पण करता हूँ। मैं जानता हूँ कि यह ग्रन्थ उनकी भेंट के योग्य नहीं है पर उनके हृदय की विशालता को स्मरण रखते हुए मुझे इसे उन्हें समर्पित करने में संकोच नहीं होता, अपितु प्रसन्नता ही होती है।

टीचर्स ट्रेनिङ्ग कालेज,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
१६-१२-१६४५

लालजीराम शुक्ल

ग्यारहवाँ संस्करण का प्राक्कथन

जब से सरल मनोविज्ञान का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ है, तब से हिन्दी में कई लेखकों ने मनोविज्ञान की पुस्तकें लिखीं, जो अब जनता के सामने आ चुकी हैं। इन पुस्तकों से सरल मनोविज्ञान के उपयोग का क्षेत्र संकुचित न होकर बढ़ा ही है। आज मनोवैज्ञानिक विवादों को समझनेवाले और मनोवैज्ञानिक चर्चाओं से लाभ उठानेवाले जितने व्यक्ति हमारे देश में हैं उतने पहिले कभी न थे। आज सरल मनोविज्ञान में प्रस्तुत उन विषयों पर भी चिन्तन किया जाता है, जिन पर आज से दस वर्ष पूर्व चिन्तन करना साधारण हिन्दी भाषा-भाषी जनता के लिए सम्भव ही नहीं था।

मनोविज्ञान अपनी नई खोजें विशेष कर दो दिशाओं में कर रहा है एक मनोविश्लेषण की ओर दूसरे बुद्धिमापक परीक्षाओं की ओर। हमारा सदा यह प्रयत्न रहा है कि भारतीय हिन्दी भाषा-भाषी जनता इन नए मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से लाभ उठाए। इस संस्करण में हमने मनोविज्ञान की नई खोजों को सुबोध बनाकर जनता के समक्ष प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। हमें आशा है कि इससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ेगी।

लालजीराम शुक्ल
७–६–६४

विषय-सूची

प्रथम प्रकरण

विषय-प्रवेश— १-२१

मनोविज्ञान क्या है ?—मनोविज्ञान की उपयोगिता—वैज्ञानिक विधि—मनोविज्ञान के अध्ययन की विधियाँ—मनोविज्ञान की शाखाएँ—मनोवृत्ति—मनोविज्ञान और अन्य विद्याएँ।

दूसरा प्रकरण

मन और शरीर का संबंध २२-३२

साधारण विचार धारा—वैज्ञानिक विचार धाराएँ—जड़वाद की समालोचना—चैतन्यवाद—मन का विकास।

तीसरा प्रकरण

नाड़ी तन्त्र ३२-५१

नाड़ीतन्त्र के विभाग—त्वक् नाड़ी-मण्डल—केन्द्रीय नाड़ीतन्त्र—सुषुम्ना—मस्तिष्क—स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल-ग्लिटियाँ।

चौथा प्रकरण

अभिप्रेरण ५१-८४

मानव व्यवहार के अभिप्रेरक—अभिप्रेरक की परिभाषा—अभिप्रेरकों के प्रकार—यौन, भूख, प्यास, अन्य शारीरिक प्रेरक, सामाजिक अभिप्रेरक, यूथचारिता, स्वाग्रहता, युद्ध प्रवृत्ति, व्यक्तिगत अभिप्रेरक, अभिप्रेरकों का संघर्ष।

पाँचवाँ प्रकरण

संवेग ८५-१०४

संवेग का स्वरूप—संवेगों की विशेषता—संवेग और शारीरिक क्रियायें—जेम्स-लैंगे सिद्धान्त—संवेगजनित मानसिक विकार—स्थायी-भाव—स्थायीभाव और चरित्र—विकृत स्थायीभाव।

छठा प्रकरण

सीखना १०५-११९

सीखने की महत्ता—सीखने के प्रकार—नियात्मक सीखना—अनुकरणात्मक सीखना—विचारात्मक सीखना—सीखने के नियम—सीखने में उन्नति—सीखने का पठार।

सातवाँ प्रकरण

आदत १२०-१३४

आदत का स्वरूप—आदत का आधार—आदत के लक्षण—आदत का जीवन में महत्व—आदत डालने के नियम—बुरी आदतें—जटिल आदतों की उत्पत्ति।

आठवाँ प्रकरण

ध्यान १३५-१५४

ध्यान का स्वरूप—ध्यान की विशेषता—ध्यान के कारण—ध्यान के प्रकार—ध्यान वशीकरण।

नवाँ प्रकरण

संवेदना १५५-१८३

सवेदना की उत्पत्ति—सवेदनाओं के गुण—संवेदनाओं का वर्गीकरण—दृष्टि सवेदना—ध्वनि सवेदना—रस सवेदना-घ्राण सवेदना-स्पर्श सवेदना—वेबर का नियम।

दसवाँ प्रकरण

प्रत्यक्षीकरण १८४-२०३

प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप—भ्रम—अवकाश का ज्ञान-दिशाज्ञान-दूरी का ज्ञान—एक आँख की दूरी के ज्ञान के साधन—दो आँखों से दूरी का ज्ञान—दो आँखों से प्रसार का ज्ञान-कान से दूरी का ज्ञान-समय का ज्ञान—देश और काल के विषय में दार्शनिक विचार—ज्ञान अणुवाद और सम्पूर्णज्ञान वाद—निरीक्षण।

ग्यारहवाँ प्रकरण

स्मृति २०४-२२३

स्मृति की उपयोगिता—अच्छी स्मृति के लक्षण—स्मृति के अंग-

याद करना—धारणा—स्मरण—पहचान—याद करने के प्रयोग—विस्मृति—असाधारण भूल।

बारहवाँ प्रकरण

कल्पना २२४-२३८

कल्पना का स्वरूप—कल्पना में वैयक्तिक भेद—कल्पना के प्रकार—कल्पना और कला।

तेरहवाँ प्रकरण

विचार २३९-२५६

विचार की प्रक्रिया—विचार की प्रक्रिया के अंग—विचार के विभिन्न स्तर—प्रत्यय-ज्ञान का स्वरूप—प्रत्यय-ज्ञान की उत्पत्ति—भाषा और विचार—विचार विकास—विचार करने के ढंग—विचार और अन्य मानसिक शक्तियाँ।

चौदहवाँ प्रकरण

इच्छाशक्ति और चरित्र २५७-२७६

इच्छाशक्ति का स्वरूप—निर्णय का स्वरूप—निर्णय के प्रकार—इच्छाशक्ति का विचार से सम्बन्ध—इच्छाशक्ति और ध्यान—इच्छाशक्ति की निर्बलता—स्वतंत्रतावाद और नियतिवाद—चरित्र।

पन्द्रहवाँ प्रकरण

बुद्धि और उसकी जाँच २७७-२८८

बुद्धि की परीक्षा का प्रारम्भ—'बिने' की परीक्षा की रीति—बुद्धिमाप में उन्नति—टरमेन का बुद्धिमापक परीक्षापत्र—सामूहिक बुद्धिमाप—बुद्धि का स्वरूप—बुद्धि और ज्ञान-भंडार—बुद्धि और चरित्र।

सोलहवाँ प्रकरण

मन के गुप्त स्तर २८९-३०६

अचेतन मन की खोज का आरम्भ—अचेतन मन का स्वरूप—अचेतन मन की प्रबल वासनाएँ—अचेतन मन और सांकेतिक चेष्टाएँ—अचेतन मन और मानसिक रोग—मानसिक ग्रंथि और शारीरिक रोग—मनोविश्लेषण—चिकित्सा—मानसिक-ग्रंथि और अपराध।

सत्रहवाँ प्रकरण

स्वप्न • ३०७-३२५

स्वप्न का स्वरूप—स्वप्न के कारण—आदेशात्मक—स्वप्न—स्वप्न—निरोध।

अठारहवाँ प्रकरण

सीखने में प्रगति ३२६-३४४

अभिप्रेरण की उपस्थिति—प्रशंसा और निंदा का सीखने पर प्रभाव—अभ्यास का प्रभाव—सीखने वाले का व्यक्तित्व—विषय की विशेषता—सीखने की रीतियाँ—प्रपठन रीति पर गेट्स का प्रयोग—हस्त कला कौशल का सीखना—प्रशिक्षण का स्थानान्तरण—

उन्नीसवाँ प्रकरण

व्यक्तित्व ३४५-३७५

व्यक्तित्व के अध्ययन का महत्व—व्यक्तित्व का अर्थ और स्वरूप—व्यक्तित्व के अंग—मनुष्य के व्यक्तित्व के घटक—वातावरण के अंग—व्यक्तित्व और प्रणाली विहीन ग्रन्थियाँ—व्यक्तित्व-विकास की विभिन्न अवस्थाएँ—व्यक्तित्व के प्रकार—व्यक्तित्व की जाँच—व्यक्तित्व और जाँच—स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति और व्यक्तित्व—व्यक्तित्व के मूल्यों का उपार्जन—व्यक्तित्व का संगठन—स्थितिप्रज्ञ क्या है—मनुष्य के स्वत्व के गुप्त स्तर।

———

प्रथम प्रकरण

विषय-प्रवेश

मनोविज्ञान क्या है ?

मनोविज्ञान की विशेषता—मनोविज्ञान आधुनिक युग के बड़े महत्त्व-पूर्ण अध्ययन का विषय है। आजकल व्यक्ति और समाज के व्यवहार सम्बन्धी किसी भी अध्ययन का ऐसा विषय नहीं जिसमें मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता न हो। समाज-शास्त्र, राजनीति, अर्थ-शास्त्र, साहित्य आदि सभी विषयों के गहन अध्ययन के लिए मनोविज्ञान की आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति मनोविज्ञान के ज्ञान के अभाव में किसी भी समाज तथा व्यक्ति-सम्बन्धी विषय पर कोई ग्रन्थ लिखता है तो वह उस ग्रंथ की मौलिकता को अपने आप घटा देता है। मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार का कारण उसका मन ही है। हमारे भीतरी विचार ही बाहरी क्रिया में प्रकाशित होते हैं। राजनीति, अर्थ-शास्त्र, समाज-शास्त्र तथा साहित्य में मनुष्य की क्रियाओं और विचारों का ही वर्णन रहता है। मनोविज्ञान का ध्येय इन विचारों और क्रियाओं के रहस्य को समझना है।

मनोविज्ञान का विषय है मनुष्य के मन का अध्ययन। हमारे मन में प्रत्येक क्षण अनेक विचार उठते रहते हैं। हमारा हृदय दिन भर में अनेक संवेगों का अनुभव करता है। इसी तरह हमारे मन में अनेक प्रकार के काम करने की इच्छाएँ क्षण-क्षण पर उठा करती हैं। इन मानसिक अनुभूतियों का अध्ययन करना मनोविज्ञान का लक्ष्य है। मनोविज्ञान मन में होनेवाली क्रियाओं का क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन है। आधुनिक मनोविज्ञान पाश्चात्य पण्डितों की देन है। इसकी उन्नति पदार्थ-विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ हुई है। जब पदार्थ-विज्ञान विषयक अध्ययन में पर्याप्त उन्नति हो गई तो मनुष्य के मन में वैज्ञानिक रूप से मन का अध्ययन करने की इच्छा उत्पन्न हुई। इसी इच्छा के परिणाम स्वरूप आधुनिक मनोविज्ञान का जन्म हुआ।

मनोविज्ञान की परिभाषा—मनोविज्ञान का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द 'साइकालाजी' है। यह शब्द यूनानी भाषा से लिया गया है और उस भाषा के शब्दों—'साइके' और 'लोगस' से मिलकर बना है। 'साइके' का अर्थ है आत्मा और 'लोगस' का अर्थ है विचार-विमर्श। इन दोनों शब्दों से 'साइकॉलॉजी' शब्द बना है। अतएव साइकॉलॉजी वह विज्ञान है

जिसमें मनुष्य की आत्मा के विषय में चर्चा हो। वर्तमान युग क आरम्भ के पूर्व इसी अर्थ में साइकॉलॉजी शब्द काम आता था। अतएव मनोविज्ञान तत्त्व विज्ञान का एक अग भी माना जाता था। यूरोप क पुराने पण्डित मनोविज्ञान को एक स्वतन्त्र विषय नहीं मानते थे। उनका दृष्टिकोण जब तक इस प्रकार का बना रहा, तब तक मनोविज्ञान ने कोई विशेष उन्नति नहीं की। आत्मा के विषय में मनुष्यों के विचार विभिन्न प्रकार के हैं। आत्मा क स्वरूप का निरूपण करना अत्यन्त कठिन कार्य है। अतएव जब तक मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय आत्मा ही रहा, मन का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करना सम्भव न हुआ और मनोविज्ञान ने कोई उन्नति न की।

वर्तमान काल के प्रारम्भ में उपयुक्त दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय आत्मा को न मानकर चेतन मन के अनुभवों को माना जाने लगा। मनोविज्ञान की भाषा अब बदल गई। इस परिभाषा के अनुसार मनोविज्ञान मन का चेतन क्रियाओं का अध्ययन है। मनोविज्ञान मन की चेतना का अध्ययन करता है। मनुष्य जब तक जाग्रत रहता है, उसके मन में कुछ न कुछ विचार चला करते हैं, और उसे किसी न किसी प्रकार की अनुभूतियाँ होती रहती हैं। इन्हीं विचारों और अनुभूतियों का नाम मनोविज्ञान है।

इस प्रकार की परिभाषा मनोविज्ञान के विषय को पर्याप्त रूप से स्पष्ट करती है। हमारे अनुभव ज्ञानगम्य हैं। अतएव इन अनुभवों का अध्ययन वैज्ञानिक रूप से किया जा सकता है। हम जिस दृष्टि से बाह्य पदार्थों को उनका वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए देखते हैं, उसी दृष्टि से हम अपने मन की ओर देख सकते हैं। वैज्ञानिक रूप से मन का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि मन की अनेक क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त किया जाय और उसके स्वरूप का निरूपण भली भाँति किया जाय। यह ज्ञान प्राप्त करना कठिन है अवश्य, पर असम्भव कार्य नहीं। अतएव इस दृष्टिकोण से मनोविज्ञान का विस्तार होना स्वाभाविक है। नये दृष्टिकोण के कारण मनोविज्ञान पर हजारों ग्रन्थ लिखे गये और मन के विषय में हमारा ज्ञान पर्याप्त रूप से बढ़ा।

किन्तु जैसे जैसे मन का अध्ययन अधिकाधिक होता गया, उसके स्वरूप के विषय में मनोविज्ञान के पण्डितों के विचार बदलते गये। मनोविज्ञान के अध्ययन की गहनता के साथ उसके विषय का विस्तार भी हुआ। वर्तमान समय में मनोविज्ञान की उपर्युक्त परिभाषा निर्दोष नहीं समझी जाती। इस

समय मनोविज्ञान मन की चेतन क्रियाओं का ही अध्ययन नहीं करता वरन् वह मन के उस अन्तर्पट के विषय में भी हमारा ज्ञान बढ़ाने की चेष्टा करता है, जो चेतन मन की पहुँच के बाहर है। अर्थात् अब मनोविज्ञान चेतन और अचेतन मन के दोनों भागों का वैज्ञानिक अध्ययन करने की चेष्टा करता है। यदि हम मनोविज्ञान के अध्ययन के विषय को ध्यान में रखकर उसकी पुरानी परिभाषा की विवेचना करें, तो उसमें अव्याप्ति का दोष पावेंगे। इस परिभाषा को पूर्ण बनाने के लिए हमें नये प्रकार से मनोविज्ञान की परिभाषा बनानी पड़ेगी। मनोविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें मन की चेतन और अचेतन दोनों प्रकार की क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

हमारी मानसिक क्रियाएँ बाह्य क्रियाओं में भी प्रकाशित होती हैं। हम अपने मन की क्रियाओं को अपरोक्ष रूप से जानते हैं। हम जब भी अपने मन में उठनेवाले विचारों की ओर ध्यान देते हैं, तो हम उन्हें जान लेते हैं। दूसरों के मन में चलनेवाली क्रियाओं के विषय में यह बात नहीं है। हम उनके मन के विचारों तथा अनुभूतियों को उनके व्यवहारों तथा उनके कहने से जानते हैं। यदि किसी मनुष्य के पेट में दर्द हो तो वह हमारा दर्द नहीं बन जाता। हम उसे उसकी बेचैनी तथा कराहने से जानते हैं। अर्थात् उस पुरुष के व्यवहार को देखकर हम अपनी अनुभूति के आधार पर उसके पेट की पीड़ा की कल्पना करते हैं। इस प्रकार का, दूसरों की अनुभूति का ज्ञान, परोक्ष ज्ञान है। इसी तरह किसी सुन्दर गाने को सुनकर यदि किसी मनुष्य को आनन्द होता है और वह उस आनन्द को अपनी कविता में प्रकाशित करता है, तो उस व्यक्ति की गाने की आनन्दमयी अनुभूति का ज्ञान हमें उसके प्रकाशित विचारों से होता है। यह भी परोक्ष ज्ञान है। ऐसा परोक्ष ज्ञान भी मनोविज्ञान के लिए आवश्यक है। मनोविज्ञान का आधार मनुष्य का व्यक्तिगत अनुभव ही नहीं, वरन् दूसरों का अनुभव भी है, जो उनको बाह्य क्रियाओं द्वारा प्रकाशित होता है। अतएव मनोविज्ञान के लिए मनुष्यों की बाह्य क्रियाओं का अध्ययन करना उतना ही आवश्यक है जितना अपने मन में होनेवाली क्रियाओं का। इस बात को ध्यान में रखकर कितने ही मनोविज्ञान के लेखकोंने मनोविज्ञान की परिभाषा एक नये प्रकार से की है। मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो मन की चेतन और अचेतन क्रियाओं का अध्ययन अपरोक्ष अनुभूति द्वारा तथा मनुष्य की बाह्य क्रियाओं का निरीक्षण करके करता है, मनोविज्ञान चेतन तथा अचेतन मन के व्यवहार में प्रकाशित तथा अप्रकाशित मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करता है।

मेगडूगल महोदय ने मनोविज्ञान की परिभाषा करते समय मनुष्य के व्यवहारों पर जोर दिया है। उनका कथन है कि मनोविज्ञान मनुष्य के व्यवहारों, उनके कारणों और नियोजकों का अध्ययन करना है।* मानवी व्यवहार की कुछ विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही मनुष्य के क्रिया-कलापों का भले प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है। प्रत्येक व्यवहार की जड़, मनुष्य के मन, उसकी इच्छा, भाव अथवा विचार में होती है। मनुष्य की कोई भी क्रिया प्रयोजनहीन नहीं होती। अर्थात् जब भी कोई काम मनुष्य करता है तब वह उस काम को मशीन के सहज रूप से नहीं करता। उन कामों के पीछे उसका प्रयोजन[1] रहता है जिसका कभी-कभी उसे स्पष्ट ज्ञान होता है और कभी नहीं रहता। इन प्रयोजनों को जानना और किसी भी क्रिया के प्रेरकों का भली भाँति अध्ययन करना मनोविज्ञान का विषय है। हम कार्य के प्रयोजन और प्रेरकों[2] को जानकर मनुष्य के व्यवहारों में परिवर्तन कर सकते हैं। जो व्यक्ति इनका जितना ही अधिक ज्ञान करता है वह दूसरे मनुष्यों के व्यवहारों को उतनी ही सफलतापूर्वक मोड़ सकता है तथा मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो सकता है।

मनोविज्ञान की उपयोगिता

अपने आपको समझने में उपयोगिता—मनुष्य का स्वभाव समझने के लिए मनोविज्ञान का अध्ययन परम आवश्यक है। मनोविज्ञान के अध्ययन का सबसे महत्त्वपूर्ण विषय मनुष्य का स्वभाव ही है। आधुनिक काल में जितना अधिक हमारा ज्ञान बाह्य संसार के विषय में बढ़ गया है, अपने स्वभाव के विषय में नहीं बढ़ा है। पदार्थ-विज्ञान ने अब तक बाह्य पदार्थों का ज्ञान बढ़ाया है किंतु आत्मा का ज्ञान नहीं बढ़ाया। आत्म ज्ञान के लिए मनोविज्ञान का अध्ययन परम आवश्यक है।

अपने मन में होनेवाली क्रियाओं का ज्ञान हम जब तक भली भाँति नहीं कर लेते, हम अपने ऊपर नियन्त्रण नहीं रख सकते। मन के प्रबल उद्वेगों को नियन्त्रित रखने के लिए उनके गुप्त कारणों को जानना आवश्यक है। कितने लोग क्रोध करना बुरा समझते हैं लेकिन अवसर आने पर क्रोध के

* Psychology is the study of human behaviour, its causes and conditions.

1. Purpose. 2. Motives

आवेश में आने से अपने आपको नहीं रोक पाते। कभी-कभी कोई बुरा विचार हमारे मन में बार बार आता है और उसे भुलाने की पूरी चेष्टा करने पर भी हम उसे मन से निकाल नहीं सकते। इस प्रकार की समस्याओं को हल करने के लिए मनोविज्ञान का अध्ययन अति आवश्यक है।

मनोविज्ञान का अध्ययन नई बातों को सीखने का सुगम उपाय बताता है। हमारे पढ़ने-लिखने के संस्कार किस तरह स्थायी बनाये जा सकते हैं तथा हम अपने पुराने अनुभव से किस तरह अधिक से अधिक लाभ उठा सकते हैं, यह शिक्षा भी हमें मनोविज्ञान से मिलती है।

मनोविज्ञान ध्यान का वश में करने का उपाय बताता है। ध्यान को वश में करने से संसार के कार्य हम सरलता से कर सकते हैं। अपना जीवन सफल बनाने के लिए ध्यान को वश म करना आवश्यक है। मनोविज्ञान यह बताता है कि हम ध्यान मे आध्यात्मिक लाभ किस प्रकार उठा सकते हैं।

मनोविज्ञान मनुष्य के चरित्र निर्माण में सहायक होता है। मनोविज्ञान का ज्ञान प्राप्त करके हम उसमें प्रदर्शित वैज्ञानिक मार्ग से चलकर अपना चरित्र सुदृढ़ बना सकते हैं तथा अपने आपको पतन मे बचा सकते हैं।

मनोविज्ञान और व्यावहारिक जीवन—जिस प्रकार भौतिक विज्ञान मनुष्य के व्यावहारिक जीवन को सफल बनाने में सहायक होता है उसी प्रकार मनोविज्ञान भी मनुष्य के व्यावहारिक जीवन का सफल बनाने में सफल होता है। मनुष्य बाह्य प्रकृति के नियमों को जानकर तथा अनेक प्रकार के उपयोगी पदार्थों के गुणों को जानकर अपनी कार्यक्षमता और शक्ति को बढ़ाता है, इसी प्रकार मानसिक शक्तियों, क्रियाओं तथा उनके कारणों को जानकर मनुष्य अपने व्यावहारिक जीवन को अधिक सफल बना सकता है। कितने ही परिवार इसीलिए दुःखी रहते हैं कि परिवार के लोग अपने व्यवहार में मनोवैज्ञानिक तथ्यों को ध्यान में नहीं रखते। इसी प्रकार कितने ही राजनीतिज्ञ सब प्रकार की शुभ कामना रखते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति में इसलिए असफल हो जाते हैं कि वे समाज-मनोविज्ञान के अकाट्य नियमों की अवहेलना कर देते हैं। मनुष्य की सभी क्रियाओं की जड़ उसका मन है। यदि हम किसी व्यक्ति के मन को प्रभावित कर सकते हैं तो उसका आचरण अपने अनुकूल बनाने में समर्थ अवश्य होंगे। परन्तु किसी व्यक्ति के मन को प्रभावित करने के लिए हमें उसके मन के बाहरी और भीतरी तथ्यों को भले प्रकार से जानना पड़ेगा और मनोवैज्ञानिक नियमों को ध्यान में रखते हुए उससे व्यवहार करना पड़ेगा।

दूसरों को समझने में उपयोगिता—मनोविज्ञान का ज्ञान न रहने से

हम कितनी ही बार दूसरों से उचित व्यवहार करने में भूल करते हैं। कितने ही लोग अपने किसी काम के हेतु को इतना छिपाये रहते हैं कि उनके साधारण व्यवहार का अर्थ लगाने में हमें धोखा हो जाता है। इस तरह कितने ही सीधे सादे लोग चालाक लोगों के चगुल मे फँस जाते हैं। कितने ही भले लोगों का इस तरह चापलूसों ने नाश कर डाला है। मनुष्यों के छिपे हुए हेतु को समझने म मनोविज्ञान बहुत सहायता पहुँचाता है।

मनोविज्ञान का अध्ययन समाज-सुधारक को अपने काम में कुशल बनाता है, राजनीतिज्ञ को व्यवहार में कुशलता सिखाता है। किसी राजनीतिज्ञ को दूसरे राजनीतिज्ञों के मन की अप्रकाशित बात समझना अति आवश्यक है। प्रत्येक राजनीतिज्ञ अपने मन की बात को गुप्त रखता है और दूसरे के मन की बात को जानने का कोशिश करता है। इसी तरह जो अपने वास्तविक हेतु को जितना अधिक दूसरों से छिपाये रख सकता है, उतना ही वह चतुर समझा जाता है। इस प्रकार के कार्य करने के लिए मनोविज्ञान का अध्ययन परम आवश्यक है।

मनोविज्ञान का अध्ययन बालकों के लालन-पालन और उनकी शिक्षा मे बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ है। बाल-मनोविज्ञान[1] और शिक्षा-मनोविज्ञान[2] की उत्पत्ति तथा प्रचार मनोविज्ञान की मौलिकता को सिद्ध करते हैं। आधुनिक प्रत्येक शिक्षित माता को बाल मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक समझा जाता है।

शिक्षा विज्ञान के विकास में मनोविज्ञान की ही प्रधानता है। शिक्षक जब तक बालक के स्वभाव का अध्ययन भली भाँति नहीं करता, उसकी रुचियों को नहीं जानता, तब तक अपने पाठ्य-विषयको रोचक नहीं बना सकता। जिस विषय में बालकों की रुचि नहीं होती, वे उसपर ध्यान नहीं लगा सकते। ऐसे विषय को याद करने म उन्हें कठिनाई होती है। यदि अरुचिकर विषय याद भी हो जाये तो बालक ऐसे विषय को शीघ्रता से भूल जाता है।

भिन्न भिन्न प्रकार के बालकों की रुचि भी अलग अलग होती है। इसी तरह बालकों की बुद्धि में भी भेद होता है। शिक्षा को उपयोगी बनाने के लिए अध्यापक को बालकों की रुचियों का अध्ययन करना तथा उनके बुद्धि भेद का पता चलाना अति आवश्यक है। जो पढ़ाई एक बालक के लिए अति लाभकारी हो वही दूसरों को हानिकारक सिद्ध हो सकती है। मनोविज्ञान के ज्ञान के अभाव में सभी बालकों को एक साथ बैठाकर एक-सी ही शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार बालकगण शिक्षा से उतना

1 Child psychology 2 Educational Psychology.

लाभ नहीं उठाते जितना उनके स्वभाव के अध्ययन के पश्चात् दी गई शिक्षा से उठाते हैं। शिक्षा-वैज्ञानिक रूसो का यह मत अब सर्वमान्य है कि शिक्षक को न सिर्फ अपने पाठ्य-विषय को ही जानना चाहिए, अपितु बालक को भी भले प्रकार पहचानना चाहिए। बालक के जीवन की अनेक समस्याएँ मनोविज्ञान के अध्ययन से सुलझाई जा सकती हैं। कितने ही बालक उद्दण्ड होते हैं और कितने ही अन्यमनस्क होते हैं। इनके कारणों का पता उनके जीवन के ऊपरी अध्ययन से नहीं चलता। इसके लिए उनके मन का पूर्ण अध्ययन करना आवश्यक है।

स्वास्थ्यलाभ मे उपयोगिता—मनोविज्ञान का अध्ययन स्वास्थ्य-लाभ करने में बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। जन-साधारण में यह बात प्रचलित है कि भय और क्रोध मनुष्य के स्वभाव को नष्ट कर देते हैं। मनोविज्ञान इस कथन की सत्यता को प्रमाणित करता है। क्रोध और भय का प्रतिकार मैत्री भावना के अभ्यास से होता है। अतएव मैत्री-भावना का अभ्यास स्वास्थ्यवर्द्धक है। जिन विचारों से मनुष्य के मन में प्रसन्नता आती है, वे विचार शक्तिवर्द्धक और आरोग्यदायक होते हैं। इसके प्रतिकूल जिन विचारों से मानसिक क्षोभ होता है, वे स्वास्थ्य-विनाशक होते हैं।

मनोविज्ञान की आधुनिक खोजों ने मनुष्य के विचार और स्वास्थ्य के सम्बन्ध पर एक नया प्रकाश डाला है। मनुष्य की बहुत-सी अतृप्त इच्छाएँ तथा उसकी कलुषित भावनाएँ मानसिक अथवा शारीरिक रोग के रूप मे प्रकट होती हैं। मनो विश्लेपक चिकित्सकों ने कई ऐसे रोगों का पता चलाया है जिनकी उत्पत्ति का कारण मानसिक रहता है और जिन्हें मानसिक चिकित्सा के द्वारा ही हटाया जा सकता है। हिस्टीरिया, हठोलापन, उन्माद, अनिद्रा, सोते समय बकवाद करना, आत्मघात की प्रवृत्ति आदि अनेक ऐसे मानसिक रोग हैं जो किसी प्रकार की शारीरिक चिकित्सा के द्वारा नहीं हटाये जा सकते। ऐसे रोगों को हटाने के लिए मानसिक चिकित्सा की आवश्यकता होती है। अनेक शारीरिक रोगों का कारण भी *मानसिक होता है। कभी-कभी साधारण शारीरिक रोग उद्वेगपूर्ण भावना के* दमन से उत्पन्न हो जाते हैं। लकवा, मिरगी, कोष्ठबद्धता, मधुमेह, दमा आदि साधारण रोगों का कभी-कभी मानसिक कारण पाया गया है। कितने ही शारीरिक रोग बहानेबाजी के रोग होते हैं। मन इन रोगों की उत्पत्ति किसी अप्रिय कर्तव्य से बचने के लिए करता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हमारे वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं जिसमें मनोविज्ञान की आवश्यकता न हो।

वैज्ञानिक विधि[1]

मनोविज्ञान एक विज्ञान है। इसके अध्ययन में हमें सदा इस बात पर ध्यान रखना होता है कि हमारा अध्ययन वैज्ञानिक रीति का हो, शास्त्रीय ढङ्ग का न हो। शास्त्रीय रीति वैज्ञानिक रीति से भिन्न है। शास्त्र किसी विशेष मत को लेकर चलता है और उस मत का प्रतिपादन अपनी युक्तियों के द्वारा करता है। उसका लक्ष्य एक निश्चित मत का प्रचार करना, उसे सामान्य लोगों के लिए सुगम बनाना, दूसरे मतों का खंडन करना तथा अपने मत को दृढ़ करना है। शास्त्र का ज्येष्ठ प्रमाण आप्त वचन है। इस आप्त वचन पर आक्षेप नहीं किया जा सकता, आप्त वचन चाहे वेद का हो अथवा कुरान या बाइबिल का। किसी ऋषि की बात को गलत उतारना शास्त्रीय वाद-विवाद का लक्ष्य होता है।

इसके प्रतिकूल विज्ञान अपने अनुभव की कसौटी पर ही सब मतों और युक्तियों को कसता है। ज्येष्ठ प्रमाण यहाँ अपना अनुभव है। तर्क अनुभव के आधार पर ही किया जा सकता है। जिस सिद्धान्त की प्रामाणिकता प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखायी जा सकती वह सिद्धान्त ही नहीं। विचार का आधार यहाँ प्रत्यक्ष ही है।

विज्ञान का विश्वास प्रयोग पर रहता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों की सत्यता प्रयोगों द्वारा सिद्ध की जा सकती है। ये प्रयोग प्रत्येक व्यक्ति को सिद्धान्तों की सत्यता जानने के लिए स्वयं करने पड़ते हैं। बिना प्रयोगों के विज्ञान का ज्ञान नहीं हो सकता। यदि हम प्रयोग न करके किसी विज्ञान के अध्ययन में किसी विशिष्ट व्यक्ति के मत का उल्लेख करें तो हम वैज्ञानिक रीति का अनुसरण नहीं करेंगे।

वैज्ञानिक रीति के पाँच अङ्ग हैं—

१—प्रदत्त[2] का इकट्ठा करना।
२—उनका वर्गीकरण करना[3]।
३—कल्पना[4] की सृष्टि।
४—निरीक्षण और प्रयोग[5]। (कल्पना की सचाई सिद्ध करने के लिए)
५—नियम[6] को स्थिर करना।

प्रत्येक वैज्ञानिक नियम उपर्युक्त विधि से स्थिर किया जाता है। उदाहरणार्थ, पानी में पदार्थों के वजन घटाने के नियम को लीजिए। यह नियम

---

1 Scientific Method 2 Data 3 Classification
Hypthesis 5 Observation and Experiment 6 Law

कैसे स्थिर किया गया ? प्रत्येक व्यक्ति देखता है कि जब कोई ठोस पदार्थ पानी में डाला जाता है तो उनका वजन घट जाता है। जब हम घड़े को पानी में डालते हैं, अथवा उसे बाहर निकालते हैं तो इस प्रकार का अनुभव होता है। पानी के भीतर एक सिल को हटाना जितना सरल होता है उतना बाहर नहीं होता। जब हम पानी में डुबकी लेते हैं तो अपने आपको बाहर की ओर उतराते पाते हैं। इस तरह अनेक प्रदत्तों को इकट्ठा करने से यह कल्पना उठती है कि पानी में ठोस पदार्थों के वजन कम कर देने की शक्ति है। ऐसी कल्पना आर्कमिडीज के मन में उठी। उसने इस कल्पना की सचाई को परखने के लिए अनेक प्रयोग किये। उन प्रयोगों के फलस्वरूप यह नियम स्थिर हुआ कि प्रत्येक पदार्थ पानी में डाले जाने पर वजन में उतना कम हो जाता है, जितना वजन उसके आयतन के पानी का होता है।

उपर्युक्त वैज्ञानिक रीति मनोविज्ञान के अध्ययन में लगाई जाती है। ध्यान की एकाग्रता के नियम, थकावट के नियम, सीखने के नियम, याद करने के नियम इसी वैज्ञानिक विधि से स्थिर किये गये हैं। इन नियमों की सत्यता प्रत्येक व्यक्ति प्रयोग करके देख सकता है। जहाँ प्रयोग सम्भव नहीं वहाँ निरीक्षण से काम लिया जाता है।

मनोविज्ञान के अध्ययन की विधियाँ

मनोविज्ञान के अध्ययन की पाँच मुख्य विधियाँ हैं—

(१) अन्तर्दर्शन[1],

(२) निरीक्षण[2],

(३) प्रयोग[3],

(४) तुलना[4],

(५) मनोविश्लेषण[5]।

अन्तर्दर्शन—मनोविज्ञान की सबसे प्रमुख विधि अन्तर्दर्शन है। यह मनोविज्ञान की विशेष विधि है। दूसरे विज्ञान जहाँ प्रधानतः निरीक्षण और प्रयोग से काम लेते हैं वहाँ मनोविज्ञान अन्तर्दर्शन से काम लेता है। मन में होनेवाली अनेक क्रियाओं का अध्ययन अन्तर्दर्शन के द्वारा किया जाता है। यह अपने मन के प्रति साक्षी-भाव रखता है। मनोविज्ञान के प्रदत्त

1. Introspection, 2. Observation, 3. Experiment, 4. Comparison, 5. Psycho-analysis.

मन में ही पाये जा सकते हैं तथा उनको इकट्ठा करने के लिए मनुष्य को भीतर छान-बीन करनी पड़ेगी। प्रत्येक व्यक्ति अपने ही मन को देख सकता है। दूसरे व्यक्ति के मन में होनेवाली क्रियाओं का अनुमान हम अपने मन में होनेवाली क्रियाओं के ज्ञान से ही करते हैं। यदि कोई हमें वैज्ञानिक नियम को बतावे तो उसकी सत्यता भी हम अपने मन की क्रियाओं को जान कर ही प्रमाणित कर सकते हैं।

इस विधि में अनेक कठिनाइयाँ हैं। कितने ही लोग तो इस विधि को वैज्ञानिक कहने में ही आपत्ति करते हैं। पहली कठिनाई यह है कि ऐसी योग्यता किसी विरले ही व्यक्ति में होती है कि वह अपने मन की क्रियाओं को परख सके। साधारणत मनुष्य बाहरी पदार्थ को ही देखता है। अपने मन की क्रियाओं का देखने का अभ्यास न रहने के कारण साधारण व्यक्ति उनका निरीक्षण नहीं कर सकता।

दूसरी कठिनाइ प्रदत्त की विलक्षणता है। मानसिक प्रदत्त बड़े चचल होतें हैं। जब हम उनका निरीक्षण करने लगते हैं तो वे लुप्त हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, किसी उद्वेग को लीजिए। यदि हम किसी उद्वेग का अध्ययन करने लगें तो वह लुप्त हो जाता है। क्रोध पर विचार करने से क्रोध चला जाता है और भय पर विचार करने से भय। तब इसका स्वरूप कैसे जाना जाय?

पहली कठिनाई अभ्यास से दूर की जा सकती है। निस्सन्देह प्रत्येक व्यक्ति मनोवैज्ञानिक नहीं बन सकता। जैसे हर एक काम में कुशलता प्राप्त करने के लिए शिक्षा और अभ्यास की आवश्यकता होती है, वैसे ही मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए भी विशेष प्रकार की ट्रेनिङ्ग की आवश्यकता होती है। जिन लोगों ने अपने मन का निरीक्षण करने का प्रयत्न किया है वे अवश्य उसका निरीक्षण कर सके हैं।

दूसरी कठिनाई भी अभ्यास से जाती रहती है। अपने मन के प्रति साक्षी भाव रखना सम्भव है। ऐसा साक्षी-भाव प्रत्येक आध्यात्मिक चिन्तन करनेवाला व्यक्ति रखता है। फिर जो प्रदत्त तुरन्त के अनुभव से प्राप्त नहीं हो सकते, उन्हें स्मृति से पूरा किया जा सकता है।

मानसिक क्रियाओं के अध्ययन में स्मृति का वैसा ही महत्त्व का स्थान है जैसा प्रत्यक्ष अनुभव का। फिर जो कुछ कमी इस तरह भी रह जाती है उसकी पूर्ति दूसरों के अनुभव से लाभ उठाकर की जा सकती है। मनोवैज्ञानिक दूसरे लोगों के अनुभव को भी जानने की चेष्टा करता है और उसकी तुलना अपने अनुभव से करता है।

कुछ लोग अन्तर्दर्शन की रीति को वैयक्तिक रीति होने के कारण अवैज्ञानिक कहते हैं। पर उनकी यह आपत्ति ठीक नहीं। प्रत्येक मनोवैज्ञानिक अपने आत्मानुभव की तुलना दूसरों के आत्म अनुभव से करता है और उसी बात को प्रमाणित करता है, जो सभी के अनुभव में ठीक उतरती है।

अन्तर्दर्शन की रीति म चाहे जो कठिनाई हो अथवा उसके प्रति जो कुछ भी आपत्तियाँ की जावें, मनोविज्ञान का आधार यही रीत हो सकती है। प्रत्येक व्यक्ति पूरी तरह केवल अपने मन को जान सकता है। दूसरे व्यक्ति का मन हम अपने मन के आधार पर ही जानते हैं। दूसरे क मन का ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। अतएव मनोविज्ञान का आधार सदा अन्तर्दर्शन ही रहेगा।

निरीक्षण—मनोविज्ञान की दूसरी विधि निरीक्षण है। जैसे कि दूसरे विज्ञान निरीक्षण से काम लेते हैं, मनोविज्ञान भी निरीक्षण से काम लेता है। दूसरे मनुष्यों के मनोभाव उनकी बाह्य चेष्टाओं, क्रियाओं तथा बातचीत से जाने जाते हैं। क्रोध के समय मनुष्य की त्योरियाँ चढ़ जाती हैं, उसका मुँह फूला-सा दिखलाई पड़ता है, कभी वह ओठ काटता है, कभी मुट्ठियों को जोर से बाँधता और जमीन पर पैर पटकता है। इन सब चेष्टाओं को देखकर हम यह अनुमान कर सकते हैं कि अमुक व्यक्ति क्रोध में है। इसी तरह भयभीत अवस्था में मनुष्य की विशेष प्रकार की चेष्टाएँ हो जाती हैं। इन चेष्टाओं को देखकर उसके मन की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। मनुष्य का ध्यान जब किसी बात में लगा रहता है तब उसे अपने आस-पास होनेवाली दूसरी बातों का ज्ञान नहीं रहता। यहाँ तक कि शरीर में कोई फोड़ा होने पर भी उसे खबर नहीं होती। थकावट का अवस्था में मनुष्य के अङ्ग शिथिल पड़ जाते हैं, उसका मन किसी काम में नहीं लगता। वह सीधा खड़ा भी नहीं हो सकता। सिर एक ओर लटक जाता है। इन बाहरी चेष्टाओं को देखकर हम मनुष्य की मानसिक स्थिति की कल्पना करते हैं।

निरीक्षण की विधि का अधिक प्रयोग होने पर ही मनोविज्ञान की अनेक शाखाओं का विस्तार हुआ। शिक्षा मनोविज्ञान, बाल मनोविज्ञान, समाज-मनोविज्ञान, विक्षिप्त-मनोविज्ञान आदि मनोविज्ञान की शाखाएँ निरीक्षण का ही विशेष प्रयोग करती हैं। वास्तव में जब निरीक्षण और प्रयोग का उपयोग मनोविज्ञान में होने लगा तभी से यह विज्ञान विस्तीर्ण हुआ और संसार के महत्त्वपूर्ण विज्ञानों में से एक समझा जाने लगा। जब तक मनोविज्ञान का आधार अन्तर्दर्शन मात्र था तब तक उसका स्थान तत्त्व विचार में था, पर उसे विज्ञान नहीं समझा जाता था।

योग्यता मापक परीक्षाओं का निर्माण किया जाता है। इन परीक्षाओं को प्रामाणिक बनाने में हजारों लोगों की परीक्षाएँ ली जाती हैं और इस प्रकार प्रामाणिक परीक्षा-पत्र बनाये जाते हैं। इनके बनाने में गणित शास्त्र का व्यापक उपयोग होता है। भारतवर्ष में इसी दिशा में अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोग हो रहे हैं।

तुलना—मनुष्यों के मन की अनेक प्रवृत्तियों का ज्ञान पशुओं की उन्हीं प्रवृत्तियों के अध्ययन से भली भाँति होता है। इस ढङ्ग के अध्ययन को तुलना विधि कहते हैं। हमारी सहज क्रियाएँ तथा मूल प्रवृत्तियाँ पशुओं की सहज क्रियाओं और मूल प्रवृत्तियों से भिन्न नहीं हैं। अतएव इनका वास्तविक स्वरूप जानने के लिए पशुओं के स्वभाव को जानना अति आवश्यक है। पशुओं पर जो प्रयोग किये जा सकते हैं वे मनुष्यों पर नहीं किये जा सकते, पर इन प्रयोगों का लाभ मनुष्य के स्वभाव को समझने में उठाया जा सकता है। पशुओं के व्यवहारों का निरीक्षण करके तथा प्रयोग द्वारा यह जाना जा सकता है कि प्राणियों में कौन-सी मूल प्रवृत्ति अधिक बली है और किसमें अधिक परिवर्तन होना सम्भव है।

इस प्रकार के अध्ययन के प्रति कुछ आपत्तियाँ अवश्य खड़ी की जा सकती हैं। पशु के स्वभाव और मनुष्य के स्वभाव में विशेष अन्तर है। अतएव पशु-स्वभाव के आधार पर मनुष्य स्वभाव का अनुमान लगाने में अनेक प्रकार की भूलें हो सकती हैं, जिसके कारण हमारा मनोविज्ञान का ज्ञान ही भ्रमात्मक हो सकता है। पशुओं की मूल प्रवृत्तियाँ उतनी परिवर्तनशील नहीं जितनी मनुष्यों की। पशुओं में विचार का भी सम्पूर्ण अभाव है। तुलना की विधि से काम लेते समय हमें इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है।

मनोविश्लेषण—मन के अन्तर्पटल का अध्ययन करने के लिए आजकल एक नई विधि का प्रयोग हो रहा है। यह चित्त विश्लेषण की विधि है। इस विधि के द्वारा मनुष्य के अदृश्य मन का ज्ञान किया जाता है। मनुष्य की अनेक ऐसी भावनाएँ तथा वासनाएँ हैं जिनका न उसे ज्ञान है और न यत्न करने पर ही वह उन्हें पहचान पाता है।

मनुष्य का अन्तर्दर्शन भी इन वासनाओं को खोजने में सफल नहीं होता। जितना ही मनुष्य इन वासनाओं को जानने की चेष्टा करता है वे उससे उतनी ही छिपती हैं। पर ये वासनाएँ उसके जीवन में अपना प्रभाव अनेक प्रकार से डालती हैं। इनके कारण मनुष्य अनेक बार अविवेक के काम कर बैठता है। इन कार्यों को करके फिर वह स्वयं ही पछताता है।

इन्हीं के कारण उसके मन में अनेक प्रकार की झक सवार होती है। उसे कभी-कभी इन झकों का ज्ञान हो जाता है और वह उन्हें छोड़ना चाहता है पर वे छुड़ाने पर भी नहीं छूटतीं। विक्षिप्तता भी इन्हीं छिपी वासनाओं का कार्य है। फ्रायड महाशय ने मन के इस भाग का विशेष अन्वेषण किया है। युग और एडलर महाशयों ने भी मन के इस अदृश्य भाग का पर्याप्त अन्वेषण किया है। उनके अध्ययन के परिणाम-स्वरूप चित्त-विश्लेषण-विज्ञान नामक एक नया विज्ञान निर्मित हो गया।

मनो-विश्लेषण-विज्ञान की विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन इस स्थल पर उपयुक्त नहीं। आगे चलकर एक विशेष प्रकरण में इसका विस्तारपूर्ण वर्णन किया जायगा। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस विधि में मनुष्य के अनेक ऐसे अनुभवों का अध्ययन किया जाता है जो साधारण दृष्टि से निरर्थक समझे जाते हैं। उदाहरणार्थ, स्वप्न के अनुभव, शारीरिक निरर्थक चेष्टाएँ, बकवाद के समय बोले गये शब्द, भूलें, पागलपन की अवस्था की चेष्टाएँ इत्यादि। चित्त-विश्लेषकों का विश्वास है कि हमारी प्रत्येक क्रिया साधारण होती है। कोई भी क्रिया निरर्थक नहीं होती। जिन क्रियाओं को हम निरर्थक समझते हैं, वे हमारी गुप्त वासनाओं को प्रकाशित करती हैं।

मनोविज्ञान की शाखाएँ

आधुनिक काल में मनोविज्ञान एक व्यापक विज्ञान हो गया है। जीवन का कोई अंग ऐसा नहीं जिसके समझने के लिए मनोविज्ञान से काम न लिया जाता हो। इस तरह मनोविज्ञान की अनेक शाखाएँ हो गई हैं। नीचे की तालिका में इन शाखाओं को दर्शाया गया है—
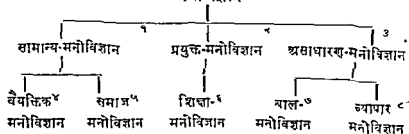
1. General psychology. 2 Applied psychology. 3. Abnormal psychology. 4. Individual psychology. 5. Social psychology. 6. Educational psychology. 7. Child psychology. 8 Industrial psychology.

वैयक्तिक मनोविज्ञान—साधारण मनोविज्ञान जिसका अध्ययन पुराने समय से करता चला आया है वह वैयुक्तिक मनोविज्ञान है। इसके द्वारा व्यक्ति अपने मन की क्रियाओं का अध्ययन करता है। दूसरे व्यक्तियों की मानसिक क्रियाओं का अध्ययन भी व्यक्तिगत रूप से किया जाता है। इस प्रकार मन के अध्ययन को विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान भी कहते हैं। इसके अध्ययन की प्रधान विधि अन्तर्दर्शन है। वास्तव में यही मनोविज्ञान मूल मनोविज्ञान है। इसीकी वृद्धि होने पर मनोविज्ञान की दूसरी शाखाएँ निकली हैं। आजकल यह मनोविज्ञान की एक शाखा मात्र माना जाता है।

समाज-मनोविज्ञान—समाज मनोविज्ञान सामाजिक मन का अध्ययन करता है। समाज में आने पर मनुष्य जैसा व्यवहार करता है वैसा अकेला रहने पर नहीं करता। मनुष्य का स्वभाव ही समाज की भित्ति है। मनुष्य में कौन-सी प्रवृत्तियाँ हैं जो समाज सगठन में लाभ पहुँचाती हैं, किन प्रवृत्तियों से हानि होती है तथा उन प्रवृत्तियों के विकास के नियम क्या हैं, भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में उनका रूप क्या होता है—इन प्रश्नों का अध्ययन समाज-मनोविज्ञान में किया जाता है। उदाहरणार्थ, मनुष्य विशेष प्रकार के कपड़े क्यों पहनता है, वह विशेष त्योहारों को क्यों मनाता है, विशेष प्रकार के लोगों से मित्रता क्यों करता है—ऐसे प्रश्नों का उत्तर समाज मनोविज्ञान से मिलता है।

शिक्षा-मनोविज्ञान—मनोविज्ञान की एक बिलकुल नई शाखा शिक्षा-मनोविज्ञान है। जिन लोगों के ऊपर बालकों की शिक्षा का भार पड़ा उन्होंने देखा कि बालकों को यदि मनोवैज्ञानिक ढग से पढ़ाया जाय तो उन्हें पुरानी रीति से पढ़ाने की अपेक्षा कहीं अधिक लाभ होगा। मनोविज्ञान की यह शाखा प्रयोगों से भरी है। जिस तरह वैयक्तिक मनोविज्ञान का प्रधान आधार अन्तर्दर्शन और समाज-मनोविज्ञान का निरीक्षण है, उसी तरह शिक्षा मनोविज्ञान का प्रधान आधार प्रयोग है। शिक्षा-मनोविज्ञान में बालकों की बुद्धि मापी जाती है, विभिन्न प्रकार से पाठ याद करने की रीतियों पर प्रयोग किया जाता है, अध्ययन के समय और थकावट पर प्रयोग किये जाते हैं। ऐसे ही अनेक शिक्षा सम्बन्धी विषयों का प्रयोग द्वारा अध्ययन होता है।

बाल-मनोविज्ञान—जिस तरह शिक्षा-मनोविज्ञान शिक्षक के लिए उपयोगी है, उसी तरह बाल-मनोविज्ञान प्रत्येक माता-पिता के लिए उपयोगी है। हरबर्ट स्पेंसर ने तो इसका अध्ययन प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य बनाने की सलाह दी है। प्रत्येक भावी माता को इस विज्ञान का अध्ययन अति आवश्यक है।

बाल मनोविज्ञान में बालक के स्वभाव का अध्ययन किया जाता है। हम सभी एक समय बालक थे और अब भी बालकों को सदा अपने आस-पास देखते रहते हैं, तिसपर भी उनकी मनोवृत्तियों को भली भाँति समझना कठिन है। बालक चलना-फिरना, बोलना, रहन-सहन कैसे सीखता है, इस विषय पर बाल मनोविज्ञान विचार करता है। इसके अध्ययन से बालक के लालन-पालन में सहायता मिलती है।

व्यापार-मनोविज्ञान—मनोविज्ञान का यह शाखा व्यापारियों के लिए उपयोगी है। इसक ज्ञान से वे अपने ग्राहकों को प्रसन्न रख सकते हैं। इसी तरह मिल-मालिक अपने मजदूरों को प्रसन्न रख सकते हैं। जो व्यक्ति व्यापार-मनोविज्ञान के प्रतिकूल व्यवहार करता है वह व्यापार में असफल हो जाता है।

असाधारण मनोविज्ञान—मनोविज्ञान की इस शाखा को असाधारण मनोविज्ञान भी कहा जाता है। साधारण व्यक्तियों के मन का अध्ययन असाधारण व्यक्तियों के मन के अध्ययन से हो सकता है। जिस तरह मनुष्य स्वास्थ्य के रहस्य को बीमारियों के अध्ययन मे ठीक तरह से समझता है, उसी तरह असाधारण मन के अध्ययन से साधारण मन की गूढ़ क्रियाएँ समझ में आती हैं।

आधुनिक काल में मनोविज्ञान की इस शाखा ने बड़ी उन्नति की है। इसकी वृद्धि से मनो-विश्लेषण[1] नामक नया ही विज्ञान खड़ा हो गया है। इस विज्ञान मे मनुष्य की उन मानसिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जो उसक अनजाने होती रहती हैं। इसके अध्ययन से मनोविज्ञान के अध्ययन को महत्ता स्पष्ट हो जाती है और मनुष्य यह जान लेता है कि वह अपने ही विषय में कितना कम जानता है तथा अपने आपको कितने प्रकार से धोखा देता रहता है। इस शाखा के अध्ययन से मनुष्य को अपने अनेक शारीरिक और मानसिक रोगों से मुक्त होने में सहायता मिलती है।

मनोवृत्ति[2]

ऊपर लिखा जा चुका है कि मनोविज्ञान मन की दृश्य और अदृश्य क्रियाओं का अध्ययन करता है। दृश्य क्रियाएँ चेतन[3] मन में होती हैं और अदृश्य क्रियाएँ अचेतन[4] मन में। मन की इन क्रियाओं को मनोवृत्ति भी कहा जाता है। साधारणत. मनोवृत्ति शब्द चेतन मन की क्रिया के बोध के लिए उपयुक्त होता है।

---

1 Psycholaualysis.

2 Psychic Experience. 3. Conscious. 4. Unconscious.

प्रत्येक मनोवृत्ति के तीन पहलू होते हैं—ज्ञानात्मक, वेदनात्मक और क्रियात्मक। मनोवृत्ति के इन तीन पहलुओं को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। ऐसा करने से मनोवृत्ति का स्वरूप नष्ट हो जाता है। हमें जो कुछ ज्ञान होता है, उसके साथ साथ वेदना और क्रियात्मक भाव की भी अनुभूति होती है। मान लीजिए, हम अँधेरे में जाते हुए रास्ते में एक रस्सी पड़ी देखते हैं। इस रस्सी को हम सर्प समझ बैठते हैं। सर्प का भ्रम उत्पन्न होते ही हमें भय होता है, और हम वहाँ से भागते हैं। हमारे इस साधारण से अनुभव में मनोवृत्ति के तीनों पहलू स्पष्ट दिखाई देते हैं। मनोवृत्ति का ज्ञानात्मक पहलू सर्पज्ञान है, वेदनात्मक पहलू भय और क्रियात्मक पहलू भागना है।

हमारे प्रत्येक अनुभव में मनोवृत्ति के उपर्युक्त ये तीनों पहलू वर्तमान रहते हैं, किन्तु विषय को भली भाँति समझने के लिए इन तीनों पहलुओं को एक दूसरे से पृथक् करके अध्ययन किया जाता है। मनोवृत्ति के विभिन्न स्तर होते हैं। उन स्तरों के अनुसार मानसिक क्रियाओं के भिन्न भिन्न भाग होते हैं। मनोविज्ञान में जिन मानसिक क्रियाओं और उनके परिणामों का अध्ययन किया जाता है, उन्हें मनोवृत्तियों के पहलुओं के अनुसार निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है—

मनोवृत्ति[1]

ज्ञानात्मक[2]	वेदनात्मक[3]	क्रियात्मक[4]
१—संवेदन[5]	१—संवेग[10]	१—सहज क्रिया[14]
२—प्रत्यक्षीकरण[6]	२—उमंग[11]	२—मूल प्रवृत्ति[15]
३—स्मरण[7]	३—स्थायी भाव[12]	३—आदत[16]
४—कल्पना[8]	४—भावना ग्रन्थि[13]	४—इच्छित क्रिया[17]
५—विचार[9]		५—चरित्र[18]

---

1 Psychic Experience

2 Cognative	3 Affective	4 Conative
5 Sensation	10 Emotion	14 Reflex
6 Perception	11 Mood	15 Instinct
7 Remembering	12 Sentiment	16 Habit
8 Imagination	13 Complex	17 Voluntary action
9 Shinking		18 Character

विषय विस्तार

मनोविज्ञान, मनोवृत्ति के उपर्युक्त विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करता है। इसके अतिरिक्त वह अचेतन मन की क्रियाओं पर भी प्रकाश डालता है। व्यक्तित्व[1] और बुद्धि[2] की विलक्षणता, निद्रा, मूर्छा, सम्मोहन[3] और विक्षिप्तता[4] आदि विषयों का समावेश भी मनोविज्ञान में होता है।

मनोविज्ञान का दृष्टिकोण पूर्णतः वैज्ञानिक है। अतएव विधि और निषेध के लिए इस विज्ञान में स्थान नहीं। मन की भली और बुरी दोनों प्रकार की क्रियाओं पर मनोविज्ञान प्रकाश डालता है। मनोविज्ञान के लिए एक विक्षिप्त अथवा दुराचारा पुरुष का जीवन उतना ही महत्त्व का है जितना कि एक महात्मा का जीवन। मनोविज्ञान किसी भी मानसिक क्रिया को भला अथवा बुरा नहीं कहता। उसका लक्ष्य विभिन्न मानसिक क्रियाओं में कारण-कार्य के सम्बन्ध को खोजना है। कितनी ही मानसिक क्रियाओं के कारण अव्यक्त रहते हैं। इन कारणों का पता चलाना मनोविज्ञान का कार्य है।

मनोविज्ञान एक ओर पदार्थ-विज्ञान[5] से भिन्न है और दूसरी ओर तर्क-विज्ञान[6] से। पदार्थ विज्ञान बाह्य-पदार्थों का अध्ययन उनके स्वभाव और क्रियाओं के समझने के लिए करता है। मनोविज्ञान बाह्य पदार्थों का अध्ययन उनके अनुभव की विलक्षणता पहचानने के लिए करता है। मनोवैज्ञानिक बाह्य पदार्थों का स्वतन्त्र अध्ययन नहीं करता। इसी तरह मनोविज्ञान मन से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य अध्ययन के विज्ञानों से भी पृथक् है। कर्त्तव्य-विज्ञान[7] तथा तर्क-विज्ञान मन की क्रियाओं का अध्ययन प्रामाणिकता[8] की दृष्टि से करते हैं। कर्त्तव्य-विज्ञान कर्त्तव्य के आदर्श को स्थिर करता है और तर्क विज्ञान विचार के आदर्श अर्थात् प्रमाण[9] के स्वरूप को निर्धारित करता है। मनोविज्ञान का आदर्श से कोई सम्बन्ध नहीं। वह एक अनुभवात्मक विज्ञान[10] है, आदर्शात्मक विज्ञान[11] नहीं।

मनोविज्ञान और अन्य विद्याएँ

मनोविज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध अनेक उन विद्याओं से है जो मानवस्वभाव को किसी दूसरे दृष्टिकोण से अध्ययन करती हैं और मनुष्य के व्यवहारों और उसकी प्रगति के विषय में कुछ विशेष निष्कर्ष पर पहुँची हैं। मानव स्वभाव

---

1. Personality. 2. Intelligence. 3. Hypnosis. 4. Insanity. 5. Physical Sciences. 6. Logic. 7. Ethics. 8. Norm. 9. Right knowledge. 10. Positive Science. 11. Natural Science.

का अध्ययन करनेवाली अन्य विद्याएँ समाज विज्ञान[1], नीति-शास्त्र[2], शिक्षा-शास्त्र[3], मानव विकास विज्ञान[4] और प्राणि-विज्ञान[5] हैं। इनके अतिरिक्त शरीर विज्ञान[6] और साहित्य[7] भी मनुष्य के स्वभाव का अध्ययन करते हैं।

जहाँ तक स्वयं मनोविज्ञान की व्यापकता की बात है, वह मनुष्य-निर्मित उन सभी विद्याओं तथा रचनाओं में हाथ रखता है जो मानव स्वभाव को किसी विशेष दृष्टि से समझने की चेष्टा करती हैं। सुकरात ने कहा है, मनुष्य के अध्ययन का सबसे महत्त्व का विषय मनुष्य ही है। मानव स्वभाव का अध्ययन जितना अधिक मनोविज्ञान करता है उतना दूसरी विद्याएँ नहीं करतीं। फिर कुछ विद्याओं की अध्ययन-प्रणाली आदर्शों के स्थापन की दृष्टि से होती है। मनोविज्ञान मनुष्य का अध्ययन वास्तविक स्थिति की दृष्टि से करता है।

मनोविज्ञान को पहले तो हमें उन आदर्श-निर्धारक विद्याओं[8] से भिन्न जानना है जो मनुष्य के आचरण अथवा उसकी रुचि के विषय में आदर्शों का निरूपण करती हैं। इस प्रकार की विद्याएँ नीति शास्त्र, तर्क शास्त्र और सौन्दर्य शास्त्र हैं। ये विद्याएँ मानव-स्वभाव को जैसा वह है वैसा अध्ययन न करके जैसा उसे होना चाहिये उस दृष्टि से अध्ययन करती हैं। मनोविज्ञान इन विद्याओं से इस बात में भिन्न है कि भली और बुरी संज्ञा को अलग करके वह मानव स्वभाव का अध्ययन करता है। मनोविज्ञान असाधारण व्यक्ति के आचरण का अध्ययन उसी प्रकार से करता है जिस प्रकार साधारण व्यक्ति के; इसी तरह अपराधी मनुष्य के व्यवहारों का अध्ययन मनोविज्ञान में उसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार संत के व्यवहारों का।

मनोविज्ञान के विकास में प्राणि-विज्ञान और शिक्षा विज्ञान का विशेष महत्त्व का स्थान रहा है। प्राणि-विज्ञान प्राणियों की खोजों से प्राणियों के विकास की प्रगति, उनमें नवीन शक्तियों के उदय का क्रम तथा उनके व्यवहारों के प्रेरकों तथा विशेषताओं का पता चलाता है। मनोविज्ञान इन खोजों से लाभ उठाता है। व्यवहारवादी मनोविज्ञान[9] के सिद्धान्त बहुत कुछ प्राणि-विज्ञान पर ही आधारित हैं।

मनोविज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध शिक्षा-विज्ञान से है। मनोविज्ञान के बहुत से प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में ही होते हैं। शिक्षा मनुष्य के व्यवहार के विकास के हेतु होती है, अतएव जो भी इस क्षेत्र में प्रयोग होते हैं वे

---

1. Sociology. 2. Ethics. 3. Education. 4. Anthropology. 5. Biology. 6. Physiology. 7. Literature. 8. Normative Science. 9. Behaviourist Psychology.

मनोविज्ञान की प्रगति करते हैं। परन्तु मनोविज्ञान जितना शिक्षा पर आधारित है उससे अधिक शिक्षा मनोविज्ञान पर अवलम्बित है। शिक्षा-विधि में आधुनिक काल में जो कुछ भी विकास हुए हैं वे मनोविज्ञान की खोजों के कारण हुए हैं। शिक्षा में प्रश्नोत्तरप्रणाली, स्मरण-शक्ति में उन्नति के मार्ग तथा बौद्धिक परीक्षाओं का उपयोग मनोविज्ञान की नई खोजों का परिणाम है।

आधुनिक काल में मनोविज्ञान की प्रगति चिकित्सा-शास्त्र की खोजों के कारण भी हुई है। आधुनिक मनोविज्ञान के प्रमुख विद्वान् डा० फ्रायड वियना शहर के एक डाक्टर थे। वे हिस्टीरिया जैसे रोगों का उपचार भौतिक दवाइयों से किया करते थे। अपनी चिकित्सा के अनुभव ने उन्हें बताया कि यह रोग मानसिक है और इसका कारण मनुष्य के मन के एक स्तर में है जिसका ज्ञान मनोवैज्ञानिकों ने तब तक नहीं किया था। उसने मनुष्य के इस अज्ञात मन की कार्य-प्रणाली की खोज की और इस खोज के आधार पर मानसिक रोगियों की सफल चिकित्सा की। तब से मनोविज्ञान की अधिक खोजें इसी दिशा में हो रही है।

आधुनिक काल में यह अनुभव किया जा रहा है कि प्रत्येक डाक्टर को मनोविज्ञान का अनिवार्य रूप से ज्ञान होना चाहिये। बहुत से शारीरिक रोगों के मानसिक कारण होते हैं। इनका जाने बिना जो लोग शारीरिक रोगों का उपचार करते हैं वे कभी-कभी रोगी को लाभ के बदले हानि ही अधिक कर देते हैं। इससे चिकित्सा में मनोविज्ञान की आवश्यकता स्पष्ट है।

प्रश्न

१—मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय क्या है? क्या मनोविज्ञान विज्ञान कहा जा सकता है?

२—मनोविज्ञान के अध्ययन की उपयोगिता क्या है? व्यावहारिक जीवन से दो-एक उदाहरण देकर समझाइये।

३—"मनोविज्ञान मन की चेतन क्रियाओं का अध्ययन है"—मनोविज्ञान की इस परिभाषा की विवेचना कीजिये। मनोविज्ञान की एक ऐसी परिभाषा बनाइए जिसमें अव्याप्ति और अतिव्याप्ति के दोष न हों।

४—वैज्ञानिक विधि क्या है? मनोविज्ञान में इस विधि का कहाँ तक प्रयोग किया जाता है?

५—'अन्तर्दर्शन' और 'निरीक्षण' को उदाहरण देकर समझाइए। 'अन्तर्दर्शन' क्यों मनोविज्ञान की मुख्य विधि मानी जाती है?

६—'अन्तर्दर्शन' की क्या-क्या कठिनाइयाँ हैं ? उन कठिनाइयों को हल कैसे किया जाता है ?

७—मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाएँ क्या क्या हैं ? बाल-मनोविज्ञान और विक्षिप्त मनोविज्ञान के विषय को स्पष्ट कीजिए।

८—मनोवृत्ति के विभिन्न पहलू क्या हैं ? वे एक दूसरे पर कहाँ तक अवलम्बित हैं ? उदाहरण देकर समझाइए।

९—मनोविज्ञान का विस्तार क्या है ? मनोविज्ञान की दूसरे मानसिक विज्ञानों से तुलना कीजिए।

१०—अपने किसी ऐसे अनुभव का वर्णन कीजिये, जिससे मनोविज्ञान के अध्ययन की महत्ता स्पष्ट हो।

Dwarka

दूसरा प्रकरण

मन और शरीर का सम्बन्ध

साधारण विचार-धारा

शरीर और मन का पारस्परिक परावलम्बन—प्रत्येक साधारण मनुष्य के विचारानुसार मन और शरीर का घनिष्ठ सम्बन्ध है; मन शरीर के बिना नहीं रह सकता और न शरीर मन के बिना। जब शरीर से सब प्रकार की चेतना चली जाती है तो वह मुर्दा हो जाता है। हम साधारणतः जानते हैं कि विचार और इच्छाएँ हमारे मन में उठती हैं, किन्तु इन विचारों अथवा इच्छाओं की पूर्ति के लिए शारीरिक क्रियाएँ करना पड़ता हैं। स्वयं शरीर में विचार या इच्छाएँ नहीं उठतीं। शरीर को हम मन से इस तरह स्वतन्त्र वस्तु नहीं मानते, किन्तु हम यह भी जानते हैं कि बिना शरीर के किसी भी इच्छा की पूर्ति नहीं हो सकता। जो कुछ कार्य किया जाता है वह शरीर के द्वारा ही किया जाता है। अधिक काम करने पर जब हम थक जाते हैं और शरीर अस्वस्थ होता है तो ठीक-ठीक विचार नहीं कर सकते। जब कहीं शरीर में कोई क्षति हो जाती है तो हमें आन्तरिक वेदना होती है। विचार, वेदना और थकावट का अनुभव मन को होता है। किन्तु मन के इन अनुभवों के साथ-साथ शारीरिक क्रियाएँ भी होती हैं। इस तरह हमारा साधारण अनुभव बताता है कि न तो मन शरीर से स्वतन्त्र है और न शरीर मन से।

उपर्युक्त विचारधारा प्रत्येक साधारण मनुष्य की है। जब तक कोई मनुष्य विज्ञान अथवा दर्शन का अध्ययन नहीं करता, उपर्युक्त विचारधारा में कोई दोष नहीं देखता। वैज्ञानिक अथवा दार्शनिक दृष्टिकोण के आते ही उसका उपर्युक्त निश्चयात्मक ज्ञान सन्देहयुक्त हो जाता है। शरीर और मन के सम्बन्ध को हम जितना ही दार्शनिक दृष्टिकोण से देखते हैं, अर्थात् इस सम्बन्ध में जितना ही सूक्ष्म विचार करते हैं उतना ही शरीर और मन का सम्बन्ध स्पष्ट न होकर अस्पष्ट होता जाता है। शरीर और मन के स्वभाव में इतना विरोध* है कि हम नहीं जानते कि एक दूसरे में सम्बन्ध कैसे

---

* यूरोपीय दर्शन में इस विरोध का स्पष्टीकरण पहले-पहल डेकार्ट महाशय ने किया था। उनके कथनानुसार शरीर जड़ पदार्थ का बना है

स्थापित रह सकता है। शरीर और मन के सम्बन्ध को भली भाँति जानने के लिए इन दोनों के स्वभाव को जानना आवश्यक होता है। किन्तु हम जितना ही मन और शरीरका अध्ययन करते हैं, ऐसी कई बातें ज्ञात होती हैं, जिनसे उनके आपस के सम्बन्ध की समस्या सुलझने के बदले और भी उलझती जाती है। अपने वर्तमान ज्ञान की दशा में इस विषय में हम चाहे जिस निष्कर्ष पर पहुँचें, उसे कामचलाऊ ही समझना होगा। सम्भव है कि शरीर और मन के सम्बन्ध की समस्या का सन्तोषजनक उत्तर तभी मिले जब हमारी सभी वैज्ञानिक और दार्शनिक समस्याएँ हल हो जायँ।

प्रमुख विचार-धाराएँ

आधुनिक मनोविज्ञान में मन और शरीर के सम्बन्ध के विषय में निम्नांकित तीन प्रकार की प्रमुख विचार-धाराएँ हैं—

(१) पारस्परिक प्रतिक्रियावाद[1], (२) समानान्तरवाद[2] और (३) जड़वाद तथा व्यवहारवाद[3]।

इन तीनों प्रकार की विचार-धाराओं में इतना विरोध है कि इनपर अलग-अलग विचार करना आवश्यक है।

पारस्परिक प्रतिक्रियावाद—पारस्परिक प्रतिक्रियावाद के अनुसार मन और शरीर दो भिन्न पदार्थ हैं, किन्तु मन की किसी भी क्रिया का

और जड़ पदार्थ क्रिया तथा चेतनारहित और अवकाशयुक्त होता है। मन के गुण इसके प्रतिकूल हैं। मन क्रियमाण, चेतन और अवकाशरहित होता है। डेकार्ट महाशय ने इस विरोध को दर्शाकर एक बड़ी दार्शनिक समस्या आधुनिक दार्शनिकों के समक्ष उपस्थित कर दी है। यह समस्या आधुनिक दर्शन में 'जड और चेतन के विरोध' की समस्या के नाम से प्रसिद्ध है। शरीर और मन का विरोध इस समस्या का एक अङ्ग है। स्वयं डेकार्ट महाशय इस समस्या का सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके। इस समस्या को हल करने के प्रयत्न में दो प्रकार की विरोधी विचार-धाराओं का उदय हुआ। एक के अनुसार जड़ पदार्थ कोई वस्तु नहीं, सभी चेतन सत्ता का प्रकाशमात्र है और दूसरे के अनुसार चेतन पदार्थ, जड़ पदार्थ का ही एक रूप है।

जड़ चेतन के विरोध की समस्या एक मनोवैज्ञानिक समस्या है। इस समस्या का अभी तक कोई सर्वमान्य उत्तर नहीं मिला है।

1. Interactionism. 2. Parallelism 3. Materialism, Behaviourism.

प्रभाव शरीर पर पड़ता है और शरीर की क्रिया का मन पर प्रभाव पड़ता है। जब हमें प्रसन्नता होती है तब हमारा शरीर फुर्तीला हो जाता है और जब रंज रहता है तब शरीर भी सुस्त हो जाता है'। स्वस्थ शरीर की अवस्था में हम जैसा सोचते विचारते हैं, वैसा बीमारी की अवस्था में नहीं। बीमारी की दशा में अनेक अभद्र विचार मन में उठने लगते हैं। इसी तरह अभद्र विचारों के उठने से बीमारी आ जाती है।

शरीर और मन की क्रियाओं के पारस्परिक अवलम्बन में प्रत्येक व्यक्ति का विश्वास होता है। किन्तु यह निश्चय करना बड़ा ही कठिन है कि विचार और शरीर की प्रतिक्रियाओं में प्रधानता किसकी है। आधुनिक मनोविश्लेषण विज्ञान की खोज करनेवाले हमारी सभी प्रकार की मानसिक और शारीरिक क्रियाओं में विचार की प्रधानता दिखाते हैं, अर्थात् मनुष्य के व्यवहार और उसके शरीर का स्वास्थ्य उसके विचारों और इच्छाओं पर ही निर्भर है। यदि कोई मनुष्य बहुत देर तक किसी दूषित विचार को मन में रखता है, तो वह किसी शारीरिक बीमारी के रूप में बाहर निकल आता है। बहुत-सी बीमारियाँ उनके आवाहन करने से आती हैं अर्थात् मनुष्य का मन बीमारियों का आकर्षण करता है, अथवा उनकी सृष्टि कर लेता है। पिछले महायुद्ध के समय बहुत से सिपाहियों को लकवे की बीमारी का यही कारण पाया गया था। हमारे प्रत्येक शुभ और अशुभ विचार का परिणाम हमारे शरीर पर पड़ता है। किसी भी विचार के अधिक देर तक रहने पर शरीर में मौलिक परिवर्तन हो जाते हैं।

समानान्तरवाद*—इस मत के अनुसार शरीर और मन एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं। न तो शरीर की क्रियाओं का प्रभाव मानसिक क्रियाओं पर पड़ता है और न मन की क्रियाओं का शरीर पर। शरीर और मन की क्रियाओं में आपस में कार्य-कारण सम्बन्ध न होते हुए भी वे एक दूसरे की सहगामी

---

*हालैंड के सत्रहवीं शताब्दी के दार्शनिक स्पैनोज़ा ने पहले पहल इस मत को प्रकाशित किया था। उनके कथनानुसार "विचार" और "देश" दोनों ही एक तत्त्व के गुण हैं। यह एक तत्त्व सर्वव्यापी है। यही मनुष्य की आत्मा है। "विचार" का रूपान्तरण मन है और "देश" का शरीर। दोनों आत्मा के "कल्पित" गुण हैं। गुणी एक ही होने के कारण दोनों गुणों में विषमता होने पर भी दोनों के कार्यों में पारस्परिक सहगामिता का सम्बन्ध रहता है। इस तरह मन के परिवर्तन शरीर की क्रियाओं में और शारीरिक परिवर्तन मानसिक क्रियाओं में प्रकाशित होते हैं।

होती हैं। हम सोचते और बोलते हैं; सोचना और बोलना दो प्रकार की क्रियाएँ हैं—एक मानसिक क्रिया है और दूसरी शारीरिक। हमारी साधारण धारणा के अनुसार सोचना कारण है और बोलना कार्य; किन्तु समानान्तरवाद के अनुसार दोनों प्रकार की क्रियाओं में ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है। न सोचना बोलने का कारण है और न बोलना सोचने का। सोचना पहले होनेवाली मानसिक क्रियाओं का फल है और बोलना *पूर्वगामी शारीरिक क्रियाओं का फल।*

यह विचारधारा मन के अध्ययन को शारीरिक क्रियाओं के अध्ययन से स्वतन्त्र कर देती है। अब हमें मानसिक क्रियाओं के कारणों की खोज पूर्वगामी मानसिक क्रियाओं में ही करनी पड़ेगी, न कि शारीरिक क्रियाओं में। जब तक शरीर और मन की क्रियाओं के पारस्परिक अवलम्बन पर विश्वास किया जाता है तब तक कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मन का वैज्ञानिक अध्ययन करना कठिन है। मन दृश्य पदार्थ के समान 'देश' से सीमित नहीं अर्थात् हम उसे नाप नहीं सकते हैं। किन्तु शरीर देश से सीमित रहता है। शारीरिक परिवर्तन भौतिक शक्ति के कारण होते हैं और मानसिक परिवर्तन मानसिक शक्ति के कारण। अतएव एक दूसरे में पारस्परिक सम्बन्ध की कल्पना करना बड़ा कठिन माना जाता है। इसके अतिरिक्त हमारा शरीर का ज्ञान इस सिद्धान्त के मानने पर भ्रमात्मक हो जाता है। क्योंकि जब तक हम मन के स्वरूप का पूर्ण ज्ञान नहीं कर लेते, शारीरिक क्रियाओं के विषय में भी निश्चित मत नहीं प्रकाशित कर सकते।

समानान्तरवाद का सिद्धान्त भी निर्दोष नहीं। पहले मन और शरीर की क्रियाओं में पूर्ण समता नहीं दिखाई देती। अर्थात् प्रत्येक शारीरिक परिवर्तन का सहगामी मानसिक परिवर्तन नहीं होता और न प्रत्येक मानसिक परिवर्तन का सहगामी शारीरिक परिवर्तन होता है। किन्तु यदि इस प्रकार परिवर्तन मान भी लिया जाय, तो हमारा साधारण विचार यह स्वीकार नहीं करता कि *मानसिक और शारीरिक क्रियाओं में पूर्ण सहगामिता होते हुए* भी एक दूसरे में कोई सम्बन्ध नहीं है।

सहगामी क्रियाओं में 'कारण-कार्य' के सम्बन्ध को स्थिर न कर सकना हमारी अज्ञानता का सूचक है। जिन सहगामी क्रियाओं में हम कारण-कार्य की व्याप्ति नहीं देखते, उनमें यह व्याप्ति ज्ञान की वृद्धि होने पर पाई जाती है।

जड़वाद—जड़वाद के अनुसार चेतना शरीर का ही एक प्रकार का विकार है। मिस्टर हाक्सन के कथनानुसार 'चेतना फर्श में जड़े पत्थरों के

रगों के समान है।' जिस तरह फर्श के पत्थर रगों के कारण एक दूसरे से नहीं जुडे हैं वरन् दूसरे ही किसी कारण जुड़े हैं, इसी प्रकार हमारे विचार शारीरिक क्रियाओं के चलने में कोई अनिवार्य काम नहीं करते। शरीर की क्रियाएँ शरीर के नाड़ी तन्तुओं के द्वारा चला करती हैं। विचार उनका ज्ञानमात्र करता है। वह एक निरपेक्ष साक्षी के सदृश है। कितने ही लोगों ने शरीर की क्रियाओं का चेतना से सम्बन्ध, घड़ी की क्रिया और उसकी घण्टी की उपमा देकर समझाया है। घण्टी के बजने पर घड़ी की क्रियाएँ निर्भर नहीं हैं वरन् घड़ी की क्रियाओं पर घण्टी का बजना निर्भर है। इस विचार के अनुसार मन की क्रियाएँ मस्तिष्क की क्रियाओं से भिन्न नहीं हैं। मनुष्य के मस्तिष्क में बहुत से जीव घटक (सेल] हैं। हमारे विचार करने में इन जीव घटकों में परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों का परिणाम ही विचार है। विचार हमारे शरीर की दूसरा क्रियाओं का सञ्चालन करता है। अर्थात् सभी क्रियाएँ मस्तिष्क[1] अथवा सुषुम्ना-नाड़ी[2] में रहनेवाले परिवर्तनों के फल हैं।

मनोविज्ञान में प्रचलित जड़वाद का आधुनिक रूप व्यवहारवाद[3] है। इसके प्रवर्तक वाट्सन महाशय हैं। वाट्सन महाशय ने हमारी जटिल से जटिल मानसिक तथा शारीरिक क्रियाओं को सहज क्रिया[4] का परिवर्तित रूप बताया है। अर्थात् मन की जटिल से जटिल क्रिया वातावरण के संघर्ष से उसी प्रकार उत्पन्न होती है, जिस प्रकार नाक में धूल-कण जाने से छींक आती है, या जिस प्रकार मेंढक के पैर को पिन से कोंचने पर वह पैर को झटकारता है। इन लोगों के विचारानुसार मनुष्य की सभी क्रियाएँ स्वगत और नियत हैं। मनुष्य में स्वतन्त्र इच्छा शक्ति नामक कोई वस्तु ही नहीं। उसके विचार मस्तिष्क में चलनेवाले विचारों के परिणाम हैं।

जड़वाद की समालोचना

जड़वाद का खण्डन स्टाउट और मैगडूगल महाशयों ने भली भाँति किया है। जड़वादी यह मानकर चलते हैं कि चेतन जीवों की क्रियाओं और जड़ पदार्थों की क्रियाओं में कोई भेद नहीं है। जड़ और चेतन दोनों प्रकार के पदार्थों की क्रियाएँ एक-से निश्चित नियमों का पालन करती हैं। डारविन ने प्राणियों के विकास का नियम ढूँढ निकाला था। इस नियम के अनुसार ही जीवों का विकास, वृद्धि और वितरण होता है। इस नियम को उन्होंने "प्राकृतिक चुनाव का नियम"[5] कहा है। यह नियतवाद[6] का पोषक है।

आधुनिक प्राणि-शास्त्र के पंडित डारविन के नियतवाद में अविश्वास

---

1. Brain. 2. Spinal Cord. 3. Behaviourism 4. Reflexes 5. Law of Natural Selection. 6 Determinism

करने लगे हैं। वे देखते हैं कि प्राणियों को सभी क्रियाएँ नियतवाद के सिद्धांत पर नहीं समझाई जा सकती हैं। प्राणियों की क्रियाओं और उनके विकास में हेतु[1] का भी स्थान देखा जाता है। जैसे-जैसे प्राणी का जीवन अधिकाधिक विकसित होता है, हेतुपूर्वक क्रियाओं की वृद्धि होती जाती है और निश्चित नियमों के अनुसार चलनेवाली क्रियाओं की कमी होती जाती है।

मस्तिष्क के विषय में इस समय हमारा अध्ययन इतना पर्याप्त नहीं है कि यह कह सकें कि हमारी विभिन्न मानसिक क्रियाएँ मस्तिष्क की क्रियाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। हमारे भिन्न-भिन्न विचार मस्तिष्क के किस स्थल में रहते हैं, यह किसी ने नहीं दर्शाया। कुछ समय पूर्व मस्तिष्क के विभिन्न स्थल भिन्न-भिन्न प्रकार की चेतना के विशेष स्थल बताए जाते थे; किन्तु आज इस प्रकार का सिद्धान्त निर्दोष नहीं माना जाता।

मनुष्य जब बाह्य पदार्थों के सम्पर्क में आता है तो उसके मस्तिष्क में उत्तेजना होती है। यह उत्तेजना अन्तर्गामी नाड़ियों के उत्तेजित होने से होती है। जड़वादी यह नहीं बताते कि मस्तिष्क की उत्तेजना संवेदना का रूप कैसे धारण कर लेती है; और विभिन्न संवेदनाएँ मिलकर पदार्थ-ज्ञान, कल्पना और विचार में कैसे परिणत हो जाती हैं। यदि यह कहा जाय कि मस्तिष्क एक ऐसे जड़ पदार्थ का बना है कि किसी उत्तेजना के वहाँ तक पहुँचने पर वह चैतन्य संवेदना में परिणत हो जाता है, तो फिर हमें यह कहना होगा कि यह जड़-पदार्थ पदार्थ-विज्ञान में अध्ययन किये जानेवाले जड़ पदार्थ से भिन्न है।

वास्तव में जैसे-जैसे पदार्थ-विज्ञान का अध्ययन बढ़ता जाता है, मनुष्य की जड़ पदार्थ के विषय में पुरानी धारणाएँ भ्रमात्मक सिद्ध होती जाती हैं। वर्तमान काल के प्रमुख वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि हमारा विज्ञान से प्राप्त हुआ ज्ञान वस्तु के स्वरूप को नहीं बताता, वरन् उसके ऊपरी छिलके का वर्णन करता है।[2]

---

1. Motives. 2. प्रोफेसर एडिंग्टन के, जो ज्योतिष-शास्त्र के विशेषज्ञ हैं, निम्नलिखित विचार इस प्रसङ्ग में उल्लेखनीय हैं—"All through the physical world runs that unknown content, which must surely be the stuff of our consciousness,"—Eddington **Space. Time and Grivitation.**

'सब भौतिक जगत् में एक अज्ञात सत्ता है, यह सत्ता हमारी चेतना से अवश्य अभिन्न है। फिजिक्स की "क्वाएटम" कल्पना के जन्मदाता

चैतन्यवाद

जिस प्रकार जड़वाद हमारी मानसिक क्रियाओं को मस्तिष्क के विचारों का परिणाम मात्र दर्शाने की चेष्टा करता है, चैतन्यवाद भी मस्तिष्क और शरीर की सभी क्रियाओं को हमारे मन के विचारों और इच्छाओं के परिणाम मात्र दिखाने की चेष्टा करता है। भारतवर्ष का चैतन्यवाद जीवात्मा को अमर मानता है। उसका विभिन्न शरीरों का धारण करना उसकी इच्छा के ऊपर निर्भर होना सिद्ध करता है। जीवात्मा का अमरत्व वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध नहीं किया जा सका है, अतएव विज्ञान जीवात्मा के अमरत्व में विश्वास नहीं करता। किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान के अन्वेषक यह बतला रहे हैं कि शरीर की क्रियाओं का सचालन तथा शरीर की वृद्धि और विनाश मन के ऊपर निर्भर है। मनुष्य की इच्छा-शक्ति ही उसके व्यवहारों का मूल कारण है। यह इच्छा-शक्ति शरीर की बनावट के ऊपर निर्भर नहीं, वरन् शरीर की बनावट ही उसके ऊपर निर्भर करती है।

मन का विकास

प्रायः सभी मनोवैज्ञानिक जड़ और चेतन पदार्थ में भेद मानते हैं। कंकड़

मेक्स प्लॉक के इस विषय के निम्नलिखित विचार उल्लेखनीय हैं—
"Scientists have learnt that the starting point of their investigation does not lie solely in perception of the senses, and that science cannot exist without some portion of metaphysics. Modern Physics impresses us particularly with the truth of the old doctrine which teaches that there are realities existing apart from our sense perception, and that there are problems and conflicts where these realities are of greater value for us than the richest treasures of the world of experience.

"The Universe in Light of Modern Physics—p. 38.

अर्थात् आधुनिक भौतिक विज्ञान के पण्डित अब इस निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि इन्द्रिय-ज्ञान को सत्य और अन्तिम ज्ञान मानकर चलने से हम तत्त्व के वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान सकते हैं और भौतिक विज्ञान तत्त्व-विज्ञान की सहायता के बिना ठहर नहीं सकता। आधुनिक विज्ञान यह दर्शा रहा है कि इन्द्रिय-गोचर पदार्थों के परे कोई ऐसी सत्ता है जिसका ज्ञान करना हमारे जीवन की जटिल से जटिल समस्याओं को सुलझाने के लिए परमावश्यक है और जिसका ज्ञान प्राप्त करना संसार के सबसे बड़े अनुभव के खजाने के प्राप्त करने से अधिक महत्त्व रखता है।

और कीड़े के व्यवहारों में मौलिक भेद होता है। उसका कारण यह है कि ककड़ जड़ पदार्थ है और कीड़ा चैतन्य। मनुष्य से लेकर अमियबा कीटाणु तक जितने भी विभिन्न प्रकार के प्राणी हैं, सभी के व्यवहारों मे एक ऐसी विलक्षणता पाई जाती है जो जड़ पदार्थों के व्यवहारों में नहीं देखी जाती। सभी सुख दुःख का अनुभव करते हैं, सभी को भूख लगती है और इच्छाएँ होती हैं। प्रोफेसर जैनिंग्ज ने अमियबा पर प्रयोग करके यह देखा कि उसे सुख और दुःख का ज्ञान होता है, उसे भूख लगती है और इसकी तृप्ति के लिए वह भोजन ढूँढ़ता है। अमियबा और उच्च प्राणी के मन में भेद इतना ही है कि जहाँ अमियबा की सभी कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ पेट में ही सीमित रहती हैं, ऊँचे वर्ग के प्राणियों के शरीर में इन इन्द्रियों के विभिन्न स्थान होते हैं अर्थात् शरीर का एक-एक अंग विशेष प्रकार के ज्ञान अथवा क्रिया के लिए निश्चित रहता है।

अमियबा से उच्चतर कोटि के प्राणियों में सहज क्रियाएँ[1] होती हैं। इन प्राणियों के बहुत कुछ कार्य अपने आप होनेवाले कार्यों जैसे होते हैं। कीड़े और पतङ्गों के कार्य सहज क्रियाओं से सञ्चालित होते हैं। ये कार्य मशीन के कामों के समान होते हैं। किन्तु इनमें भी वह विशेषता पाई जाती है जो प्राणिमात्र के व्यवहार में पाई जाती है। कीड़ों-मकोड़ों को सुख-दुःख और इच्छा की अनुभूति होती है। निर्जीव पदार्थों में गति बाहर के सम्पर्क से ही पैदा होती है किन्तु कीड़ों-मकोड़ों में स्वेच्छानुसार गति पैदा होती है।

कीड़ों मकोड़ों से उच्च कोटि के प्राणियों में कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय का विकास अधिक होता है, तथा उनकी क्रियाओं का सञ्चालन सहज क्रियाएँ न कर मूल प्रवृत्तियाँ[2] करती हैं। मूल प्रवृत्तियाँ किसी विशेष जाति के प्राणी के परम्परागत अनुभव के परिणाम हैं। मूल प्रवृत्तियों के द्वारा प्राणी अपने जीवन की रक्षा करता है और अपनी जाति की वृद्धि करता है। मूल प्रवृत्ति द्वारा सञ्चालित कार्य बुद्धि से किये गये कार्यों के समान होते हैं। किन्तु मूल प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती हैं, अतएव मूल प्रवृत्तियों से सञ्चालित काम में वैसे वातावरण के अनुसार परिवर्तन नहीं हो सकते जैसे कि बुद्धि के कार्य में होते हैं। मूल प्रवृत्तियों का परिवर्तन धीरे-धीरे होता है। वे सहज क्रियाओं के समान अपरिवर्तनशील नहीं हैं। मूल प्रवृत्तियों का विकास मन की एक विकसित अवस्था का सूचक है। मनुष्य के अतिरिक्त

1. Reflexes. 2. Instincts.

सभी प्राणियों के व्यवहार मूल प्रवृत्तियों द्वारा सञ्चालित और नियन्त्रित होते हैं।

मन की सबसे विकसित अवस्था मनुष्य में देखी जाती है। जहाँ और प्राणी सहज क्रियाओं और मूल प्रवृत्तियों से काम लेते हैं वहाँ मनुष्य बुद्धि से काम लेता है। मनुष्य का नाड़ी-तन्त्र[1] दूसरे प्राणियों की अपेक्षा अधिक विकसित है। उसके मस्तिष्क की बनावट भी दूसरे प्राणियों की अपेक्षा अधिक जटिल है। मनुष्य में शब्द-प्रयोग की शक्ति है, जो दूसरे प्राणियों में नहीं है। जहाँ दूसरे प्राणी प्रयत्न और भूल के नियम से कोई नई बात सीखते हैं, मनुष्य सूक्ष्म विचार और कल्पना से नई बात सीखता है। उसके विचार करने की शक्ति के कारण उसे जीवन में उतनी भूलें नहीं करनी पड़तीं, जितनी दूसरे प्राणियों को करनी पड़ती हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्य के मन का विकास नीची श्रेणी के प्राणियों से लेकर धीरे-धीरे हुआ है। आधुनिक मनोविज्ञान हमें इस निष्कर्ष पर ले जा रहा है कि मनुष्य और दूसरे प्राणियों में विषमता की अपेक्षा समता अधिक है। जिस मन के विकास का प्रारम्भ अमिबा में होता है उसीकी पूर्ति मनुष्यों में पाई जाती है। मनुष्य दूसरे प्राणियों से इतना भिन्न नहीं है जितना कि जीवित प्राणी निर्जीव पदार्थों से भिन्न है।

मानव-मन का विकास धीरे-धीरे हुआ है, अतएव हम उसके मन में विकास की पूर्व श्रेणियों की विलक्षणता भी पाते हैं। मनुष्य के जीवन में विचार की *प्रधानता* होती है। किन्तु सहज क्रियाओं और मूल प्रवृत्तियों का अभाव नहीं रहता। अतएव उसके मनका स्वरूप समझने के लिए हमें उसकी सहज क्रियाओं और मूल प्रवृत्तियों को समझना उतना ही आवश्यक है जितना कि विचारजन्य क्रियाओं को। अगले परिच्छेदों में हम मन की विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का वर्णन करेंगे।

सारांश

उपर्युक्त मन और शरीर के सम्बन्ध विषयक तीन सिद्धान्तों में सामान्य लौकिक व्यवहार की दृष्टि से पारस्परिक प्रतिक्रियावाद का सिद्धान्त सबसे अधिक उपयोगी है। मनोविज्ञान किसी दार्शनिक चर्चा में नहीं पड़ना चाहता। उसका ध्येय व्यावहारिक उपयोगिता है। हम जीवन में देखते हैं कि शरीर ठीक न रहने से मन बिगड़ जाता है और मन के बिगड़ जाने से शरीर निकम्मा हो जाता है। किसी भी प्रकार के भावों की उत्पत्ति में

1. Nervous system.

देखा गया है कि शरीर की आन्तरिक ग्रन्थियों की क्रियाएँ भावों की उत्पत्ति कर देती हैं। इसी प्रकार अनेक प्रकार के शारीरिक रोग प्रबल मनोभावों के बार बार अनुभव करने से पैदा हो जाते हैं। मन और शरीर की इस समीपता के कारण ही आधुनिक युग में मनोविज्ञान में शरीर की भीतरी और बाहरी क्रियाओं के अध्ययन पर जोर डाला जा रहा है। शरीर की उन्नति के द्वारा मन की उन्नति करने का प्रयास जहाँ व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक कर रहे हैं, वहाँ दूसरे लोग मन की उन्नति करके शरीर की उन्नति करने की चेष्टा करते हैं। वास्तव में दोनों मार्ग उपादेय हैं और समय-समय पर उपयोगी सिद्ध होते हैं।

प्रश्न

१—मन और शरीर के सम्बन्ध में कौन-कौन सी कल्पनाएँ की गई हैं? इन कल्पनाओं में से आपको कौन-सी युक्तिसङ्गत दिखाई देती है?

२—'चेतन' मस्तिष्क की क्रियाओं का परिणाम है—इस सिद्धान्त के गुण-दोष बताइये।

३—मनुष्य और जानवरों के व्यवहार में कहाँ तक समता और विषमता है? मनुष्य की श्रेष्ठता उसके मन के किन गुण पर निर्भर है?

४—जड़-पदार्थ और प्राणी में मुख्य भेद क्या है? इस भेद का मनोवैज्ञानिक महत्त्व क्या है?

५—वाट्सन महाशय के कथनानुसार मन का स्वरूप क्या है? उनके सिद्धान्त की आलोचना कीजिए।

सभी प्राणियों के व्यवहार मूल प्रवृत्तियों द्वारा सञ्चालित और नियन्त्रित होते हैं।

मन की सबसे विकसित अवस्था मनुष्य में देखी जाती है। जहाँ और प्राणी सहज क्रियाओं और मूल प्रवृत्तियों से काम लेते हैं वहाँ मनुष्य बुद्धि से काम लेता है। मनुष्य का नाड़ी-तन्त्र[1] दूसरे प्राणियों की अपेक्षा अधिक विकसित है। उसके मस्तिष्क की बनावट भी दूसरे प्राणियों की अपेक्षा अधिक जटिल है। मनुष्य में शब्द-प्रयोग की शक्ति है, जो दूसरे प्राणियों में नहीं है। जहाँ दूसरे प्राणी प्रयत्न और भूल के नियम से कोई नई बात सीखते हैं, मनुष्य सूक्ष्म विचार और कल्पना से नई बात सीखता है। उसके विचार करने की शक्ति के कारण उसे जीवन में उतनी भूलें नहीं करनी पड़तीं, जितनी दूसरे प्राणियों को करनी पड़ती हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्य के मन का विकास नीची श्रेणी के प्राणियों से लेकर धीरे-धीरे हुआ है। आधुनिक मनोविज्ञान हमें इस निष्कर्ष पर ले जा रहा है कि मनुष्य और दूसरे प्राणियों में विषमता की अपेक्षा समता अधिक है। जिस मन के विकास का प्रारम्भ अमिबा में होता है उसीकी पूर्ति मनुष्यों में पाई जाती है। मनुष्य दूसरे प्राणियों से इतना भिन्न नहीं है जितना कि जीवित प्राणी निर्जीव पदार्थों से भिन्न है।

मानव-मन का विकास धीरे-धीरे हुआ है, अतएव हम उसके मन में विकास की पूर्व श्रेणियों की विलक्षणता भी पाते हैं। मनुष्य के जीवन में विचार की प्रधानता होती है। किन्तु सहज क्रियाओं और मूल प्रवृत्तियों का अभाव नहीं रहता। अतएव उसके मनका स्वरूप समझने के लिए हमें उसकी सहज क्रियाओं और मूल प्रवृत्तियों को समझना उतना ही आवश्यक है जितना कि विचारजन्य क्रियाओं को। अगले परिच्छेदों में हम मन की विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का वर्णन करेंगे।

सारांश

उपर्युक्त मन और शरीर के सम्बन्ध विषयक तीन सिद्धान्तों में सामान्य लौकिक व्यवहार की दृष्टि से पारस्परिक प्रतिक्रियावाद का सिद्धान्त सबसे अधिक उपयोगी है। मनोविज्ञान किसी दार्शनिक चर्चा में नहीं पड़ना चाहता। उसका ध्येय व्यावहारिक उपयोगिता है। हम जीवन में देखते हैं कि शरीर ठीक न रहने से मन बिगड़ जाता है और मन के बिगड़ जाने से शरीर निकम्मा हो जाता है। किसी भी प्रकार के भावों की उत्पत्ति में

1. Nervous system.

देखा गया है कि शरीर की आन्तरिक ग्रन्थियों की क्रियाएँ भावों की उत्पत्ति कर देती हैं। इसी प्रकार अनेक प्रकार के शारीरिक रोग प्रबल मनोभावों के बार बार अनुभव करने से पैदा हो जाते हैं। मन और शरीर की इस समीपता के कारण ही आधुनिक युग में मनोविज्ञान में शरीर की भीतरी और बाहरी क्रियाओं के अध्ययन पर जोर डाला जा रहा है। शरीर की उन्नति के द्वारा मन की उन्नति करने का प्रयास जहाँ व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक कर रहे हैं, वहाँ दूसरे लोग मन की उन्नति करके शरीर की उन्नति करने की चेष्टा करते हैं। वास्तव में दोनों मार्ग उपादेय हैं और समय-समय पर उपयोगी सिद्ध होते हैं।

प्रश्न

१—मन और शरीर के सम्बन्ध में कौन-कौन सी कल्पनाएँ की गई हैं? इन कल्पनाओं में से आपको कौन-सी युक्तिसङ्गत दिखाई देती है?

२—'चेतन' मस्तिष्क की क्रियाओं का परिणाम है—इस सिद्धान्त के गुण-दोष बताइये।

३—मनुष्य और जानवरों के व्यवहार में कहाँ तक समता और विषमता है? मनुष्य की श्रेष्ठता उसके मन के किस गुण पर निर्भर है?

४—जड़-पदार्थ और प्राणी में मुख्य भेद क्या है? इस भेद का मनोवैज्ञानिक महत्त्व क्या है?

५—वाट्सन महाशय के कथनानुसार मन का स्वरूप क्या है? उनके सिद्धान्त की आलोचना कीजिए।

सभी प्राणियों के व्यवहार मूल प्रवृत्तियों द्वारा सञ्चालित और नियन्त्रित होते हैं।

मन की सबसे विकसित अवस्था मनुष्य में देखी जाती है। जहाँ और प्राणी सहज क्रियाओं और मूल प्रवृत्तियों से काम लेते हैं वहाँ मनुष्य बुद्धि से काम लेता है। मनुष्य का नाड़ी-तन्त्र[1] दूसरे प्राणियों की अपेक्षा अधिक विकसित है। उसके मस्तिष्क की बनावट भी दूसरे प्राणियों की अपेक्षा अधिक जटिल है। मनुष्य में शब्द-प्रयोग की शक्ति है, जो दूसरे प्राणियों में नहीं है। जहाँ दूसरे प्राणी प्रयत्न और भूल के नियम से कोई नई बात सीखते हैं, मनुष्य सूक्ष्म विचार और कल्पना से नई बात सीखता है। उसके विचार करने की शक्ति के कारण उसे जीवन में उतनी भूलें नहीं करनी पड़तीं, जितनी दूसरे प्राणियों को करनी पड़ती हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्य के मन का विकास नीची श्रेणी के प्राणियों से लेकर धीरे-धीरे हुआ है। आधुनिक मनोविज्ञान हमें इस निष्कर्ष पर ले जा रहा है कि मनुष्य और दूसरे प्राणियों में विषमता की अपेक्षा समता अधिक है। जिस मन के विकास का प्रारम्भ अमियबा में होता है उसीकी पूर्ति मनुष्यों में पाई जाती है। मनुष्य दूसरे प्राणियों से इतना भिन्न नहीं है जितना कि जीवित प्राणी निर्जीव पदार्थों से भिन्न है।

मानव-मन का विकास धीरे-धीरे हुआ है, अतएव हम उसके मन में विकास की पूर्व श्रेणियों की विलक्षणता भी पाते हैं। मनुष्य के जीवन में विचार की प्रधानता होती है। किन्तु सहज क्रियाओं और मूल प्रवृत्तियों का अभाव नहीं रहता। अतएव उसके मनका स्वरूप समझने के लिए हमें उसकी सहज क्रियाओं और मूल प्रवृत्तियों को समझना उतना ही आवश्यक है जितना कि विचारजन्य क्रियाओं को। अगले परिच्छेदों में हम मन की विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का वर्णन करेंगे।

सारांश

उपर्युक्त मन और शरीर के सम्बन्ध विषयक तीन सिद्धान्तों में सामान्य लौकिक व्यवहार की दृष्टि से पारस्परिक प्रतिक्रियावाद का सिद्धान्त सबसे अधिक उपयोगी है। मनोविज्ञान किसी दार्शनिक चर्चा में नहीं पड़ना चाहता। उसका ध्येय व्यावहारिक उपयोगिता है। हम जीवन में देखते हैं कि शरीर ठीक न रहने से मन बिगड़ जाता है और मन के बिगड़ जाने से शरीर निकम्मा हो जाता है। किसी भी प्रकार के भावों की उत्पत्ति में

1. Nervous system.

नाडी-तन्त्र के विभाग

नाड़ी-तन्त्र प्राय निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जाताहै—
(१) त्वक् नाड़ी मण्डल[1], (२) केन्द्रीय नाड़ी-मण्डल[2] और (३) स्वतन्त्र नाडी-मण्डल[3]।

त्वक् नाडी मण्डल

त्वक् नाड़ी मडल दो प्रकार की नाड़ियों का बना होता है-अन्तर्गामी[4] अथवा ज्ञानवाही[5] और निर्गामी[6] अथवा गतिवाही[7]। इनका एक ओर सम्बन्ध शरीर की त्वचा तथा पेशियों[8] से रहता है और दूसरी ओर सुषुम्ना[9] से रहता है। त्वक् नाड़ी मण्डल बाह्य उत्तेजना को ग्रहण करता है और शरीर की काम करनेवाली पेशियों का नियन्त्रण करता है।

सम्पूर्ण नाड़ी तन्त्र नाड़ियों का बना रहता है। इनमें से कुछ नाड़ियाँ छोटी होती हैं और कुछ बड़ी, कुछ ज्ञानवाही होती हैं और कुछ क्रियावाही। (निर्गामी) प्रत्येक नाड़ी के तीन भाग होते हैं—

१—नाड़ी का मध्यम भाग, जिसे नाड़ी कोषाणु[10] कहते हैं।

२—नाड़ी का छोर, जिसे अक्षतन्तु (एक्जोन[11]) कहते हैं।

३—नाड़ी का दूसरा छोर, जिसमें एक अथवा बहुत शाखाएँ होती हैं। इन्हें ग्राहीतन्तु (डेंड्राइट्स) कहा जाता है।

इन भागों को अगले पृष्ठ में दिये चित्र (न० १) में दिखाया गया है—

किसी प्रकार की उत्तेजना को डेण्ड्राइट्स पहले पहल ग्रहण करते हैं। फिर यह उत्तेजना नाड़ी के मध्यम भाग अर्थात् नाड़ी कोषाणु पर पहुँचती है। इसके उपरान्त वह अक्षतन्तु के द्वारा बाहर प्रवाहित होती है। इस तरह प्रत्येक नाड़ी में हर समय उत्तेजना का ग्रहण डेण्ड्राइट्स करते हैं और बाहर की ओर उसका प्रवाह अक्षतन्तु के द्वारा होता है। डेण्ड्राइटस अक्षतन्तु की अपेक्षा छोटे होते हैं तथा देखने में वृक्ष के ऊपरी भाग की तरह दिखाई देते हैं। अक्षतन्तु बड़े होते हैं। इनमें इतने फुक्से नहीं होते जितने डेण्ड्राइट्स में। जहाँ दो नाड़ियाँ एक दूसरा से मिलती हैं, अर्थात् जहाँ एक नाड़ी का अक्षतन्तु नामक सिरा दूसरी नाड़ी के डेण्ड्राइट्स नामक सिरे के समीप आता है उस स्थान को साइनाप्स[12] कहते हैं। साइनाप्स की तुलना प्राय रेल के

1 Peripheral Nervous System 2 Central Nervous System 3 Autonomic Nervous System 4 Afferent 5 Sensory 6 Efferent 7 Motor 8 Muscles 9 Spinal Cord 10 Nerve Cell 11 Exone 12 Synopse

तीसरा प्रकरण

नाड़ी-तन्त्र[1]

नाड़ी-तन्त्र के अध्ययन की आवश्यकता—मन और शरीर की क्रियाओं का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जब हमारा शरीर किसी बाह्य पदार्थ के सम्पर्क में आता है, तभी हमें उस पदार्थ का ज्ञान होता है। इस प्रकार सासारिक विषयों की ज्ञानोत्पत्ति में शरीर साधन है। इसी तरह बाह्य जगत् में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए भी हम शरीर के अंग से काम लेते हैं। मन की क्रिया को भली भाँति समझने के लिए हमें यह जानना आवश्यक है कि इस ज्ञान की उत्पत्ति का ढग क्या है, तथा शारीरिक क्रियाओं का नियन्त्रण कैसे होता है। जिस प्रकार हमारे ज्ञान और क्रियाओं को समझने में शरीर के उन भागों के समझने की आवश्यकता होती है जो उनकी उत्पत्ति में प्रधान कारण होते हैं, इसी प्रकार हमारे उद्वेगों के समझने में भी उन भागों के समझने की आवश्यकता है जो कि उद्वेगों की अवस्था में विशेष कार्य करते हैं। हमारे ज्ञान, क्रिया तथा उद्वेगों में शरीर के जो भाग विशेषतः कार्य करते हैं उन्हें नाड़ियाँ[2] कहते हैं। अतएव नाड़ियों की क्रियाओं तथा तन्त्र को समझे बिना इनको भली भाँति समझना कठिन है।

नाड़ी-तन्त्र का स्वरूप—नाड़ी-तन्त्र एक जाल के सदृश है जो हमारे सारे शरीर के ऊपर बिछा हुआ है। इस जाल की उपमा हम किसी देश या शहर में फैले हुए तार के जाल से दे सकते हैं। जिस प्रकार तार-तन्त्र शहर के विभिन्न भागों को एक दूसरे से मिलाता है, उसी प्रकार नाड़ी-तन्त्र भी शरीर के विभिन्न भागों में एकता स्थापित करता है। जिस प्रकार तार-तन्त्र में एक प्रधान केन्द्र होता है, जहाँ से खबर आने-जाने की प्रक्रिया का नियन्त्रण होता है, उसी प्रकार नाड़ी-तन्त्र में भी एक प्रधान केन्द्र होता है जहाँ पर अनेक प्रकार की नाड़ियाँ आकर मिलती हैं तथा जहाँ से उनके कार्य[3] का नियन्त्रण होता है। जिस प्रकार प्रधान केन्द्र के बिगड़ जाने से तारों की व्यवस्था बिगड़ जाती है उसी तरह नाड़ी के प्रधान केन्द्र के बिगड़ जाने पर नाड़ियों की क्रिया में कोई संगठन नहीं रहता।

---

1. Nervous System. 2. Nerves. 3. Emotions.

जंक्शन से की जाती है। जिस प्रकार एक बड़े रेल के जंक्शन पर यात्री भिन्न-भिन्न दिशाओं से आनेवाली रेलों से उतरकर किसी विशेष दिशा को जानेवाली रेलों में बैठ जाते हैं और उनके द्वारा अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार किसी विशेष तरह की उत्तेजना एक नाड़ी के द्वारा आकर दूसरी नाड़ी में प्रवाहित होती है। जिस स्थान पर यह उत्तेजना एक नाड़ी से दूसरी नाड़ी पर जाती है उसे साइनाप्स कहते हैं। उत्तेजना का प्रवाह सदा एक ही ओर होता है। उसका एक सिरा अर्थात् डेण्ड्राइट उत्तेजना को ग्रहण करता है और दूसरा सिरा अर्थात् अक्षतन्तु उस उत्तेजना का प्रवाह बाहर निकालता है। जंक्शन के स्थान पर एक नाड़ी के डेण्ड्राइट्स का सम्बन्ध कई दूसरी नाड़ियों के अक्षतन्तुओं से होता है। इसी तरह एक
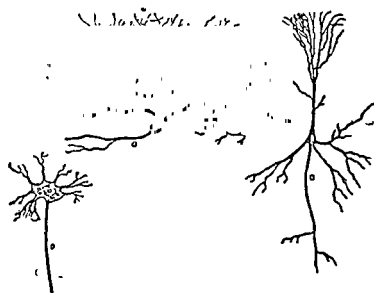
चित्र नं० १

अक्षतन्तु का सम्बन्ध कई नाड़ियों के डेण्ड्राइट्स से रहता है। इस तरह एक ही नाड़ी कई दिशाओं से आनेवाली उत्तेजना को ग्रहण करती है, और उससे ग्रहण की गई उत्तेजना विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित हो सकती है। साइनाप्स उत्तेजना के प्रवाह को किसी विशेष ओर बहाने में सहायक होते हैं और दूसरी ओर बहने में रुकावट डालते हैं। उत्तेजना का प्रवाह उसी ओर रहता है, जिस ओर वह एक बार प्रवाहित हो जाता है, मानों उत्तेजना का एक बार का प्रवाह भविष्य में उसके प्रवाह के लिए मार्ग बना लेता है।

किसी भी नये काम का सीखना अथवा आदत का बनाना उत्तेजना के प्रवाह के इसी नियम के ऊपर निर्भर रहना है, जिस ओर उत्तेजना का प्रवाह पहले से चला आया है। उसी ओर उसके प्रवाहित होने में सरलता होती है तथा दूसरी ओर प्रवाहित होने में रुकावट आती है। यही कारण है कि नये काम को करने में कठिनाई होती है तथा अभ्यस्त काम करने में सरलता होती है।

साइनाप्स सदा मस्तिष्क तथा सुषुम्ना में ही होते हैं। मस्तिष्क और सुषुम्ना में एक भूरा पदार्थ होता है। यह नाड़ियों का सूक्ष्म भाग है। इसी के अन्तर्गत साइनाप्स रहते हैं। साइनाप्स अन्तर्वाही और निर्गामी नाड़ियों के बीच सुषुम्ना तथा मस्तिष्क के भीतर होते हैं। यही साइनाप्स हमारी साधारण और जटिल दोनों क्रियाओं में काम करते हैं।

सहज क्रिया[1]—उत्तेजना का सबसे सरल कार्य सहज क्रियाएँ, जैसे छींकना, खुजलाना, आँसू आना आदि हैं। जब कोई बाहरी पदार्थ हमारे शरीर के किसी अंग से स्पर्श करता है, तो उस स्थान की ज्ञानवाही नाड़ियों के छोर उत्तेजित हो जाते हैं। इन्हीं छोरों से विशेष प्रकार की इन्द्रियाँ बनी हैं। जो छोर आँखों की रेटिना के पास हैं, उनके उत्तेजित होने पर देखने का ज्ञान होता है। नाक के भीतर रहनेवाले कुछ छोरों से गन्ध का ज्ञान होता है, और शरीर के अन्य भागों के उत्तेजित होने पर विभिन्न प्रकार का स्पर्श-ज्ञान होता है। इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य उत्तेजना अन्तर्वाही अर्थात् ज्ञानवाही नाड़ियों के द्वारा सुषुम्ना अथवा मस्तिष्क पर पहुँचती है। यहाँ इस उत्तेजना का ग्रहण कोई निर्गामी अर्थात् गतिवाही नाड़ी करती है, तब यह उत्तेजना इस नाड़ी के द्वारा शरीर के बाहरी भाग की ओर जाती है। गति-गामी नाड़ियों का सम्बन्ध शरीर के विभिन्न भागों की पेशियों से रहता है। इन पेशियों के उत्तेजित होने पर सहज क्रिया अथवा परावर्तन क्रिया होती है।

इस तरह हम देखते हैं कि हमारी सहज क्रिया में उत्तेजक पदार्थ[2], इन्द्रिय[3], ज्ञानवाही नाड़ी[4], साइनाप्स[5], गतिवाही नाड़ी[6] और पेशियाँ[7] काम करती हैं। आगे चित्र नं० २ उक्त कथन को स्पष्ट करता है—

त्वक् नाड़ी-तन्त्र का सम्बन्ध सुषुम्ना से रहता है। कितनी ही उत्तेजनाएँ सुषुम्ना तक पहुँचकर गति-वाही नाड़ियों के द्वारा पेशियों तक आती हैं और शारीरिक क्रिया में परिणत हो जाती हैं। कितनी ही दूसरी उत्तेजनाएँ

1. Reflex action. 2. Stimulus. 3. Sense organ. 4. Sensory nerve. 5. Synopse. 6. Motor nerve. 7. Muscles.

सुषुम्ना तक पहुँचकर मस्तिष्क की ओर जाती हैं। मस्तिष्क तक पहुँचकर वहाँ ज्ञान-केन्द्र के किसी भाग को उत्तेजित करती हैं। इस भाग का सम्बन्ध किसी क्रियानियन्त्रक भाग से रहता है। वह उत्तेजित होता है।
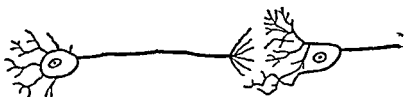
चित्र न० २

यह उत्तेजना क्रिया-वाहक नाड़ियों के द्वारा शरीर के बाहरी भाग और पेशियों की ओर आती है और क्रिया में परिणत हो जाती है।

सहज क्रियाओं के दैनिक जीवन में अनेक उदाहरण मिलते हैं। हम अँधेरे से उजाले में जाते हैं तब हमारी आँख की पुतली सिकुड़ जाती है और जब हम उजेले से अँधेरे में जाते हैं तो पुतली फैलकर बड़ी हो जाती है। इस प्रकार पुतली का सिकुड़ना और फैलना अपने-आप होता है। इसका ज्ञान हमको नहीं रहता। इस तरह यदि हमारी आँख में कोई कीड़ा आ जाय तो हमारी आँख तुरन्त बन्द हो जाती है। हमारी आँख की पलक तुरन्त झपक जाती है, इसमें हमारे विचार की आवश्यकता नहीं रहती। इसी तरह आँख में कोई चीज चली जाने से आँख में आँसू अपने आप आ जाता है और वह चीज बाहर निकल जाती है। जब हम नीबू को अपने सामने देखते हैं तो मुँह में पानी भर आता है—ये सब क्रियाएँ त्वक् नाड़ी मण्डल द्वारा सचालित होती हैं, जो त्वक् से लेकर सुषुम्ना तक फैला है।

केन्द्रीय नाड़ी तन्त्र (मस्तिष्क-सुषुम्ना नाड़ी-तन्त्र)[1]

केन्द्रीय नाड़ी तन्त्र दो प्रधान भागों का बना रहता है—

(१) सुषुम्ना नाड़ी[2]—इसका ऊपरी भाग, जहाँ उसका दिमाग से सम्बन्ध होता है, सुषुम्ना शीर्षक[3] कहलाता है।

(२) मस्तिष्क[4]—इसके तीन भाग हैं—वृहत् मस्तिष्क[5], लघु मस्तिष्क[6] (धम्मिलक) और सेतु[7]।

1. Central Nervous System (Cerebro-spinal Nervous System,
2. Spinal Cord. 3. Medulla oblongata. 4. Brain. 5. Cerebrum.
6. Cerebellum. 7. Pons.

ऊपर कहा जा चुका है कि अन्तर्गामी नाड़ी किसी इन्द्रिय द्वारा ग्रहण की गई उत्तेजना को केन्द्रीय नाड़ी तन्त्र की ओर ले जाती है। इस प्रकार की इकतीस जोड़ी अन्तर्गामी (ज्ञानवाही) नाड़ियाँ सुषुम्ना में आकर मिलती हैं। प्रत्येक जोड़ी की एक नाड़ी शरीर के दाहिने अंग से और दूसरी नाड़ी शरीर की बाईं ओर से आती है। पृष्ठ ३६ में दिया गया चित्र इन नाड़ियों को दर्शाता है।

जब ये अन्तर्गामी नाड़ियाँ सुषुम्ना में मिलती हैं तो निर्गामी अर्थात् गतिवाही नाड़ियों के साथ एक गट्ठर में बँध जाती हैं। ये गतिवाही नाड़ियाँ किसी भी उत्तेजना का प्रवाह पेशियों तथा शरीर के चक्रों (गंडों) की ओर करती हैं। इसी तरह अन्तर्गामी नाड़ियाँ सुषुम्ना के द्वारा किसी भी ज्ञान-उत्तेजना को मस्तिष्क की ओर ले जाती हैं। इनके अतिरिक्त बारह जोड़ी और नाड़ियाँ होती हैं, जो सीधे ही मस्तिष्क तक पहुँचती हैं। इन नाड़ियों को शीर्षणी[1] नाड़ियाँ कहते हैं। ये नाड़ियाँ गर्दन से ऊपर सिर में स्थित हैं। इनमें से कुछ ज्ञानवाही (अन्तर्गामी) और कुछ गतिवाही (निर्गामी) होती हैं। इनसे भिन्न-भिन्न प्रकार की, जैसे देखने की, सुनने की, सूँघने की, स्वाद लेने की और स्पर्श की उत्तेजना मस्तिष्क में पहुँचती है और आँख, कान, नाक, जीभ के विभिन्न भागों में होनेवाली क्रियाओं का नियन्त्रण होता है। इस तरह शीर्षणी नाड़ियाँ सिर में होनेवाली उत्तेजनाओं को मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं और मस्तिष्क से उत्तेजना को सिर के बाहरी भाग की ओर अर्थात् पेशियों तक ले जाती हैं।

सुषुम्ना

ऊपर कहा जा चुका है कि सुषुम्ना नाड़ी में इकतीस जोड़ी नाड़ियाँ बाहर से आकर मिलती हैं। इनमें से प्रत्येक जोड़ी की एक नाड़ी ज्ञानवाही और एक क्रियावाही होती है। सुषुम्ना के बाहर ये दोनों प्रकार की नाड़ियाँ एक गट्ठर में बँध जाती हैं। ये इसी प्रकार शरीर के अन्त भाग तक पहुँचती हैं। सुषुम्ना में क्रियावाही और ज्ञानवाही नाड़ियों का इस प्रकार सम्बन्ध होता है कि शरीर के बाहरी अङ्ग में होनेवाली किसी प्रकार की उत्तेजना दो तरह से काम कर सकती है। एक ओर वह मस्तिष्क की ओर जा सकती है और दूसरी ओर वह उत्तेजना मस्तिष्क की ओर न जाकर तुरन्त ही क्रिया में परिणत हो सकती है।

मान लीजिए, एक मच्छर हमारे पैर में काट लेता है। हम तुरन्त पैर को झटकार देते हैं। यह एक प्रकार की सहज क्रिया है। उसका नियन्त्रण

1. Cranial nerves.
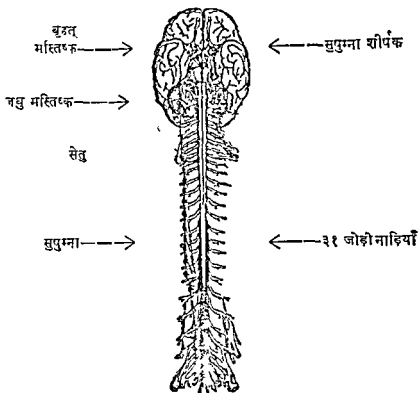
मस्तिष्क सुषुम्ना नाड़ी तन्त्र
चित्र न० ३

सुषुम्ना के द्वारा ही होता है। ज्ञानवाही नाड़ी बाहर से आनेवाली उत्तेजना को सुषुम्ना तक ले जाती है। इस नाड़ी का सम्बन्ध साइनाप्स के द्वारा एक विशेष प्रकार की गतिवाही नाडी से रहता है, अतएव जब ज्ञानवाही की उत्तेजना गतिवाही नाड़ी में प्रवाहित होती है, तो वह उत्तेजना शरीर की बाहरी ओर आकर पैर की उन पेशियों में गति उत्पन्न करती है, जो पैर के झटकारने में काम करती हैं।

ज्ञानवाही नाड़ी द्वारा लाई गयी उत्तेजना सुषुम्ना तक आकर मस्तिष्क की ओर जा सकती है। ऐसी स्थिति में वह उत्तेजना सुषुम्ना के द्वारा मस्तिष्क तक पहुँचती है। मस्तिष्क में पहुँचने पर वह मस्तिष्क के उस भाग को उत्तेजित करती है जिसका शरीर के उत्तेजित भाग से सम्बन्ध रहता है। तब हमें यह ज्ञान होता है कि हमें मच्छर ने काटा। यह ज्ञान सहज-क्रिया के समय नहीं होता। मच्छर के काटने का ज्ञान होने पर हम पैर को खुजलाने

के लिए हाथ से काम लेते हैं। मस्तिष्क के ज्ञान-प्रान्त का सम्बन्ध क्रिया-प्रान्त से रहता है। अतएव मच्छर के काटने से ज्ञान-प्रान्त में होनेवाली उत्तेजना क्रिया-प्रान्त के किसी विशेष भाग को उत्तेजित करती है। फिर यह उत्तेजना सुषुम्ना-नाड़ियों के द्वारा हाथ की ओर जाती है और हाथ के पास की उन गतिवाही नाड़ियों को उत्तेजित करती है, जिनका सम्बन्ध हाथ को काम में लाने की पेशियों से होता है। इन पेशियों के क्रियमाण होने पर हाथ पैर के समीप जाता है और खुजलाने लगता है।

सुषुम्ना में प्रवेश करने पर अन्तर्गामी नाड़ी के कई भाग हो जाते हैं। एक छोटे भाग का सुषुम्ना में अन्त हो जाता है और बड़ा भाग मस्तिष्क की ओर चला जाता है। मस्तिष्क तक सूचना पहुँचने में बहुत देर लगती है, उससे पहले ही सुषुम्ना निर्गामी नाड़ियों द्वारा उचित आज्ञा भेज देती है, जिससे पेशियाँ काम करने लगती हैं और तुरन्त आवश्यक कार्य होने लगता है। सहज क्रिया के द्वारा वह कार्य होता है जो शरीर-रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

सुषुम्ना की आज्ञा एक छोटे अफसर की आज्ञा है और मस्तिष्क की आज्ञा प्रधान अधिकारी की आज्ञा के समान है। जिस प्रकार कोई घटना होने पर घटनास्थल पर उपस्थित अधिकारी तुरन्त का आवश्यक काम करता है तथा प्रधान अधिकारी की आज्ञा की अपेक्षा नहीं करता, इसी तरह सुषुम्ना के पास जब कोई अचानक सूचना पहुँचती है तो वह जो काम तुरन्त ही करना आवश्यक है उसे करने के लिए निर्गामी नाड़ियों को उत्तेजित कर देती है। पीछे इस घटना की खबर मस्तिष्क तक पहुँचती है। मस्तिष्क की आज्ञा प्रायः सुषुम्ना के कार्य के समर्थन में ही होती है। किन्तु कभी-कभी सुषुम्ना द्वारा किये गये कार्य का विरोध भी होता है।

मान लीजिए, किसी लड़के की उँगली में ततैया बर्रे काट लेती है। इसके प्रतिकार के लिए सहज क्रिया उँगली का फटकारना होगा। किन्तु लड़के का दुःख इतने से नहीं जाता। उँगली में ततैया द्वारा काटे जाने की खबर मस्तिष्क तक पहुँचती है। वह लड़का एक ओर दूसरे हाथ से ततैया द्वारा काटी उँगली को पकड़ता है, दूसरी ओर जोर-जोर से चिल्लाकर रोने लगता है, जिससे दूसरे लोग उसकी सहायता के लिए आ जायँ। वह बेचैन होकर कभी-कभी इधर-उधर नाचने लगता है। उसके चिल्लाने की क्रिया उसके मस्तिष्क से सञ्चालित होती है और उसके इधर-उधर नाचने की क्रिया उत्तेजना के चारों तरफ फैल जाने से संचालित होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुषुम्ना एक ओर सहज क्रियाओं का नियन्त्रण करती है, दूसरी ओर मस्तिष्क और शरीर के बाहरी अङ्ग में सम्बन्ध स्थापित करती है, अर्थात् वह शरीर के बाहर होनेवाली उत्तेजनाओं को मस्तिष्क की ओर ले जाती है और मस्तिष्क में होनेवाली उत्तेजनाओं को कार्यरूप में परिणत करने में सहायक होती है। सुषुम्ना में स्थित ज्ञान और क्रियावाही नाड़ियाँ मस्तिष्क से इस प्रकार सम्बन्धित हैं कि शरीर का दाहिना भाग मस्तिष्क के बाएँ अंग से नियन्त्रित होता है और बायाँ भाग मस्तिष्क के दाहिनी ओर से नियन्त्रित होता है। जिस स्थल पर ये नाड़ियाँ एक दूसरी को पार करती हैं उसे सुषुम्ना-शीर्षक कहते हैं। यहाँ सुषुम्ना का अन्त होता है।

सुषुम्ना हमारी सभी प्रकार की बाह्य क्रियाओं का नियन्त्रण करती है और उनमें सम्बन्ध जोड़ती है, चाहे ये क्रियाएँ विचारपूर्वक हों अथवा विचाररहित। सहज क्रियाओं और आदत से होनेवाली क्रियाओं का नियन्त्रण इसीसे होता है। चलने, फिरने, भागने, टाइप करने, हारमोनियम बजाने इत्यादि क्रियाओं में सुषुम्ना नाड़ी बिना किसी दूसरे प्रकार की सहायता के काम करती है। शरीर की जिस किसी क्रिया में मनुष्य पूर्ण अभ्यस्त हो जाता है, उसमें मस्तिष्क को काम नहीं करना पड़ता। ऐसी क्रिया का नियन्त्रण सुषुम्ना से ही होता है। हमारे प्रतिदिन के अनेक कार्य सुषुम्ना द्वारा ही नियन्त्रित होते हैं; आदत के काम और सहज क्रियाओं का नियन्त्रण करना सुषुम्ना का विशेष कार्य है।

सुषुम्ना शीर्षक[1]—यह सुषुम्ना का सबसे ऊपरी बढ़ा हुआ भाग है। इसके द्वारा सुषुम्ना के नीचे के भाग में होनेवाली उत्तेजनाएँ मस्तिष्क में जाती हैं और मस्तिष्क में होनेवाली उत्तेजना सुषुम्ना के नीचे की ओर जाती है। साँस लेना और रक्त-प्रवाह आदि अपने-आप से होनेवाले कार्य भी इसी नाड़ी से नियन्त्रित होते हैं। हृदय और फेफड़े से आनेवाली अन्तर्गामी नाड़ियाँ यहाँ आकर मिलती हैं। जब कभी हवा में कारबोनिक एसिड गैस की मात्रा बढ़ जाती है तो हृदय और फेफड़ों में विशेष प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न होती है। यह उत्तेजना सुषुम्ना शीर्षक पर पहुँचती है। यहाँ पर यह हृदय और फेफड़ों की ओर जानेवाली नाड़ियों को उत्तेजित करती है, जिसके परिणाम-स्वरूप हृदय और फेफड़ों की गति बढ़ जाती है।

---

1. Medulla Oblongata. 2. Hemisphere.

मस्तिष्क.

मस्तिष्क को तीन प्रधान भागों में विभक्त कर सकते हैं—बृहत् मस्तिष्क, लघु मस्तिष्क (धम्मिलक) और सेतु। इन तीनों भागों के कार्य भिन्न-भिन्न हैं। बृहत् मस्तिष्क में ज्ञान और क्रिया-उत्पादन-स्थल हैं। लघु मस्तिष्क का प्रधान काम विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाओं में सम्बन्ध जोड़ना और शरीर में समता रखना है, अर्थात् उसे झुकने, गिरने आदि से बचाना है। बृहत् मस्तिष्क दो बड़े बड़े हिस्सों में बँटा रहता है। एक दाहिनी ओर रहता है और दूसरा बाईं ओर। दाहिने भाग को दक्षिण गोलार्द्ध और बायें भाग को वाम गोलार्द्ध कहते हैं। नाड़ी-तन्तु के एक गुच्छे द्वारा दोनों भाग एक दूसरे से सम्बन्धित रहते हैं, जिसे कारपस स्ट्राइटम कहते हैं।

बृहत् मस्तिष्क—बृहत् मस्तिष्क का ऊपरी भाग ऊँचा-नीचा होता है। इसके ऊपर एक भूरा पदार्थ फैला हुआ रहता है। यह भूरा पदार्थ नाड़ी-तन्तुओं का ही भाग है। मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न भाग शरीर के भिन्न-भिन्न भागों की क्रियाओं से सम्बन्ध रखते हैं। मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों[२] में इस
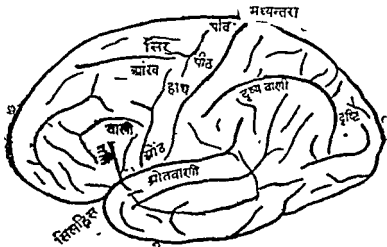
मस्तिष्क
चित्र नं० ४

प्रकार के स्थल रहते हैं। इसी तरह विभिन्न प्रकार के ज्ञान के लिए भी स्थल हैं, जो दोनों गोलार्द्धों में होते हैं। प्रत्येक गोलार्द्ध में दो कर्प[१] होते हैं; एक मध्यन्तरा (रौलैण्डो) का कर्प[२] कहलाता है और दूसरा सिलहिस

1. Fissure. 2. Fissure of Rollando.

का कर्प कहलाता है। ये कर्प मस्तिष्क में नाली के समान होते हैं। रोलैण्डो के कर्प के समीप एक के नीचे एक शरीर के विभिन्न स्थानों की क्रियाओं का सञ्चालन करनेवाले स्थल होते हैं, और सिलद्विस के कर्प के नीचे सुनने और बोलने सम्बन्धी ज्ञान के स्थल होते हैं। दृष्टि-सम्बन्धी ज्ञान रोलैण्डो के कर्प से कुछ दूरी पर होता है। शरीर के विभिन्न स्थलों से ज्ञान इसी कर्प के पीछे के विभिन्न भागों में होता है। यह पृष्ठ ४१ में दिये गये चित्र नं० ४ से स्पष्ट होता है—

मस्तिष्क के सभी भागों की क्रियाओं का पूर्ण ज्ञान अभी तक नहीं हुआ। मस्तिष्क के सामने का भाग, जो क्रिया सम्बन्धी भागों और दृष्टि-सम्बन्धी भागों के बीच पड़ता है, विचार की क्रियाओं से सम्बन्ध रखता है। इस भाग में कोई क्षति होने से मनुष्य की विचार-शक्ति में ह्रास होता है, किन्तु उसके साधारण व्यवहार में कोई त्रुटि नहीं दिखाई पड़ती।

जब मस्तिष्क के विशेष भाग में कोई क्षति हो जाती है तो उस भाग-सबंधी क्रियाओं में भी क्षति होती है। मान लीजिए, किसी व्यक्ति के मस्तिष्क के वाक्-स्थल में कोई क्षति हो गई तो ऐसा व्यक्ति बोलकर अपने भाव प्रकट नहीं कर सकता। वह जो कुछ दूसरे कहते हैं, ठीक से सुनता और समझता है और जो कुछ उसके मुँह से अपने-आप निकल पड़ता है, उसको भी वह समझता है। वह अपने विचार संकेतों द्वारा अथवा लिखकर प्रकाशित कर सकता है; किन्तु वह बोलकर अपने भाव प्रकाशित नहीं कर सकता। इस प्रकार की अक्रियता को गतिरोध (मोटर एफेजिया) कहते हैं। रूस के प्रसिद्ध अधिनायक लेनिन का इस प्रकार का गतिरोध उसकी मृत्यु के पूर्व हो गया था। जिस प्रकार बोलने के सम्बन्ध में गतिरोध हो जाता है, उसी तरह लिखने के सम्बन्ध में मस्तिष्क के लेखस्थल में क्षति हो जाने से गतिरोध हो जाता है। इस प्रकार के गतिरोध को लेखरोध (एग्राफिया) कहा जाता है।

जिस तरह क्रिया-सम्बन्धी मस्तिष्क के स्थलों में क्षति होने से विभिन्न प्रकार की क्रियाओं के होने में रुकावट होती है, उसी तरह मस्तिष्क के ज्ञान-स्थलों में क्षति होने पर विभिन्न प्रकार के ज्ञान होने में बाधा होती है। जिस समय मस्तिष्क के दृष्टि स्थल में कोई क्षति होती है, उस समय मनुष्य किसी वस्तु को स्पष्टतः नहीं देखता। इसी प्रकार श्रवणस्थल में क्षति होने पर मनुष्य ठीक से किसी बात को सुन नहीं पाता।

देखा गया है कि जब मनुष्य के मस्तिष्क के किसी विशेष भाग की

क्षति होती है तो उसका प्रभाव दूसरे प्रान्तों पर भी पड़ता है। उदाहरणार्थ, जिस व्यक्ति को दृष्टि-सम्बन्धी क्षति हुई है, उसे बोलने में भी कठिनाई हो जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि मनुष्य के मस्तिष्क के विभिन्न भाग एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि जब मस्तिष्क का कोई विशेष भाग कार्य करता है तो समस्त मस्तिष्क उसकी सहायता करता है। जब हम किसी व्याख्यानदाता की वक्तृता सुनते हैं तो मस्तिष्क का श्रवणस्थल विशेष कार्य करता है; किन्तु दृष्टिस्थल भी उसकी सहायता करता है। आँख खोलकर और आँख मूँदकर किसी वक्तृता को सुनने में जो अन्तर पड़ता है, वह दृष्टिस्थल के कार्य के कारण पड़ता है। किसी भी व्यक्ति की बातों को जितना हम आँख खोलकर सुन सकते हैं उतना आँख मूँदकर नहीं, यद्यपि हम साधारणतः यह समझते हैं कि देखने और सुनने की क्रिया में कोई सम्बन्ध नहीं है।

लघु मस्तिष्क—लघु मस्तिष्क (धम्मिलक) बृहत् मस्तिष्क के नीचे स्थित है। बृहत् मस्तिष्क के समान यह भी दो हिस्सों में बँटा हुआ है। जिस प्रकार बृहत् मस्तिष्क के दोनों भाग बहुत से नाड़ी तन्तुओं (कारपस स्ट्राइटम) से सम्बन्धित हैं, उसी तरह लघु मस्तिष्क के दोनों भाग भी बहुत से नाड़ी तन्तुओं के गुच्छों से एक दूसरे से बँधे हैं। इन गुच्छों को सेतु (पान्स) कहा जाता है। लघु मस्तिष्क एक ओर सुषुम्ना-शीर्षक से अनेक नाड़ी-तन्तुओं के द्वारा जुड़ा रहता है और दूसरी ओर के सेतु द्वारा बृहत् मस्तिष्क से जुड़ा रहता है। ऊपर कहा जा चुका है कि लघु मस्तिष्क का विशेष कार्य विभिन्न उत्तेजनाओं से सम्बन्ध स्थापित करना और शरीर की क्रियाओं में समता स्थापित करना है। जब किसी पशु के मस्तिष्क का यह भाग हटा दिया जाता है तो वह ठीक तरह से चल-फिर नहीं सकता। जिस समय बृहत् मस्तिष्क से कोई उत्तेजना गतिगामी नाड़ी के द्वारा शरीर के बाहरी अंग की ओर जाती है, उसी समय इस उत्तेजना की सूचना लघु मस्तिष्क को भी मिलती है, जिससे वह सावधान हो जाता है और जब शरीर किसी प्रकार की क्रिया में लग जाता है तो उसमें विषमता उत्पन्न होने से रोकता है। लघु मस्तिष्क में इन्द्रिय-उत्तेजन की सूचना और मस्तिष्क की क्रिया-प्रवृत्ति की सूचना सदा मिलती रहती है। इसी से यह विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाओं तथा शरीर के कार्यों में समता रखने में समर्थ होता है।

किसी शराबी के लड़खड़ाने का यही कारण है कि उसका छोटा मस्तिष्क शराब के प्रभाव से विवश रहता है। किसी भी नाजुक काम में

पेशियों का सन्तुलन धम्मिलक के द्वारा होता है। बाजा बजाने और चित्रकारी आदि कामों में धम्मिलक कार्य करता है।

सेतु—सेतु की आकृति पुल की मेहराब की तरह होती है। इसका रङ्ग सफेद होता है तथा यह लघु मस्तिष्क के दोनों भागों को मिलाये रखता है। बड़े मस्तिष्क से स्नायु-सूत्र सेतु से होकर जाते हैं और यहीं बड़े मस्तिष्क के दाहिने और बायें गोलार्द्ध से आये सूत्र एक दूसरे को पार करते हैं। *जो स्नायु-सूत्र दक्षिण गोलार्द्ध से आते हैं वे सेतु के वाम भाग* से होते हुए शरीर के वाम भाग की पेशियों तक जाते हैं और यदि कहीं दक्षिण गोलार्द्ध में कुछ गड़बड़ी हुई तो शरीर के वाम भाग की ऐच्छिक क्रियाएँ अवरुद्ध हो जाती हैं। इसी तरह जो स्नायु-सूत्र वाम गोलार्द्ध से आते हैं वे सेतु के दक्षिण भाग से होते हुए शरीर के दक्षिण भाग की पेशियों तक जाते हैं और यदि कहीं वाम गोलार्द्ध में कुछ गड़बड़ी हुई तो शरीर के दक्षिण भाग की गतियाँ अवरुद्ध हो जाती हैं।

स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल[1]

स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल केन्द्रीय नाड़ी-मण्डल की एक प्रकार की शाखा है। सुषुम्ना नाड़ी के दोनों ओर प्रत्येक नाड़ी की शाखा दो फुँगसेदार होती है। बहुत से नाड़ी-तन्तु सुषुम्ना से मिलकर स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल में मिलते हैं। इस तरह दोनों नाड़ी मण्डल का सम्बन्ध होता है। स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल में बहुत से चक्र अथवा गंड रहते हैं। ये चक्र सुषुम्ना और शीर्षणी नाड़ी से नाड़ी-तन्तुओं के द्वारा जुड़े रहते हैं। ये नाड़ी तन्तु गले, सिर और निचले भाग से निकलते हैं। इन चक्रों से दूसरे नाड़ी-तन्तु भी निकलते हैं जो शरीर के विभिन्न भागों में फैले रहते हैं। रक्तवाहक कोश, पसीना पैदा करनेवाली ग्रन्थि (ग्लैंड) का नियन्त्रण इन्हीं नाड़ियों से होता है।

स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल के भाग—स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल के निम्नलिखित तीन भाग हैं—

(१) शीर्षणी[2]

(२) मध्यम[3]

(३) अनुत्रिका[4]।

शीर्षणी भाग अपने-आप होनेवाली अनेक क्रियाओं का नियन्त्रण

---

1. Autonomic Nervous System. 2. Cranial. 3. Sympathetic. 4. Sacral.

करता है। आँख के ताल (लेन्स) और पुतली[1] (तारे) की क्रियाओं का नियन्त्रण इसी भाग से होता है। जब हम अँधेरे में जाते हैं तो आँख का तारा बड़ा हो जाता है। यह बढ़ाने-घटाने का काम स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल का शीर्षणी भाग करता है। शीर्षणी स्वतन्त्र नाड़ी ही भोजन पचाने की क्रिया, हृदय की गति तथा फेफड़ों के कोशों का नियन्त्रण, करती है तथा थूक का आना इन्हीं नाड़ियों की क्रिया से होता है।

अनुत्रिका सुषुम्ना के निचले छोर के समीप स्थित है। यह भाग मलमूत्र त्याग करने में काम करता है। कामभाव की उत्तेजना के समय भी यह भाग काम करता है।

मध्यम भाग प्रायः वही काम करता है जो कि उपर्युक्त दो भाग करते हैं, पर इसकी क्रियाएँ उन दोनों से विपरीत हैं। जहाँ मध्यम आँख के तारे को फैलाता है वहाँ शीर्षणी उसे सिकोड़ती है। शीर्षणी और अनुत्रिका पचाने की क्रिया को उत्तेजित करती हैं, इसके विपरीत मध्यम पचाने की क्रिया की गति मन्द करता है।

स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल का एक विशेष कार्य उद्वेगों को उत्तेजित करना है। स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल में स्थित ग्रन्थियाँ और चक्र कई ऐसे रस पैदा करते हैं कि उनसे उद्वेग प्रबल हो जाते हैं, मनुष्य के शरीर में विशेष शक्ति का संचार हो जाता है और जो कार्य वह अपनी साधारण अवस्था में करने में असमर्थ रहता है, वह सरलता से संवेगों की अवस्था में कर डालता है।

गिल्टियाँ[2]

स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल का सम्बन्ध हमारे शरीर में फैली हुई उन अनेक गिल्टियों से रहता है, जो शरीर में होनेवाली अति उपयोगी क्रियाओं का संचालन करती हैं। हृदय की धड़कन, भोजन के पचने, मल-मूत्र के बाहर निकलने आदि कार्यों में ये गिल्टियाँ काम करती हैं। कुछ गिल्टियाँ शरीर की बाढ़ और इसे स्वस्थ रखने में बड़ी ही उपयोगी हैं और कुछ का सम्बन्ध हमारे मनोभावों के उत्पन्न करने तथा उन्हें बढ़ाने और घटाने से रहता है।

प्रणाली-युक्त गिल्टियाँ[3]—गिल्टियाँ दो प्रकार की होती हैं—प्रणालीयुक्त और प्रणाली विहीन[4]। प्रणाली-युक्त गिल्टियाँ कुछ ऐसे रसों का उत्पादन करती हैं जो शरीर की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं

1. Pupil. 2. Glands. 3. Glands with ducts. 4. Ductless.

की पूर्ति करते हैं। भोजन पचाने के कार्य में आमाशय में एक प्रकार के रस की आवश्यकता होती है। इस रस को एक विशेष प्रकार की प्रणाली-युक्त गिल्टी बनाती है और वह एक प्रणाली के द्वारा उस रस को आमाशय तक पहुँचाती है। किसी गिल्टी के बनाये रस की आवश्यकता यदि जहाँ वह है उस स्थान के समीप न होकर दूर पर होती है, तो प्रणाली के द्वारा आवश्यक रस को उस स्थान तक पहुँचाया जाता है। इस तरह की प्रणाली जिगर के पास से निकलकर छोटी आँत के पाकाशय नामक स्थान में पहुँचती है। क्लोम नामक गिल्टी से निकलकर एक प्रणाली अथवा नली छोटी आँत तक पहुँचती है। इसी तरह गुर्दे से एक नली निकलती है जो पेशाबके काम में सहायक होती है।

प्रणाली-विहीन गिल्टियाँ—प्रणाली-युक्त गिल्टियों का काम डाक्टर लोगों को बहुत पहले से ही ज्ञात था। किन्तु प्रणाली-विहीन गिल्टियाँ शरीरविज्ञान[1] की नई खोज है। मनोविज्ञान की दृष्टि से इन गिल्टियों का अध्ययन बड़े महत्त्व का है। ये गिल्टियाँ अनेक प्रकार के मानसिक उद्वेगों को बढ़ाने-घटाने में महत्त्व का काम करती हैं। प्रणाली-विहीन गिल्टियाँ जिस रस का उत्पादन करती हैं, वह रस किसी विशेष प्रणाली के द्वारा शरीर के एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जाता है वरन् सीधे रक्त में मिल जाता है और रक्तसञ्चार के साथ-साथ सारे शरीर में मिल जाता है। प्रणाली की सहायता के बिना काम करने के कारण इन गिल्टियों को प्रणाली-विहीन कहा जाता है। प्रणालीविहीन गिल्टियों में निम्नलिखित मुख्य हैं—

(१) कण्ठमणि[2] (चुल्लिका),
(२) उपचुल्लिका[3],
(३) पीनियल[4],
(४) पिट्यूटरी[5],
(५) एड्रिनल्स[6]।

इनके अतिरिक्त क्लोम नामक एक गिल्टी है, जो दो प्रकार के रसों का उत्पादन करती है। एक का सञ्चार प्रणाली के द्वारा होता है और दूसरे का बिना प्रणाली के। उक्त प्रणाली-विहीन गिल्टियों के कार्य विभिन्न हैं। इनपर यहाँ प्रकाश डालना विषय के प्रतिपादन के लिए आवश्यक है।

कण्ठमणि—यह गिल्टी टेटुआ[7] (गले की घण्टी) के पास स्थित है।

---

1. Physiology. 2. Thyroid. 3. Para-thyroid. 4. Pineal. 5. Pinttary. 6. Adrinals. 7. Throat.

इसका आकार एक देशी चूल्हे से मिलता-जुलता है। इसी कारण इसे चुल्लिका भी कहा जाता है। यह एक बड़े महत्त्व के रस का, जिसे थायरॉक्सिन[1] कहते हैं, उत्पादन करती है, जिसका सारे शरीर पर प्रभाव पड़ता है। यह रस शरीर की वृद्धि और पुष्टि करने में विशेष लाभकारी होता है। यदि लड़कपन से ही इस गिल्टी के कार्य में कोई त्रुटि रहे और इसका रस पर्याप्त मात्रा में रक्त में न मिले तो शरीर और मन का पूरा-पूरा विकास नहीं होता है। इससे बालक दुर्बल-शरीर और मन्दबुद्धि हो जाता है। इसके बढ़ जाने पर घेंघा[2] नामक रोग हो जाता है। इसके रस-प्रभाव के कम होने पर बौनापन[3] आ जाता है। थायरॉक्सिन की कमी कभी-कभी कृत्रिम रूप से पूरी की जाती है; अर्थात् दूसरे जानवरों के शरीर में पैदा हुआ थायरॉक्सिन रोगी को दिया जाता है। इस तरह बौनेपन के रोग से बालक मुक्त किया जा सकता है और उसकी बुद्धि में तीव्रता लाई जा सकती है। किन्तु इस प्रकार कृत्रिम रूप से पूर्ति की गई कमी को यदि हटाते न रहा जाय तो वह रोग पुनः पैदा हो जाता है।

भय और क्रोध की अवस्था में जिस तरह मुँह से लार पैदा करनेवाली गिल्टियाँ ठीक से काम नहीं कर पाती हैं, जिससे ऐसी अवस्था में मुँह सूख जाता है, उसी तरह से यह गिल्टी भी ठीक से काम नहीं करती। अतएव जितने परिमाण में वह साधारणतः थायरॉक्सिन नामक रस का उत्पादन करती है उतने परिमाण में वह भय और क्रोध की अवस्था में उस रस का उत्पादन नहीं करती। रक्त में इस रस की कमी होने पर शरीर में अनेक प्रकार की बीमारियाँ पैदा होती हैं। थायरॉक्सिन एक प्रकार का अमृत रस है। यह अमृत हमारे शरीर को स्वस्थ रखता है तथा रोगों का विनाश करता है। इसकी कमी होने पर शरीर की विनाशात्मक क्रियाओं की वृद्धि हो जाती है तथा मनुष्य का मृत्युकाल निकट आ जाता है। सिर दर्द, हृदय की धड़कन, अपच आदि रोग बढ़ जाते हैं; शरीर की स्फूर्ति और तेज चला जाता है। इस तरह जिस व्यक्ति को जितना ही अधिक भय और क्रोध सताते हैं, उसका शारीरिक स्वास्थ्य उतना ही नष्ट हो जाता है।

प्रेम और उत्साह की अवस्था से इस गिल्टी का कार्य क्रोध और भय की अवस्था के ठीक प्रतिकूल होता है। ऐसी अवस्था में अमृत रस की वृद्धि हो जाती है। अतएव शरीर तेजी के साथ बढ़ने लगता है तथा उसकी बीमारियाँ नष्ट हो जाती हैं। मन्द बुद्धि का रोग भी इस प्रकार कम हो

1. Thyroxin. 2. Goitre. 3. Cretinism.

सामनेवाले भाग का कार्य शरीर की बाद के लिए आवश्यक होता है और पिछले भाग के कार्य का प्रभाव आँत और रक्त-वाहिनी नलियों पर पड़ता है।

एड्रिनल—एड्रिनल नामक दो गिल्टियाँ गुर्दों[1] के ऊपरी सिरे पर स्थित हैं। ये एड्रिनलीन[2] नामक रस का उत्पादन करती हैं। यह रस शरीर में रक्त के द्वारा प्रवाहित होता है तथा शरीर में स्फूर्ति लाता है। इसके प्रवाहित होने पर शरीर चौकन्ना हो जाता है और किसी विशेष प्रकार के खतरे का सामना करने के लिए तैयार हो जाता है। यदि मनुष्य को भागना हो या किसी से लड़ना हो तो विशेष मात्रा में एड्रिनलीन की उत्पत्ति हो जाती है, जिसके कारण मनुष्य असाधारण कार्य कर डालता है। चोर पीछा किये जाने पर जितनी तेजी से दौड़ सकता है और जितनी ऊँची-ऊँची दीवारें कूद सकता है, पीछा करनेवाले न तो उतनी शीघ्रता से दौड़ सकते हैं और न उतनी लम्बी कूद-फाँद ही कर सकते हैं। वह अकेला दो-तीन आदमियों के हाथ से भी छूटकर भाग जाता है। कूद-फाँद में जो चोट लगती है उसकी वेदना उसे उस समय नहीं होती। इसी तरह लड़ाई में लड़नेवाले सिपाही को लड़ते समय चोट का ज्ञान नहीं रहता। हाकी या फुटबाल खेलते समय जो चोट बालकों को लग जाती है उसका ज्ञान उन्हें खेल के समाप्त होने पर होता है। एड्रिनलीन रस का सञ्चार शरीर में ऐसी उत्तेजना पैदा करता है जिससे मनुष्य शरीर की सारी वेदना की परवाह न कर असाधारण कार्यों को सरलता से कर लेता है।

प्रश्न

१—'नाड़ी-तन्त्र नगर के तार-तन्त्र के समान हैं', इस कथन को उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

२—शरीर के नाड़ी तन्त्र के अध्ययन से मानसिक क्रियाओं के समझने में कहाँ तक सहायता मिलती है? उदाहरण देकर समझाइए।

३—*'स्नायु-मण्डल' क्या है? अन्तर्गामी और निर्गामी नाड़ियों का* कार्य और उनके आपस का सम्बन्ध समझाइए।

४—'साइनाप्स' किसे कहते हैं? एक उदाहरण देकर इसका कार्य समझाइए।

५—सहज क्रिया में कौन-कौन सी नाड़ियाँ कार्य करती हैं? एक चित्र के द्वारा सहज क्रिया के विभिन्न भागों को समझाइए।

---

1. Kidney. 2. Adrinalin.

जाता है क्योंकि शरीर में स्फूर्ति आने के साथ-साथ बुद्धि में भी स्फूर्ति आती है। इस तरह प्रेम और आशा, स्वास्थ्य और प्रतिभा के उसी प्रकार पोषक हैं, जिस तरह क्रोध और निराशा उनके विनाशक हैं।

कण्ठ की गिल्टी के रस की वृद्धि उसके बराबर उत्तेजित करने से की जा सकती है। थायरॉक्सिन की कमी की पूर्ति कुछ दूर तक कण्ठमणि को कृत्रिम रूप से उत्तेजित करके कर सकते हैं। इसके लिए गले की नसों का व्यायाम विशेष लाभकारी होता है। व्यायाम करते समय यदि हम अपने विचार का भी कण्ठमणि पर केन्द्रित करें तो और भी अधिक लाभ हो।*

उपचुल्लिका—ये गिल्टियाँ मटर के बराबर उसी आकार की होती हैं और चुल्लिका के दाहिने और बायें भाग में दो-दो रहती हैं। इनके कार्य में त्रुटि होने से या इनके निकाल देने से टेटिनी नामक रोग उत्पन्न हो जाता है।

थाइमस—यह गिल्टी छाती की हड्डी के पीछे और गर्दन के निचले भाग के पास है। यह चौदह-पन्द्रह वर्ष तक बढ़ती जाती है, तत्पश्चात् धीरे-धीरे छोटी होती जाती है। इसके काम का अभी तक पूरा-पूरा पता नहीं चला, किन्तु इसके निकाल देने पर अथवा इसके विकारयुक्त होने पर शरीर की बाढ़ में कमी हो जाती है।

पीनियल गिल्टी—यह गिल्टी मस्तिष्क की नली में रहती है। फ्रान्स के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता डेकार्ट ने इस गिल्टी को जीवात्मा का निवास-स्थान कहा है। इसके कथनानुसार शरीर की सभी क्रियाओं का सञ्चालन इसी गिल्टी से होता है। शरीर विज्ञान के अनुसार इस गिल्टी का काम इतने महत्त्व का नहीं जितना कि डेकार्ट महाशय ने उसे माना है। किन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि यह गिल्टी शरीर-विकास में महत्त्व का कार्य करती है। यह गिल्टी लिंग-भेद के ऊपरी चिह्न को पहचानने में सहायक है। लड़के में दाढ़ी मूँछ का आना तथा स्त्रियों में विशेष अवयवों का बढ़ना इसी गिल्टी के कार्य से होता है। अतएव इस गिल्टी को कभी-कभी कामोद्दीपक गिल्टी भी कहा जाता है।

पिट्यूटरी—यह गिल्टी मस्तिष्क के नीचे की नली से लटकती रहती है। इसके दो हिस्से हैं; दोनों से विभिन्न प्रकार के रस निकलते रहते हैं।

---

*हठयोग की कई ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जिनके द्वारा कण्ठमणि की विशेष उत्तेजना होती है और अमृत रस की वृद्धि होती है। शीर्षासन, हलासन, पश्चिमोत्तान और मत्स्यासन इस दृष्टि से स्वास्थ्य के लिए विशेष लाभकारी हैं।

सामनेवाले भाग का कार्य शरीर की बाढ़ के लिए आवश्यक होता है और पिछले भाग के कार्य का प्रभाव आँत और रक्त-वाहिनी नलियों पर पड़ता है।

एड्रिनल—एड्रिनल नामक दो गिल्टियाँ गुर्दों[1] के ऊपरी सिरे पर स्थित हैं। ये एड्रिनलीन[2] नामक रस का उत्पादन करती हैं। यह रस शरीर में रक्त के द्वारा प्रवाहित होता है तथा शरीर में स्फूर्ति लाता है। इसके प्रवाहित होने पर शरीर चौकन्ना हो जाता है और किसी विशेष प्रकार के खतरे का सामना करने के लिए तैयार हो जाता है। यदि मनुष्य को भागना हो या किसी से लड़ना हो तो विशेष मात्रा में एड्रिनलीन की उत्पत्ति हो जाती है, जिसके कारण मनुष्य असाधारण कार्य कर डालता है। चोर पीछा किये जाने पर जितनी तेजी से दौड़ सकता है और जितनी ऊँची-ऊँची दीवारें कूद सकता है, पीछा करनेवाले न तो उतनी शीघ्रता से दौड़ सकते हैं और न उतनी लम्बी कूद फाँद ही कर सकते हैं। वह अकेला दो-तीन आदमियों के हाथ से भी छूटकर भाग जाता है। कूद फाँद में जो चोट लगती है उसकी वेदना उसे उस समय नहीं होती। इसी तरह लड़ाई में लड़नेवाले सिपाही को लड़ते समय चोट का ज्ञान नहीं रहता। हाकी या फुटबाल खेलते समय जो चोट बालकों को लग जाती है उसका ज्ञान उन्हें खेल क समाप्त होने पर होता है। एड्रिनलीन रस का सञ्चार शरीर में ऐसी उत्तेजना पैदा करता है जिससे मनुष्य शरीर की सारी वेदना की परवाह न कर असाधारण कार्यों को सरलता से कर लेता है।

प्रश्न

१—'नाड़ी तन्त्र नगर के तार तन्त्र के समान है', इस कथन को उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

२—शरीर के नाड़ी तन्त्र के अध्ययन से मानसिक क्रियाओं के समझने में कहाँ तक सहायता मिलती है? उदाहरण देकर समझाइए।

३—केन्द्र नाड़ी मण्डल क्या है? अन्तर्गामी और निर्गामी नाड़ियों का कार्य और उनके आपस का सम्बन्ध समझाइए।

४—'साइनाप्स' किसे कहते हैं? एक उदाहरण देकर इसका कार्य समझाइए।

५—सहज क्रिया में कौन-कौन सी नाड़ियाँ कार्य करती हैं? एक चित्र के द्वारा सहज क्रिया के विभिन्न मार्गों को समझाइए।

---

1. Kidney. 2. Adrinalin

६—मान लीजिए, हमें एक कीड़े ने पैर में काट लिया, इस घटना की जो-जो प्रतिक्रियाएँ सम्भव हैं, उनपर प्रकाश डालिए।

७—सुषुम्ना के मुख्य मुख्य कार्य क्या हैं? इसका मस्तिष्क से क्या सम्बन्ध है?

८—मस्तिष्क के प्रधान भाग कौन कौनसे हैं? उनके कार्यों का सक्षेप में वर्णन कीजिए।

९—मस्तिष्क में क्षति होने पर क्या होता है? सविस्तार समझाइए।

१०—लघु मस्तिष्क और सेतु का क्या सम्बन्ध है? मस्तिष्क के कार्य पर प्रकाश डालिए।

११—स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल और केन्द्रीय नाड़ी मण्डल का क्या सम्बन्ध है? स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल का प्रधान कार्य क्या है?

१२—स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल के प्रमुख भाग कौन कौन हैं तथा उनके कार्य क्या हैं?

१३—हमारे शरीर में स्थित प्रमुख गिल्टियों के कार्य बतलाइए।

———

चौथा प्रकरण

अभिप्रेरण[1]

मानव व्यवहार के अभिप्रेरक[2]

अभिप्रेरकों के अध्ययन की उपयोगिता—मनुष्य जब कोई कार्य करता है तो उसका उस कार्य के करने का कोई हेतु होता है, उसके कुछ प्रेरक होते हैं अथवा मनुष्य का कुछ लक्ष्य होता है, जिस तक वह पहुँचने की चेष्टा करता है। मनोविज्ञान के अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य इन प्रेरकों, उद्देश्यों अथवा लक्ष्यों का ज्ञान करना होता है। मनुष्य जो कुछ काम करता है, उसे सभी देख सकते हैं परन्तु वह कोई काम किस लिए करता है, इसे जानने के लिए मनोवैज्ञानिक सूझ और समझ की आवश्यकता होती है। किसी भी मनुष्य के कार्यों के अभिप्रेरकों को ठीक-ठीक जानना तब तक सम्भव नहीं, जब तक हम मनुष्यों के व्यक्तित्व को तथा व्यक्ति विशेष के कार्यों के हेतुओं की ओर उसकी सभी परिस्थितियों को भली भाँति न समझें। पुराने समय में मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य के अभिप्रेरकों को भली भाँति समझने की चेष्टा नहीं की, परन्तु वर्तमान काल में इस ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। जबसे मनोविज्ञान का उपयोग मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में होने लगा है, तबसे मनुष्य के अभिप्रेरकों को समझने की आवश्यकता भी बढ़ गई है। व्यावहारिक जीवन में हमारे लिए यह नितान्त आवश्यक होता है कि हम किसी व्यक्ति के बारे में जानें कि उसने जो कुछ काम किया है, वह क्यों किया—अर्थात् उसके काम के अभिप्रयोजक क्या थे?

मानव-व्यवहार की चर्चा दो प्रकार से होती है; एक व्यवहार की बनावट की दृष्टि से; अर्थात् मनुष्य के क्रियात्मक स्वरूप की रचना की दृष्टि से, और दूसरे, मनुष्य के व्यवहार के प्रेरकों की दृष्टि से। स्टाउट, टामसन, काफका, टिचनर आदि विद्वानों ने मनुष्य के व्यवहारों की चर्चा उसकी बनावट की ही दृष्टि से की है अर्थात् जब मनुष्य के क्रियात्मक स्वरूप की चर्चा

1. Motivation. 2. Motive.

६—मान लीजिए, हमें एक कीड़े ने पैर में काट लिया, इस घटना की जो-जो प्रतिक्रियाएँ सम्भव हैं; उनपर प्रकाश डालिए।

७—सुषुम्ना के मुख्य-मुख्य कार्य क्या हैं ? इसका मस्तिष्क से क्या सम्बन्ध है ?

८—मस्तिष्क के प्रधान भाग कौन कौनसे हैं ? उनके कार्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

९—मस्तिष्क में क्षति होने पर क्या होता है ? सविस्तार समझाइए।

१०—लघु मस्तिष्क और सेतु का क्या सम्बन्ध है ? मस्तिष्क के कार्य पर प्रकाश डालिए।

११—स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल और केन्द्रीय नाड़ी-मण्डल का क्या सम्बन्ध है ? स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल का प्रधान कार्य क्या है ?

१२—स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल के प्रमुख भाग कौन-कौन हैं तथा नके कार्य क्या हैं ?

१३—हमारे शरीर में स्थित प्रमुख ग्लिटियों के कार्य बतलाइए।

———

चौथा प्रकरण

अभिप्रेरण[1]

मानव व्यवहार के अभिप्रेरक[2]

अभिप्रेरकों के अध्ययन की उपयोगिता—मनुष्य जब कोई कार्य करता है तो उसका उस कार्य के करने का कोई हेतु होता है, उसके कुछ प्रेरक होते हैं अथवा मनुष्य का कुछ लक्ष्य होता है, जिस तक वह पहुँचने की चेष्टा करता है। मनोविज्ञान के अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य इन प्रेरकों, उद्देश्यों अथवा लक्ष्यों का ज्ञान करना होता है। मनुष्य जो कुछ काम करता है, उसे सभी देख सकते हैं परन्तु वह कोई काम किस लिए करता है, इसे जानने के लिए मनोवैज्ञानिक सूझ और समझ की आवश्यकता होती है। किसी भी मनुष्य के कार्यों के अभिप्रेरकों को ठीक-ठीक जानना तब तक सम्भव नहीं, जब तक हम मनुष्यों के व्यक्तित्व को तथा व्यक्ति विशेष के कार्यों के हेतुओं को और उसका सभी परिस्थितियों को भली भाँति न समझें। पुराने समय में मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य के अभिप्रेरकों को भली भाँति समझने की चेष्टा नहीं की, परन्तु वर्तमान काल में इस ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। जबसे मनोविज्ञान का उपयोग मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में होने लगा है, तबसे मनुष्य के अभिप्रेरकों को समझने की आवश्यकता भी बढ़ गई है। व्यावहारिक जीवन में हमारे लिए यह नितान्त आवश्यक होता है कि हम किसी व्यक्ति के बारे में जानें कि उसने जो कुछ काम किया है, वह क्यों किया—अर्थात् उसके काम के अभिप्रयोजक क्या थे?

मानव-व्यवहार की चर्चा दो प्रकार से होती है; एक व्यवहार की बनावट की दृष्टि से; अर्थात् मनुष्य के क्रियात्मक स्वरूप की रचना की दृष्टि से, और दूसरे, मनुष्य के व्यवहार के प्रेरकों की दृष्टि से। स्टाउट, टाम्सन, काफका, टिचनर आदि विद्वानों ने मनुष्य के व्यवहारों की चर्चा उसकी बनावट की ही दृष्टि से की है अर्थात् जब मनुष्य के क्रियात्मक स्वत्व की चर्चा

1. Motivation. 2. Motive.

की जाती है तब यह बताया जाता है कि कोई मनुष्य किसी प्रकार का व्यवहार कैसे करता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक इस बात को समझने की अधिक चेष्टा करते हैं कि मनुष्य किसी प्रकार का व्यवहार क्यों करता है।

मान लीजिये, आपका कोई पुराना परिचित व्यक्ति आपके घर आता है। वह आपके बच्चों के लिए कुछ भेंट भी ले आता है। वह आपसे बड़े ही शिष्टाचार के साथ मिलता है। अब, जिस व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक सूझ है वह यह जानने की चेष्टा करता है कि इस व्यक्ति का विशेष प्रकार का व्यवहार क्यों हो रहा है। मनोविज्ञान बताता है कि सामान्य व्यवहारों के हेतु सामान्य होते हैं और असामान्य व्यवहारों के हेतु असामान्य होते हैं। मनुष्य के सामान्य हेतु अथवा अभिप्रेरक क्या हैं और वे उसके जीवन में किस प्रकार काम करते हैं तथा उसके असामान्य हेतु और अभिप्रेरक क्या हैं और वे उसके जीवन में किस प्रकार काम करते हैं। हर एक व्यक्ति को, अपने व्यावहारिक जीवन को सफल बनाने के लिए, इन बातों को जानना नितान्त आवश्यक है। अभिप्रेरकों की दृष्टि से किसी भी व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक जानकारी करना प्रत्येक व्यापारी, राजनीतिज्ञ और न्यायाधीश के लिए नितान्त आवश्यक है। जिस व्यक्ति को मनोविज्ञान के इस क्षेत्र का ठीक ठीक ज्ञान नहीं है, वह अच्छा विक्रेता नहीं बन सकता। डेलकारनेगी ने अपनी एक पुस्तक में यह दर्शाने की चेष्टा की है कि मनुष्य कैसे सफल विक्रेता बन सकता है। इसी प्रकार उन्होंने अपनी एक दूसरी पुस्तक में यह बताया है कि मनुष्य कैसे अपने मित्रों की संख्या बढ़ा सकता है और अपना प्रभाव दूसरों पर कैसे जमा सकता है। अभिप्रयोजन की दृष्टि से मनोविज्ञान का अध्ययन विज्ञापनकर्ताओं के लिए नितान्त आवश्यक है। विज्ञापनकर्ता को यह सोचना पड़ता है कि वह अपने विज्ञापन को किसी पत्र में किस स्थान पर और किस ढंग से रखे ताकि वह जनता का ध्यान अधिक-से अधिक अपनी ओर आकृष्ट कर सके। पत्र में प्रस्तुत व्यंग्य चित्र (कार्टून) बनानेवालों को भी मनोविज्ञान की जानकारी रखना, इस दृष्टि से नितान्त आवश्यक है। जिस प्रकार व्यापार में अथवा सामान्य व्यावहारिक जीवन में अभिप्रेरकों की जानकारी करना आवश्यक है उसी प्रकार राजनीतिक अथवा सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने के लिए भी इनकी भली भाँति जानकारी करना आवश्यक है। जब कोई प्रवक्ता जनता के समक्ष भाषण करता है और उसे किसी विशेष ओर मोड़ने की चेष्टा करता है, तो उसे जनता के कार्यों के अभिप्रेरकों का ज्ञान रखना आवश्यक होता है। इस प्रकार वर्तमान काल में मनुष्य के व्यवहारों को समझने और उन्हें

विशेष ओर मोड़ने में मानव के कार्यों के अभिप्रेरकों को जानना नितान्त आवश्यक समझा जाता है।

मनुष्य के कुछ अभिप्रेरक ऐसे होते हैं, जिनके लिए सामान्य मनोवैज्ञानिक सूझ ही पर्याप्त होती है, परन्तु कुछ अभिप्रेरकों को समझने के लिए मनोविज्ञान के विशेष अध्ययन की आवश्यकता होती है। साधारणतः प्रत्येक मनुष्य को अपने कार्यों के अभिप्रेरकों का ज्ञान रहता है। वह दूसरों से इन्हें भले ही छिपा ले परन्तु वे स्वय उससे नहीं छिपे रहते। परन्तु मनुष्य के कुछ व्यवहार ऐसे होते हैं जिनके अभिप्रेरकों का ज्ञान न तो दूसरे लोगों को होता है और न स्वय कार्यकर्त्ता को ही होता है। कभी-कभी कार्यकर्त्ता, जिनको अपने कार्यों का अभिप्रेरक समझता है, वे उसके कार्यों के अभिप्रेरक नहीं होते वरन् कोई दूसरे ही ऐसे अभिप्रेरक होते हैं, जिनका ज्ञान होना उसके लिए बड़ा दुःखद होता है। मनुष्य अपने नीच हेतुओं का ज्ञान स्वय नहीं करना चाहता, इससे उसके आत्म-सम्मान की भावना को ठेस पहुँचती है। अतएव कभी-कभी मनुष्य अपने कार्यों के हेतु को ऐसा समझता है, जिससे वह अपने को भले होने का आत्म सतोष दे सके। कभी-कभी मनुष्य के कार्यों के ज्ञात हेतु उसके वास्तविक हेतुओं के आवरण मात्र होते हैं। आधुनिक मनोविश्लेषण विज्ञान ने इस प्रकार के छिपे हेतुओं पर बहुत प्रकाश डाला है। वास्तव मे मनोविश्लेषण विज्ञान की खोजों ने मनोविज्ञान के अध्ययन को एक विशेष दिशा में मोड़ दिया है। आज मनोविज्ञान का अध्ययन जितना मनुष्य के अभिप्रेरकों को समझने की दृष्टि से किया जाता है, उतना पहले नहीं किया जाता था। मनोविश्लेषकों की खोजों से हमें यह ज्ञात हुआ कि मनुष्य के अभिप्रेरक न केवल ज्ञात होते हैं वरन् अज्ञात भी होते हैं, अर्थात् कुछ अभिप्रेरकों का ज्ञान व्यवहार-कर्ता को ज्ञात रहता है और कुछ का ज्ञान स्वयं उसी को नहीं रहता।

अभिप्रेरक क्या हैं?—प्राणी को सक्रिय बनानेवाली शक्तियाँ ही अभिप्रेरणाएँ कहलाती हैं। अभिप्रेरणा का अर्थ है काम में प्रेरणा देना अथवा व्यक्ति को गतिशील बनाना। इस अर्थ में प्रत्येक उद्दीपक[1], जो किसी प्रकार की अनुक्रिया[2] उत्पन्न करता है, अभिप्रेरक कहलाता है। प्राणी की प्रत्येक अनुक्रिया के पूर्व कुछ-न कुछ अभिप्रेरण होता है, चाहे वह अभिप्रेरण प्राणी के भीतर से हो या बाहर से। अतएव प्राणी का प्रत्येक व्यवहार अभिप्रेरणाओं द्वारा अभिप्रेरित ही रहता है।

1. Stimulus. 2. Response

ऊपर कहा गया अर्थ अभिप्रेरण का व्यापक अर्थ है। मनोविज्ञान में अभिप्रेरण शब्द का प्रयोग एक सीमित अर्थ में किया जाता है। अभिप्रेरणा का मनोवैज्ञानिक अर्थ है भीतरी प्रेरकों के द्वारा क्रिया का सचालित होना। अभिप्रेरण की अवस्था में क्रिया का सचालन और इसका नियन्त्रण मनुष्य क व्यक्तित्व में रहनेवाले कारणों से ही होता है।

अभिप्रेरणा शब्द का उपयोग फतिंगा के व्यवहार के विषय में नहीं किया जाता। फतिंगा जब दीपक को देखता है तो वह उसपर एक दम आकर टूट पड़ता है। इससे कभी वह दीपक को बुझा देता है और कभी अपने को ही जला लेता है। फतिंगा का व्यवहार मशीन के व्यवहार के समान है। जब वह एक बार दीपक से थोड़ा जल जाता है, तब भी वह इस अनुभव से कोई लाभ नहीं उठाता। वह जब भी उठता है तब फिर से दीपक को देखकर उसकी ओर दौड़ पड़ता है। उसके भीतर अपने-आपको रोकने की शक्ति है ही नहीं। प्राणी के इस प्रकार के व्यवहारों में अभिप्रेरणा की उपस्थिति नहीं रहती। अभिप्रयोजन का प्रयोग मनोवैज्ञानिक अर्थ में वहीं किया जा सकता है, जहाँ बाहरी उत्तेजना की उपस्थिति में प्राणी व्यवहार करेगा अथवा नहीं, इस बात का निर्णय नहीं किया जा सकता। अभिप्रेरणा का ज्ञान करके ही हम यह बता सकते हैं कि अमुक परिस्थिति में अमुक प्राणी क्या करेगा। उदाहरणार्थ, एक कुत्ते के व्यवहार को लीजिये। कुत्ते के सामने यदि खाना रख दिया जाय तो हम यह नहीं कह सकते कि कुत्ता खाना खाने ही लगेगा, जब तक कि हमें इस बात का ज्ञान न हो कि वह भूखा है। गाय को पानी दिखाने से कभी वह पानी पीती है और कभी नहीं पीती। जब तक हम यह न जानें कि गाय प्यासी है तब तक हम यह नहीं कह सकते कि गाय पानी पीयेगी ही। इसी प्रकार यदि कोई बच्चा आग के पास पहुँचता है, तो हम तब तक यह नहीं कह सकते कि वह आग को छूयेगा अथवा नहीं, जब तक हमें इस बात का ज्ञान न हो कि उसे आग के छूने का अनुभव हो गया है अथवा नहीं।

उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अभिप्रेरण शब्द का वहाँ उपयोग किया जा सकता है, जहाँ प्राणी के व्यवहार केवल बाहरी उत्तेजकों पर आश्रित नहीं रहते वरन् उनका सचालन उसके व्यक्तित्व के भीतर से होता है, चाहे इस प्रकार के सञ्चालन का कारण कुछ भीतरी शारीरिक परिवर्तन हो अथवा मनुष्य का पहले का अनुभव हो। नार्मन मन महोदय ने अभिप्रेरणा के मनोविज्ञान को स्पष्ट करते हुए कहा

है कि अभिप्रेरणा का अध्ययन उन भीतरी नियोजकों का अध्ययन है जिनकी जड़ परिवर्तित होनेवाली शारीरिक परिस्थितियों में अथवा प्राणी के पुराने अनुभव के संस्कारों में है। अभिप्रेरक प्राणी के व्यवहार के भीतरी कार्य-स्रोत हैं। ये प्राणी को किसी प्रकार के कार्य करने की प्रेरणा भीतर से देते रहते हैं। मानव के अभिप्रेरकों के अध्ययन का उद्देश्य इस बात की जानकारी करना है कि मनुष्य जैसा व्यवहार करता है, वैसा वह क्यों करता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि हम मनुष्य के अभिप्रेरकों को, उसके बाहरी व्यवहारों को देखकर नहीं समझ सकते। हम मनुष्य के बाहरी व्यवहारों को देखकर उसके विषय में केवल अनुमान लगा सकते हैं। जिस प्रकार हम किसी ठोस पदार्थ के नीचे गिरने की क्रिया को देखकर भी उसकी प्रेरक शक्ति को नहीं देखते, उसी प्रकार किसी व्यक्ति के व्यवहारों को देखते हुए भी उन व्यवहारों के विषय में प्रेरणा देनेवाली शक्ति का ज्ञान न कर, हम उनके विषय में केवल अनुमान ही कर सकते हैं। इस प्रकार के अनुमान में न केवल सामान्य व्यक्तियों से भूल होती है वरन् बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिकों से भी भूल होती है। उदाहरणार्थ, कोई आगन्तुक हमारे घर आया। उसके विषय में हम यह अनुमान कर सकते हैं कि वह हमसे कुछ माँगने आया है, हमारे यहाँ चोरी करने आया है अथवा हमें कुछ देने ही आया है। उसके व्यवहारों को देखकर हम अपने पुराने अनुभवों के आधार पर किसी विशेष निर्णय पर पहुँचते हैं। जब किसी बड़े अधिकारी के पास कोई सामान्य व्यक्ति जाता है, तब वह अधिकारी यह पहले से ही समझ लेता है कि वह नौकरी माँगने आया होगा अथवा कोई शिकायत लेकर आया होगा। अधिकारी की सामान्य कल्पना यह नहीं होती कि वह उसकी कोई भलाई करने आया है। अधिकारी अपने पुराने अनुभव के आधार पर किसी विशेष आगन्तुक के व्यवहार का अर्थ लगाता है। उसका अर्थ लगाना सामान्यतः ठीक ही होता है परन्तु उससे भूल भी हो सकती है। मनुष्य को दूसरों के व्यवहार के विषय में जैसे जैसे अधिक अनुभव होता जाता है, वैसे वैसे वह उनके व्यवहार के अभिप्रेरकों के विषय में अधिक सही अनुमान करता है। प्राणी के बाहरी व्यवहारों को देखकर उसके अभिप्रेरकों का ज्ञान करना ही इनके जानने का सामान्य रूप है। यदि कुत्ता खाने की ओर दौड़ता है, तो हम सोचते हैं कि वह भूखा है। यदि बच्चा पानी की ओर

-हाथ बढ़ाता है, तो हम सोचते हैं कि वह प्यासा है। यदि कोई व्यक्ति दूसरे की निन्दा करता है तो हम सोचते हैं कि उसके आत्मसम्मान के भाव को ठेस लगी है। इन परिस्थितियों में हम व्यक्ति के बाहरी व्यवहार को देखकर उसके भीतरी अभिप्रेरकों का अनुमान करते हैं।

मनुष्य के कई व्यवहार ऐसे होते हैं, जो देखने में एक ही तरह के हैं और जिनके अभिप्रेरक भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। एक व्यक्ति किताब लिखता है अथवा अखबार के लिए निबंध लिखता है। उसके इस कार्य का अभिप्रेरक पैसा कमाना या दूसरों के द्वारा प्रशंसित होना अथवा दूसरों का पथ प्रदर्शन करके उन्हें लाभ पहुँचाना हो सकता है। उसके कार्य का ठीक अभिप्रेरक क्या है, इस बात को जानने में *मनोवैज्ञानिक सूझ* का महत्त्व है। जिस व्यक्ति का मानव-व्यक्तित्व-संबन्धी ज्ञान जितना अच्छा होता है, वह मनुष्य के किसी प्रकार के कामों के अभिप्रेरकों के विषय में उतना ही अच्छा ज्ञान कर सकता है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि मानव के कार्यों के अभिप्रेरकों का ज्ञान ठीक से कर लेना न केवल दूसरे व्यक्ति के लिए कठिन है वरन् कभी कभी स्वयम् उस व्यक्ति के लिए भी कठिन होता है, जो विशेष प्रकार का व्यवहार करता है। अर्जुन महाभारत की लड़ाई में कौरवों की सेना को देखकर युद्ध से विमुख हो रहा था। उसने कृष्ण के समक्ष अपने इस व्यवहार का अभिप्रेरक—दया अथवा स्नेह का भाव व्यक्त किया था। कृष्ण ने उसे बताया कि वह वास्तव में दया से प्रेरित नहीं है वरन् क्लीवत्व अथवा कायरता की मनोभावना से प्रेरित है। यदि कृष्ण ने अर्जुन की मनोस्थिति को ठीक से नहीं समझा, तो उसने एक हत्यारे का काम किया और इस प्रकार कृष्ण की दी हुई सारी गीता की शिक्षा नैतिकता के प्रतिकूल है। कई किशोर बालक अपने पड़ोस की समवयस्का बालिका को बहन के रूप में मानने लगते हैं। वे उससे बातचीत करने के लिए, उससे कुछ लेन देन करने के लिए सदा उत्सुक रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति उनके इस कार्य में रुकावट डाले, तो उनके आत्म सम्मान को भारी ठेस लगती है। वे सोचते हैं कि हमारे निर्दोष स्नेह व्यवहार पर दूसरे लोग व्यर्थ का संदेह कर रहे हैं। आधुनिक मनोविश्लेषण विज्ञान ने मनुष्य के व्यक्तित्व के गहरे तत्त्वों का अध्ययन करके यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य अपने अभिप्रेरकों के विषय में न केवल दूसरों को धोखा देने में कुशलता दिखाता है वरन् स्वयम् को भी धोखा देने में बड़ी कुशलता से काम लेता है। वह अपनी

क्रूरता को न्याय प्रियता की आड़ में, कायरता को उदारता की आड़ में और काम वासना की पूर्ति को स्नेह-प्रदर्शन की आड़ मे, न केवल दूसरों से वरन् स्वयम् से भी छिपाता है। कभी कभी मनुष्य के इन छिपे अभिप्रेरकों का ज्ञान दूसरे लोगों को भली भाँति हो जाता है परन्तु स्वयम् उस व्यक्ति के लिए अपने मन की वस्तुस्थिति का ज्ञान कर लेना अत्यन्त कठिन होता है। जिस मनुष्य का अपने विषय में स्वाभिमान का भाव बड़ा ऊँचा होता है, उसे जब ज्ञात होता है कि दूसरे लोग उसके कार्यों के विषय में निम्न कोटि के हेतुओं को बताते हैं, तो वह सोचता है कि दूसरे लोग केवल ईर्ष्यावश ही उसके प्रति इस तरह की अनुदारता का व्यवहार कर रहे हैं। आधुनिक मनोविज्ञान की खोजों ने मनुष्य के इस प्रकार के छिपे अभिप्रेरकों का बड़ा ही उपयोगी और रोचक रहस्योद्घाटन किया है। मनोवैज्ञानिक किसी व्यक्ति के वास्तविक हेतुओं को जानने के लिए उसके जीवन की सभी प्रमुख घटनाओं को जानने की चेष्टा करता है। इसके लिए उसके स्वप्नों का भी अध्ययन किया जाता है और विशेष प्रकार के यन्त्रों और परीक्षाओं के द्वारा भी मनुष्य के छिपे हेतुओं का पता लगाने की चेष्टा की जाती है।

मनुष्य के एक ही प्रकार के व्यवहार के हेतु कई प्रकार के हो सकते हैं। नीतिशास्त्र और कानून में मनुष्य के किसी व्यवहार के वास्तविक हेतु को जानकर ही उसके कार्यों का मूल्यांकन किया जाता है। एक देशभक्त देश को स्वतन्त्र करने के लिए एक विदेशी शासक की हत्या करता है, एक फौजी सिपाही अपनी नौकरी के लिए फौज में लड़नेवाली दूसरी सेना के सिपाही को गोली मार देता है, एक डाकू एक राहगीर को मारकर उसका धन छीन लेता है, एक घर का स्वामी अपने ऊपर डाकुओं का उत्पात देखकर डाकू को गोली मार देता है, एक नवयुवक अपनी प्रेमिका पर बलात्कार करने के कारण एक आततायी की हत्या कर बैठता है। इन सभी स्थानों में बाहरी व्यवहार एक सा ही है। सब जगह एक मनुष्य दूसरे की हत्या करता है परन्तु कहीं मनुष्य को उसके कार्य की प्रशंसा मिलती है और कहीं निन्दा अथवा मृत्यु दंड भी मिलता है। इस प्रकार जो मनुष्य के व्यवहारों की कीमत की जाती है, उसका कारण व्यक्ति का बाहरी आचरण नहीं वरन् उसके भीतरी अभिप्रेरकों का भला अथवा बुरा होना है। मनुष्य एक ही प्रकार का व्यवहार—क्रोध, भय, लोभ, विषय लिप्सा अथवा और किसी दूसरे अभिप्रेरकों के कारण कर सकता है। मानव-व्यवहार के सभी उत्तेजक

अभिप्रेरक कहलाते हैं। मनोवैज्ञानिक इन मानव-उत्तेजकों का ज्ञान करने में सहायता देता है और दार्शनिक, न्यायाधीश अथवा समाज-रक्षक इनका मूल्यांकन करता है और अपने मूल्यांकन के अनुसार व्यक्ति को पुरस्कार अथवा दंड देता है।

मानव-व्यवहार के अभिप्रेरक अनेक नामों से पुकारे जाते हैं; उद्देश्य, इच्छा, हेतु, प्रेरणा, चाह, भूख, लक्ष्य, रुख, रुचि और स्वेच्छा आदि सभी शब्द अभिप्रेरणा के भाव को व्यक्त करते हैं। इन सभी शब्दों से हम यह जानते हैं कि मनुष्य अपने काम का नियोजन करता है। अभिप्रेरणा का निर्देश करनेवाले कुछ शब्द समानार्थ को ही व्यक्त करते हैं, परन्तु कुछ शब्द विरोधी अर्थ को भी व्यक्त करते हैं। मनुष्य के आचरण दो प्रकार के होते हैं—एक प्राकृतिक और दूसरा नैतिक। प्राकृतिक आचरण में मनुष्य के कार्य उन प्रेरकों से नियोजित होते हैं, जो प्राकृतिक रूप से उसके शारीरिक गठन के कारण अथवा वातावरण के संस्कारों के कारण उसमें पैदा हुए हैं। मनुष्य के नैतिक आचरण में इस प्रकार के प्राकृतिक अभिप्रेरकों का नियोजन देखा जाता है। संसार के सभी दार्शनिकों का मत है कि स्वेच्छा से की गई क्रिया मनुष्य की सामान्य क्रियाओं के समान प्राकृतिक अभिप्रेरकों के द्वारा अभिप्रेरित नहीं होती। मनुष्य के चरित्र का आधार स्वेच्छा से की गई क्रियाएँ ही हैं। इस प्रकार की क्रियाओं की प्रेरणा एक ऐसी स्वतन्त्र इच्छा शक्ति से होती है, जो न तो शारीरिक बनावट से और न वातावरण से ही उत्पन्न होती है वरन् जो परिस्थितियों के सभी प्रभावों से स्वतन्त्र है। सामान्य मनोवैज्ञानिक इस प्रकार की स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति में विश्वास ही नहीं करते, क्योंकि इसकी उपस्थिति वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध नहीं की जा सकती। परन्तु जो विद्वान मनोवैज्ञानिक के साथ साथ दार्शनिक भी हैं, वे इसके अनस्तित्व की अवहेलना ही नहीं करते वरन् उसके द्वारा अभिप्रेरित कार्यों को भी जीवन के प्रमुख कार्य मानते हैं। डा० विलियम ब्राउन, चार्ल्स युग आदि महोदय ऐसे मनोवैज्ञानिकों में से हैं। विलियम जेम्स ने इस प्रकार की स्वतन्त्र इच्छाशक्ति की चर्चा अपनी प्रिंसपुल्स आफ साइकोलाजी नामक ग्रंथ के द्वितीय भाग में अवश्य की है, परन्तु उन्होंने इस प्रश्न को पूरा हल किये बिना ही छोड़ दिया है। स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति के अस्तित्व के विषय में सम्भवतः जितना विलियम जेम्स ने कहा है, उसके अतिरिक्त कुछ कहा ही नहीं जा सकता। किन्तु हमें यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति मनुष्य के सर्वोच्च कोटि के

व्यवहारों के अभिप्रेरकों को जन्म देती है। हम स्वतन्त्र इच्छाशक्ति जन्य अभिप्रेरकों को उसी प्रकार का अभिप्रेरक नहीं मान सकते, जिस प्रकार मनुष्य के व्यवहारों के अन्य अभिप्रेरक होते हैं। इस सिद्धान्त का समर्थन मन महोदय ने अपनी साइकोलाजी नामक पुस्तक में स्पष्ट रूप से किया है।

अभिप्रेरकों[1] के प्रकार

मानवीय व्यवहारों के अभिप्रेरक दो प्रकार के होते हैं—एक जन्मजात[2] और दूसरे अर्जित[3]। जन्मजात अभिप्रेरक भी दो प्रकार के होते हैं। पहले वे जिनका सम्बन्ध शरीर से रहता है, अर्थात् जिनका उत्पत्ति शरीर में होनेवाली क्रियाओं के कारण होती है और दूसरे वे जो मन से सम्बन्ध रखते हैं, अर्थात् जिनका कारण जन्मजात मानसिक बनावट में ही रहता है। अर्जित प्रेरकों का सम्बन्ध मन से ही रहता है। मनुष्य वातावरण के सम्पर्क में आने पर अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है, इससे उसके मन में अनेक प्रकार की रुचियाँ, आदतें, उद्देश्य और आदर्श इत्यादि उत्पन्न होते हैं। ये सभी मनुष्य के अर्जित अभिप्रेरक हैं। मनुष्य के जन्मजात अभिप्रेरक अधिकतर वे ही होते हैं, जो शरीर में किसी प्रकार की कमी की अनुभूति के कारण मनुष्य को किसी काम में प्रवृत्त करते हैं, ताकि उसकी कमी की पूर्ति हो जाय। भूख, प्यास, कामेच्छा, आराम और नींद का चाह, मल त्याग की प्रवृत्ति आदि सभी शरीर सम्बन्धी प्रेरक मनुष्य को जन्म से ही आते हैं। मनुष्य की परावर्त क्रियाएँ[4], मूल प्रवृत्तियाँ[5] और संवेग[6] सभी जन्म से ही उनके साथ आते हैं और ये अनेक प्रकार के जन्मजात अभिप्रेरकों को जन्म देते हैं। ये अभिप्रेरक मानसिक होते हैं।

अभिप्रेरक शब्द एक व्यापक शब्द है। इसके अन्तर्गत सहज प्रेरक[7] और हेतु[8] दो प्रकार की अनुभूतियाँ आती हैं। सहज प्रेरक ऐसे उत्तेजकों को कहा जाता है जो जन्म से ही आते हैं और जिनका अधिकतर सम्बन्ध शरीर से ही होता है। हेतु शब्द ऐसे अभिप्रेरकों के लिए प्रयुक्त होता है जो अनुभव के बाद अर्थात् सीखने के पश्चात् उत्पन्न होते हैं। सहजप्रेरक जन्मजात अभिप्रेरक होते हैं और हेतु अर्जित।

मैक्डूगल और उनके मत के माननेवाले मनोवैज्ञानिक मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों को ही उसके कार्यों के प्रधान जन्मजात अभिप्रेरक मानते हैं। मैक्डूगल महाशय के कथनानुसार प्रत्येक मूल प्रवृत्ति के तीन अङ्ग होते

1 Motivation 2 Innate 3 Acquired
4 Reflexes 5 Instincts 6 Emotions 7 Drive 8 Motive

हैं। पहला अङ्ग विशेष प्रकार की मानसिक शक्ति के रूप में है और दूसरा विशेष प्रकार की क्रिया करने के ढाँचे अथवा यन्त्र के रूप में। उदाहरणार्थ, बिजली द्वारा अनेक प्रकार के कामों को देखें। बिजली से आग जलती है, मशीन चलती है और प्रकाश होता है। यहाँ एक ही शक्ति तीन भिन्न-भिन्न यन्त्रों में पड़ने पर तीन भिन्न भिन्न प्रकार के परिणाम उत्पन्न करती है। बिजली वह शक्ति है जो यन्त्रों को चलाती है। यन्त्र अपने से नहीं चल सकते, परन्तु बिना यन्त्र के बिजली भी विभिन्न प्रकार के काम नहीं कर सकती। मैक्डूगल महाशय के कथनानुसार प्राणी के व्यक्तित्व के गठन में जितने प्रकार के मानसिक यन्त्र हैं उतने ही प्रकार की वे शक्तियाँ भी हैं जो इन यन्त्रों को चलाती हैं, अथवा जो इन यन्त्रों के द्वारा प्रकाशित होती हैं। मैक्डूगल महोदय ने इस प्रकार मूल प्रवृत्ति में दोनों ही बातों का समावेश किया है—एक शक्ति और दूसरा कार्य यन्त्र।

दूसरे मनोवैज्ञानिक, मैक्डूगल महोदय के उक्त मत को नहीं मानते। कुछ लोग मूल प्रवृत्ति से केवल मानसिक यन्त्र को ही सम्बोधित करते हैं और कुछ सहज वृत्ति से उस शक्ति को सम्बोधित करते हैं, जो मानसिक यन्त्र के द्वारा प्रकाशित होती है अथवा मानसिक यन्त्र को सञ्चालित करती है। कुछ मनोवैज्ञानिक सहज वृत्तियों अथवा मूलप्रवृत्तियों की उपस्थिति को ही स्वीकार नहीं करते। ब्रुक्स महोदय ने अपनी 'चाइल्ड साइकोलाजी' नामक पुस्तक में बताया है कि सहज वृत्ति जैसा कोई पदार्थ पशुओं की बनावट में भले ही पाया जाय, मनुष्य के व्यक्तित्व की बनावट में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है। सहज वृत्ति को उन सभी मनोवैज्ञानिकों ने, जिन्होंने इसका अस्तित्व स्वीकार किया है, जन्मजात शक्ति माना है जो मनुष्य के अनेक प्रकार के कामों की प्रेरक होती है और जिसके द्वारा सचालित काम विशेष प्रकार से ही होते हैं। ब्रुक्स और मन महोदय का कथन है कि ऐसे व्यवहार पशुओं *अथवा निम्न कोटि के प्राणियों में भले ही पाये जायँ, मानव जीवन में नहीं* पाये जाते। पशु बहुत से ऐसे काम करता है जिन्हें वह अपने अनुभव से नहीं सीखता, परन्तु जब उन कामों के करने का समय आता है तब वह सहज भाव से विशेष प्रकार की क्रियाएँ करने लग जाता है। उदाहरणार्थ, पक्षी के घोंसला बनाने की क्रिया कितनी जटिल है, किन्तु कोई भी पक्षी किसी प्रकार की ट्रेनिंग पाकर इसे नहीं सीखता। अतएव हम कह सकते हैं कि पक्षी में घोंसला बनाने की जन्मजात प्रवृत्ति है। ब्रुक्स का कथन है कि मानव के व्यवहार में हम कोई भी ऐसी सुगठित क्रिया नहीं देखते जिसे उसने अपने ही जीवन में स्वयं के अनुभव से अथवा दूसरों की नकल करके

न सीखा हो। मनुष्य के प्रायः सभी व्यवहार सीखने के परिणाम हैं। यदि कोई मनुष्य किसी विशेष प्रकार का आचरण एक ही तरह से करता है तो इसका कारण हम ब्रुक्स महोदय के अनुसार कोई जन्मजात प्रवृत्ति अथवा यान्त्रिक विधान नहीं मान सकते। इसका कारण प्राणी का व्यक्तिगत अनुभव ही है। अर्थात् वह वातावरण के सम्पर्क से सीख करके ही विशेष प्रकार की क्रियाएँ करता है।

मनुष्य में मूल प्रवृत्तियों की अनुपस्थिति का दूसरा प्रमाण यह बताया जाता है कि जहाँ निम्न कोटि के सभी प्राणी किसी विशेष लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक-सा ही व्यवहार करते हैं, वहाँ मनुष्य एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार का व्यवहार करता है। मनुष्य की इन क्रियाओं के करने का ढग मशीन के सदृश नहीं होता, जैसा कि निम्नकोटि के प्राणियों के काम करने का ढङ्ग होता है। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि कार्य-प्रणाली की शक्ति को जन्म से ही मनुष्य अपने साथ लाता है। इस तरह ब्रुक्स और मन के कथनानुसार मानव-व्यक्तित्व में सहज वृत्तियों की उपस्थिति सिद्ध नहीं होती। यदि मनुष्यों के मन का अध्ययन किया जाय तो हम यह अवश्य देखेंगे कि उनके कार्यों के कुछ विशेष प्रकार के प्रेरक जन्म से ही आते हैं। कुछ प्रेरक जीवन के अनुभव के बाद भी मनुष्य के मन में उत्पन्न होते हैं। परन्तु उन प्रेरकों द्वारा सचालित क्रियाएँ एक सी नहीं होतीं। सहज वृत्तियों का सिद्धान्त इस बात को मानकर चलता है कि विशेष प्रकार की मानसिक शक्ति के प्रकाशन का तरीका भी ऐसा होता है जो उसी वर्ग के सभी प्राणियों में समान होता है। यह समानता जन्मजात होती है, अनुभव से इसमें परिवर्तन हो जाते हैं। ब्रुक्स के अनुसार पशुओं के जीवन में ऐसा अवश्य होता है, परन्तु मनुष्य के जीवन में जन्मजात व्यवहारों की यह समानता नहीं देखी जाती। इसके कारण हम यह कह नहीं सकते हैं कि मनुष्य की सहज वृत्तियाँ उसके कार्यों के अभिप्रेरक हैं।

जिस प्रकार सहज वृत्तियों[1] के सिद्धान्त की आलोचना होती है, उसी प्रकार अथवा उससे भी अधिक आलोचना प्रतिवर्त[2] के सिद्धान्त की होती है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक सभी प्राणियों के व्यवहारों का आधार प्रतिवर्त क्रियाओं को ही मानते हैं। जैसा पहले बताया जा चुका है, इनके अनुसार मूल प्रवृत्तियाँ भी शृखलाबद्ध प्रतिवर्त हैं, अर्थात् कोई भी प्राणी जन्म से ही ऐसे सस्कार लेकर आता है, जिससे वह विशेष प्रकार की बाह्य उत्तेजनाओं के उपस्थित होने पर विशेष प्रकार की क्रियाएँ करने लगता

1. Instincts 2. Relesus.

है। ये क्रियाएँ चाहे सरल हों या जटिल। छींकने की क्रिया से लेकर रसोई बनाने की क्रिया के मूल में एक ही तत्त्व काम करता है, यह तत्त्व है विशेष प्रकार की उत्तेजना की स्थिति में विशेष प्रकार की क्रिया का उत्पन्न होना, क्योंकि इसकी प्रवृत्ति जन्म से ही प्राणी लेकर आता है। जिस प्रकार निम्न-कोटि के प्राणियों का जीवन अकेले या शृंखलाबद्ध प्रतिवर्तों का बना हुआ है, उसी प्रकार मानव व्यवहार भी सादे या छोटे अथवा जटिल शृंखला-बद्ध प्रतिवर्तों का बना हुआ है। यही प्रतिवर्त मानव-व्यवहार के मूल कारण हैं। मनुष्यों की छींकने की क्रिया से लेकर गणित के प्रश्न हल करने की क्रिया तक को प्रतिवर्त क्रियाओं के सिद्धान्त के आधार पर व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक समझाने की चेष्टा करते हैं। सभी मानव कार्य के अभिप्रेरक व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार जन्मजात प्रतिवर्त और उनके परिवर्तित रूप के अतिरिक्त और कोई तत्त्व नहीं हैं।

इस सिद्धान्त को जब हम तार्किक दृष्टि से देखते हैं तो यह बहुत ही थोथा दिखाई पड़ता है। संसार के अधिक मनोवैज्ञानिकों के कथनानुसार शृंखलाबद्ध प्रतिवर्त मानव व्यवहार को नहीं समझा सकते। मनुष्य की कुछ सीधी-सादी क्रियाएँ अवश्य होती हैं, जो उसके प्रतिवर्तों द्वारा ही सञ्चालित होती हैं। विचार द्वारा नियोजित क्रियाओं को हम न तो प्रतिवर्त क्रियाओं की कोटि में, न सहजवृत्यात्मक क्रियाओं की कोटि में रख सकते हैं।

ऊपर हमने मूल प्रवृत्ति अथवा प्रतिवर्तों को मानव कार्यों के अभिप्रेरक माननेवाले मतों की आलोचना की है। परन्तु अभी यह सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं है कि मनुष्य की सहज वृत्तियाँ उसके जन्मजात कार्यों की अभिप्रेरक नहीं हैं। इसी तरह प्रतिवर्त को मानव कार्यों का अभिप्रेरक माननेवालों को सर्वथा निकम्मा नहीं कहा जा सकता। मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनेक नयी नयी खोजें हो रही हैं, इन खोजों के परिणाम-स्वरूप बहुत से पुराने मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों को हटाकर मानव व्यवहार को समझने के लिए नये सिद्धान्त प्रस्तुत किये जा रहे हैं। हमें यहाँ इन दोनों प्रकार के सिद्धान्तों की चर्चा कर देना इसलिए आवश्यक है, जिससे पाठकगण किसी विशेष सिद्धान्त को बिना विचारे ही न मान लें, वरन् उसके विषय में चिन्तन करके स्वयं योग्य निष्कर्ष पर पहुँचने की चेष्टा करें। देखा गया है कि इङ्गलैंड के आधे मनोवैज्ञानिक सहज वृत्तियों (मूलप्रवृत्तियों) के सिद्धान्त को लेकर ही अभिप्रेरकों की चर्चा करते हैं। अमेरिका के मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरकों की चर्चा करते समय सहज वृत्तियों की चर्चा करना आवश्यक नहीं समझते, अथवा वे सहज वृत्तियों के सिद्धान्त को ही निराधार मानते हैं।

अभिप्रेरकों के प्रकार

वर्तमान अमेरिकन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य के कार्यों के निम्नलिखित अभिप्रेरक है—

भूख[1]—भूख एक सबसे सरल प्रकार का जन्मजात प्रेरक है। यह प्रेरक शरीर सम्बन्धी है। प्रत्येक जीवित प्राणी को भूख लगती है। जीवित प्राणी के पेट में जो खाना रहता है, वह शरीर में होनेवाले अनेक प्रकार के द्रव्यों से मिलकर पच जाता है। इससे पेट के भोजन का एक अंश रुधिर, मज्जा आदि पदार्थों में परिवर्त हो जाता है, जिससे शारीरिक शक्ति बनती है और दूसरा भाग मल मूत्र के रूप में बाहर निकल जाता है। मानव शरीर में ये क्रियाएँ उसी प्रकार होती हैं जिस प्रकार किसी रेलगाड़ी के इंजन में। रेलगाड़ी का इंजन भूख का अनुभव स्वयं नहीं करता। इंजन के पेट में रहनेवाले पदार्थ की कमी को इंजन चलानेवाला देखता है और वह उस कमी की पूर्ति करता है। मानवशरीर रूपी इंजन के पेट की कमी का अनुभव स्वयं वह व्यक्ति ही करता है। भूख का अनुभव निम्नकोटि के प्राणियों को भी उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार हमें होता है। जैसे हम भूख लगने पर बेचैन हो जाते हैं, उसी प्रकार अन्य प्राणी भी भूख लगने पर बेचैन हो जाते हैं। वे फिर भोजन खोजने के लिए कई प्रकार की चेष्टाएँ करते हैं। भोजन के मिल जाने पर और खाद्य पदार्थों के खा लेने पर यह चेष्टा बन्द हो जाती है।

जानवरों की भूख के विषय में मनोवैज्ञानिकों ने कुछ प्रयोग किये हैं। एक चूहे को एक ऐसे पिंजड़े में रख दिया जाता है, जिसकी बगल में उसी प्रकार का दूसरा पिंजरा रहता है और जिसमें पहले से जाने के लिए मार्ग रहता है। पहला पिंजरा खाली रहता है और दूसरे में चूहे के लिए कुछ भोजन रख दिया जाता है। चूहा प्रारम्भ से ही उस मार्ग को खोजने की चेष्टा में नहीं लग जाता, जो उसे भोजनवाले पिंजरे में ले जाय। कुछ समय तक वह दूसरे प्रकार की चेष्टाएँ करता रहता है। फिर कुछ देर के बाद वह पहले से दूसरे पिंजरे में जाने के लिए मार्ग खोजता है और उसमें घुस जाता है। जब चूहा दूसरे पिंजरे में रखा भोजन खा लेता है और फिर पहले पिंजरे में वापस आ जाता है, तो कुछ समय तक वह चंचल रहता है परन्तु बाद को उसकी चंचलता समाप्त हो जाती है। इस प्रयोग से यह स्पष्ट

1 Hunger

होता है कि चूहे की चचलता का कारण भूख थी। भूख के पैदा होने से चचलता शुरू हुई और उसके शान्त होने पर चचलता भी समाप्त हो गयी।

भूख के लगने पर सभी प्राणियों में चचलता उत्पन्न होती है। मनुष्य भूख की प्रेरणा का स्वय अनुभव करता है। वह कह सकता है कि मुझे भूख लगी है। जब बालक माँ से दूध माँगता है, तो यह अनुमान किया जाता है कि बालक को भूख लगी है। अतएव भूख के विषय में बालक अथवा प्रौढ लोगों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भली भाँति हो सकता है। चूहे की भूख के विषय में इस प्रकार का मनोवैज्ञानिक अध्ययन सभव नहीं। अतएव यहाँ हम इतना ही कहते हैं कि चूहे के शरीर में चलनेवाली क्रियाओं के परिणामस्वरूप चूहा चचल हो जाता है और इस चचलता का विशेष कारण उसी प्रकार का है, जैसा भूखे रहने पर हमारी चचलता का होता है, अर्थात् हम चूहे की भूख का अनुमान उसकी बाह्य क्रियाओं से लगाते हैं।

भूख लगने पर शरीर के भीतर क्या होता है, इस विषय में मनोवैज्ञानिक प्रयोग किए गये हैं। प्रयोज्य[1] (व्यक्ति विशेष) के पेट में रबर का एक छोटा गुब्बारा पहुँचा दिया जाता है। उस गुब्बारे में एक रबर की नली लगी रहती है। पेट में पहुँचने पर गुब्बारा फुला दिया जाता है। यह रबर की नली एक किमोग्राफ[2] से जोड़ दी जाती है। किमोग्राफ एक यन्त्र है, जिसमें बाहर से आये किसी प्रकार के स्पन्दन का निशान एक काले पटरे पर सफेद लकीरों से बनता जाता है। इससे यह पता चल सकता है कि मनुष्य के पेट के भीतर किस प्रकार की गति हो रही है। इस प्रयोग में प्रयोज्य को निर्देश भा दिया जाता है कि जब भी उसे भूख के वेग का अनुभव हो, वह एक सकेत के बटन को दबायेगा। इस प्रयोग में देखा गया कि प्रयोज्य को जब-जब भूख के वेग का अनुभव होता था, तब-तब उसके पेट की पेशियो में सिकुड़न भी होती थी। इस प्रकार के वेग के अनुभव की लकीरें भी किमोग्राफ पर उभर जाती थीं। इन दो प्रकार की लकीरों से यह निश्चित हुआ कि भूख के वेग का अनुभव और पेट की पेशियों की सिकुड़न सदा सहगामी रहती हैं।

भूख की अवस्था में प्राणी के रुधिर में विशेष प्रकार के परिवर्तन हो जाते हैं। ये रुधिर के परिवर्तन ही भूख के वेग और पेट की सिकुड़न को पैदा करते हैं। इसको सिद्ध करने के लिए प्रयोज्य के शरीर में इन्स्युलिन

---

1. Subject. 2 Kymograph. (ध्वनि प्रवाहक यंत्र)

के इंजेक्शन द्वारा चीनी में कमी कर दी जाती है। इससे पेट में सिकुड़न पैदा होती है और भूख का अनुभव होता है। इस प्रकार के अनुभव के बाद जब प्रयोज्य के शरीर में ग्लूकोज पहुँचाया जाता है तो पेट की सिकुड़न और भूख का वेग समाप्त हो जाता है। यदि एक भूखे कुत्ते के शरीर से कुछ रक्त लेकर उसे सामान्य कुत्ते क रक्त मे इंजेक्शन के द्वारा डाल दिया जाय तो यह सामान्य कुत्ते का पेट उसी प्रकार से सिकुड़ने लगता है, जिस प्रकार भूख की अवस्था म कुत्ते का पेट सिकुड़ता है। जब पेट भरे कुत्ते का रक्त इस कुत्ते क रक्त में डाल दिया जाता है तो इसके पेट की सिकुड़न बन्द हो जाती है।

उपर्युक्त प्रयोगों से भूख का चीनी की कमीसे स्पष्ट सम्बन्ध दिखाई देता है। मनुष्येतर प्राणियों में तो यह सर्वथा सही पाया गया है, परन्तु मनुष्य में भूख की अवस्था में चीनी की कमी होना और चीनी के बढ़ने पर भूख का चला जाना अनिवार्य रूप से सही नहीं है।

शरीर की आवश्यकताएँ अनेक प्रकार की होती हैं। इसमें कभी प्रोटीन की कमी, कभी चर्बी की, कभी कार्बोहाइड्रेट की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त शरीर के लिए विभिन्न प्रकार की धातुओं और विटामिन की आवश्यकता होती है। जब शरीर में किसी विशेष प्रकार के पदार्थ की कमी होती है, तब मनुष्य को ऐसे ही पदार्थों के लिये भूख लगती है, जिनमें वाञ्छित तत्त्व अधिक मात्रा में होते हैं। अफ्रीका के आदिवासी जब बहुत दिन तक आमिष-भोजन नहीं करते तो उनमें नर भोजी बनने की प्रेरणा उत्पन्न हो जाती है। मधुमेह (डाइबीटीज) के रोगियों को चीनी खाने का बेहद इच्छा उत्पन्न हो जाती है। इस इच्छा का कारण उनके रक्त में चीनी की कमी होती है। शरीर में कुछ गड़बड़ी होने के कारण रोगी जितनी चीनी खाते हैं उसका सदुपयोग नहीं होता, और इससे अधिक चीनी खाने पर भी रक्त में चीनी की कमी रह जाती है। यही चीनी की कमी चीनी की भूख पैदा करती है। गर्भवाले चूहे[1] प्रायः सामान्य चूहों की अपेक्षा तिगुना नमक खाते हैं। यदि उन्हें खाने की स्वतन्त्रता दी जाय तो वे ऐसे पदार्थों को चुनते हैं जिनमें नमक ज्यादा होता है।

उपर्युक्त प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य के शरीर में जिस तत्त्व की कमी रहती है, उसी प्रकार के पदार्थों की भूख लगती है। इन पदार्थों की खोज प्राणी अनेक प्रकार की चेष्टाओं के द्वारा करता है। ये चेष्टाएँ भीतरी प्रेरणा के कारण सहज ही होती रहती हैं। जब प्राणी को

1. Pregnant Rats.

अपेक्षित भोजन मिल जाता है, तो उसका स्नायविक खिचाव कम हो जाता है और इससे उसे सन्तोष हो जाता है। कई बार यत्न करने के बाद जब प्राणी जान लेता है कि किस चीज को खाने से उसे अधिक सन्तोष मिलता है तब वह अपने खाद्य पदार्थ को आसानी से चुन लेता है। भोजन के चुनाव का एक दूसरा आधार मनुष्य की स्वाद-सवेदना भी है। शरीर की आवश्यकताएँ मनुष्य के स्वाद अथवा गन्ध को भी प्रभावित कर देती हैं। इसके कारण जिस प्रकार का खाद्य पदाथ हमारे शरीर की आवश्यकता की पूर्ति के लिए चाहिये, वह हमे अच्छा लगने लगता है।

मनुष्यों की भूख का आधार केवल शारीरिक आवश्यकता ही नहीं होती। भोजन को देखकर, उसकी सुगन्ध को लेकर अथवा उसके स्वाद क अनुभव से ही, शारीरिक आवश्यकता न रहने पर भी हमें भूख लग आती है। अपने मित्रों का खाना खाते हुए देखकर भी हममें भूख पैदा हो जाती है। इस प्रकार मनुष्य के सामाजिक भाव भी मनुष्य की भूख को बढ़ा देते हैं। फिर भूख खाने के समय और खाने की जगह से भी प्रभावित होती है। अपने मित्रों के साथ खाने से आदमी जितना खा सकता है उतना अकेला नहीं खा सकता। यह बात न केवल मनुष्यों की भूख के विषय में सही है वरन् दूसरे प्राणियों की भूख के विषय में भी सही पायी गयी है। दूसरे प्राणी जितना साथ में रहकर खा सकते हैं, उतना वे अकेले रहकर नहीं खा सकते। सामाजिक प्रथाएँ और व्यक्तिगत आदतें भी भूख को प्रभावित करती हैं। जो व्यक्ति जीवन भर निरामिष भोजी रहा है, यदि उसे प्रबल भूख लगने पर आमिष भोजन दिया जाय तो उस भोजन को देखकर, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, उसकी भूख ही भाग जाती है। इस प्रकार भूख का भागना उसकी आदत का परिणाम है। जो व्यक्ति प्रतिदिन दोपहर को भोजन करता है, उसे दोपहर होते-होते भूख लगने लगती है, चाहे उसे खाने की आवश्यकता हो या नहीं।

यौन-प्रेरक (कामप्रेरक)[1]—जिस प्रकार मनुष्य की सामान्य भूख उसके शरीर में होनेवाली क्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है, उसी प्रकार उसकी यौन प्रेरणाएँ भी उसके शरीर में होनेवाली विशेष प्रकार की क्रियाओं का परिणाम है और जैसे भोजन की चाह मनुष्य को अनेक प्रकार की क्रियाएँ करने के लिए प्रेरणा देती है, उसी प्रकार यौन-चाह भी जीवधारी को अनेक प्रकार की क्रियाओं के लिए उत्तेजित करती हैं। आधुनिक काल के मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे अनेक प्रयोग किये हैं, जिनसे इस चाह का

1 Sex.

शारीरिक क्रियाओं से निकट सम्बन्ध स्थापित होता है। कुछ चूहों को एक पिंजरे में बन्द करके देखा गया है कि जब उनके शरीर में ऐसे द्रव्यों का स्राव होने लगता है, जो यौन से सम्बन्ध रखते हैं तो उनकी चंचलता बहुत अधिक बढ़ जाती है। प्रयोगों में देखा गया है कि यह चंचलता नर चूहों की अपेक्षा मादा चूहों में बहुत अधिक होती है। जब मादा के शरीर से बीज-कोष[1] हटा दिया जाता है तो उसकी चंचलता बहुत कम हो जाती है। जब बीज कोष हटाई हुई मादा के शरीर में पुनः दूसरे बीज कोष का उपरोपित कर दिया जाता है, तो मादा चूहे में चंचलता फिर से बढ़ जाती है। यह चंचलता बीज-कोष हटाये हुए मादा चूहे में बीज कोष के स्राव के इंजेक्शन से भी उत्पन्न की जा सकती है।

जिस प्रकार मादा चूहे में यौन रसों के स्राव से विशेष प्रकार की चंचलता बढ़ जाती है, उसी प्रकार नर चूहे में भी जननग्रन्थि[2] द्वारा उत्पादित रस-स्राव से विशेष प्रकार की चंचलता आती है। जब नर चूहे के शरीर से अण्डकोष को हटा दिया जाता है, तो उसमें यौन सम्बन्धी क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं। टेस्टोस्टेरोन[3] का इंजेक्शन जब ऐसे बधिया किये हुए चूहे के शरीर में दे दिया जाता है, तो उसमें यौन लक्षण पुन दिखाई देने लगते हैं। यदि नर चूहे के अण्डकोष को हटाकर मादा के बीजकोष को उसके स्थान पर उपरोपित कर दिया जाय तो नर चूहा मादा की चेष्टाओं को अपनी क्रियाओं में व्यक्त करने लगता है, अर्थात् इन शारीरिक परिवर्तनों से चूहे में यौन सम्बन्धित मानसिक परिवर्तन भी हो जाते हैं।

ऊपर जो बात चूहों की यौनिक प्रेरणाओं के विषय में कही गयी है वह मनुष्य की यौन प्रेरणा के विषय में भी सही है। मनुष्य की यौन की भूख की प्रबलता उसके शारीरिक विकास के साथ साथ बढ़ती है। इसकी वृद्धि किशोरावस्था के प्रारम्भ से होती है। युवावस्था में यह प्रबल हो जाती है। ढलती हुई उमर में इसकी कमी हो जाती है। यौन-रसों का स्राव सबसे अधिक युवावस्था में ही होता है। जैसे जैसे इन रसों की कमी अथवा अधिकता होती जाती है, वैसे-वैसे यौन प्रेरणाएँ (कामुकता) भी प्रबल अथवा कम होती जाती हैं। बुढ़ापे के आने पर सभी लोगों में यौन-इच्छा कम हो जाती है। ऐसी अवस्था में कुछ लोग अपनी जननग्रन्थि का आपरेशन कराके जवान बन्दर की जननग्रन्थि को उसके स्थान पर लगवा लेते हैं, इससे उनकी यौन प्रेरणा प्रबल हो जाती है। पिछली लड़ाई के पूर्व भारतवर्ष से बहुत से बन्दर पकड़कर विलायत भेजे जाते थे। इनके विषय में जन

1. Ovary. 2 Gonad 3 Testosteron

साधारण की धारणा थी कि इनका उपयोग अन्य लाभों के अतिरिक्त उनकी जननग्रन्थि निकालकर मनुष्यों के शरीर में उन्हें उपरोपित करने के लिए भी किया जाता था। किशोरावस्था के पूर्व जब किसी व्यक्ति के अण्डकोष को हटा दिया जाता है, तो उसमें उस यौन-प्रेरणा का उदय नहीं होता जो सामान्य पुरुषों में देखी जाती है। इसी प्रकार लड़की के शरीर से बीज-कोष हटा देने से वह यौन विहीन[1] हो जाती है।

यौन-प्रेरणाओं की प्रबलता भिन्न भिन्न व्यक्तियों में भिन्न भिन्न मात्रा में होती है। यह प्रबलता उनके शरीर के यौन-स्रावों की कमी अथवा अधिकता पर निर्भर करती है। जिन लोगों में यौन स्राव बहुत कम होते हैं, वे अपने जीवन में यौन विहीन व्यक्तियों जैसा व्यवहार करते हैं। पुरुषों में नपुंसकता[2] और स्त्रियों में स्नेहाभाव[3] यौन द्रव्यों के स्राव की कमी के कारण होते हैं। कुछ व्यक्तियों में यह स्राव अत्यधिक हो जाता है, ऐसी अवस्था में व्यक्तियों को असाधारण कामोत्तेजनाएँ (यौन उत्तेजनाएँ) होती हैं। ये रोग का रूप ले लेती हैं।

मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों की यौनिक भूख के विषय में एक बात ध्यान में रखने योग्य है। मनुष्य की यौनिक भूख और उसकी यौन क्रियाओं पर उसकी यौन विषयक कल्पनाओं, धारणाओं और आदतों का बड़ा ही महत्त्व का प्रभाव पड़ता है। बहुत से नर-नारियों में यौनविहीनता के लक्षण इसलिए दिखाई देते हैं कि उनके मन में यौन के विषय में प्रबल घृणा के भाव उत्पन्न हो गये हैं अथवा उन्हें बहुत काल तक यौन-विहीन व्यक्तियों जैसा आचरण करने का अभ्यास कराया गया है। इससे यौन भूख का दमन होता है जिसके परिणामस्वरूप पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति भी अपने व्यवहार में नपुंसकता अथवा स्नेहाभाव प्रदर्शित करते हैं।

मनुष्य की यौन-प्रेरणा उसके वातावरण के संस्कारों से अत्यधिक प्रभावित होती है। बचपन से ही जिस व्यक्ति का जिस विधि से यौन भूख-तृप्ति का अभ्यास हो जाता है, वह उसी प्रकार से अपनी प्रौढ़ अवस्था में भी इस भूख की तृप्ति में आनन्द की अनुभूति करता है। साधारणतः सभ्य घरों में लड़के-लड़कियों पर आपस में मिलने के लिए, कड़े प्रतिबन्ध होते हैं। स्कूलों के छात्रावासों में समलिंगी बालक ही एक साथ रहते हैं। ऐसी अवस्था में उनकी यौन-प्रवृत्तियाँ भी विशेष प्रकार से मुड़ जाती हैं, उनमें विषम लिङ्गी यौन प्रेरणा निर्बल हो जाती है और समलिङ्गी प्रेरणाएँ प्रबल हो जाती हैं। सैनिक विद्यालयों में जितने समलिंगी यौनिक व्यवहार

1. Nentralsex. 2. Impotency. 3. Frigidity.

होते हैं, उतने सामान्य विद्यालयों में नहीं होते। स्पार्टा के युवक एक ओर अपनी बहादुरी के लिए प्रसिद्ध थे और दूसरी ओर उनमें समलिङ्गी यौनिक विकार उस समय के सभी सभ्य देशों से अधिक पाये जाते थे। यूनान में सब जगह स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखा जाता था। पुरुष का सबसे अच्छा मित्र पुरुष ही समझा जाता था। इस प्रकार के अभ्यास के परिणामस्वरूप यूनान में समलिंगी यौन व्यवहार सर्वत्र व्यापक था। यह यहाँ तक था कि आज भी समलिंगी प्रेम को यूनानी प्रेम (ग्रीक लव) कहा जाता है। एक अमेरिकन लेखक ने इन सब बातों को अपनी 'लव इन दी मशीन एज' नामक पुस्तक में बताते हुए जनता को लड़के और लड़कियों को बचपन से ही अलग रखने के दुष्परिणामों के प्रति सचेत किया है। उसने बताया है कि यदि लड़के-लड़कियों की सह शिक्षा हो तो उनमें ऐसी यौनिक विकृति न हो, जैसी इसके अभाव में होती हैं। अर्थात् लड़के-लड़कियों को अलग-अलग विद्यालयों में न पढ़ाकर एक ही जगह पढ़ाना यौनिक विकृतियों को कम करने के लिए और उचित यौनिक विकास की दृष्टि से अच्छा है।

प्यास की अनुभूति[1]—जिस प्रकार शरीर में भोजन की कमी से प्राणी को भूख का अनुभव होता है, उसी प्रकार शरीर में पानी की कमी से प्यास का अनुभव होता है। इस अनुभूति के कारण प्राणी पानी खोजता है। भूख और यौनिक चाह जिस तरह प्राणी को चंचल कर देती है, उसी प्रकार पानी की चाह उसे चंचल बना देती है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगकर्ताओं ने चूहों को प्यासा बनाकर देखा है कि प्यास की अवस्था में वे अत्यधिक क्रियाशील हो जाते हैं और जब उन्हें पानी मिल जाता है, तो उनकी चंचलता कम हो जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि प्यास भी प्राणी को उसी प्रकार क्रियाशील बनाती है जिस प्रकार उनकी भूख और यौन प्रेरणाएँ उसे क्रियाशील बनाती है।

प्यास का अनुभव प्राणी के मुँह और गले के सूखने से होता है। जब किसी प्राणी को कई घंटों तक पानी नहीं दिया जाता, तो उसका मुँह और गला सूख जाता है। इसी कारण प्राणी पानी की खोज करता है और फिर वह इतना पानी पी लेता है जिससे उसकी प्यास पूरी बुझ जाय।

यदि किसी प्राणी के पेट में नली के द्वारा सीधे पानी पहुँचा दिया जाय और उस पानी से उसका मुँह और गला न भीगे, तो पानी के पेट में पहुँचने पर भी प्यास एकाएक नहीं जाती। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति के मुँह और गले को पानी से भिगा दिया जाय और पेट में पानी न जाने

1. Thirst.

दिया जाय, तो कुछ समय के लिए प्यास बुझ जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि मुँह और गले का प्यास से विशेष सम्बन्ध है। परन्तु इन प्रयोगों से यह नहीं कहा जा सकता कि प्राणी की प्यास की अनुभूति का आधार मुँह और गले का सूखापन ही है। यह जानने के लिए कि पेट में पानी की कमी का सम्बन्ध प्राणी से कहाँ तक है, मनोवैज्ञानिकों ने कुछ कुत्तों को भिन्न भिन्न हद तक प्यासा रखा। जब इन्हें पानी दिखाया गया तो उन्होंने पानी उतना ही पिया, जितने पानी की पेट में आवश्यकता थी। यदि मुँह और गले का सूखापन ही प्यास की अनुभूति का कारण होता तो कुत्ता ठीक उतना ही पानी कभी न पीता, जितने की उसके पेट में आवश्यकता है। जब वह पानी का पहला ही घूँट लेता, तभी उसकी प्यास शान्त हो जाती और फिर उसे अधिक पानी पीने की इच्छा ही न होती।

अन्य शारीरिक प्रेरक—भूख, प्यास और यौन-चाह को ही मनोवैज्ञानिकों ने मुख्य शारीरिक प्रेरक कहा है। इनके अतिरिक्त जीवधारी की मल मूत्र त्याग की प्रेरणा, चोट से बचने की प्रेरणा और आराम की चाह का भी आधार मनुष्य की शारीरिक आवश्यकताएँ हैं। इनमें से कुछ आवश्यकताएँ अपने आप पूरी हो जाती हैं और कुछ के लिए व्यक्ति को प्रयत्न करना पड़ता है। जिन बातों के लिए किसी व्यक्ति को यत्न करना पड़ता है, उनमें अभिप्रेरकों का स्थान स्पष्ट दिखाई देता है।

शारीरिक प्रेरकों की प्रबलता—ऊपर हमने मनुष्य के अनेक प्रकार के शारीरिक प्रेरकों की चर्चा की है। अब प्रश्न यह है कि इन प्रेरकों में सबसे अधिक प्रबल प्रेरक कौन है? इसके उत्तर में अधिक मनोवैज्ञानिक यही कहते हैं कि भूख ही सबसे प्रबल प्रेरक है। परन्तु यदि मानसोपचारिकों से यह प्रश्न पूछा जाय तो वे बतायेंगे कि सबसे प्रबल प्रेरक यौन-इच्छा है। भूख और यौन इच्छा में कौन अधिक बली है, इसे जानने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने चूहों पर प्रयोग किये हैं। कुछ नर चूहों का भोजन और यौन क्रियाओं से चौबीस घंटे के लिए वंचित कर दिया गया। इसके बाद दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन चूहों को मौका दिया गया। इस प्रयोग में देखा गया कि सत्तर प्रतिशत चूहे खाने की क्रिया में ही प्रवृत्त हुए, अर्थात् यौन इच्छा को तृप्त करने के बदले भूख को तृप्त करने की इच्छा अधिक प्रबल देखी गयी। इस प्रयोग में एक कमी यह है कि भूख की अवस्था में यौन-इच्छा कम हो जाती है। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि प्राणी की यौन-इच्छा सभी स्थिति में भूख से कम प्रबल होती है। एक दूसरे प्रयोग से यह निश्चित हुआ है कि सबसे प्रबल

प्रेरक प्यास होती है, दूसरी भूख और तीसरी यौन इच्छा। यौन इच्छा की प्रबलता कभी-कभी इसलिए बढ़ जाती है कि हमारे सभ्य जीवन में इसका अत्यधिक दमन होता है। यदि भूख का भी उतना ही दमन हो जितना कि यौन इच्छा का होता है, और यौन इच्छा को उतनी ही स्वतन्त्रता मिले जितनी भूख की तृप्ति को मिलती है, तो सम्भवत स्थिति दूसरी ही हो जाय।

मन-सम्बन्धी अभिप्रेरक

हमने ऊपर बताया है कि मनुष्य के अभिप्रेरक दो प्रकार के होते हैं—एक शरीर सम्बन्धी और दूसरे मन सम्बन्धी। मन सम्बन्धी अभिप्रेरक भी दो प्रकार के होते हैं—एक व्यक्तिगत और दूसरे सामाजिक। इन अभिप्रेरकों का आधार प्राय मनुष्य की सहजवृत्तियाँ (मूलप्रवृत्तियाँ) और उनके परिवर्तित रूप, जैसे आदत, स्थायीभाव आदि होते हैं। जिन मनोवैज्ञानिकों का विश्वास सहज-वृत्तियों के अस्तित्व में नहीं है, वे मनुष्य के मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरकों की चर्चा सहज वृत्तियों से स्वतन्त्र रखकर ही करते हैं। यहाँ हमें यह जानना आवश्यक नहीं है कि इन मन सम्बन्धी अभिप्रेरकों की जड कौन सी शक्ति अथवा शक्तियाँ में है। हमारे सामान्य मनोवैज्ञानिक चिन्तन के लिए इतना पर्याप्त है कि हम भिन्न भिन्न अभिप्रेरकों को जानें और वे मानव जीवन में किस प्रकार काम करते रहते हैं, इसे समझें।

सामाजिक अभिप्रेरकों में निम्नलिखित प्रधान हैं—समाज वृत्ति (यूथ चारिता) स्वाग्रहता, और युद्ध प्रवृत्ति (युयुत्सा)। व्यक्तिगत अभिप्रेरकों में मनुष्य की रुचियाँ, उसकी आदतें, जीवन के लक्ष्य तथा आदर्श प्रमुख हैं। पशुओं के व्यवहारों में जितनी प्रधानता जन्मजात अभिप्रेरकों की देखी जाती है, उतना अर्जित अभिप्रेरकों की नहीं देखी जाती। पशु-पक्षियों के व्यवहारों में हम सामाजिक अभिप्रेरकों के कार्यों को देखते हैं। परन्तु ये कार्य उस प्रकार के नहीं होते, जिस प्रकार के मनुष्यों के कार्य होते हैं। सामाजिक अभिप्रेरक विशेष प्रकार की शक्ति के रूप में उसके व्यवहार के प्रेरक बनते हैं। ये व्यवहार भिन्न भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। इसी के आधार पर यह कहा जाता है कि मनुष्य के व्यक्तित्व में सहज वृत्तियाँ हैं ही नहीं, उसके सभी काम आदतों से अथवा सीखने के द्वारा विशेष प्रकार के होते हैं।

सामाजिक अभिप्रेरक—सामाजिक अभिप्रेरकों के विषय में मनोवैज्ञानिकों के सामने पहला प्रश्न यही आता है कि वे अभिप्रेरक शरीरसम्बन्धी

अभिप्रेरकों के समान ही जन्मजात हैं, अथवा अर्जित हैं। सहजवृत्तियों (मूल-प्रवृत्तियों) के सिद्धान्त में विश्वास करनेवाले मनोवैज्ञानिक सामाजिक अभिप्रेरकों को जन्मजात ही मानते हैं। जो मनोवैज्ञानिक मूलप्रवृत्तियों के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते; अर्थात् जो सोचते हैं कि मनुष्य के सभी प्रकार के जटिल व्यवहार उसे सीखने से ही आते हैं, वे सामाजिक अभिप्रेरकों को सीखने का परिणाम मानते हैं। मैकडूगल महाशय के अनुसार यूथचारिता (सामूहिकता), स्वाग्रह, युद्धप्रवृत्ति आदि जन्मजात मूलप्रवृत्तियाँ हैं। मन, बुक्स, ब्रिजेज इत्यादि मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ये वातावरण के सम्पर्क से उत्पन्न हुए हैं। मन महोदय का कथन है कि मनुष्य की जन्मजात शरीर-सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ ही उक्त सामाजिक अभिप्रेरकों के आधार बनती हैं। इसी सिद्धान्त को उन्होंने भिन्न भिन्न प्रकार के अभिप्रेरकों का वर्णन करते हुए सिद्ध किया है। आधुनिक काल के प्रायः सभी प्रयोगवादी मनोवैज्ञानिकों ने मूलप्रवृत्तियों के जन्मजात होने के सिद्धान्त को छोड़ दिया है।

यूथचारिता[1]—यूथचारिता (सामाजिकता) पक्षियों से लेकर सभी उच्च वर्ग के प्राणियों में पायी जाती है। चिड़ियों तथा बन्दरों में इसकी उपस्थिति प्रत्यक्षतः देखी जाती है। यदि हम किसी चिड़िया को पकड़ लें और फिर वह हमसे छूट जाय तो वह तेजी से उड़कर अपने समूह में चली जाती है। यदि किसी कौए को चोट लग जाय और उसके कारण वह नीचे गिर पड़े, तो आस पास के सभी कौए उसकी सहायता के लिए काँव-काँव करते हुए दौड़ पड़ते हैं। कौओं का काँव काँव जहाँ तक सुनाई पड़ता है, वहाँ तक के सभी कौए एक जगह पर आ जाते हैं। बन्दरों में भी इस सामाजिक प्रवृत्ति की प्रबलता देखी जाती है। जब किसी बन्दर को उसके संघ से अलग कर दिया जाता है, तो वह बहुत छटपटाता है। कभी-कभी वह अकेले रहने के कारण खाना-पीना भी बन्द कर देता है तथा मर भी जाता है।

जिस प्रकार यूथचारिता की प्रवृत्ति पशु पक्षियों में पायी जाती है, उसी प्रकार वह मनुष्यों में भी व्यापक रूप से पायी जाती है। संसार के कुछ थोड़े से ही लोग ऐसे होते हैं, जो कुछ महीने तक निर्जन स्थान में जीवन व्यतीत कर ले सकते हैं। कुछ योगी-यती लोग अकेले छूट जाने पर अपनी प्रसन्नता भले ही न खोएँ, पर संसार के सामान्य मनुष्य के लिए तो समाज से अलगाव अत्यन्त दुखद होता है। अपने समाज से बहिष्कृत होने पर बहुत से लोग इतने कष्ट का अनुभव करते हैं कि वे समय के पूर्व ही मर जाते

1. Gregariousness.

हैं। किसी प्रकार के बड़े अपराध के लिए जो कठिन दण्ड दिया जाता है, वह अपराधी को किसी कमरे में अकेले रख देने का होता है। जेल में इस प्रकार का कमरा उसे इसलिए दिया जाता है कि अपराधी इसमें पहुँचने पर जीने के बदले मरना ही अधिक पसन्द करे। यदि उसे कई दिनों तक इसमें रहना पड़े तो वह प्राय विक्षिप्त हो जाता है।

समाज में रहने की अभिप्रेरणा मनुष्य म कहाँ से आयी? यदि इसे जन्मजात मान लिया जाय तो इसके विषय में अधिक खोज करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। परन्तु जो इस प्रवृत्ति को जन्मजात नहीं मानते, उन्हें प्रयोगों के द्वारा सिद्ध करना पड़ता है कि यह वातावरण व सम्पर्क से उत्पन्न होता है। यह प्रयोग मनुष्यों पर होना तो सम्भव ही नहीं है। यदि हम इस बात को सिद्ध करना चाहते हैं कि मानव में सामाजिकता जन्मजात है, तो हमें किसी बच्चे को जन्म से ही ऐसे स्थान पर रखना होगा जहाँ किसी दूसरे मानव का दृश्य हो न दिखाई दे, वरन् उसकी बोली भी न सुनाई पड़े। साल-दो साल तक इस प्रकार रखकर फिर उसे दूसरे बच्चों के सामने लाया जाय और तब देखा जाय कि वह उनके साथ कैसा व्यवहार करता है, अर्थात् वह उनके साथ रहना चाहता है या भाग जाना चाहता है। यह प्रयोग इसलिए सम्भव नहीं है कि नवजात शिशु को थोड़े समय बिना उसके रक्षक के छोड़ दिया जाय, तो वह मर ही जायेगा। ऐसे प्रयोग मुर्गी के बच्चों और चूजों के ऊपर किये गये हैं। कुछ चूजों को अण्डे से निकलते ही चार दिन तक अकेले रखा गया। चार दिन के बाद उन्हें दूसरे चूजों और चुहियों के सामने लाया गया और यह जानने की चेष्टा की गई कि वे चुहियों के साथ रहना पसन्द करते है अथवा चूजों के। इस प्रयोग में देखा गया कि वे चूजे प्राय बराबर ही समय दोनों को देते हैं। इसके प्रतिकूल जिन चूजों को जन्म से दूसरे चूजों के साथ रखा गया वे प्राय: अपना सभी समय दूसरे चूजों के साथ ही व्यतीत करते थे। इस प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि चूजों में दूसरे चूजों के साथ रहने की प्रवृत्ति जन्म से ही नहीं आती, वरन् यह अर्जित प्रवृत्ति है। सम्भव है कि यदि मनुष्य के बच्चे को साल दो साल सर्वथा अकेले में ही पाला जाय, तो वह भी सामाजिकता की वैसी ही कमी दिखाये, जैसा कि उन चूजों ने दिखायी। कुछ इसी प्रकार का प्रयोग नेपोलियन ने मनुष्य के प्राकृतिक धर्म जानने की इच्छा से किया था। बीस बच्चों को जन्म से ही इस प्रकार रखा गया कि उन्हें खाना पीना तो दिया जाय, परन्तु उनसे कोई बोले नहीं। इस प्रयोग के परिणामस्वरूप इन बच्चों का स्वाभाविक

मानसिक विकास ही रुक गया। उनमें से कुछ गूँगे ही हो गये। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य में मानव-समाज में रहने की चाह और दूसरों के समान ही व्यवहार करने की इच्छा वातावरण के सम्पर्क से ही आती है। बेलजियम के मनोवैज्ञानिक इटार्ड ने एवरन के जंगलों में एक नौ वर्ष का ऐसा बालक पाया, जिसे मादा भेड़िया एक वर्ष की अवस्था में उठा ले गया था और उसे अपना ही दूध पिलाकर पाला था। नौ वर्ष की अवस्था में यह चीं चीं की आवाज ही करता था और हाथ पैर के सहारे अन्य जानवरों के समान चलता था। जब उसे पीछे मानव-भाषा सिखाने की चेष्टा की गयी तो उसे सफलता बहुत कम मिली। वह प्रारम्भ में मनुष्यों को देखकर उसी प्रकार डरता था, जिस प्रकार जंगली जानवर डरा करते हैं। इस प्रयोग से भी यह स्पष्ट है कि जन्म से ही मनुष्य में मानव के प्रति आकर्षण का भाव नहीं रहता, वरन् यह मानव समाज से उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न किया जाता है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य में न केवल सामाजिकता की अभिवृद्धि ही होती है वरन् उत्पत्ति भी होती है। प्रारम्भ में प्रत्येक बालक अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही किसी प्रकार की क्रियाओं में प्रेरित होता है। जब उसे भूख लगती है तो वह माँ की छाती से चिपक जाता है तथा माँ के स्तन से उसकी भूख की तृप्ति होती है। भूख की तृप्ति के कारण उसे जो सन्तोष मिलता है, उससे उसे माँ से चिपके रहना, उसकी गोदी में बैठना अथवा उसे देखना अच्छा लगने लगता है। माँ का यही प्रेम आगे प्रसारित होकर दूसरे मानव के प्रेम में परिणत हो जाता है और इस प्रकार बालक में सामाजिक भावों की वृद्धि होती है जो कि उसकी सामाजिकता को जन्म देती है।

डा० फ्रायड के अनुसार मनुष्य में सामाजिकता उसकी यौन भूख से उत्पन्न होती है। जब बच्चा माँ के स्तन से दूध पीता है, तब न केवल उसकी खाने की भूख की तृप्ति होती है, वरन् उसे माँ की छाती से चिपकने का यौन-सन्तोष भी मिलता है। यह यौन सन्तोष ही प्रसरित अथवा विकसित होकर माँ के समान ही दूसरे लोगों के प्रेम का रूप ले लेता है और इसी के कारण मनुष्य में सामाजिकता आती है।

सामाजिकता का आधार चाहे जो कुछ हो, इसे चाहे मानव-स्वभाव का जन्मजात गुण माना जाय अथवा अर्जित किन्तु वह मानव के लिए बड़ा ही उपयोगी गुण है। इसके कारण न केवल उसकी व्यक्तिगत रक्षा और उन्नति होती है, वरन् समाज की भी रक्षा और उन्नति होती है। मनुष्य में इस गुण की वृद्धि अभ्यास के कारण होती है और अभ्यास से

इसकी कमी हो जाती है। जो व्यक्ति समाज में जितना ही अधिक रहते हैं और समाज के दूसरे लोगों के सन्तोष का ध्यान रखते हैं अथवा उनके सेवा कार्य में लगे रहते हैं, उनमें सामाजिकता की प्रवृत्ति उतनी ही प्रबल होती है। जिनमें सामाजिकता प्रबल है वे ही दूसरों के हित के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने को तैयार रहते हैं। मनुष्य की नैतिकता और उसके अनेक प्रकार के सद्गुणों का आधार मनुष्य में सामाजिकता के भाव की प्रबलता ही है। यही प्रवृत्ति सहज में ही मनुष्य को कष्ट भोगने के लिए तैयार कर देती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से मनुष्य के भले आचरण अथवा समाज के लिए हितकारी आचरण का आधार उसकी अन्तरचेतना में उपस्थित दैवी आवाज[1] नहीं है वरन् सामाजिकता के भाव की प्रबलता ही है।

स्वाग्रहता[2]—मनुष्य की दूसरी प्रबल सामाजिक अभिप्रेरक स्वाग्रहता है। जिस व्यक्ति में यह प्रवृत्ति प्रबल होती है वह दूसरों के ऊपर अपना प्रभाव अथवा अधिकार जमाने का यत्न करता है। समाज के नेता में इस प्रवृत्ति की प्रबलता रहना नितात आवश्यक है। समाज का नेता वही व्यक्ति बन सकता है, जो समाज के लोगों को अपने प्रभाव में रखे और उनपर अधिकार रख सके। कुछ लोगों के बोलने का, चलने-फिरने और सामान्य कामों का ढग ही ऐसा होता है, जिससे दूसरे लोग प्रभावित होते हैं। कुछ लोगों में यह प्रवृत्ति निर्बल रहती है। ऐसे लोग समाज का नेतृत्व नहीं कर पाते।

स्वाग्रहता की पूरक विनयप्रवृत्ति (अभिभव[3] प्रवृत्ति) है। मेगडूगल ने इन दोनों प्रवृत्तियों को जन्मजात प्रवृत्तियाँ माना है। जिन लोगों में विनय की मनोवृत्ति सदा रहती है व दूसरों की बात मानते हैं और उनका अनुकरण करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। ऐसे लोगों में पहले प्रकार के लोगों की अपेक्षा योग्यताओं की कमी रहती है। मनुष्य के व्यवहार और उसकी योग्यताओं में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि कम योग्यता के व्यक्तियों में स्वाग्रह भाव हो और अधिक योग्यतावालों में अभिभव की प्रवृत्ति हो तो समाज का चलना ही कठिन हो जावे।

मन महोदय के कथनानुसार स्वाग्रह की प्रवृत्ति और विनयप्रवृत्ति एक ही प्रवृत्ति के दो रूप हैं। वही मनुष्य, जो एक समय अपने व्यवहारों में विनय की अधिकता दिखाता है, दूसरे समय स्वाग्रह की अधिकता दिखाता है। अतएव किसी भी व्यक्ति के व्यवहार से यह नहीं

1 Conscience 2 Selfassertion 3 Submission.

कहा जा सकता कि उसमें स्वाग्रह भाव की अधिकता है अथवा विनय की। ये दोनों ही अभिप्रेरक मानव जीवन में काम करते हैं। एडलर महाशय के कथनानुसार मनुष्य के बहुत से सामाजिक आचरण के अभिप्रेरक स्वागह की ही प्रवृत्ति हैं। इसके दमित होने से मनुष्य में आत्महीनता की भावना उत्पन्न हो जाती है। जब यह भावना अधिक समय तक दमित अवस्था में रहती है, तो यह एक मानसिक ग्रन्थि का रूप धारण कर लेती है। स्वाग्रह की भावना के दमित होने पर मनुष्य के व्यवहार में पहले तो विनय के भाव की अधिकता दिखाई देती है, परन्तु बाद में ऐसे व्यक्ति में स्वाग्रह की भावना अति प्रबल हो जाती है। आत्महीनता की ग्रन्थि मन में रखनेवाले व्यक्तियों के आचरण असाधारण हो जाते हैं। वे अपने आपको सदा ऐसे कार्यों में लगाते हैं, जिनसे वे दूसरे लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकें और उन्हें अपने कामों से प्रभावित कर सकें। कुछ मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि नेपोलियन और हिटलर जैसे महापुरुषों के मन में आत्महीनता की मानसिक ग्रन्थियाँ इनके अनेक प्रकार के असाधारण कामों की जननी थीं। जो मनुष्य बचपन में गरीबी में अपना जीवन व्यतीत करता है वह अपने प्रौढ़ जीवन में धनी बनने की अत्यधिक चेष्टा करता है। उपेक्षा के वातावरण में रहनेवाला व्यक्ति चेष्टा करता है कि वह समाज के दूसरे लोगों को अपनी कृतियों से प्रभावित करे तथा उनपर अपना अधिकार जमा ले।

मन महोदय का कथन है कि यह प्रवृत्ति उसी प्रकार जन्मजात नहीं है, जिस प्रकार सामाजिकता जन्मजात नहीं है। यह समाज के सम्पर्क से ही व्यक्ति में उत्पन्न होती है। स्वाग्रह की भावना उन्हीं लोगों में अधिक बढ़ती है, जिन्हें इसकी आवश्यकता होती है। जिन लोगों के जीवन में इसकी आवश्यकता नहीं रहती, उनमें इस भावना की प्रबलता भी नहीं होती। बार-बार के उपयोग से इसका बल बढ़ता है और उसके अनुपयोग से इसका बल घट जाता है। इस प्रकार स्वाग्रह की प्रवृत्ति मनुष्य में जन्मजात नहीं है, वरन् अर्जित है। स्वाग्रह की भावना उन लोगों में प्रबल हो जाती है, जिनमें इसको बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है। जब बालक को शिक्षा दी जाती है कि मनुष्य का अपना सम्मान रखने के लिए सभी कुछ खो देना चाहिये, मनुष्य को अपनी बात रखने के लिए प्राणों की आहुति दे देनी चाहिये, तो उसमें स्वाग्रह की भावना प्रबल हो जाती है। इसके प्रतिकूल जब मनुष्य को सिखाया जाता है कि सभी प्रकार के पाप का मूल अभिमान है और दूसरों पर अधिकार रखने का भाव भला नहीं

है, तो स्वाग्रह की प्रवृत्ति निर्बल हो जाती है। भगवान बुद्ध ने स्वाग्रह की वृद्धि को धर्म-विरोधी माना है। उनकी शिक्षा के अनुसार आदर्श पुरुष वह है जो निर्वाण-पथ पर अग्रसर है। यदि कोई व्यक्ति ऐसे समाज में पले जिसकी संस्कृति का आदर्श विनय की प्राप्ति है तो ऐसे व्यक्ति में स्वाग्रह की प्रवृत्ति प्रबल न होकर निर्बल ही रहेगी।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि स्वाग्रह की प्रवृत्ति चाहे जन्म से आयी हो अथवा नहीं, इसका जो वर्तमान रूप हम समाज में देखते हैं वह समाज में प्रचलित सभ्यता और व्यवहारों के ढंग का परिणाम है। स्वाग्रह की प्रवृत्ति का विकास अथवा उसका रूपान्तर समाज के सम्पर्क और शिक्षा से ही होता है।

युद्ध-प्रवृत्ति[1]—मनुष्य के अनेक व्यवहारों का कारण आपस में लड़ने की प्रवृत्ति है। कुछ लोग अपने हक के लिए, कुछ आत्मसम्मान के लिए और कुछ शब्दों के उपयोग के लिए ही लड़ते हैं। मानव-व्यवहारों का एक व्यापक अभिप्रेरक लड़ने की अभिप्रेरणा है। यदि लड़ने का कोई कारण न हो तो कुछ लोग केवल लड़ने के लिए ही लड़ते हैं। इस प्रकार की बाह्य क्रियाओं का कारण मनुष्य के मन में उपस्थित एक मूल प्रवृत्ति माना जाता है। मैकडूगल ने इसी सिद्धांत का प्रवर्तन किया है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक लड़ने की प्रवृत्ति को जन्मजात नहीं मानते। उनके कथनानुसार मनुष्य के लिए आपस में लड़ना अनिवार्य नहीं है। लड़ने की प्रवृत्ति समाज-सम्पर्क से ही उत्पन्न होती है। यह विशेष प्रकार की शिक्षा से बढ़ जाती अथवा घट जाती है। जिन लोगों को अपने जीवन में सफल होने के लिए लड़ने की ही अधिक आवश्यकता होती है, उनमें युद्ध-प्रवृत्ति के प्रदर्शन की सराहना की जाती है। जब शान्तिकाल रहता है तब भी युद्धों का अभिनय कराया जाता है। युद्ध सम्बन्धी कविता, साहित्य, इतिहास को लिखकर, जिससे कि युद्ध में निर्भीकता दिखानेवाले व्यक्ति की प्रशंसा हो, इस प्रवृत्ति को प्रबल बनाया जा सकता है। इस प्रवृत्ति को सिनेमा फिल्मों के द्वारा भी प्रबल बनाया जा सकता है। इसके प्रतिकूल दूसरों से लड़ने के भाव की निन्दा करके, लड़नेवाले व्यक्ति को दण्ड देकर तथा उसका समाज में प्रदर्शन रोककर उसे निर्बल बनाया जा सकता है। यह प्रवृत्ति विशेष प्रकार की सभ्यता में प्रबल हो जाती है और उस सभ्यता के परिवर्तन से उसे निर्बल बनाया जा सकता है। स्पार्टा के पुराने

1. Pugnacity.

निवासियों की युद्ध प्रवृत्ति इसलिए अति प्रबल थी कि समाज में उसकी अधिक प्रशंसा होती थी। स्पार्टा की माताएँ बालक को सदा शिक्षा देती थीं कि वे रण में कभी भी पीठ न दिखायें, चाहे उनके प्राण भले ही चले जायँ। इसी प्रकार राजपूत लोगों को शिक्षा दी जाती थी कि वे युद्ध के लिए सदा तैयार रहें। क्षत्रियों के लिए युद्ध खुला हुआ स्वर्ग का द्वार है, जो क्षत्रिय युद्ध के सामने आने पर उससे मुख मोड़ता है, वह किसी प्रकार की श्रद्धा का पात्र नहीं रहता। रण से भागनेवाले राजपूत योद्धा का सम्मान समाज का कोई भी व्यक्ति नहीं करता था। जब जोधपुर का राजा जसवंत सिंह लड़ाई से भागकर अपनी राजधानी में आया और उसने किले में घुसना चाहा तो उसकी पत्नी ने उसके आने के लिए किले का दरवाजा ही नहीं खोलने दिया। रानी ने, जो उदयपुर के राजा की बेटी थी, कहा कि मेरा पति इतना कायर नहीं है कि रण से भागकर आयेगा। उक्त रानी के इस कार्य को निंदा की दृष्टि से न देखकर राजपूतों में प्रशंसा की दृष्टि से ही देखा जाता है।

उक्त प्रकार के सांस्कृतिक संस्कार मनुष्य में युद्ध-प्रवृत्ति को प्रबल बना देते हैं। जब इस प्रवृत्ति के अधिक बढ़ने से समाज का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है तो समाज में फिर सहअस्तित्व, पंचशील, अहिंसा आदि शान्तिवादी सिद्धान्तों का प्रचार होने लगता है। इसके परिणामस्वरूप इस प्रवृत्ति में बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है। देखा गया है कि जिन जातियों, वर्गों अथवा व्यक्तियों को लड़ने का अभ्यास नहीं होता, उनमें लड़ने की इच्छा ही नहीं होती। वे अपने विरोधी से किसी न किसी प्रकार शान्ति स्थापित कर लेते हैं, चोट खाने पर भी वे उसका कुछ प्रतिकार नहीं करते। जब इन्हीं लोगों को युद्ध के वातावरण में रखा जाता है, जब उन्हें सैनिक शिक्षा दे दी जाती है और उनकी सांस्कृतिक भावनाओं को बदल दिया जाता है तो वे अच्छे लड़ाकू बन जाते हैं।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि युद्ध की प्रवृत्ति जन्मजात प्रवृत्ति नहीं है और यदि कुछ इसमें जन्मजात शक्ति है तो वह वातावरण के सम्पर्क से अथवा अभ्यास से ही प्रबल होती है। इसे नये प्रकार के संस्कारों अथवा अनभ्यास से निर्बल बनाया जा सकता है।

संग्रह-प्रवृत्ति—यह प्रवृत्ति मनुष्य को उपयोगी वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए और प्राप्त की हुई वस्तुओं की रक्षा करने के लिए प्रेरणा उत्पन्न करती है। मेकडूगल के कथनानुसार यह प्रवृत्ति भी अन्य प्रवृत्तियों के समान जन्मजात है। अतएव इसको जड़ से समाप्त नहीं किया जा सकता।

आधुनिक एन्थ्रॉपॉलॉजी विज्ञान की खोजों से पता चला है कि यह प्रवृत्ति सभी प्रकार के लोगों में नहीं पायी जाती। मध्य आस्ट्रेलिया में रहनेवाले आदि निवासियों में इस प्रकार की प्रवृत्ति की बहुत ही कमी पायी जाती है। वहाँ भोजन की बहुत ही कमी है, परन्तु यदि किसी व्यक्ति को कोई खाद्य पदार्थ मिल जाय, तो वह स्वयं तुरन्त नहीं खाने लग जाता, वह अपने गिरोह के लिए रख छोड़ता है और सब लोगों में बाँटकर ही खाता है। ऐसे व्यक्ति में संग्रह करने की भावना का अभाव देखा जाता है। इसी प्रकार कुछ सम्पन्न परिवारों के लोगों में भी संग्रह की प्रवृत्ति की कमी देखी जाती है। मनुष्य की शिक्षा दीक्षा, उसकी आदतों और सामाजिक संस्कारों का प्रभाव इस प्रवृत्ति के घटने और बढ़ने में प्रत्यक्ष रूप से देखा जाता है। जिस जाति अथवा सम्प्रदाय में संग्रह की प्रवृत्ति की निंदा की जाती है, जहाँ धन एकत्र करना बुरा माना जाता है, वहाँ यह प्रवृत्ति उतनी अधिक नहीं बढ़ती जितनी वह इसकी प्रशंसा करनेवाली जातियों अथवा समुदायों में बढ़ती है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि संग्रह की प्रवृत्ति समाज में जिस रूप में देखी जाती है, वह जन्मजात नहीं है वरन् वह मनुष्य के अनुभव, उसकी शिक्षा-दीक्षा और सामाजिक संस्कारों का परिणाम है।

ऊपर हमने मानव-व्यवहारों के सामाजिक अभिप्रेरकों की चर्चा की है। ये अभिप्रेरक मनुष्य को अनेक प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे उचित क्रियाओं में लगाते हैं। जब मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है तब तत्सम्बन्धी अभिप्रेरक प्रबल हो जाते हैं अन्यथा वे निर्बल हो जाते हैं। यहाँ सुख-दुःख विनियमन[1] अथवा संताप और असंतोष का नियम[2] काम करता है। किसी प्रकार की क्रिया बार-बार दुहराये जाने से आदत का रूप धारण कर लेती है। फिर यह आदत ही मनुष्य के विशेष प्रकार के व्यवहारों का अभिप्रेरक बन जाती है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य के बहुत से अभिप्रेरक, जिन्हें पहले जन्मजात माना जाता था, मनुष्य की सीखी हुई कार्य-प्रणालियाँ अथवा आदतें ही हैं।

व्यक्तिगत अभिप्रेरक—मनुष्य के व्यवहारों के कुछ अभिप्रेरक ऐसे होते हैं जो सभी लोगों में समान होते हैं, और कुछ प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तिगत जन्मजात बनावट और अनुभव के अनुसार भिन्न होते हैं। जहाँ

1. Law of Hedonic Selection.
2. Law of Satisfaction and Dis satisfaction.

तक सामान्य अभिप्रेरकों की बात है, हम यह बता सकते हैं कि किसी विशेष व्यक्ति को किस प्रकार की वस्तु की इच्छा है। भूख लगने पर मनुष्य को भोजन की चाह होती है और प्यास लगने पर पानी की। इसी तरह व्यक्ति की युद्ध-वृत्ति के जाग्रत होने पर वह लड़ने के काम में लग जाता है और संग्रह-प्रवृत्ति की तृप्ति धन अथवा ऐसे ही दूसरे पदार्थों की प्राप्ति से होती है। व्यक्तिगत अभिप्रेरकों के विषय में यह नहीं बताया जा सकता कि वे किस प्रकार के कार्यों से अपनी तृप्ति पायेंगे। ये अभिप्रेरक भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। मनुष्य के व्यक्तिगत अभिप्रेरक उसकी रुचियाँ, इच्छाएँ, आदतें और जीवन के आदर्श हैं। ये सभी अभिप्रेरक मनुष्य के वातावरण के संस्कारों पर निर्भर करते हैं। मनुष्य जिस प्रकार के वातावरण में रहता है और जिस प्रकार की उसको शिक्षा दीक्षा मिलती है, उसी प्रकार की उसकी रुचियाँ बन जाती हैं। मेकडूगल महाशय के अनुसार मनुष्य की रुचियाँ दो प्रकार की होती हैं— जन्मजात और अर्जित। जन्मजात रुचियों का आधार मूलप्रवृत्तियाँ होती हैं और अर्जित रुचियों का आधार आदतें, स्थायीभाव और जीवन के आदर्श होते हैं। जो मनोवैज्ञानिक मूलप्रवृत्तियों के अस्तित्व में विश्वास ही नहीं करते, उनके मतानुसार मनुष्य की सभी रुचियाँ अर्जित ही होती हैं। इन रुचियों की जड़ मनुष्य की कुछ जन्मजात प्रेरणाओं में होती है। ये प्रेरणाएँ शारीरिक विकारों पर निर्भर करती हैं; अर्थात् इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य की रुचियों का मूल आधार उसके शरीर में होनेवाले परिवर्तन होते हैं। वातावरण के सम्पर्क से शरीर से उत्पन्न होनेवाली अनेक प्रेरणाओं का सम्बन्ध अनेक विषयों से हो जाता है। ये विषय व्यक्ति के लिए रुचि बन जाते हैं। उदाहरणार्थ, बालक को भूख लगी है, वह अपनी माँ के पास जाता है और उसका स्तन-पान करके अपनी क्षुधा को शान्त करता है। वह उससे एक संतोष का अनुभव करता है। इस संतोष के कारण बालक के मन में माँ के प्रति विशेष प्रकार के संवेग का अनुभव होता है और इसके कारण उसे माँ से सम्बन्धित बातें रोचक लगने लगती हैं। इसी प्रकार दूसरे प्रकार की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाली वस्तुओं से सम्बन्धित अनेक दूसरी वस्तुओं में मनुष्य की रुचि हो जाती है। हमारी रुचि उन्हीं वस्तुओं में होती है जो हमें किसी-न-किसी प्रकार का संतोष देती हैं। इस संतोष का आधार चाहे हम शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति मानें या मानसिक आवश्यकताओं की। मनुष्य की

रुचियों में उसकी शिक्षा और अनुभव की वृद्धि के साथ-साथ विकास होता है। बालक प्राय: ऐसी वस्तुओं मे ही रुचि रखता है जो उसके शरीर से सम्बन्ध रखती हैं। उसे बौद्धिक और सूक्ष्म पदार्थों के प्रति रुचि नहीं रहती। प्रौढ़ व्यक्तियों की रुचि दूर दूर तक के पदार्थों में फैल जाती है और वह स्थूल से सूक्ष्म बातों की ओर भी बढ़ती है।

जिस प्रकार मनुष्य की रुचियाँ उसके व्यक्तिगत कार्यों की अभिप्रेरक होती हैं, उसी प्रकार उसके विशेष प्रकार के रुख भी उसके अनेक कार्यों के प्रेरक होते हैं। रुचि और रुख दोनों में ही भावों की कुछ समानता है। परन्तु जहाँ रुचि शब्द अनुकूल पदार्थों के लिए ही प्रयुक्त होता है, वहाँ रुख अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार के पदार्थों के प्रति प्रयुक्त होता है। रुख के प्रयोग का क्षेत्र भी रुचि से अधिक व्यापक है। किसी व्यक्ति के प्रति अथवा किसी विषय के प्रति हमारी रुचि होती है, पर रुख (अच्छा या बुरा) न केवल किसी व्यक्ति के प्रति होता है वरन् देश और जाति के प्रति भी होता है।

मनुष्य के व्यक्तित्व की बनावट में उसकी रुचि और रुखों का बड़ा ही महत्व का स्थान है। ये मनुष्य के विशेष प्रकार के भाव तथा आदतों पर निर्भर करते हैं। किसी व्यक्ति की रुचियों तथा विभिन्न प्रकार के पदार्थों के प्रति उसके रुख को जानकर हम अनुमान लगा सकते हैं कि वह विशेष परिस्थिति में क्या करेगा। व्यावहारिक जीवन में इस प्रकार के ज्ञान का महत्व है। इसलिये मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार की परीक्षाओं में रुचि को भी स्थान दिया है।

मनुष्य की आदतें भी उसके कार्यों की अभिप्रेरक होती हैं। ये अभिप्रेरक व्यक्तिगत होते हैं। मनुष्य पहले पहल किसी काम को अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये करता है। वह जब ऐसे काम को बार-बार करता है तो वह काम उसे रोचक बन जाता है। बाद में मनुष्य की बनी हुई यह आदत, अर्थात् उसका अर्जित स्वभाव ही उसे विशेष प्रकार के काम में लगने की प्रेरणा देता है। कुछ लोग अपने स्वास्थ्य सुधारने के लिये सवेरे घूमने जाते हैं अथवा निश्चित समय पर व्यायाम करते हैं। कुछ दिन तक इस तरह व्यायाम करते रहने के पश्चात् व्यायाम की क्रिया में ही आनन्द आने लगता है और फिर जिस व्यक्ति को व्यायाम करने की आदत पड़ गई है, व्यायाम किये बिना उससे नहीं रहा जाता। इस तरह मनुष्य को अनेक तरह की भली और बुरी आदतें लग जाती हैं। दूसरों की निन्दा करने की, सामान को तोड़ने-फोड़ने की,

सिगरेट पीने की आदतें इसी तरह उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार पुस्तक पढ़ने की, लेख लिखने की, बाग लगाने की आदतों का भी अभ्यास के द्वारा निर्माण होता है। ये सभी आदतें मनुष्य के कामों की अभिप्रेरक होती हैं।

मनुष्य के जीवन के आदर्श, उसके हौसले और लक्ष्य भी उसके कार्यों के प्रेरक होते हैं। ये आदर्श, हौसले अथवा लक्ष्य भिन्न भिन्न लोगों के भिन्न-भिन्न होते हैं। साधारणतः जिस व्यक्ति के जीवन के आदर्श जितने ऊँचे रहते हैं वह उतनी ही लगन से काम भी करता है। जिस व्यक्ति के जीवन के आदर्श ही नीचे होते हैं, वह काम भी उसी प्रकार का करता है।

मनुष्य की योग्यता और उसके आदर्शों में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। सामान्यतः मनुष्य की योग्यता के अनुसार ही उसके जीवन के आदर्श होते हैं। जब मनुष्य के हौसले तथा आदर्शों में और उसकी योग्यता में अत्यधिक विषमता हो जाती है तब निराश होने के अवसर बढ़ जाते हैं। अपने हौसलों की पूर्ति में बार-बार असफल होने पर मनुष्य का आत्मविश्वास घट जाता है और इसके कारण उसकी योग्यता भी कम हो जाती है। जब किसी व्यक्ति की योग्यता और उसके हौसले सर्वथा बे-मेल रहते हैं तो मनुष्य अपनी वाञ्छित लक्ष्य की प्राप्ति के लिये मनोराज्य में विचरण करने लगता है। मनोराज्य में अत्यधिक विचरण करना मनुष्य को निकम्मा बना देता है और कभी-कभी उसे पागलखाने में पहुँचा देता है। सफल जीवन उसी व्यक्ति का होता है जो अपने आदर्श उतने ही ऊँचे बनाता है जितना ऊँचा पहुँचने की उसमें शक्ति रहती है। आदर्शों का नीचा रहना जितना बुरा है, उससे कहीं अधिक बुरा अत्युच्च आदर्शों के रहने पर जितना चारित्रिक ह्रास होता है, उससे कहीं अधिक चारित्रिक ह्रास अत्युच्च आदर्श अथवा मनसूबे मन में रखने से होता है। इसमें मनुष्य को स्वयं को धोखा देने की मनोवृत्ति उत्पन्न होती है।

अभिप्रेरकों का संघर्ष

मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास अभिप्रेरकों के संघर्ष से होता है। जब दो विरोधी अभिप्रेरक एक ही साथ मन में उपस्थित होते हैं तो उनमें द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। जो अभिप्रेरक प्रबल होता है, वह दूसरे को दबा देता है। दबाया गया अभिप्रेरक कभी-कभी अपनी शक्ति विजयी अभिप्रेरक को दे देता है और कभी वह अन्तर्धान हो जाता है। ऐसा

अन्तर्धान हुआ अभिप्रेरक मनुष्य के चेतन मन से हटकर उसके अचेतन मन में चला जाता है और फिर वहाँ से हटकर मनुष्य के व्यक्तित्व के उस भाग के विरुद्ध षड्यन्त्र करने लगता है, जिसने विजयी अभिप्रेरक को स्वीकार किया है।

जब तक मनुष्य की चेतना पर दो विरोधी प्रवृत्तियों का द्वन्द्व होता रहता है तब तक मनुष्य की मनस्थिति बड़ी ही पीड़ाजनक होती है। इस पीड़ा से मनुष्य सदा बचना चाहता है। जिन व्यक्तियों में मानसिक शक्ति की जितनी कमी होती है, वे उक्त प्रकार के मानसिक संघर्ष से अपने आपको उतना ही बचाते रहते हैं। कष्ट से बचने की मनोवृत्ति मनुष्य को किसी-न-किसी प्रकार मानसिक संघर्ष को बन्द करने के लिए बाध्य करती है। यह संघर्ष जब बन्द नहीं होता तो मनुष्य उसे भुला देने की चेष्टा करता है। मानसिक संघर्ष को भुलाने का यह चेष्टा जितनी मनुष्य के स्वास्थ्य और उसकी मानसिक शक्तियों की विनाशक है, उतना और कुछ नहीं है। जिस मानसिक संघर्ष का निर्णय स्पष्ट हो जाता है, वह व्यक्ति के मन में दृढ़ता लाता है। इससे व्यक्ति का मानसिक विकास होता है। जिस संघर्ष का निर्णय नहीं होता तथा जिसे निर्णय के पूर्व ही भुलाने की चेष्टा की जाती है वह मनुष्य के चेतन मन से हटकर अचेतन मन में चला जाता है। फिर मनुष्य के अचेतन मन में दो विरोधी अभिप्रेरकों का संघर्ष होता रहता है, इससे उसकी भारी मानसिक क्षति होती है। जब तक अभिप्रेरकों का संघर्ष चेतन मन में रहता है, तब तक मनुष्य विचार द्वारा इसे समाप्त करने की क्षमता रखता है। जब अभिप्रेरकों का संघर्ष चेतन से अचेतन मन में चला जाता है तब इस संघर्ष को बन्द करने की क्षमता मनुष्य में नहीं रहती। हमारा अधिकार उन्हीं मानसिक शक्तियों पर रहता है जो चेतन मन में उपस्थित रहती हैं, अर्थात् जिनका हमें ज्ञान रहता है। जो हमारे अचेतन मन में चली जाती हैं उन पर हमारा कोई अधिकार नहीं रहता। अचेतन मन में उपस्थित अभिप्रेरकों के संघर्ष को बन्द करने के लिए हमें उन्हें फिर से मनोविश्लेषण द्वारा चेतना की सतह पर लाना पड़ता है और फिर हम विचार अथवा विवेक से उस संघर्ष को समाप्त करते हैं। अनेक प्रकार के मानसिक रोग अचेतन मन में होनेवाले मानसिक द्वन्द्व के कारण होते हैं। मनोविश्लेषक इन अदृश्य अभिप्रेरकों को अपना विशेष प्रणाली के द्वारा खोजता है और संघर्ष को चेतना के स्तर पर लाकर उसको समाप्त करने का यत्न करता है। इस प्रकार मानसिक रोग समाप्त होते हैं।

विशेष अध्ययन के लिए ग्रन्थ

1. Munn : Psychology . The Fundamentals of Human Adjustment Chap XI, XII, XIII
2. Brooks Child Psychology, Chap XII
3. Gault and Haward · An Outline of Psychology, Chap VII & VIII
4 Boring, Langfield & Weld Foundation of Psychology
5. McDougall : An Outline of Psychology, Chap V

प्रश्न

१—मानव क्रिया के अभिप्रेरक क्या हैं ? जन्मजात और अर्जित अभिप्रेरकों में क्या भेद है ?

२—यह कहाँ तक कहा जा सकता है कि मनुष्य के जन्मजात अभिप्रेरक उसकी प्रतिवर्त और सहज वृत्तियाँ ही हैं ?

३—किसी एक सहज वृत्यात्मक क्रिया का उदाहरण देकर समझाइये कि सभी सामाजिक सहज वृत्तियाँ वातावरण के अनुभव के परिणाम हैं।

४—यौन-प्रेरक इच्छा शरीर के परिवर्तनों के साथ साथ किस प्रकार परिवर्तित होती है ? कुछ उदाहरण देकर समझाइये।

५—मनुष्य के व्यक्तिगत अभिप्रेरक क्या हैं ? इन अभिप्रेरकों में से एक को लेकर समझाइये कि उनका विकास किस प्रकार होता है ?

६—अभिप्रेरकों में द्वन्द्व होने की अवस्था में क्या-क्या मानसिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं ? सविस्तार समझाइये।

पाँचवाँ प्रकरण

संवेग[1]

संवेग का स्वरूप

संवेग मन की वह भावात्मक वृत्ति[2] है जो मन में बड़ी तीव्रता से उठती है। जब मनुष्य के मन में किसी प्रकार का संवेग पैदा होता है, तो वह अपने में अनेक प्रकार के भावों और क्रियाओं की अनुभूति करता है। संवेग सदा किसी बाह्य पदार्थ की ओर लक्षित रहता है। संवेग का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति का साधारण अनुभव है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार हमारी प्रत्येक चित्तवृत्ति के तीन पहलू होते हैं—ज्ञानात्मक[3], क्रियात्मक[4] और भावनात्मक[5]। भावनात्मक पहलू संवेगों का कारण होता है। संवेग मनुष्यों में ही नहीं पाये जाते, पशु-पक्षियों में भी पाये जाते हैं। ये जन्मजात मनोभाव हैं।

संवेगों की विशेषताएँ

मनोवैज्ञानिकों ने संवेग की अनेक विशेषताएँ बताई है, उनमें से निम्नलिखित विशेषताएँ मुख्य हैं—

(१) संवेग वैयक्तिक अनुभव है।

(२) संवेगों का प्राण भाव है।

(३) संवेग व्यापक अनुभव है।

(४) संवेगों का सम्बन्ध किसी क्रियात्मक मनोभाव अर्थात् सहजवृत्ति से होता है।

(५) संवेग किसी न-किसी विषय पर आरोपित होता है।

संवेग की वैयक्तिकता—संवेग एक ऐसा अनुभव है जिसके बारे में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ही जान सकता है। दूसरे व्यक्ति का किसी व्यक्ति के मन में चलनेवाले संवेगों का पता लगाना अत्यधिक कठिन होता है। एक ही परिस्थिति में दो व्यक्तियों के संवेग भिन्न भिन्न हो सकते है, अर्थात् ज्ञान का विषय एक होने पर भी दो व्यक्तियों के मन में अपने पूर्व

1 Emotion 2. Feeling aspect 3 Cognitive 4 Conative 5 Affective

संस्कारों तथा इच्छाओं के अनुसार उस विषय का अनुभव एक को सुखद और दूसरे को दुःखद हो सकता है। मान लीजिये, दो बालक एक ही समय पास-पास खड़े होकर फुटबाल का खेल देख रहे हों। अचानक खेलनेवालों में से एक लड़का फुटबाल में लात मारता है और वह गोल में चला जाता है। इसे देखकर दर्शक-बालकों में से एक खुशी के मारे उछल पड़ता है और दूसरा लड़का लज्जा के मारे अपना सिर नीचा कर लेता है। इस तरह हम देखते हैं कि बाहरी अनुभव एक ही होने पर भी दो व्यक्तियों के मन में दो प्रकार के संवेग पैदा होते हैं।

दो मित्र आपस में बातचीत कर रहे हैं। इतने में डाकिया उन्हें एक तार लाकर देता है। तार देखकर एक के मन में कोई संवेग नहीं उठता, किन्तु दूसरा शोकसागर में डूब जाता है। कोई विशेष घटना किसी व्यक्ति को कहाँ तक उद्विग्न करेगी, इसका अनुमान लगाना दूसरे को कठिन है। कितने ही लोग साधारण हानि और शारीरिक दुःखों से इतने उद्विग्न-मन हो जाते हैं कि जिसका अनुमान लगाना कठिन है। कितने ही दूसरे लोग बड़ी-बड़ी हानियों के होने पर भी अनुद्विग्न मन रहते हैं। रणयोद्धा हाथ पैर कट जाने पर भी दृढ़ता के साथ दुःख सहन करते हैं। दुर्बल मन के लोग रात के समय अँधेरे में क्षणभर भी अकेले नहीं रह सकते। भय के मारे उनका दम घुटा जाता है, पत्ते की खड़खड़ाहट ही उनका प्राण निकाल लेती है। इस प्रकार का अनुभव उनकी मानसिक विशेषता के कारण होता है। इस तरह हम देखते कि प्रत्येक व्यक्ति के संवेग वैयक्तिक अनुभव हैं और वे उनकी मानसिक विशेषता के ऊपर निर्भर रहते हैं। संवेगों के इस प्रकार वैयक्तिक होने के कारण उनका वैज्ञानिक अध्ययन करना कठिन हो जाता है। जब तक संवेगों का किसी प्रकार प्रकाशन न किया जाय, उनका अध्ययन करना कैसे सम्भव हो सकता है? कितने ही लोग न अपने हाव-भाव से और न अपनी बातचीत से ही संवेगों का परिचय देते हैं, वरन् वे अपने संवेगों का प्रकाशन इतनी कुशलता से दबा लेते हैं कि उनके मन की वास्तविक स्थिति जानना असम्भव हो जाता है। कितने ही दूसरे लोग, जो संवेग उनके मन में वास्तव में नहीं हैं, उनका परिचय अपनी बाहरी चेष्टाओं से कराते हैं। किसी व्यक्ति की मृत्यु का समाचार सुनकर उनके हृदय में दुःख न होने पर भी वे आँसू बहा देते हैं। इसी तरह किसी विशेष समाचार को पाकर दुःखी होने पर भी वे दूसरे के सामने प्रसन्नचित्त दिखाई देते हैं और ऐसे मुस्कराते रहते हैं मानों, उनके हृदय में कोई

वेदना ही नहीं है। मनुष्य के सवेग के विषय में ठीक-ठीक अनुमान करना कितना कठिन है, यह प्रत्येक साहित्यिक और ससार का अनुभवी व्यक्ति जानता है।

सवेगों की भावनात्मकता—सवेग भावनात्मक मनोविकार हैं। मनोविज्ञान की दृष्टि से भावना[1] दो प्रकार की होती हैं—दु खात्मक और सुखात्मक। प्रत्येक मनोवेग के साथ दु खात्मक अथवा सुखात्मक भावना विद्यमान रहती है। साधारणतः प्रत्येक अनुभव में भी भावनात्मक मनोवृत्ति ही उपस्थित रहती है। इसी के कारण कोई भी अनुभव हमें भला या बुरा लगता है। कोई ज्ञान ऐसा नहीं जो राग और द्वेष से मुक्त हो। रागद्वेषात्मक वृत्तियाँ प्रत्येक ज्ञान की सहकारी वृत्तियाँ हैं। हम जिस विषय में जितने अधिक सलग्न होते हैं, उसके प्रति हमारा राग और द्वेष उतना ही प्रबल हो जाता है। जब तक किसी विषय के प्रति हमारे भाव सामान्य रहते हैं तब तक सवेग की उत्पत्ति नहीं होती है, किन्तु जब ये भाव प्रबल हो जाते हैं तो मन में सवेग की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सवेग वास्तव में प्रबल भावनाओं का ही दूसरा नाम है।

भावना मन का एक विशेष प्रकार का अनुभव है। जिस प्रकार ज्ञान और क्रिया को किसी दूसरे प्रत्यय[2] (संकल्पना) के द्वारा नहीं समझाया जा सकता, उसी प्रकार भावना को भी किसी दूसरे प्रत्यय के द्वारा नहीं समझाया जा सकता। कितने ही मनोवैज्ञानिक भावाओं को विशेष प्रकार की सवेदना कहते हैं। ये सवेदनाएँ शरीर में होनेवाले विकारों के परिणाम हैं। इस प्रकार भावनाओं और सवेदनाओं का ऐक्य करना अनुचित है। सवेदनाएँ[3] शरीर की अवस्था तथा बाह्य उत्तेजना पर निर्भर होती हैं। भावना शरीर की अवस्था और बाह्य उत्तेजना पर निर्भर नहीं रहती, वह इनसे स्वतन्त्र मानसिक अनुभव है। सवेदनाएँ उसी प्रकार भावनाओं का कारण बन जाती हैं, जिस प्रकार कल्पनाएँ भावनाओं का कारण बन जाती हैं, किन्तु सवेदनाएँ और भावनाएँ दो पृथक् पृथक् वस्तु हैं।

यदि हम भावनाओं को स्वतन्त्र मानसिक अनुभव मानते हैं, तो हमें स्वीकार करने में कोई कठिनाई न होगी कि सवेग भी स्वतन्त्र मानसिक अनुभव हैं। वे शारीरिक क्रियाओं पर निर्भर नहीं हैं। कितने ही मनोवैज्ञानिक सवेगों को शरीर में होनेवाली क्रियाओं का एक विशेष प्रकार का

1. Feeling 2 Concept 3 Sensations

परिणाम मानते हैं। उनके कथनानुसार ये शरीर के अन्दर होनेवाली क्रियाओं की संवेदना मात्र हैं। यह सिद्धान्त संवेगों के भावनात्मक होने के प्रतिकूल है। हम आगे चलकर इसकी सत्यता पर विचार करेंगे।

संवेगों की व्यापकता—संवेग पशु, पक्षी, मनुष्य आदि प्राणिमात्र को होता है। मनुष्यों में बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, शिक्षित और अशिक्षित सभी को संवेग की अनुभूति होती है। किसी भी जीवधारी के संवेग का अनुभव करना असम्भव नहीं है। विचार से संवेगों का नियन्त्रण किया जाता है, अतएव जिस व्यक्ति के जीवन में विचार की मात्रा जितनी अधिक होती है उनके संवेग उतने ही अधिक नियन्त्रित रहते हैं। बालक के संवेग प्रौढ़ों की अपेक्षा अधिक वेग के साथ प्रकाशित होते हैं। उनका जीवन प्रौढ़ों की अपेक्षा अधिक संवेगात्मक होता है। इसी तरह अशिक्षित लोगों के संवेग, चिन्तनशील व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक उग्र होते हैं। स्त्रियों के संवेग पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्रबल होते हैं। युग महाशय के कथनानुसार स्त्री और पुरुष में जन्मजात संवेग सम्बन्धी मानसिक भेद हैं। किसी विशेष परिस्थिति में पड़कर स्त्रियाँ उतनी अनुद्विग्न-मन नहीं रह सकतीं, जितने कि साधारण पुरुष रहते हैं। जो व्यक्ति जितना ही आत्मनिरीक्षण करता है उसके संवेग उतने ही शिथिल होते हैं। संवेगों का पूर्णतः अभाव होना तो सम्भव ही नहीं। कितने ही लोगों के संवेग उनके विचारों के द्वारा बहुत काल तक दबे रहते हैं। इस प्रकार संवेगों के दबे रहने से उनकी शक्ति क्षीण नहीं होती, अपितु और बढ़ जाती है। अतएव किसी विशेष अवसर पर ये संवेग विचार का प्रतिबन्ध तोड़ देते हैं और मनुष्य को पागल जैसे व्यवहार करने के लिए विवश कर देते हैं। संवेगों का नियन्त्रण उसी व्यक्ति के लिए सम्भव है जो अपने मनोभावों को रोककर उनकी शक्ति को किसी-न-किसी प्रकार योग्य रीति से व्यय करने का मार्ग निकाल लेता है।

संवेगों का क्रियात्मक प्रवृत्ति से सम्बन्ध—प्रत्येक संवेग की सहगामी विशेष प्रकार की क्रियात्मक प्रवृत्ति होती है। स्टाउट महाशय के कथनानुसार यह क्रियात्मक प्रवृत्ति ही संवेग की शक्ति का मूल कारण है। इसके अभाव में संवेग निर्जीव पदार्थ हो जाता है। जब कुत्ता अपना खाना खाता है और उसका खाना हम उससे अलग करना चाहते हैं तो वह काटने को दौड़ता है। इसी तरह गाय अपने बछड़े के पास किसी को जाते देख मारने दौड़ती है। कुत्ता और गाय क्रोध के आवेश में इसलिए

होते हैं कि उनके मन में एक तीव्र प्रवृत्ति काम करती रहती है, जिसका विरोध हम अपने आचरण से करते हैं। कुत्ते की भोजन की इच्छा पर जब आघात पहुँचता है तो वह उद्विग्न हो उठता है। इसी प्रकार जब गाय की उसके बच्चे को प्यार करने की इच्छा पर आघात होता है तब वह उद्विग्न हो उठती है। इच्छा और संवेग एक दूसरे के साथ रहते हैं। इच्छा की पूर्ति में सुख का अनुभव होता है और उसकी अपूर्ति में दुःख का। प्रबल दुःख और सुख का अनुभव करना ही संवेगों का अनुभव करना है। संवेग दो ही प्रकार के होते हैं—सुखात्मक और दुःखात्मक।

जैसे पहले कहा जा चुका है, मनुष्य की प्रत्येक सहज वृत्ति के साथ-साथ एक विशेष प्रकार का संवेग रहता है, जिसकी अनुभूति उस सहज वृत्ति के उत्तेजित होने पर होती है। मनुष्य की सहज वृत्तियाँ चौदह हैं। प्रत्येक सहज वृत्ति का सहगामी एक विशेष प्रकार का संवेग रहता है।

संवेगों का आरोपण[1]—संवेग किसी न किसी पदार्थ के प्रति प्रकट किया जाता है, यह पदार्थ चाहे दृश्य हो अथवा काल्पनिक। संवेग के एक पदार्थ द्वारा किसी प्रकार उत्तेजित होने पर उसके अभाव में वह किसी दूसरे पदार्थ पर आरोपित हो जाता है। मान लीजिए, दो कुत्ते आपस में लड़ रहे हैं। उनमें से एक भाग उठा और अचानक कोई दूसरा ही कुत्ता अथवा आदमी सामने आ गया तो वह सामनेवाले को ही काटने लग जायगा। देखा गया है कि जब रात के समय कोई कुत्ता किसी जानवर को देखकर जोर से चिल्लाता है और आस-पास के कुत्ते भूँकते हुए उसकी मदद को पहुँचते हैं, पर जब वे आगन्तुक को अपने सामने नहीं पाते तो उस बुलानेवाले कुत्ते को ही काटने लग जाते हैं। जब दो व्यक्ति आपस में झगड़ा करते हैं तो तीसरा व्यक्ति, जो उनके क्रोध को शान्त करने का प्रयत्न करता है, पिट जाता है। लड़नेवाले का क्रोध विरोधी के अभाव में किसी दूसरे पर ही उतर जाता है। जब खानसामा साहब के द्वारा डाँटा जाता है, तो वह क्रोध को घर पर आकर अपनी निर्दोषा स्त्री के ऊपर उतारता है। अपने साहब द्वारा डाँटे जाने से उसके मन में क्रोध का संवेग पैदा होता है। किन्तु वह संवेग साहब के प्रति दिखलाया नहीं जा सकता, अतएव निर्दोषा स्त्री के प्रति दिखलाया जाता है। हिंदू-मुसलमान के दंगों की जड़ इसी प्रकार की मानसिक परिस्थितियों में से है। जब भारतवर्ष की जनता सरकार के किसी काम से क्रोध के आवेश में आ गई और जब वह इस

1. Displacement of emotions.

क्रोध को उचित पात्र के प्रति प्रकाशित न कर सकी तो यह दलबन्दी करके आपस में ही लड़ने लगा। महात्मा गाँधी का जनता को सरकार के प्रति उत्तेजित करना और एकाएक उनकी उत्तेजना को उसके *प्रथम लक्ष्य* की ओर प्रकाशित होने से रोकना ही हिन्दू-मुसलिम दंगे का कारण बन गया। सन् १९२१ के पहले हिन्दू-मुसलिम दंगे सुने नहीं जाते थे, किन्तु उसके पश्चात् ये भारतीय-जीवन के सामान्य अङ्ग हो गये हैं। अँगरेजों का पन्द्रहवीं शताब्दी का "गुलाब का युद्ध" जिसमें बहुत से अँगरेज आपस में लड़ मरे, इसी प्रकार की मानसिक स्थिति का परिणाम था। "गुलाब का युद्ध" के पूर्व अँगरेज लोग फ्रांसीसियों से लड़ने और उनका नाश करने में लगे हुए थे। जोन आफ आर्क की हत्या के बाद उन्हें फ्रांस से परास्त होकर भागना पड़ा। पर उनकी युद्ध की मनोवृत्ति शान्त न हुई थी। अतः वे आपस में ही लड़ने लगे।

जिस प्रकार क्रोध एक पदार्थ के अभाव में दूसरे पर आरोपित हो जाता है, उसी तरह भय भी एक पदार्थ के अभाव में दूसरे पदार्थ पर आरोपित हो जाता है। ऐसी अवस्था में जो पदार्थ साधारणतः भय का कारण न होना चाहिए, भय का कारण बन जाता है। भयानक जानवरों का भय भूतों के भय में परिणत हो जाता है इसी प्रकार प्रेम का भी स्थानान्तरण हो जाता है। प्रेम के संवेगों के मन में आने पर प्रेम किये जानेवाले पदार्थ के अभाव में वह किसी दूसरे पदार्थ पर आरोपित हो जाता है।

संवेग और शारीरिक क्रियाएँ

संवेगों का शरीर में चलनेवाली क्रियाओं से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। किसी भी संवेग की अनुभूति के समय बाहर और शरीर के अन्दर विशेष प्रकार की क्रियाएँ होती हैं। उदाहरणार्थ, क्रोध को लीजिए, जब मनुष्य क्रोधावेश में होता है तो वह अपनी त्यारियाँ चढ़ा लेता है, ओठों को काटता है, मुट्ठा बाँधकर हाथ पटकता है और दाँत चबाता है। यदि कोई पदार्थ सामने आ जाय, तो उसे तोड़ फोड़ डालता है, उसका चेहरा लाल हो जाता है, रक्त की नलियों में खून का प्रवाह तेजी से बहने लगता है, हृदय की गति तीव्र हो जाता है। इसके साथ साथ उसके शरीर के भीतर स्थित गाँठें एक विशेष प्रकार के द्रव्य का उत्पादन करने लगता हैं। क्रोध और भय की अवस्था में ऐड्रनली नामक ग्रन्थियाँ जो गुर्दों के ऊपर स्थिति हैं, ऐड्रीनलो नामक रस को उत्पन्न करने लगती हैं। इस रस

का सञ्चार मनुष्य के रक्त में होने पर उसकी उत्तेजना बढ़ जाती है, वह अपने अन्दर विशेष शक्ति का अनुभव करने लगता है। जो काम मनुष्य को अनुद्विग्न अवस्था में करना कठिन होता है, उसे वह सरलता से कर सकता है। इसी उत्तेजना के कारण उसे शारीरिक कष्टों का अनुभूति नहीं होती। लड़ाई करते समय लड़नेवाले को अपने ऊपर लगी चोट क्रोध की अवस्था में वैसी पीड़ा नहीं देती, जैसी वह उसके मन की शान्त अवस्था में देती है।

क्रोध और भय की अवस्था में लार पैदा करनेवाली ग्रन्थियाँ अपना काम बन्द कर देती हैं, इसलिए ऐसी अवस्था में मुँह सूख जाता है, प्यास अधिक लगती है, कण्ठ में स्थित थाइराइड नामक ग्रन्थियाँ जो साधारणतः थाइरॉक्सिन नामक प्राणप्रद रस को पैदा करती हैं, अपना काम बन्द कर देती हैं। यह रस स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए और शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक है। इसकी कमी होने से शरीर निर्बल और रोगी हो जाता है। लार और थाइरॉक्सिन की कमी से भोजन के पचने में बाधा होती है, अतएव अति क्रोधी तथा भयातुर व्यक्ति अनेक प्रकार की बीमारियों का शिकार बना रहता है तथा सदा क्षीणकाय बना रहता है। चाहे उसे कितना ही पौष्टिक भोजन क्यों न दिया जाय, वह उसको पचा नहीं सकता। भोजन करते समय क्रोध और भय का मन में आना विशेषकर हानिकारक होता है।

जिस प्रकार क्रोध और भय स्वास्थ्य-विनाशक हैं उसी तरह प्रेम और उत्साह स्वास्थ्यवर्धक हैं। इन संवेगों से मन में आते ही थाइरॉक्सिन की वृद्धि होती है। भोजन पचाने का रस पैदा करनेवाली ग्रन्थियाँ अधिक काम करती हैं। इस तरह अनेक आयुवर्धक पदार्थों का हमारे शरीर में संचार होता है। अतएव प्रेम और उत्साह को रचनात्मक संवेग[1] कहा जाता है तथा भय और क्रोध को ध्वंसात्मक संवेग[2] कहा जाता है। जिस प्रकार प्रेम और उत्साह दूसरों का लाभ करते हैं, उसी तरह वे अपने आप का भी लाभ करते हैं, तथा क्रोध और भय जिस प्रकार दूसरों का विनाश करते हैं उसी प्रकार वे आत्म विनाश भी करते हैं। गाल्ट और हावर्ट महाशयों ने पहले प्रकार के संवेगों को प्रसारात्मक संवेग[3] कहा है और दूसरे प्रकार के संवेगों को सङ्कोचात्मक संवेग[4] कहा है। एक शक्तिवर्धक है और दूसरा शक्ति विनाशक।

1 Greative emotion 2 Destructive emotion 3 Expanding emotion 4 Contracting emotion

जेम्स-लैंगे-सिद्धान्त

जेम्स और लेंगे महाशयों के सिद्धान्त के अनुसार शारीरिक क्रियाएँ ही सवेगों की आत्मा हैं। शरीर के भीतर होनेवाले विकारों या सवेदना का ही दूसरा नाम सवेग है। इन सवेदनाओं के साथ साथ शारीरिक बाह्य क्रियाएँ भी होती हैं। इन बाह्य क्रियाओं से ये सवेदनाएँ अधिक प्रबल हो जाती हैं। अतएव जो व्यक्ति अपनी बाह्य-क्रियाओं को जितना ही अधिक रोकता है वह सवेगों को उतना ही अधिक रोकता है और जो उन क्रियाओं को जितना ही अधिक प्रकाशित करता है, वह उतना ही अधिक सवेगों को बढाता है। जेम्स महाशय का कथन है, "हम इसलिए नहीं भागते कि डर गये हैं, किन्तु डरते इसलिए हैं क्योंकि भागते हैं। इसी प्रकार क्रोध में आने के कारण पीटते नहीं, किन्तु पीटने के कारण क्रोध में आते हैं। यदि हम भागने और पीटने की क्रियाओं तथा उनके साथ होनेवाली दूसरी मानसिक चेष्टाओं का प्रकाशन बिलकुल रोक दें, तो हम उन उद्वेगों को भी नष्ट कर दें जिनका वे परिणाम समझे जाते हैं। वह क्रोध ही कैसा जिसमें न चेहरा तमतमाया हो, न त्योरियाँ ही चढी हों, न दाँत पीसे जाते हों और न हाथ पैर पटके जाते हों। यदि किसी क्रोध का इस प्रकार से प्रकाशन न हो तो वह क्रोध का अनुभव ही नहीं।" जेम्स के कथनानुसार इन चेष्टाओं के होने से शरीर के भीतर भी अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों की अनुभूति हमें विशेष प्रकार की सवेदनाओं द्वारा प्राप्त होती है, ये सवेदनायें[1] ही सवेग[2] हैं।

शरीर और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण जेम्स-लैंगे महाशय का यह सिद्धान्त कितने ही मनोवैज्ञानिकों ने मान लिया है, किन्तु इस सिद्धान्त की त्रुटि स्पष्ट है। हम इस सिद्धान्त को त्रुटि अन्वय-व्यतिरेक न्याय से सरलता से समझ सकते हैं। कितने ही स्थलों में बाह्य चेष्टाओं के होने पर भी संवेग नहीं रहता और सवेगों के रहने पर भी बाह्य चेष्टाएँ नहीं होतीं। नाटकों में खेलनेवाले पात्र अपनी बाह्य चेष्टाओं से अनेक प्रकार के संवेग दर्शकों के समक्ष दर्शाते हैं, किन्तु वास्तव में उनका मन उन संवेगों से व्याप्त नहीं रहता। अनुद्विग्न मन रहकर भी वे अनेक प्रकार के सवेगों का प्रदर्शन कर सकते हैं। यदि वे ऐसा न करें तो अपना पार्ट ठीक से न कर सकें।

इसी तरह कितने ही लोग दूसरों की गाली सुनकर क्रोधित हो जाते

1. Sensatios, 2 Emotions

हैं, किन्तु हम क्रोध का प्रदर्शन अपनी किसी बाह्य चेष्टा से नहीं करते। इतना ही नहीं, कितने ही लोग क्रोधातुर अथवा भयभीत होकर भी अपनी चेष्टाओं से इनके विपरीत मनोभावों का प्रदर्शन करते हैं।

शैरिंगटन महाशय ने पशुओं पर क्रोध के प्रकाशन के विशेष प्रकार से कुछ प्रयोग किये हैं। उन्होंने एक कुत्ते का भेजा[1] निकाल दिया, जिसके कारण उसे शारीरिक संवेदनाओं की अनुभूति सम्भव ही नहीं थी। ऐसी अवस्था में उसके सामने रखा हुआ भोजन हटाया गया, इसे देखकर कुत्ते को क्रोध अवश्य आया, किन्तु इस क्रोध की अनुभूति का उसके शरीर में चलनेवाली क्रियाओं की संवेदनाओं से कोई सम्बन्ध न था। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने बिल्ली के ऊपर भी इसी प्रकार के प्रयोगों को किया है। इससे यह स्पष्ट है कि संवेग शरीर में चलनेवाली क्रियाओं की संवेदना मात्र नहीं, वे इनसे स्वतंत्र मनोभाव हैं। इन मनोभावों की सहगामी शारीरिक क्रियाएँ ही उन मनोभावों का कारण नहीं हैं। हमारी साधारण धारणा है कि संवेग के कारण शारीरिक चेष्टाएँ होती हैं तथा अनेक प्रकार की संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। हमारी यह धारणा विलियम जेम्स के सिद्धान्त की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक सत्य को अधिक दर्शाती है।

विलियम जेम्स महाशय के कथन में इतना सत्य अवश्य है कि यदि कोई मनुष्य किसी मनोभावना की सहगामी बाहरी चेष्टाओं को प्रकाशित न होने दे तो वह उस मनोभावना अथवा संवेग की प्रबलता को साधारणतया रोक देता है। परन्तु बाहरी चेष्टाओं को रोकने के लिए मनुष्य को अपने विचार और कल्पनाओं में भी परिवर्तन करना पड़ता है। इनके परिवर्तित होने पर ही संवेग परिवर्तित होता है अन्यथा संवेग और भी प्रबल हो जाता है। मनुष्य की अनेक प्रकार की जटिल मानसिक ग्रन्थियाँ[2] ऐसे ही संवेगों के कारण उत्पन्न होती हैं, जिनकी अनुभूति मन के भीतर तो होती है, परन्तु जो तदनुकूल बाह्य क्रियाओं में प्रकाशित नहीं होने दी जातीं। प्रबल संवेगों के दमन से, अर्थात् उन्हें बाह्य क्रियाओं में प्रकाशित होने से रोकने से मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है।

संवेगजनित मानसिक विकार

किसी भी संवेग के उत्पन्न होने पर दो प्रकार के मानसिक विकार होते हैं—अस्थायी और स्थायी। अस्थायी मानसिक विकार भावावस्था[3] कहलाते हैं और स्थायी मानसिक विकार स्थायीभाव[4] कहलाते हैं।

---

1 Brain 2 Products of emotions 3 Mood 4 Sentiment

भावावस्था—उमग संवेगजनित अस्थायी मानसिक विकार है। जब कोई संवेग एक बार मन में आता है तो वह अपना प्रभाव मन के ऊपर छोड़ जाता है। यह प्रभाव कुछ देर तक रहता है, पीछे अपने-आप नष्ट हो जाता है। जब तक यह प्रभाव रहता है तब तक वह संवेग मन में फिर से आ सकता है। थोड़ी-सी उत्तेजना होने पर भी पूरी प्रबलता के साथ यह संवेग, जिसकी उमग हमारे मन में है, मन को वश में कर लेता है। मान लीजिए, एक घर में पति-पत्नी बातचीत कर रहे हैं। स्त्री अपने पति से क्रोधित हो जाती है। झगड़ा समाप्त हो जाता है और स्त्री क्रोध की भावावस्था में चुपचाप बैठी है। उसका क्रोध अभी पूर्ण शान्त नहीं हुआ। इतने में घर की नौकरानी, जिसे दूध लेने के लिए भेजा था आती है और कहती है कि दूधवाले के यहाँ दूध नहीं मिला। अब मालकिन जो क्रोध की भावावस्था मे पहले से ही है, एकदम उत्तेजित हो उठती है और नौकरानी को भला-बुरा सुनाने लगती है। यदि मालकिन क्रोध की भावावस्था में न होती तो दूध न मिलने के कारण उसके मन में क्रोध की उत्तेजना न होती और नौकरानी उसकी डाँट-फटकार की भागी न होती। क्रोध की भावावस्था में रहने के कारण ही उसे डाँट-फटकार मिली।

लेखक की हाल की ही एक घटना का स्मरण है, जो लेखक के जीवन में ही घटी। वह अपने घर से दूसरी जगह जा रहा था। घर से रेल का स्टेशन दो मील पर है। घर से निकलने में कुछ देरी हो गई अतएव बड़ी तेजी के साथ स्टेशन जाना पड़ा। स्टेशन पहुँचने पर गाड़ी के आने की सूचना की घण्टी सुनी। लेखक को बड़ी प्रसन्नता हुई कि वह समय पर स्टेशन पहुँच गया। वह टिकट घर की ओर टिकट लेने बढ़ा। जब मनीबेग को खोला तो देखा कि उसमें टिकट लेने के लिए पैसा ही नहीं। ऐसी स्थिति में मनुष्य का मन कितना उद्विग्न होता है इसका अनुमान लगाना कठिन है। लेखक को अपने प्रति बड़ा क्रोध आया। घर से निकलते समय अपनी स्त्री से, जिसके पास पैसा रखा गया था, पैसा माँगा था। वह पेटी से पैसा निकालकर लाई और हाथ में देने ही को थी कि छोटी बच्ची रो पड़ी। वह उसे सँभालने में लग गई और लेखक स्वयं पत्नी से पैसा लेना भूल गया। जब स्टेशन से लेखक निराश घर आया तो उसके मन में निराशा और क्रोध की भावावस्था थी। अतएव अकारण ही स्त्री को अपनी गलती के लिए डाँट-फटकार सुनाने लगा। वास्तव में गलती उसकी न थी, गलती अपने-आपकी थी। यदि उस क्रोध की भावावस्था के समय स्त्री के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति मिलता और वह इसी समय लेखक को छेड़ता तो उस पर ही क्रोध आरोपित हो जाता।

जब पति-पत्नी आपस में लड़ते हैं तो बच्चे अकारण ही माता-पिता के द्वारा पिट जाया करते हैं। क्रोध की भावावस्था के समय किसी व्यक्ति के पास जाना अच्छा नहीं। जिस प्रकार क्रोध की भावावस्था क्रोध का आना सरल कर देती है, उसी प्रकार प्रेम की उमंग प्रेम का आना सरल कर देती है। जब किसी मनुष्य के विचार प्रेम और उदारता से भरे हों उस समय यदि कोई सहायता का प्रार्थी उसके पास जाय तो वह मनमानी सहायता पा लेता है। यदि वही प्रार्थी शोक की भावावस्था में उसके पास जाय तो उसे निराश होकर लौटना पड़ेगा और यदि क्रोध की भावावस्था में जाय तो सम्भव है उसे गाली भी खानी पड़े। भिखारी जब किसी मनुष्य के पास उसके भगवद्भजन के बाद जाते हैं तो उसकी साधारण अवस्था की अपेक्षा उसे अधिक उदार पाते हैं।

मन की भावावस्था का स्वास्थ्य पर भारी प्रभाव पड़ता है। क्रोध और भय की भावावस्था स्वास्थ्य की विनाशक होती है। इसी तरह प्रेम और उदारता की भावावस्था स्वास्थ्यवर्धक होती है। विनाशकारी भावावस्था का शीघ्रातिशीघ्र अन्त कर देना ही मनुष्य के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होता है। इस प्रकार की भावावस्था का परिवर्तन वातावरण के परिवर्तन से हो जाता है। यदि किसी मनुष्य के घर की परिस्थिति किसी विशेष समय दुःखद हो तो उसका उस समय घर से बाहर चला जाना लाभप्रद होता है।

भावावस्था में परिस्थिति के बदलने से मौलिक परिवर्तन हो जाता है। एक भावावस्था उसके विपरीत भावावस्था में परिणत हो जाती है। मान लीजिए, एक मधुमक्खी ने हमारे गाल में काट लिया है। हम उस मधुमक्खी के ऊपर क्रोध आ रहा है। हम उसे मारने दौड़ते हैं। इतने ही में हम देखते हैं कि हजारों मधुमक्खियाँ हमारे आस-पास उड़ने लगीं। हमारे क्रोध की भावावस्था अब भय में परिणत हो जाती है। हम किसी प्रकार अपनी जान लेकर भागते हैं और बड़ी कठिनाई से हम उन मधुमक्खियों से छुटकारा पाते हैं। भय की भावावस्था अभी शान्त न हो पाई थी कि हम एक मित्र को अपने सामने आते देखते हैं। अब हमारे हृदय में मित्र के प्रति प्रबल प्रेमोद्गार उठते हैं। हम सोचते हैं कि वह हमारा फूला हुआ चेहरा देखकर हमारे प्रति सहानुभूति प्रकट करेगा। जब मित्र समीप आता है तो हम क्या पाते हैं कि सहानुभूति के बदले हमारे चेहरे का विकृत रूप देखकर मित्र हँस पड़ता है। अब हमारी प्रेम की भावावस्था एकाएक क्रोध की भावावस्था में परिणत हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भावावस्था में मौलिक परिवर्तन होते रहते हैं। एक भावावस्था उसके विपरीत भावावस्था का भी कारण बन जाती है। हम छोटे बालकों में देखते हैं कि भाई-बहन एक दूसरे को चिढ़ाया करते हैं। इस प्रकार चिढ़ाने से उनके मन में क्रोध की भावावस्था पैदा हो जाती है, किन्तु यही क्रोध की भावावस्था एक दूसरे के प्रति प्रेम में परिणत हो जाती है। चिढ़ानेवाले भाई के प्रति बहन का जितना प्रेम रहता है, उतना न चिढ़ानेवाले भाई के प्रति नहीं रहता। जो पति-पत्नी आपस में उसी प्रकार शिष्टाचार करते हैं जैसा व बाहर के लोगों के साथ करते हैं, जिनमें कभी भी कहा-सुनी नहीं होती उनमें आपस के प्रेम का अभाव ही रहता है। साधारणत. लड़ने झगड़ने वाले पति-पत्नी में न लड़ने झगड़नेवालों की अपेक्षा अधिक प्रेम रहता है। जहाँ प्रेम होता है वहीं अनबन भी होती है। अनबन का अभाव प्रेम की उपस्थिति का परिचायक नहीं।

स्थायी भाव

जब किसी प्रकार का भाव मन में बार-बार उठता है अथवा एक ही प्रकार की भावावस्था जब मन में अधिक देर तक ठहरती है तब वह मन में विशेष प्रकार का स्थायी भाव पैदा कर देती है। किसी व्यक्ति के प्रति क्रोध से बार बार उत्तेजित होने से उक्त व्यक्ति के प्रति वैर का स्थायी भाव[1] हमारे मन में पैदा हो जाता है। यदि किसी बालक को कोई व्यक्ति बार-बार त्रास दे, तो उस व्यक्ति से वह घृणा करने लगता है। जब हम किसी व्यक्ति को बार बार चिढ़ाते हैं और उसे अप्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं तो वह हमें अपना शत्रु मान बैठता है। इसी तरह जब हम किसी विशेष व्यक्ति, पशु अथवा निर्जीव पदार्थ की ओर अपना प्रेम प्रदर्शन करते हैं तो उन पदार्थों की ओर हमारा प्रेम का स्थायी भाव बन जाता है। संवेग और स्थायी भाव में कुछ मौलिक भेद हैं। संवेग मन की क्रियमाण अवस्था है। स्थायी भाव मन की क्रियमाण अवस्था नहीं है, किन्तु वे अनेक प्रकार की क्रियाओं के कारण बन जाते हैं। संवेग का विषय शीघ्रता से बदल जाता है, स्थायी भावों का विषय-परिवर्तन होना कठिन होता है। एक प्रकार का संवेग एक ही प्रकार के स्थायी भावों को उत्पन्न करता है, पर एक प्रकार का स्थायी भाव अनेक प्रकार के संवेगों का कारण बनता है।

किस तरह एक ही प्रकार का स्थायी भाव अनेक प्रकार के संवेगों का कारण हो जाता है, यह एक साधारण उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

---
1 Sentiment

मान लीजिए, एक व्यक्ति के मन में देश-भक्ति का स्थायीभाव वर्तमान है। इस स्थायीभाव के होने पर जब वह अपने देश की उन्नति देखता है तो प्रसन्न होता है। जब वह देश पर आपत्ति आने की सम्भावना देखता है तब उसे भय और दुःख होता है। जब वह किसी दूसरे देशवासी-द्वारा अपने देश की निन्दा सुनता है तो उसे लज्जा अथवा क्रोध होता है। इस तरह हम देखते हैं कि एक ही स्थायीभाव मनुष्य के मन में अनेक प्रकार के संवेगों को उत्पन्न करता है।

स्थायीभाव अनेक प्रकार के पदार्थों के प्रति होते हैं। कुछ स्थायीभाव निर्जीव पदार्थों के प्रति होते हैं, कुछ पशुओं और मनुष्यों के प्रति और कुछ आदर्शों के प्रति होते हैं। हिन्दुओं के मन में मन्दिरों, ईसाइयों के मन में गिरजाघरों तथा मुसलमानों के मन में मस्जिदों के प्रति प्रेम का स्थायीभाव रहता है। किसी भी धर्म के अनुयायियों के मन में उनकी धर्म-पुस्तकों तथा धर्म की वस्तुओं के प्रति स्थायीभाव होते हैं। हिन्दुओं के मन में गाय के प्रति प्रेम का स्थायीभाव रहता है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में अपनी माता और बहिन के प्रेम का स्थायीभाव होता है। इसी तरह हर एक व्यक्ति के मन में उसे दुःख पहुँचानेवाले व्यक्तियों के प्रति वैर अथवा द्वेष का स्थायीभाव होता है। जिस प्रकार इन्द्रियगोचर पदार्थों के स्थायीभाव होते हैं, उसी तरह विशेष प्रकार की धारणाओं के प्रति मनुष्य के मन में स्थायीभाव होते हैं। एक वीर पुरुष के मन में बहादुरी के प्रति श्रद्धास्पद स्थायीभाव होता है और कायरता के प्रति घृणास्पद स्थायीभाव होता है। महात्मा गाँधी के मन में सत्य और अहिंसा के प्रति श्रद्धास्पद स्थायीभाव थे। पं. जवाहरलाल नेहरू के मन में साम्यवाद के प्रति वैसा ही स्थायीभाव है। इसी तरह हिन्दू नेताओं के मन में हिन्दू-संस्कृति के प्रति श्रद्धा का स्थायी भाव रहता है। पं. मदनमोहन मालवीय जी के मन में हिन्दू-संस्कृति के प्रति श्रद्धा का स्थायीभाव होना स्वाभाविक था।

स्थायीभाव का सहज वृत्तियों से घनिष्ट सम्बन्ध है। जिस प्रकार मनुष्य की सहज वृत्तियाँ मनुष्य को विशेष प्रकार के कामों में लगाती हैं, उसी प्रकार उसके स्थायीभाव उसे विशेष प्रकार के कामों में लगाते हैं। सहज वृत्तियाँ मनुष्य के जन्मजात स्वभाव के अंग हैं, स्थायीभाव उसका अर्जित स्वभाव है। स्थायीभाव ऐसी ही क्रियात्मक प्रवृत्तियाँ हैं, जैसी

1. Emotion.

की सहज प्रवृत्तियाँ। मैक्डूगल महाशय के कथनानुसार सहज वृत्तियाँ स्थायीभावों की जननी हैं। इनके परिवर्तन में ही स्थायीभाव बनते हैं। एक ही प्रकार के स्थायीभाव की उत्पत्ति में अनेक प्रकार की सहज वृत्तियाँ काम करती हैं।

उदाहरणार्थ, अपने घर के प्रति स्थायीभाव को बनानेवाली सहज वृत्तियों को देखिए। इसमें संग्रह और आत्म-प्रदर्शन की सहज वृत्तियाँ काम करती हैं। इसी तरह देशभक्ति के स्थायीभाव में अनेक सहज वृत्तियाँ काम करती हैं।

मनुष्य के सभी कार्य उसकी सहज वृत्तियों और स्थायीभावों द्वारा संचालित होते हैं। सहज वृत्तियों के साथ किसी-न किसी प्रकार का संवेग रहता है। इसी तरह प्रत्येक स्थायीभाव अनेक संवेगों का कारण होता है। इसी तरह हम देखते हैं कि मैक्डूगल महाशय का यह सिद्धान्त है कि हमारे सभी कार्य सहज वृत्तियों अथवा स्थायीभावों द्वारा संचालित होते हैं, उस सिद्धान्त का विरोध नहीं है जिसके अनुसार संवेग सब क्रियाओं के जनक माने जाते हैं।

प्रो० सेण्ड के मतानुसार स्थायीभाव एक प्रकार की आदतें हैं। ये आदतें संवेगजन्य हैं। जिस तरह किसी विशेष प्रकार की आदत पड़ जाने पर मनुष्य उसी प्रकार के कार्य करता है, उसी तरह किसी विशेष प्रकार के स्थायीभाव बन जाने पर वह विशेष प्रकार के संवेगों की अनुभूति करता है। स्थायीभावों का प्राण संवेगमय है। यह सिद्धान्त संवेगों को उतना व्यापक नहीं बनाता, जितना मैक्डूगल महाशय का सिद्धान्त बनाता है। जहाँ इसके अनुसार स्थायीभाव का सम्बन्ध भावना-मात्र से है, वहाँ मैक्डूगल के अनुसार उसका सम्बन्ध भावना और क्रिया दोनों से ही है। स्थायीभाव वास्तव में भावनात्मक और क्रियात्मक मनोवेग है।

स्थायीभाव और चरित्र

मनुष्य का चरित्र उसके स्थायीभावों का समुच्चय मात्र है; अर्थात् जिस मनुष्य के जैसे स्थायीभाव रहते हैं उसका चरित्र भी वैसा ही रहता है। किसी भी व्यक्ति के स्थायीभावों में आपस में संगठन होता है। उसका सर्वोच्च स्थायीभाव दूसरे स्थायीभावों का नियन्त्रण करता है। मनुष्य अपने स्थायीभावों से अपने को आत्मसात् कर देता है। उसका व्यक्तित्व इन्हीं स्थायीभावों के द्वारा प्रकाशित होता है। जब वह अपने स्थायीभावों के प्रति किसी तरह

का आघात होते देखता है तो वह इस आघात को अपने प्रति ही आघात समझता है। जिस मनुष्य के स्थायीभाव सुनियन्त्रित नहीं हैं अथवा जिसके मन में उच्चादर्शों के प्रति श्रद्धास्पद स्थायीभाव नहीं है, उसका व्यक्तित्व सुगठित तथा उसका चरित्र सुन्दर नहीं कहा जाता। दृढ और सुन्दर चरित्र के होने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य के मन में उच्चादर्शों के प्रति श्रद्धास्पद स्थायीभाव हो तथा उसके स्थायीभाव इस स्थायीभाव के द्वारा नियन्त्रित हों। स्थायीभाव हमारे अनेक प्रकार के विचारों के जनक होते हैं। उन्हीं के द्वारा प्राणी की अनेक क्रियाएँ संचालित होती हैं। ऐसी अवस्था में यह स्पष्ट है कि मन में सुन्दर स्थायीभावों के रहने से अधिक महत्व की वस्तु जीवन में कोई नहीं है।

यहाँ यह विचार करने योग्य है कि मनुष्य के विवेक और उसके स्थायी-भावों में क्या सम्बन्ध है। मनुष्य के अधिकांश विचार तथा क्रियाएँ स्थायीभावों के द्वारा संचालित होती हैं। जब विवेक स्थायीभावों के प्रतिकूल होता है तो मनुष्य के आचरण में उसका प्रभाव कुछ भी नहीं दीख पड़ता। यदि मनुष्य का विवेक एक बात कहे और उसके स्थायीभाव उसको विवेक के प्रतिकूल कार्य करने को प्रेरित करें, तो ऐसी अवस्था में वह या तो निष्क्रिय हो जाता है अथवा स्थायीभावों के अनुसार ही काम करता है और पीछे इस काम को विवेकपूर्ण सिद्ध करने के लिए झूठी युक्तियाँ ढूँढ़ लेता है। इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्य से उसके स्थायीभावों के प्रतिकूल काम नहीं कराया जा सकता। प्रत्येक हिन्दू पर्व के समय गंगा-स्नान करने जाता ही है, चाहे उसका विवेकपूर्ण विचार इसके प्रतिकूल ही क्यों न हो। हिन्दू-मुसलमान दंगों के समय दोनों सम्प्रदायों के विवेकी पुरुष भी एक दूसरे सम्प्रदाय के लोगों की सहायता ही करते थे। लड़ाई के समय विपक्षी की प्रशंसा सुनना किसी भी पक्ष को असह्य हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति शत्रु की निन्दा सुनना चाहता है, चाहे वह झूठी क्यों न हो; उसकी स्तुति नहीं सुनना चाहता। विवेक हमारी क्रियाओं को रोक अथवा मोड़ सकता है, उसमें स्वयं क्रियाओं को चलाने की शक्ति नहीं। क्रियाओं को चलाने की शक्ति भावनाओं में होती है, जो स्वयं ही स्थायीभावों के द्वारा सञ्चालित होती हैं। अतएव किसी भी व्यक्ति का आचरण सुधारने के लिए इतना ही आवश्यक नहीं है कि उसकी विवेक की शक्ति बढ़ायी जाय, उसे अनेक प्रकार का ज्ञान दिया जाय, वरन् यह भी आवश्यक है कि उसके स्थायीभाव योग्य और दृढ बनाये जायँ। पर जिस मनुष्य के मन में किसी सुन्दर आदर्श

के प्रति अथवा किसी महान् व्यक्ति के प्रति श्रद्धा और प्रेम के स्थायीभाव नहीं हैं, उसके जीवन में उसको दुराचरण से रोकने के लिए और सदाचार में मन लगाने के लिए कोई भी वास्तविक आधार नहीं है। दुराचार ज्ञान की वृद्धि से नहीं रोका जा सकता, उसके लिए सुन्दर स्थायीभावों का बनाना आवश्यक है।

व्यक्ति लोक-सेवा अथवा देश-सेवा का काम इसलिए नहीं करता कि इस प्रकार का काम करना उसके लिए उचित है, किन्तु ऐसा काम वह इसलिए करता है कि उस काम के किये बिना उससे रहा नहीं जाता, अर्थात् उसकी लोक-सेवा की भावना उन कार्यों के लिए उसे प्रेरित करता है और उसके किये बिना उसे चैन नहीं मिलता। कितने ही बड़े बड़े बुद्धिमान व्यक्ति दुराचरण करते हुए दिखाई देते हैं। वे इस प्रकार के कार्यों को हीन समझते हैं, किन्तु तिस पर भी व अपने आपको ऐसे कामों से नहीं रोक सकते। इसका कारण क्या है? इसका प्रधान कारण उनकी दूषित शिक्षा ही है। जिन लोगों में बुद्धि की वृद्धि अधिक हो जाती है किन्तु जिनके मन में सुन्दर स्थायीभाव नहीं बन पाते वे एक ओर बुद्धिमान होते हैं और दूसरी ओर दुराचारी। उनका विवेक उन्हें दुराचार से रोकने में असमर्थ होता है। अतएव देखा जाता है कि कितने ही अपढ़ लोग सदाचारी होते हैं और कितने ही पढ़े लिखे लोग दुराचारी। बहुत से सन्त उन अपढ़ों में ही पाये जाते हैं, जिनमें तर्क वितर्क करने की अधिक शक्ति नहीं है, किन्तु उनमें एक निश्चित धारणा के अनुसार काम करने की शक्ति है। इसके प्रतिकूल बहुत से तर्क वितर्क करने की योग्यता रखनेवाले व्यक्ति सुन्दर स्थायीभावों के अभाव में सदाचारी नहीं होते।

हमने विगत युद्ध में देखा कि फ्रांसीसी लोग बुद्धि में जर्मनी के समान होते हुए भी सरलता से परास्त कर दिये गये। इसका कारण यही है कि फ्रांसीसियों के मन में ऐसी दृढ़ देशभक्ति नहीं थी कि वे देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार हो जाते। अँगरेजों में ऐसी दृढ़ देशभक्ति वर्तमान है, अतएव वे लोग जर्मनी के आक्रमण से नहीं घबड़ाये और दृढ़ता से उनका सामना करके ही रहे।

विकृत स्थायीभाव

स्थायीभाव उचित अथवा अनुचित हो सकते हैं। अनुचित स्थायीभाव वे हैं, जो हमारे नैतिक मन की धारणा के प्रतिकूल होते हैं। मान लीजिए, किसी व्यक्ति के मन में अपने पिता के प्रति वैर अथवा घृणा का भाव है

और यह स्थायीभाव उसके पिता के प्रति श्रद्धा की नैतिकभावना के प्रतिकूल है। ऐसी स्थिति में यह स्थायीभाव उसकी चेतना के समक्ष नहीं आता। अतएव उस व्यक्ति को यह ज्ञान ही नहीं रहता कि उसके मन में अपने पिता के प्रति अवाञ्छनीय स्थायीभाव है। इस प्रकार के स्थायीभाव को, जिसे वह व्यक्ति जिसके मन में वह स्थायीभाव है स्वय स्वीकार न करे, विकृत स्थायीभाव कहते हैं। मनोविश्लेषण विज्ञान में इस प्रकार के स्थायीभाव को मानसिक-ग्रन्थि[1] कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के मन में इस प्रकार की अनेक अवाञ्छनीय मानसिक ग्रन्थियाँ रहती हैं। ये ग्रन्थियाँ मनुष्य के जीवन में अनेक प्रकार की उलझनें डालती हैं। इनके कारण मनुष्य के मन में अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं। कभी कभी यह देखने में आता है कि हम अपनी इच्छा के प्रतिकूल ही कोई काम कर बैठते हैं। ऐसे काम के लिए न हमने पहले विचार किया था और न पीछे उसे उचित कार्य समझते हैं। हम अपने इन कृत्यों के लिए बहुत पछताते हैं, तिस पर भी समय आने पर हम अपने आपको इन कामों को करने से नहीं रोक सकते। इस प्रकार की मानसिक स्थिति हमारी उन मानसिक ग्रन्थियों के कारण उत्पन्न होती है, जो हमारे मन में स्थित हैं और जिन्हें हम स्वय नहीं जानते। फ्रायड, एलडर और युग महाशय ने इस प्रकार की अनेक मानसिक ग्रन्थियों की खोज की है। जब तक ये मानसिक ग्रन्थियाँ सुलझ नहीं जातीं तब तक किसी व्यक्ति का जीवन पूर्णत विवेक द्वारा सचालित नहीं हो सकता। उसके जीवन में कुछ-न कुछ झक्कीपन अवश्य रहता है। ये मानसिक-ग्रन्थियाँ बरबस मनुष्य से विवेक के प्रतिकूल कार्य कराती हैं। मान लीजिए, किसी व्यक्ति के मन में किसी दूसरे व्यक्ति के प्रति घृणा की मानसिक ग्रन्थि है। उसकी नैतिक बुद्धि कहती है कि उसे उस व्यक्ति का आदर करना चाहिए, किन्तु वह किसी विशेष अवसर पर ऐसे काम कर बैठता है, जिससे कि उस दूसरे व्यक्ति का अनजाने अनादर हो जाता है। इस प्रकार के कार्य करने पर उसे स्वय आश्चर्य होता है।

स्थायीभावों का विषय-परिवर्तन

जिस प्रकार सवेगों का विषय-परिवर्तन होता है उसी प्रकार स्थायीभावों का भी विषय परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार का परिवर्तन कभी-कभी अयुक्तिसङ्गत होता है। मान लीजिए, एक व्यक्ति के मन में दूसरे व्यक्ति के

1 Complex.

प्रति घृणा की भावना है। यह घृणा की भावना इस व्यक्ति के अभाव में किसी दूसर व्यक्ति पर आरोपित हो जाती है जो इस दूसरे व्यक्ति की आकृति से मिलता हो, अथवा जो उसी गाँव में रहता हो या उसी तरह के कपड़े पहनता हो। किसी प्रकार का भी सम्बन्ध, चाहे वह कितना ही ऊपरी क्यों न हो, इस प्रकार के स्थायाभावों के आरोपण के लिए पर्याप्त होता है।

इस प्रकार का आरोपण विशेषकर विकृत स्थायीभावों में देखा जाता है। जो व्यक्ति पिता से घृणा करता है वह एमे सभी व्यक्तियों से घृणा करने लगता है जो उसके आदर के पात्र हैं अर्थात् जो उसके पिता से किसी भी गुण में सादृश्य रखते हैं। इन सभी व्यक्तियों में उस व्यक्ति का अदृश्य मन पिता की प्रतिमा देखता है। यदि पिता के प्रति व्यक्ति का वास्तविक प्रेम और आदर का भाव है, तो उसका वही भाव पिता की प्रतिमा स्वरूप सभी व्यक्तियों के प्रति होगा और यदि उसके प्रति भय और घृणा का भाव है तो उन सभी लोगो के प्रति भय और घृणा का भाव होगा जो उसके पिता की आकृति से समानता रखते हैं।

स्थायीभावो का सस्थापन[1] और विघटन[2]

ऊपर कहा जा चुका है कि किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति बार बार एक ही प्रकार के सवेग के उमड़ने से उसके प्रति एक विशेष प्रकार का स्थायी भाव बन जाता है। इस प्रकार का स्थायीभाव व्यक्ति में आजीवन बना रहता है। कुछ स्थायाभाव व्यक्ति की नैतिक धारणा के अनुकूल होते हैं और कुछ उसके प्रतिकूल। जो स्थायाभाव व्यक्ति का नैतिक धारणा के प्रतिकूल नहीं होते उन्हें स्वीकार करने में उसे कोई कठिनाई नहीं होती। किन्तु जो इसके प्रतिकूल होते हैं उन्हें स्वीकार करने में अड़चन पड़ती है। एसे स्थायाभाव मानसिक ग्रंथि कहलाते हैं। बहुत सी मानसिक ग्रंथियाँ व्यक्ति के बाल्य काल में बनती है, अर्थात् इन मानसिक ग्रन्थियों की जड़ बाल्यकाल के किसी अनुभव में होती है। जो लोग बालक की इच्छाओं का परवाह न कर उनका दमन करते हैं अथवा उसे ताड़ना देते हैं, उनके प्रति बालक के मन में घृणा उत्पन्न हो जाता है। जब बालक बड़ा होता है, तो उसे अपना यह घृणा का भाव उसकी नैतिक भावना के प्रतिकूल दिखाई देता है। इस तरह यह घृणा का भाव नैतिक मन द्वारा दबाया जाता है और तब चेतना के समक्ष नहीं आता।

---

1 Displacement 2 Dissolution

इस प्रकार की ग्रन्थियों का सुलझाव मनोविश्लेषण के द्वारा चेतन मन में लाकर और विचार के द्वारा उन्हें विघटित करके किया जा सकता है। किसी भी स्थायीभाव को, चाहे वह योग्य हो अथवा विकृत, उसके विपरीत भाव को बार बार मन में लाने से नष्ट किया जा सकता है। किसी व्यक्ति के प्रति वैर-भावना को उसी व्यक्तिके प्रति मैत्री-भावना का अभ्यास करके नष्ट किया जा सकता है। इसी तरह घृणा का भाव प्रेम-भाव बढ़ाने से नष्ट किया जा सकता है। कितने ही व्यक्तियों के मन में हीनता-सूचक भावना-ग्रन्थियाँ रहती हैं। इन ग्रन्थियो का विघटन वैराग्य-भाव और मैत्रीभावना के अभ्यास से किया जा सकता है। इस प्रकार का प्रतिकूल अभ्यास कर अपने आपको नये प्रकार की शिक्षा देता है। इस प्रकार की शिक्षा की उपयोगिता आधुनिक मनोविश्लेषकों ने नहीं पहचानी है, किन्तु भारतवर्ष के पुराने ऋषियों ने मन की उलझनों को सुलझाने में इस प्रकार के अभ्यासों की उपयोगिता को भली प्रकार से दर्शाया है। पातञ्जलि के योगसूत्र और बौद्धों के अभिधम्मनिकाय में मानसिक ग्रन्थियों को खोलने के अनेक उपाय दिखलाये गये हैं। इनके द्वारा कोई भी व्यक्ति अपने मन की उलझनें सुलझा सकता है और स्थायी मानसिक शान्ति-लाभ कर सकता है। आधुनिक चित्तविश्लेषकों में डाक्टर होमरलेन ने मनुष्य की मानसिक ग्रन्थि का सुलझाने में उपयुक्त शिक्षा, अर्थात् व्यक्ति का दृष्टिकोण बदलने पर अनेक प्रयोग किये हैं। इन प्रयोगों का फल बड़ा ही चमत्कारिक और उत्साहवर्द्धक है। जहाँ फ्रायड की रीति मन की अड़चनों का हटाने में असफल होती है, वहाँ होमरलेन की रीति सफल होती है। फ्रायड महाशय की रीति विश्लेषणात्मक तथा वैज्ञानिक है, होमरलेन की रीति सृजनात्मक और धार्मिक है। होमरलेन ने कितने ही पागलों को उनके दृष्टिकोण को बदलकर और उनसे मैत्री-भावना का अभ्यास कराकर स्वस्थ बना दिया है।

विशेष अध्ययन के लिये ग्रन्थ

1. *Boring, Langfield & Weld Foundation of Psychology*, Chap V
2. Gault and Howard An Outline of General Psychology Chap XIII
3. McDougall An Outline of Psychology Chap XI
4. Munn. Psychology Chap.
5. Skinner. Educational Psychology Chap III

प्रश्न

१—संवेग क्या है ? उसका मनुष्य की क्रियात्मक और ज्ञानात्मक प्रवृत्तियों से क्या सम्बन्ध है ?

२—संवेगों का मुख्य लक्षण बताइये। उदाहरण देकर यह स्पष्ट कीजिये कि संवेग वैयक्तिक अनुभव हैं ?

३—भाव और संवेगों में क्या सम्बन्ध है ? क्या संवेगों को शरीर में होनेवाले विकारों का एक विशेष प्रकार का परिणाम माना जा सकता है ?

४—संवेग का विपयान्तर किस तरह होता है ? उदाहरण देकर समझाइये।

५—क्रोध आते समय मनुष्य के शरीर और मन में जो विकार होते है उनका पूरा-पूरा विवरण दीजिये।

६—संवेग जनित मानसिक विकार कौन-कौन से होते हैं ? उदाहरण देकर समझाइये।

७—स्थायीभाव और भावावेश में क्या भेद हैं ? स्थायीभाव कैसे बनते हैं ?

८—मानसिक ग्रन्थि (काम्प्लेक्स) क्या है ? उदाहरण-देकर समझाइये।

———

छठा प्रकरण

सीखना[1]

सीखने की महत्ता

सीखना प्राणी की वह क्रिया है जिसके द्वारा उसकी कार्य करने की जन्मजात प्रवृत्तियों में परिवर्तन होता है। सहज क्रियाओं और मूल प्रवृत्तियों में ऐसा परिवर्तन, जो प्राणी को अपने जीवन में अधिक सफल बना दे, सीखने के द्वारा होता है। प्राणियों की मानसिक शक्तियों का विकास सीखने के द्वारा ही होता है। सीखने के द्वारा प्राणी अपने पूर्व अनुभव से लाभ उठाता है। प्रत्येक प्राणी कुछ न कुछ अपने जीवन में सीखता है। जिस प्राणी में जितनी अधिक सीखने की शक्ति होती है, उसका जीवन उतना ही अधिक विकसित होता है। कीड़े-मकोड़ों की अपेक्षा पक्षियों में सीखने की शक्ति अधिक होती है और पक्षियों की अपेक्षा चौपायों में। इसी तरह चौपायों की अपेक्षा मनुष्य में सीखने की शक्ति अधिक होता है। अतएव जितना विकसित जीवन पक्षियों का होता है, कीडे मकोड़ों का नहीं हो सकता और जितना चौपायों का होता है, पक्षियों का नहीं हो सकता। इसी तरह मनुष्य की बराबरी कोई अन्य प्राणी नहीं कर सकता। मनुष्य के नीचे वर्ग के प्राणियों के जीवन में उनके अधिक उपयोगी कार्यों में प्रायः मूल प्रवृत्तियाँ ही अधिक काम करती हैं। मनुष्य के जीवन में सीखने के द्वारा मूल प्रवृत्तियाँ इतनी परिवर्तित हो जाती हैं कि मनुष्य के व्यवहारों में उनका पता लगाना भी कठिन हो जाता है। जिसप्रकार निम्नवर्ग के प्राणी में मूल प्रवृत्ति द्वारा सञ्चालित कार्यों की प्रधानता रहती है, इसी तरह मानव-जीवन में आदतों द्वारा सञ्चालित कार्यों की प्रधानता रहती है। आदत सीखी हुई प्रतिक्रिया[2] का नाम है। आदत पुराने अनुभव से लाभ उठाने का परिणाम है। मनुष्य के अनुभव का विकास और नये काम करने की योग्यता सीखने से आती है।

---

1. Learning. 2 Reaction.

सीखने के प्रकार

सीखना प्रधानतः दो प्रकार का कहा जा सकता है—पहला क्रियात्मक और दूसरा विचारात्मक। विचारात्मक सीखना भी दो प्रकार का होता है—पहला अनुकरणजन्य[1] और दूसरा सूक्ष्मबुद्धिजन्य[2]। निम्नलिखित तालिका विभिन्न प्रकार के सीखने को दर्शाती है—
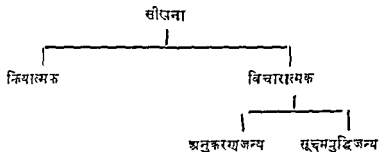
क्रियात्मक सीखना

मनुष्य से निम्नवर्ग के सभी प्राणियों का सीखने का कार्य प्रायः क्रियात्मक होता है। उनमें न तो विचार करने की शक्ति होती है और न दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाने की। अतएव किसी नई बात को सीखने के लिए उन्हें स्वय प्रयत्न करना पड़ता है। इस प्रकार के सीखने को प्रायः "प्रयत्न और भूल[3]" द्वारा सीखना कहा जाता है। इसका सबसे सरल उदाहरण मुर्गी के बच्चों के दाना चुगने में देखा जाता है। मुर्गी के बच्चों में किसी भी छोटी गोल सफेद चीज पर चोंच मारने की जन्मजात प्रवृत्ति होती है। वह इस प्रवृत्ति के कारण प्रत्येक छोटी सफेद गोल वस्तु के ऊपर चोंच मारता है। इनमें से कुछ तो खाद्य होती हैं और कुछ अखाद्य। वह कई बार अपनी चोंच छोटे कङ्कड़ों पर मार देता है। कुछ दिन के पश्चात् वह कङ्कड़ों पर चोंच मारना छोड़ देता है। कङ्कड़ के मुँह में लेने से उसकी खाने की प्रवृत्ति शान्त नहीं होती। जिस वस्तु के ऊपर चोंच मारने से उसे सन्तोष होता है, अर्थात् उसके खाने की इच्छा तृप्त होती है, वह उसे पहचानना सीख लेता है; फिर वह असन्तोष देनेवाले पदार्थ पर चोंच नहीं मारता। इस तरह मुर्गी का बच्चा अनेकों प्रयत्न और भूलें करने के पश्चात् दाना चुगना सीखता है। जब तक मुर्गी का बच्चा स्वयं प्रयत्न नहीं करता और उससे हजारों भूलें नहीं होतीं, तब तक उसे दाना चुगना नहीं आता। उसके

1. Imitative learning. 2. Learning through insight and understanding 3. Trial and Error method.

सीखने की क्रिया में सन्तोष और असन्तोष[1] नियामक का कार्य करता है। जिस क्रिया के होने से मुर्गी के बच्चे को सन्तोष मिलता है उसे दुहराने की प्रवृत्ति उसके मन में होती है, और जिससे असन्तोष होता है उसे छोड़ देने की प्रवृत्ति होती है।

क्रियात्मक सीखने के प्रयोग—मनोवैज्ञानिकों ने प्राणियों में विभिन्न प्रकार की सीखने की रीति और उसके नियम जानने के लिए अनेक प्रयोग किये हैं। इन में से कुछ प्रयोग उल्लेखनीय हैं।

सबसे सरल सीखने का उदाहरण सहज क्रियाओं के परिवर्तन में देखा जाता है। इसका एक उदाहरण हम सहज क्रियाओं का वर्णन करते समय दे आये हैं। जब बार-बार कुत्ते के सामने भोजन रखते समय घंटी बजायी जाती है तो घंटी के बजने से कुत्ते के मन में वे ही प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं जो भोजन के सामने आने से होती हैं। भोजन की घंटी तथा सुन्दर भोजन का नाम ही हमारे मुँह में पानी लाता है। ऐसा सीखना "उत्तेजना का परिवर्तन"[2] कहलाता है। बालक की सहज इच्छा दीप-शिखा को पकड़ने की होती है, किन्तु जब वह उससे एक-दो बार जल जाता है तो वह अपना हाथ दीप-शिखा से दूर खींच लेता है। इस प्रकार का सीखना "प्रतिक्रियाओं में परिवर्तन"[3] कहलाता है। उक्त दोनों प्रकार के सीखने का एक सुन्दर उदाहरण वुडवर्थ महाशय ने दिया है, जिसका प्रयोग कोई भी व्यक्ति कर सकता है—

के ऊपर की पीली चिट भोजन की उपस्थिति की सूचक है। देखा गया है कि यदि चूहे को बीस बार प्रतिदिन प्रयत्न करने का मौका दिया जाय, तो धीरे-धीरे उसकी गलतियों की संख्या कम होती है और करीब तीन दिन के पश्चात् वह भोजनवाले कमरे में जाने में कोई भूल नहीं करता, अर्थात् चूहा बार-बार प्रयत्न और भूलों के बाद वह सीख जाता है कि पीला निशान भोजन की उपस्थिति का सूचक है।

यदि अब प्रत्येक भूल के लिए चूहे को सजा भी मिले, जिस तरह कि उसे सही काम करने के लिए पुरस्कार मिला है तो चूहा और भी जल्दी सही काम करना सीख जाय। यदि बिना भोजनवाले कमरे में एक बिजली का तार लगा दिया जाय, जिसे छूते ही चूहे को एक झटका लगे तो वह पहले-पहल तो किसी भी कमरे में जाने से हिचकिचायेगा, किन्तु वह पहले की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से पीली चिटवाले कमरे में भोजन के लिए जाना सीख जायगा।

यहाँ हम देखते हैं कि चूहे की किसी भी दरवाजे में घुसने की प्रवृत्ति परिवर्तित होकर दरवाजे को भली भाँति देखने की प्रवृत्ति में परिणत हो जाती है। इस तरह मनुष्य के जीवन में भी कई बार भूलों के पश्चात् किसी काम में हाथ डालने के पहले स्थिति निरीक्षण की प्रवृत्ति पैदा होती है।

सीखने की क्रिया समझने के लिए भूल-भुलैया का भी प्रयोग किया जाता है। इस प्रयोग में अधिकतर चूहे से काम लिया जाता है। भूल-भुलैया के बीच में भोजन रख दिया जाता है और चूहे को उसमें छोड़ दिया जाता है। चूहे को भोजन की बास आती है, अतः वह उसकी ओर इधर-उधर सूँघता हुआ जाता है। वह पहले-पहल आगे और पीछे जाता है और भूल-भुलैया के प्रत्येक घरों को ठीक से देखता है। इस तरह खोजते-खोजते वह भोजन के स्थान पर पहुँच जाता है। जब दूसरी बार फिर चूहे को भूल-भुलैया के दरवाजे पर छोड़ते हैं तो वह भोजन की ओर तेजी से दौड़ता है। वह इस बार भोजन न रहने के स्थान पर जाता तो है किन्तु वहाँ देर तक नहीं ठहरता, कई बार प्रयोग करने के पश्चात् वह भूल-भुलैया में उस ओर मुड़ता ही नहीं जिस ओर उसे भोजन मिलने की सम्भावना नहीं रहती। वह सीधे भोजन की ओर दौड़ जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि कई बार प्रयत्न करने के पश्चात् चूहा व्यर्थ की क्रियाओं को करना छोड़ देता है और सार्थक क्रियाएँ करना सीख जाता है।

क्रियात्मक सीखने की विधियाँ—क्रियात्मक सीखने में प्रायः निम्न-लिखित पाँच विधियाँ काम में आती हैं —

(१) अनायास प्रतिक्रियाओं का होना[1]—प्रत्येक जीवधारी हर एक परिस्थिति में कुछ न कुछ करता रहता है। बालक जब तक जागता है अपने हाथ-पाँव चलाया करता है, वह अनेक वस्तुओं को देखता है, उन्हें हाथ में लेता और तोड़ता-मरोड़ता रहता है। वह इस प्रकार की अनायास क्रियाओं से अपने वातावरण के बारे में कुछ न कुछ सीखता रहता है। इसी तरह दूसरे प्राणी भी अपनी अनायास प्रतिक्रियाओं से बाह्य परिस्थिति में उचित व्यवहार करना सीखते हैं।

(२) व्यर्थ प्रतिक्रिया का निवारण[2]—किसी भी परिस्थिति में पड़ने पर जिन अनेक प्रतिक्रियाओं को प्राणी प्रयुक्त करता है, उनमें से जो सन्तोषजनक नहीं होतीं उन्हें वह छोड़ देता है। पहले-पहल मुर्गी का बच्चा प्रत्येक सफेद छोटे पदार्थ पर चोंच मारता है; किन्तु कंकड़ों पर जब चोंच मारने से सन्तोष नहीं प्राप्त करता, तो उसकी कंकड़ पर चोंच मारने की प्रवृत्ति का निवारण हो जाता है। इसी तरह चूहा भूल-भुलैया के उस मार्ग पर नहीं जाता जिसमें जाने से उसे सन्तोष नहीं होता।

(३) उत्तेजना का परिवर्तन[3]—किसी प्रतिक्रिया के लिए एक विशेष प्रकार की उत्तेजना के बदले कोई दूसरी उत्तेजना कारगर हो सकती है। साधारणतः कुत्ते के मुँह में लार भोजन के देखने से ही आती है, घंटी के बजने से भी कुत्ते के मुँह में लार आने लगती है। इस प्रकार के सीखने में "उत्तेजना के परिवर्तन" का उदाहरण मिलता है। भाषा के सीखने में हम इस विधि को कार्यान्वित होते देखते हैं। "नीबू" शब्द की ध्वनि हमारे मुँह में उसी प्रकार लार ले आती है, जिस तरह कि "नीबू" शब्द-द्वारा संकेतित पदार्थ लाता है। शब्दों का वस्तुओं से घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाने पर शब्द ही वस्तुओं के बदले काम में आने लगते हैं, शब्दों को सुनकर हमारे मन में वे ही मनोभाव उठते हैं, जो वस्तुओं के देखने से उठते हैं।

(४) प्रतिक्रिया का परिवर्तन[4]—इस प्रकार का सीखना बालक के अग्नि से डरने में देखा जाता है। जन्मजात स्वभाव से बालक जलती दीपशिखा को पकड़ना चाहता है किन्तु एक बार जल जाने के पश्चात्

1. Random responses. 2. Elimination of a response. 3. Substitute Stimulus. 4. Substitute response.

उसकी इस प्रकार की प्रवृत्ति में परिवर्तन हो जाता है। वह दीपशिखा को देखते ही उसकी ओर हाथ न बढ़ाकर उससे हाथ दूर हटाने की चेष्टा करता है।

यदि किसी बिल्ली को एक पिंजड़े में बन्द कर दिया जाय, तो वह पहले-पहल छड़ों के बीच से जाने की चेष्टा करेगी, किन्तु इस प्रकार के अपने प्रयत्न से निराश होने पर वह छड़ों से बाहर निकलने की चेष्टा नहीं करेगी। अब मान लीजिए, वह अपने निकलने की चेष्टा करते समय अचानक पिंजड़े के दरवाजे की सिटकनी को खींच देती है जिससे कि दरवाजा खुल जाता है, तो वह दूसरी बार अधिक दूसरे व्यर्थ परिश्रम न कर सिटकनी को खींचने की ही चेष्टा करेगी। शनैः-शनैः वह सिटकनी को खींचकर पिंजड़े से बाहर निकलने का मार्ग जान लेगी। यहाँ हम "प्रतिक्रिया के परिवर्तन" की रीति को कार्यान्वित होते देखते हैं।

(५) प्रतिक्रियाओं का एकीकरण[1]—पहले-पहल बच्चा सरल प्रतिक्रियाओं को ही कर सकता है। किन्तु धीरे-धीरे वह जटिल से जटिल कार्य कर लेता है। इस प्रकार के कार्यों का करना अनेक प्रतिक्रियाओं के एकीकरण से होता है। हमारा जीवन जटिल प्रतिक्रियाओं से भरा पड़ा है। चलना, भोजन करना आदि क्रियाएँ भी कई सरल प्रतिक्रियाओं के एकीकरण से सम्भव होती हैं। टाइप करना, साइकिल चलाना, हारमोनियम बजाना आदि क्रियाओं में कई प्रकार की प्रतिक्रियाओं का एक साथ होना प्रत्यक्ष देखा जाता है। पहले-पहल जो कार्य करना कठिन होता है, वही अभ्यास के पश्चात् सरल हो जाता है और थोड़े समय में हो जाता है।

अनुकरणात्मक सीखना[2]

जिस तरह प्राणी प्रयत्न और भूल के द्वारा नया काम करना सीखता है, उसी तरह वह दूसरों का अनुकरण करके भी सीख सकता है। इस प्रकार के सीखने को अनुकरणात्मक सीखना कहते हैं। इस प्रकार के सीखने पर मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोग किये हैं। हेगार्टी महाशय ने यह जानने के लिए कि जानवरों में अनुकरणात्मक सीखने की शक्ति कहाँ तक है, निम्नलिखित प्रयोग किया—

हेगार्टी ने एक पोली लोहे की नली को लेकर उसमें एक केला ठूँस दिया। अब इस नली को एक कमरे में बन्द भूखे बन्दर के सामने डाल दिया।

1. Combination of responses. 2. Imitative Learning.

बन्दर ने जब उस नली के भीतर केले को देखा तो उसने उसमें से केला निकालने के लिए अनेक प्रयत्न किये। नली को इधर-उधर पटका, पर केला उसमें से न निकला। अन्त में उसे एक उपाय सूझा। उसने पास में रखा हुआ एक डंडा उस नली के एक सिरे में ठूँसा। ऐसा करने से नली के दूसरे सिरे से केला निकल आया। बन्दर ने केला पाकर उसे खा लिया। जब दूसरी बार फिर इसी तरह नली में ठूँसकर केला डाला गया, तो उसे उस केले को निकालने में कोई अड़चन न हुई, अर्थात् वह एक ही बार प्रयत्न और भूल करने से ठीक तरह से केले को नली से निकालना सीख गया, पर पहली बार केला निकालने में उसे एक घंटे से अधिक देर लगी थी।

जब पहला बन्दर प्रयत्न और भूल की रीति से केला निकालने में लगा था, तो एक दूसरा बन्दर उसकी सब चेष्टाओं को देख रहा था। जिस समय इस बन्दर के सामने नली में ठूँसकर केला डाला गया, तो उसे केला पाने में एक मिनट की भी देर न लगी। उसने तुरन्त डंडे को उठाया और उसे नली के एक सिरे से ठूँसकर केला पा लिया। इस बन्दर ने अपनी अनुकरण की बुद्धि के द्वारा नया काम सीखने में लाभ उठाया।

अनुकरणात्मक सीखना, 'प्रयत्न और भूल' द्वारा सीखने से ऊँची श्रेणी का है। इस प्रकार के सीखने से हम दूसरों के अनुभव से लाभ उठाते हैं। मनुष्य के जीवन में जितना अनुकरणात्मक सीखना पाया जाता है उतना दूसरे प्राणियों में नहीं पाया जाता। वास्तव में बन्दर से नीची श्रेणी के प्राणियों में दूसरों का अनुकरण करके लाभ उठाने की शक्ति बड़ी ही परिमित होती है। मान लीजिए, जैसी स्थिति में हेगार्टी महाशय ने दूसरे बन्दर को रक्खा था, यदि बिल्ली को रक्खा होता, तो वह दूसरी बिल्ली के अनुभव से कुछ भी लाभ न उठा सकती। नये काम को सीखने के लिए जितनी भूलें पहली बिल्ली को करनी पड़ती हैं, उतनी ही दूसरी को भी करनी पड़ती हैं, चाहे वह दूसरी बिल्ली पहली बिल्ली के काम को देखती रही हो या न देखती रही हो।

बालकों में दूसरों के अनुकरण करने की शक्ति बड़ी प्रबल होती है। बालकों को अपने जीवन को सफल बनाने के लिए अनेक नयी बातें सीखनी होती हैं, अतएव प्रकृति ने उनमें दूसरों का अनुकरण करने की प्रवृत्ति भी प्रबल बनायी है। हमारी अधिकतर शिक्षा दूसरों का अनुकरण मात्र है। यदि दूसरों के अनुकरण से हम नये कामों को न सीखें और प्रत्येक काम के सीखने के लिए स्वयं प्रयोग करें, तो हमारा जीवन पशु-जीवन

से भी निम्न श्रेणी का हो जाय। सभ्यता का विकास हमारी दूसरों के अनुभवों को सञ्चित करने और उनसे लाभ उठाने की शक्ति पर निर्भर है। इस प्रकार का सञ्चय हमारी अनुकरण की प्रवृत्ति से होता है। अनुकरणात्मक सीखना सरल और शीघ्रता से होनेवाला होता है।

विचारात्मक सीखना[1]

सबसे उच्च कोटि का सीखना विचारात्मक होता है। इस प्रकार के सीखने को "सूक्ष्म दृष्टि और बूझ द्वारा सीखना" कहा जाता है। यह मनुष्यों में ही पाया जाता है। विचार द्वारा सीखने की योग्यता दूसरे प्राणियों में नहीं होती।

विचारात्मक सीखना प्रत्यक्ष क्रिया में प्रयत्न और भूलों को न करके विचार में उन्हें करना है। किसी कार्य का क्या परिणाम होगा, इसे विचारवान् मनुष्य अपनी कल्पना द्वारा निश्चित करता है, तत्पश्चात् वह किसी क्रिया को कार्यान्वित करता है। जिस मनुष्य की जितनी प्रबल कल्पना-शक्ति होती है, वह उतनी ही अधिक विचार की सहायता से नये काम को सीखता है तथा सफलता और विफलता की सम्भावना को पहले से ही कल्पित कर लेता है।

जब इञ्जीनियर किसी मकान को बनाता है, तो वह अपनी कल्पना में पहले से ही निश्चय कर लेता है कि उसे किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता होगी, और मकान के भिन्न-भिन्न भाग कैसे एक दूसरे पर अवलम्बित होंगे। इसी तरह कोई भी जनरल अपनी सेना द्वारा किसी विशेष कार्य किये जाने के पूर्व उसके परिणाम को भली प्रकार से अपनी कल्पना से स्थिर कर लेता है। यदि उसके विचार में कोई भूल हुई तो वह असफल होता है और यदि उसका विचार ठीक हुआ तो उसे सफलता मिलती है। जिस व्यक्ति की कल्पना जितनी प्रबल होती है, वह उतनी ही जल्दी किसी कार्य के सम्भावी परिणाम को जान लेता है। अतएव जिस कार्य में उसे विफलता की सम्भावना दीख पड़ती है उस कार्य को वह नहीं करता।

काफ़का महाशय का कथन है कि विचारात्मक सीखना दूसरे प्रकार के सीखने से एकदम भिन्न है, क्योंकि इस प्रकार के सीखने में मनुष्य अपने हाथ-पैर से काम न लेकर कल्पना से काम लेता है। दूसरे, जिस सूझ का इस प्रकार के सीखने में प्रयोग होता है, उसका दूसरे प्रकार के सीखने में नहीं होता। विचारात्मक सीखना मनुष्य की विशेषता है। इसी के कारण वह दूसरे

1. learning through insight and understanding.

प्राणियों की अपेक्षा अधिक योग्य बनता है। जो मनुष्य जितना अधिक अपने सीखने में बूझ से कार्य लेता है वह उतना ही योग्य होता है।

थार्नडाइक तथा दूसरे मनोवैज्ञानिक विचारात्मक सीखने को क्रियात्मक सीखने से भिन्न प्रकार का मानते हैं। उनका कथन है कि जिस तरह क्रियात्मक सीखने में प्रयत्न और भूलें होती हैं, इसी तरह विचारात्मक सीखने में भी प्रयत्न और भूलें होती हैं, अन्तर केवल स्तरों का है। एक में प्रयत्न और भूल शारीरिक क्रिया के रूप में देखी जाती है और दूसरे में विचार के रूप में।

यदि किसी व्यक्ति की बुद्धि माप करनी है तो हमें उसके नये काम करने के ढग में यह देखना चाहिए कि वह उसे प्रयत्न और भूल के द्वारा, या अनुकरण के द्वारा या सूक्ष्म दृष्टि और समझ की सहायता से करता है। किसी नए काम के करने में मनुष्य प्रायः अनुकरण अथवा विचार से ही काम लेता है। अनुकरण की सहायता से काम जल्दी से अवश्य होता है, पर इस प्रकार का कार्य करना मनुष्य की प्रतिभा का विकास नहीं करता। किसी मनुष्य के जीवन में अनुकरण का अत्यधिक होना उसमें प्रतिभा के अभाव का सूचक है। ऐसा मनुष्य नई परिस्थिति में पड़ने पर किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाता है।

सीखने के नियम[1]

अमेरिका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक थार्नडाइक महाशय ने सीखने के निम्नलिखित तीन नियम निश्चित किये हैं। ये नियम सभी प्रकार के सीखने में काम करते हैं—

(१) परिणाम का नियम[2]—यह नियम सन्तोष और असन्तोष का नियम[3] भी कहा जाता है। यदि किसी क्रिया के करने से प्राणी को सन्तोष अर्थात् सुख मिलता है तो उसकी उस क्रिया के करने की प्रवृत्ति प्रबल हो जाती है और यदि किसी क्रिया के करने से प्राणी को असन्तोष अर्थात् दुःख मिलता है तो उसकी उस क्रिया के करने की प्रवृत्ति निर्बल होकर अन्त में नष्ट हो जाती है। नई परिस्थिति में पड़ने पर प्राणी पहले-पहल अनेक चेष्टाएँ करता है, किन्तु इस नियम के कारण व्यर्थ चेष्टाओं का अन्त हो जाता है और उपयोगी चेष्टाएँ ही प्राणी के जीवन का अग बन जाती हैं। जब किसी चूहे को भूल-भुलैया में रखा जाता है तो वह कुछ काल की भूलों के पश्चात् उस स्थान पर जाना छोड़ देता है, जहाँ जाने से उसे

1. Laws of Learning. 2. The Law of Effect. 3. The Law of Satisfaction and Dissatisfaction.

निराशा मिलती है और उस मार्ग से जाना सीख जाता है जहाँ से जाने में उसे सन्तोष मिलता है। प्रत्येक बालक में सामने की वस्तु हाथ में लेने की प्रबल प्रवृत्ति होती है। जिन-जिन वस्तुओं को छूने से उसे दुःख होता है उन्हें वह हाथ में फिर नहीं लेता। इस तरह पहले-पहल बालक दीप-शिखा को पकड़ने के लिए दौड़ता है, किन्तु जब उसका हाथ एक बार जल जाता है तो फिर वह दीप-शिखा की ओर अपना हाथ नहीं बढ़ाता। जिस किसी काम को करने में हमें सफलता मिलती है, उस काम को करने की इच्छा बढ़ जाती है और उस काम का करना हम शीघ्रता से सीख लेते हैं। जिसके करने से असफलता मिलती है उसके करने की इच्छा निर्बल हो जाती है तथा ऐसे काम का करना कठिन हो जाता है। बालक उस काम को करना जल्दी से सीखता है जिसके करने से उसे शिक्षक तथा माता पिता की प्रशंसा मिलती है। जिस काम को करने से उसे फटकार मिलती है उसे वह नहीं करना चाहता। शिक्षा में "पुरस्कार और दण्ड" सदा काम में लाये जाते हैं और चाहे जितना इनके प्रतिकूल प्रचार किया जाय, उनका सम्पूर्णतया लोप होना सम्भव नहीं। स्वयं प्रकृति पुरस्कार और दण्ड के द्वारा मनुष्य को शिक्षित बनाती है। पुरस्कार और दण्ड का आधार मानव-स्वभाव है। प्रत्येक व्यक्ति सुख का इच्छुक और दुःख से बचने की चेष्टा करता है, अतएव जिस काम के करने से उसे सुख होता है उसी काम को करने की उसकी प्रवृत्ति होती है और उसी काम को करना वह सीखता है, जिस काम को करने से उसे सुख नहीं होता और न उसकी सम्भावना देखता है, उसे वह कदापि नहीं करता।

(२) अभ्यास का नियम[1]—इस नियम को "उपयोग और अनुपयोग का नियम"[2] भी कहा जाता है। किसी कार्य को बार-बार करने से वह ठीक से सीख लिया जाता है। जब किसी काम को कई दिनों तक नहीं किया जाता तो जो कुछ सीखा है वह भी नष्ट होने लगता है। जब बिल्ली को बार-बार सिटकनी दबाकर पिंजड़े से बाहर निकलना पड़ता है तो वह पिंजड़े से निकलना सीख जाती है, पर जब कई दिनों तक उसे यह कार्य नहीं करना पड़ता तो वह उसे करना भूल जाती है। इसी तरह बालक साइकिल चलाना, टाइप करना तथा गणित के सवालों को हल करना आदि कामों को बार-बार करने से सीखता है, जब अभ्यास की कमी हो जाती है, तो जो योग्यता प्राप्त कर ली गई है, वह भी खो जाने

1. The Law of Exercise. 2. The Law of Use and Disuse.

लगती है। किसी योग्यता को जीवित रखने के लिए यह आवश्यक है कि उस योग्यता को हम बार-बार काम में लावें। देखा गया है कि जब दक्ष क्रिकेट या फुटबाल के खिलाड़ी बहुत दिनों तक इन खेलों को नहीं खेलते तो उनके इन खेलों की कुशलता नष्ट हो जाती है। जो विद्यार्थी किसी विषय का नित्य अध्ययन नहीं करता रहता, वह उस विषय का अपना ज्ञान नष्ट कर देता है। जो शिक्षक अपनी पढ़ाने की योग्यता को सदा दूसरों के पढ़ाने में प्रयुक्त नहीं करता, वह उस योग्यता को खो देता है। इसी तरह कुशल कलाकार, लेखक, इञ्जीनियर आदि अपनी प्राप्त की हुई योग्यताओं को अनभ्यास से खो देते हैं।

(३) तत्परता का नियम[1]—इस नियम के अनुसार प्राणी को ऐसे काम करने में आनन्द मिलता है, जिनके करने की तैयारी उसमें होती है, और ऐसे काम करने से उसे असन्तोष होता है जिनके करने की तैयारी उसमें नहीं होती है, अर्थात् हम उसी काम के इच्छुक होते हैं जिसका हमें अभ्यास होता है। जिस खेल को खेलने की योग्यता किसी बालक में होती है उसे खेलने से बालक को प्रसन्नता होती है तथा जिसकी योग्यता नहीं होती उसमें उसे आनन्द नहीं मिलता।

सीखने में उन्नति

सीखने की उन्नति कई बातों पर निर्भर रहती है, जैसे—अभ्यास, रुचि, सीखने की रीति, पहले का अनुभव, सीखनेवाले की आयु, उसका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य और सीखने का वातावरण आदि। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में सीखने की शक्ति भिन्न-भिन्न होती है और एक ही व्यक्ति के सीखने की शक्ति में समय तथा वातावरण के अनुसार भेद होते हैं। सीखने की उन्नति का माप करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोग किये हैं। इनमें से कुछ प्रयोग हाथ से काम करने की कुशलता के हैं और कुछ विद्योपार्जन सम्बन्धी। विद्योपार्जन सम्बन्धी प्रयोगों के निष्कर्ष उतने स्पष्ट नहीं हैं, जितने कि हाथ से काम करके दक्षता प्राप्त करने के प्रयोगों के हैं। सीखने में उन्नति सदा एक-सी नहीं होती। किसी काम को सीखते समय पहले-पहल उन्नति अधिक होती है, फिर कुछ समय के लिए उन्नति स्थगित हो जाती है। यदि अभ्यास को जारी रक्खा जाय तो पीछे फिर उन्नति दिखाई देने लगती है।

1. The Law of Readiness 2. Progress in learning

सीखने का पठार[1]

सीखने की उन्नति के क्रम को जब किसी ग्राफ के कागज पर चित्रित किया जाता है, तो देखा गया है कि एक पठार का चित्र स्वयं बन जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने टाइपिंग और तार देने के वेग के ऊपर अनेक प्रयोग किये हैं। इन प्रयोगों के फलस्वरूप देखा गया है कि सीखने का काम पहले-पहल कुछ सप्ताह तक बड़े वेग से होता है, पीछे कुछ काल के लिए उसकी गति मन्द हो जाती है, किन्तु अभ्यास को जारी रखने पर पुन उन्नति दिखाई देने लगती है। निम्नलिखित चित्र इस प्रयोग के निष्कर्ष को प्रदर्शित करता है—

सीखने का पठार
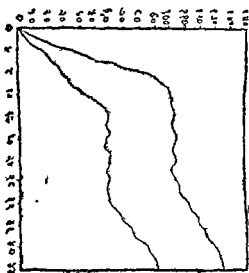
तार देने और तार लेने के सीखने में उन्नति

चित्र नं. ८

इस चित्र में ऊपर की रेखा तार भेजने की उन्नति को दर्शाती है और नीचे की रेखा तार लेने की उन्नति को। हम देखते हैं कि सीखनेवाला दस सप्ताह तक बड़े वेग के साथ तार सीखने के काम में उन्नति दिखाता है। इसके

1. Plateau of Learning.

पश्चात् उसकी गति रुक जाती है। दस सप्ताह के अभ्यास के पश्चात् वह ८० अक्षर प्रति मिनट भेज सकता है। अन्त में भी उसकी गति उतनी ही रहती है। चित्र इस काल को पठार के रूप में दर्शाता है। किन्तु बीस सप्ताह के पश्चात् पुनः सीखने के कार्य में कुछ उन्नति होने लगती है और यह उन्नति तब तक जारी रहती है जब तक कि वह अपनी सीमा तक नहीं पहुँच जाती। हाथ के काम की दक्षता में उन्नति की सीमा शरीर की योग्यता के ऊपर निर्भर है। अधिक अभ्यास करने के पश्चात् सम्भव है कि सीखनेवाला एक मिनट में डेढ़ सौ अक्षर तार द्वारा भेज सके। किन्तु वह चाहे जितना अभ्यास क्यों न करे, एक मिनट में पाँच सौ अक्षर नहीं भेज सकता।

सीखने की उन्नति किन-किन बातों पर निर्भर है, इसे जानने के लिए सीखने के पठार का कारण जानना आवश्यक है। सीखने का पठार प्रत्येक समय अवनति का सूचक नहीं होता। पठार की उपस्थिति दो कारणों से होती है—सीखने में रुचि की कमी होने से और सीखने में दृढ़ता लाने की आवश्यकता से। जब कोई व्यक्ति कई दिनों तक एक ही काम करता रहता है, तो उसकी उस काम में रुचि घट जाती है। वह जिस लगन के साथ आरम्भ में काम करता है, उस लगन के साथ उस काम से उकताव हो जाने के कारण नहीं करता। साइकिल चलाना तथा टाइपिंग सीखने में यह भली प्रकार से देखा जाता है। नये काम करने में हमारी रुचि बड़ी प्रबल होती है। जब काम पुराना हो जाता है तब रुचि शिथिल हो जाती है। कभी-कभी पठार काम में रुचि की कमी को प्रदर्शित करता है।

किन्तु, सभी समय रुचि की कमी पठार का कारण नहीं होती। पठार का कारण व्यक्ति की प्राप्त की गई योग्यता को दृढ़ बनाना भी होता है। जिस प्रकार नये देशों को जीतनेवाले राजा को यह आवश्यक होता है कि वह जीते हुए प्रान्तों में राज्य-व्यवस्था स्थापन के लिए समय-समय पर अपने राज्यविस्तार का काम रोक दे, उसी तरह नई योग्यता प्राप्त करनेवाले के लिए यह आवश्यक होता है कि वह सदा उन्नति पर ध्यान न रक्खे, वरन् जितनी योग्यता उसने प्राप्त की है उसे दृढ़ बनाने की चेष्टा करे। जो विद्यार्थी प्रतिदिन नये पाठ को पढ़ता रहता है और पुराने पाठ को परिपक्व करने के लिए कुछ भी समय नहीं देता, उसका ज्ञान और उसकी योग्यता स्थायी नहीं रहती। स्वयं प्रकृति ही हमें अत्यधिक उन्नति करने

से रोकती रहती है, जिससे कि हम अपनी प्राप्त की गई योग्यता अथवा ज्ञान को दृढ़ बना लें।

इस तरह हम देखते हैं कि हर एक स्थिति में पठार की उपस्थिति सीखने में अवनति की सूचक नहीं है। पठार का समय कभी-कभी नई, अधिक उपयोगी आदतों के बनने में लगता है। इन आदतों के बन जाने पर आगे उन्नति का मार्ग खुल जाता है। जब टाइप करनेवाला पहले-पहल टाइपिंग सीखता है, तो वह एक-एक अक्षर को टाइप करने का अभ्यास डालता है। इस रीति से टाइप करने की एक सीमा होती है। जब सीखनेवाला उस सीमा तक पहुँच जाता है तो उसके कार्य में कोई उन्नति दिखाई नहीं देती। अब उसे यह आवश्यक है कि अक्षरों को ध्यान में रखकर टाइप करने की आदत छोड़कर शब्दों को ध्यान में रखकर टाइप करने की आदत डाले। इस नई आदत के डालने में कुछ समय लगता है। यह समय सीखने में किसी प्रकार की उन्नति नहीं दर्शाता, किन्तु वास्तव में यह उन्नति का ही समय है, क्योंकि भावी उन्नति नई आदत के डालने पर ही निर्भर रहती है।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि सीखने का पठार प्रत्येक दशा में अवनति का सूचक नहीं है। किसी-किसी दशा में यह प्रत्यक्ष उन्नति का सूचक होता है। किन्तु कभी-कभी पठार वास्तविक अवनति का सूचक होता है। ऐसा पठार रुचि की कमी को प्रदर्शित करता है। जब इस प्रकार के पठार की उपस्थिति देखी जाय तो सीखने के कार्य में नये हेतुओं को उपस्थित करना चाहिये। हेतु की उपस्थिति से काम में रुचि बढ़ जाती है, जैसे कि उसके अभाव से काम में रुचि की कमी हो जाती है।

मान लीजिए, एक व्यक्ति टाइपिंग सीख रहा है। वह कुछ काल तक अपने काम में उन्नति करता है, पीछे उसके काम में शिथिलता आने लगती है। यह उसके काम से ऊब जाने के कारण होता है। अब यदि यह ज्ञात हो जाय कि यदि वह दो माह के अन्दर टाइपिंग सीख ले तो उसे सौ रुपया मासिक वेतन की नौकरी तुरन्त मिल जायगी, तो उसके सीखने की उन्नति असाधारण हो जायगी। वह बड़े वेग के साथ टाइपिंग सीखने लगेगा। एक माह सीखने के पश्चात् उसे यदि ज्ञात हो जाय कि जिस जगह को प्राप्त करने की उसे आशा थी, वह दूसरे को मिल गई तो उसके काम में एकाएक शिथिलता आ जायगी। अनेक प्रयोगों द्वारा मनोवैज्ञानिकों ने देखा है कि हेतु की उपस्थिति सीखने में वेग उत्पन्न करती है और उसका अभाव शिथिलता पैदा करता है।

प्रश्न

१—मानव-जीवन में सीखने की क्या महत्ता है? इस सम्बन्ध में पशु-जीवन से मानव-जीवन की तुलना कीजिए।

२—"प्रयत्न और भूल" द्वारा सीखने का स्वरूप उदाहरण द्वारा समझाइए।

३—सीखने की भिन्न भिन्न रीतियाँ कौन-कौन-सी हैं? उदाहरण द्वारा समझाइए।

४—सीखने के मुख्य नियम कौन-कौन से हैं? "सन्तोष और असन्तोष के नियम" को उदाहरण द्वारा समझाइए।

५—मनुष्य का सीखना पशुओं के सीखने से किन किन बातों में भिन्न है? विस्तारपूर्वक लिखिए।

६—"सूझ और समझ" द्वारा सीखना किस बात में दूसरे प्रकार के सीखने से भिन्न है? उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए।

७—सीखने का पठार क्या है? एक चित्र द्वारा समझाइए।

८—सीखने में उन्नति किस प्रकार हो सकती है? सीखने में अवनति के प्रधान कारण क्या है?

सातवाँ प्रकरण

आदत[1]

आदत का स्वरूप

आदत मनुष्य का अर्जित मानसिक गुण[2] है। आदत अभ्यास से उत्पन्न होती है। जिस प्रकार का अभ्यास हम बार बार करते हैं, उसी प्रकार की हमारी आदत बन जाती है। इस आदत के बन जाने पर हमारा मानसिक चेष्टाएँ उसी की अनुकूल दिशा में होती हैं। मनुष्य के जीवन में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ काम करती हैं—जन्मजात[3] और अर्जित। मूल प्रवृत्तियाँ जन्मजात मानसिक प्रवृत्तियाँ हैं, और आदतें अर्जित मानसिक प्रवृत्तियाँ हैं। जिस प्रकार मूल प्रवृत्तियाँ हमें विशेष प्रकार के काम करने के लिए प्रेरित करती हैं, उसी तरह आदतें भी हमें विशेष प्रकार के काम करने के लिए प्रेरित करती हैं, इस दृष्टि से आदत एक साधारण मानसिक संस्कार-मात्र नहीं है, वह एक क्रियात्मक प्रवृत्ति है। बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने आदत को स्वयं क्रियात्मक प्रवृत्ति नहीं माना है, किन्तु उसे क्रिया का विशेष मार्ग माना है जो किसी प्रकार बार बार क्रिया करने से उत्पन्न होता है। हमारे विचार से आदत एक प्रकार का मानसिक संस्कार अवश्य है, किन्तु प्रत्येक मानसिक संस्कार जड़ पदार्थ के मानसिक संस्कार से भिन्न होता है। जड़ पदार्थ स्वयं क्रियात्मक नहीं होता, जिस तरह आदत क्रियात्मक होती है।

आदतों की तुलना मूल प्रवृत्तियों से करना अधिक सार्थक है। मूल प्रवृत्तियाँ पैतृक संस्कारमात्र नहीं हैं, वे हमें विशेष प्रकार की चेष्टा में लगाती हैं, अर्थात् वे क्रियात्मक मानसिक प्रवृत्तियाँ हैं जो वंशपरम्परागत हमें प्राप्त होती हैं। इसी तरह आदतें भी साधारण जड़ पदार्थों के संस्कार सदृश नहीं हैं, ये क्रियात्मक प्रवृत्तियाँ हैं। जिस प्रकार मूल प्रवृत्तियाँ अनेक प्रकार की चाहों का कारण बन जाती हैं, उसी प्रकार आदतें भी अनेक प्रकार की चाहों का कारण बनती हैं और जिस तरह मूल प्रवृत्तियाँ मनुष्य को विशेष प्रकार के कामों में लगाती हैं, उसी तरह आदतें भी उसे विशेष प्रकार के कामों में

1 Habit 2. Acquired mental trait. 3 Congential

लगाती हैं। जिस तरह मूलप्रवृत्तिजन्य काम अपने-आप होता है, उसमें विचार की आवश्यकता नहीं होती, उसी तरह आदतजन्य कार्य भी अपने-आप मशीन सदृश होता है। स्टाउट महाशय ने आदतजन्य कार्यों को "अर्जित तथा अपने-आप होनेवाला कार्य"[1] बतलाया है।

आदत का आधार

मनुष्य में जन्म से ही अनेक प्रकार के कार्य करने की प्रवृत्तियाँ होती हैं। वातावरण के सम्पर्क में आने से इन प्रवृत्तियों में परिवर्तन हो जाता है। ये परिवर्तित प्रवृत्तियाँ ही आदतें कहलाती हैं। इस तरह हम देखते हैं कि जहाँ एक ओर आदतों का आधार मूल प्रवृत्तियाँ हैं, तो दूसरी ओर उनका आधार वातावरणजन्य संस्कार है। कितने ही मनोवैज्ञानिक आदतों का वर्णन करने में वातावरणजन्य संस्कारों को ही प्रधानता दिखाते हैं, मानो आदत जड़ पदार्थों के संस्कार-सदृश मानसिक संस्कार है। जड़वादी[2] और व्यवहार-वादी[3] मनोवैज्ञानिक उक्त सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। इसके प्रतिकूल चैतन्यवादी अथवा इच्छावादी[4] आदत का स्वरूप वर्णन करते समय मूल प्रवृत्तियों का महत्त्व अधिक दर्शाते हैं। वास्तव में आदत के बनने में दोनों बातें काम करती हैं—मूल प्रवृत्ति और वातावरण के संस्कार। मूल प्रवृत्तियाँ जन्मजात आदतों के आधार हैं और वातावरण के संस्कार अर्जित आदतों के। वास्तव में आदत बनने में वातावरणजन्य संस्कारों में मूल प्रवृत्तियों की शक्ति आ जाती है।

मूल प्रवृत्तियों में परिवर्तन सरलता से नहीं होता। वे हमारे दृश्य मन के ही नहीं, अदृश्य मन के भी अङ्ग हैं। वे वंशपरम्परा से प्राप्त होती हैं, अतएव वे सुदृढ़ हैं। मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में एक विशेषता यह है कि ये पशुओं की मूल प्रवृत्तियों के सदृश सुदृढ़ नहीं होतीं। उनमें परिवर्तन सरलता से हो जाता है। यदि मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में परिवर्तन होना सम्भव न होता और वे उतनी ही सुदृढ़ होतीं जितनी पशुओं की, तो आदतों का बनना असम्भव हो जाता। पशुओं में आदतें बहुत कम होती हैं। उनके जीवन का सञ्चालन अधिकतर मूल प्रवृत्तियाँ ही करती हैं। मनुष्य के जीवन में आदतों का इतना आधिक्य होता है कि यह कहना कठिन है कि उसके मूल प्रवृत्तियाँ हैं या नहीं। कितने मनोवैज्ञानिक मनुष्य के स्वभाव में मूल

1. "Habits are. secondary automatic acts." 2. Materialists. 3. Behaviourists. 4. Hormic school.

प्रवृत्तियों का अस्तित्व ही नहीं मानते। यह मनुष्य के जीवन में आदत की प्रधानता का परिणाम है।

किसी काम को बार बार करने से वह हमारे चेतन मन पर ही प्रभाव नहीं डालता, अपितु अचेतन मन का भी अङ्ग बन जाता है। चेतन मन का प्रत्येक अनुभव अचेतन मन को प्रभावित करता है। जो संस्कार जितना प्रबल होता है वह उतना ही हमारे स्वभाव का अङ्ग बन जाता है। संस्कार की प्रबलता उसके उद्वेगपूर्ण तथा बार बार होने पर भी निर्भर करती है। जब तक कोई संस्कार हमारे अदृश्य मन का प्रभावशाली अङ्ग नहीं बन जाता आदत का कारण नहीं होता। इस प्रकार आदतों का आधार मन के वे प्रबल संस्कार हैं जो हमारे अदृश्य मन पर स्थायी प्रभाव डालते हैं। आदतों के द्वारा मनुष्य के अदृश्य मन अर्थात् उसके स्वभाव का निर्णय होता है। हम मनुष्य का स्वभाव जिस प्रकार का बनाना चाहते हैं अथवा उसके स्वभाव में कोई मौलिक परिवर्तन करना चाहते हैं तो अभ्यास के द्वारा कर सकते हैं।

आदत के लक्षण

आदत के कामों के चार लक्षण हैं—समानता[1], सुगमता[2], रोचकता[3], ध्यान स्वातन्त्र्य[4]। इन चारों लक्षणों पर हम पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

समानता—आदत से किये गये कामों में समानता रहती है, अर्थात् जिस काम को हम आदतवश करते हैं वह पहले की भाँति ही होता है। हमारा चलना, बोलना, वेश भूषा, सोने जाना और सोकर उठना आदि जब आदत बन जाते हैं तो वे सदा एक से ही होते हैं। हस्तलिपि को देखकर उसके लिखनेवाले का अनुमान किया जा सकता है। मनुष्य प्रत्येक बार वैसा ही लिखता है, जैसा वह पहले लिखता आया है। आदत के काम मशीन के काम के समान एक से होते हैं। जिस काम को सदा एक सा ही करना होता है उसके करने में आदत बहुत उपयोगी होती है। फौज के सिपाहियों को बिना विचारे आज्ञा पालना आवश्यक होता है, अतएव उन्हें प्रतिदिन व्यायाम कराया जाता है। यह व्यायाम मनुष्य को मशीन के समान बना देता है। विलियम जेम्स ने एक बड़ा मनोरंजक उदाहरण इस विषय में दिया है—

एक फौज का पुराना सिपाही अपने भोजन के सामान अपने दोनों हाथों में लिये शहर की सड़क पर चला आ रहा था। एक दूकान पर एक

---

1 Uniformity 2 Facility 3 Propensity 4 Independence of Attention.

मसखरा बैठा उस सिपाही की चाल देख रहा था। उसके मन में सिपाही की हँसी कराने को उमङ्ग उठी। ज्योंही सिपाही उस दूकान के पास आया उस मसखरे ने एकाएक जोर से "अटेन्शन" (सावधान) कहा। "अटेन्शन" शब्द के सुनते ही सिपाही के हाथ नीचे गिर गये और जो सामग्री उसके हाथों में थी, नाली में गिर पड़ी। सिपाही का व्यवहार मशीन के समान हो गया था, अतएव "अटेन्शन" शब्द सुनते ही उसके हाथ अपने आप "सावधान" की स्थिति में आ गये।

सुगमता—अभ्यस्त कामों का दूसरा लक्षण सुगमता है। जिस काम के करने में हम अभ्यस्त हो जाते हैं, उसे बड़ी सरलता से कर लेते हैं। जब बालक पहले पहल अक्षर लिखता है तो अक्षर लिखने में बड़ी कठिनाई होती है। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह अक्षरों के रूप को ठीक-ठीक नहीं बना पाता। किन्तु जब बालक को लिखने का अभ्यास हो जाता है तो वह सरलता से पन्ने के पन्ने लिख डालता है। उसे इस काम में कोई अड़चन नहीं होती, और न किसी प्रकार की थकावट आती है। जब कोई व्यक्ति टाइपिंग सीखना आरम्भ करता है, तो बड़े परिश्रम के पश्चात् वह एक शब्द को टाइप कर पाता है, किन्तु कुछ काल अभ्यास के बाद वही व्यक्ति सुगमता से कई पन्ने टाइप कर लेता है। जब हम पहले-पहल साइकिल पर चढ़ने का प्रयत्न करते हैं तो कितनी अधिक गलतियाँ करते हैं और कितनी बार गिर जाते हैं। एक घंटे के यत्न के पश्चात् ही हमें थकावट आ जाती है, लेकिन जब हमें सायकिल पर चढ़ने की आदत पड़ जाती है तो न तो हम उतनी गलतियाँ करते हैं और न हमें वैसी थकावट होती है, जो प्रथम दिन के प्रयत्न में हुई थी। पहली बार जब कोई वक्ता सभा में बोलता है, तो उसे बड़ी कठिनाई होती है, अभ्यास हो जाने के बाद वही वक्ता धाराप्रवाह सभा में बोलने लगता है और उसका व्याख्यान इतना रोचक होता है कि श्रोताओं का ध्यान दूसरी ओर जाता ही नहीं। जब प्रथम बार हमें कोई अप्रिय काम करना पड़ता है तो बहुत ही थकावट होती है, उसी काम को बार-बार करने पर पहली बार जैसी थकावट नहीं होती।

लेखक को जब अपने विद्यालय में पढ़ाने के लिए घर से तीन मील साइकिल पर जाना पड़ा तो पहले सप्ताह यह काम बड़ा दुष्कर हो गया। किन्तु जब महीनों और वर्षों इसी काम का करना पड़ा तो उसकी कठिनाई बिल्कुल जाती रही। पहली बार जब कोई व्यक्ति कोयले की खान में

काम करने जाता है तो उसमें झुककर चलने के कारण उसके शरीर में बहुत पीड़ा होती है।

किन्तु जब उसे प्रतिदिन वही काम करना पड़ता है तो उसे वह पीड़ा नहीं होती।

इस तरह हम देखते हैं कि आदत के काम सहज क्रियाओं के सदृश सरलता से किये जाते हैं। किसी भी काम को आदत के द्वारा सरल बनाया जा सकता है।

रोचकता—आदत किसी भी काम में रुचि उत्पन्न कर देती है। पहले-पहल लेखक की चार वर्ष की बालिका जब पाठशाला में भेजी गई तो वह पाठशाला में ठहरना नहीं चाहती थी। किन्तु आज एक वर्ष के पश्चात् वह पाठशाला जाने के लिए बड़ी ही उत्सुक रहती है। छुट्टी का दिन उसे बड़ा बुरा लगता है। पहले पहल जो व्यक्ति शराब का प्याला पीता है अथवा बीड़ी व सिगरेट पीता है, उसे इन्हें पीना अच्छा नहीं लगता। बीड़ी और सिगरेट पीने की आदत दूसरों की देखा-देखी पड़ती है, किन्तु एक बार जब आदत पड़ जाती है तो इन मादक पदार्थों के बिना रहा नहीं जाता। बुरी आदतों को छोड़ना भली आदतों के छोड़ने की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन होता है। आदत से कोई भी कार्य रुचिकर होता है, किन्तु जिन कामों की ओर हमारी इन्द्रियाँ स्वतः ही हमें ले जाती हैं, उनमें एक बार रुचि हो जाने से उससे हटना कठिन हो जाता है। सिनेमा जानेवालों को सिनेमा देखे बिना रहा नहीं जाता और गप्प लगानेवालों को गप्प लगाये बिना रहा नहीं जाता। इन बातों की आदतें बन जाने पर उनमें अपने आप प्रवृत्ति होती है। जिस काम में हमारा अभ्यास है, हमारी रुचि भी उसी काम में होती है। इस तरह कोई भी काम कितना ही अरोचक क्यों न हो, अभ्यास के द्वारा रुचिकर बनाया जा सकता है।

ध्यान स्वातन्त्र्य—जब किसी काम के करने की आदत हमें पड़ जाती है तो उसके करने में हमें ध्यान की उतनी आवश्यकता नहीं पड़ती जितनी आदत न पड़ने की अवस्था में पड़ती है। जब बालक पहले-पहल लिखना सीखता है तो वह लिखने के प्रत्येक अङ्क पर ध्यान देता है। जिस ओर उसका ध्यान नहीं जाता उसी ओर भूल हो जाती है। शुद्धाशुद्ध लिखते समय जब बालक शब्दों के वर्ण विन्यास (वर्तनी) पर ध्यान देता है, तो उसके लेख के अक्षर सुन्दर नहीं होते और जब वह अक्षरों की सुन्दरता पर ध्यान देता है तो शब्दों की वर्तनी (स्पेलिंग) में भूल हो जाती है। अभ्यास होने के पश्चात् वह अपने-आप बिना ध्यान दिये ही सुन्दर अक्षर तथा शुद्ध

वर्ण विन्यास लिख लेता है। उसका ध्यान लिखित विषय के विचारों में लगा रहता है। यदि किसी लेख का लिखते समय मनुष्य को उसके सभी अंगों पर ध्यान देना पडे तो लेख लिखना असम्भव हो जाय।

अपनी दिनचर्या के बहुत से काम हम बिना ध्यान दिये ही करते रहते हैं। इन कामों को पहले-पहल करते समय उनके प्रत्येक अङ्ग पर ध्यान दिया जाता है, किन्तु इन कामों के बार-बार करने से वे स्वभाव के अग बन जाते हैं और अब बिना ध्यान दिये ही ये भले प्रकार से किये जाते हैं। हमारा पहनना-ओढ़ना, रहन-सहन, बोलना चालना, दूसरों के साथ व्यवहार प्रायः आदत के द्वारा ही सञ्चालित होते हैं, अतएव इनके लिये अधिक ध्यान की आवश्यकता नहीं होती। यदि हमारे साधारण जीवन के कामों में ही हमारा सारा ध्यान बँट जाय तो हम कोई महत्त्व का कार्य जीवन में न कर सकें। जब हम किसी गम्भीर समस्या के हल करने में लगे रहते हैं, तब भी हमारे जीवन की साधारण क्रियाएँ होती रहती हैं, उनमें कोई बाधा नहीं होती। यह आदत के कारण ही सम्भव होता है।

आदत का जीवन में महत्त्व

ऊपर जो कुछ आदत के विषय में कहा गया है, उससे आदत का महत्त्व मनुष्य-जीवन को सफल बनाने में स्पष्ट है। आदत मनुष्य का अर्जित स्वभाव है। जब मनुष्य की आदत किसी विशेष प्रकार की पड़ जाती है, तो वह वैसा ही आचरण करने लगता है। जिस मनुष्य को खेलने की आदत पड़ जाती है उससे बिना खेले रहा नहीं जाता; जिसकी गप्प लगाने, चुगली करने, डींग मारने, झूठ बोलने, नशा करने की आदत पड़ जाती है वह व्यक्ति इन कामों के किये बिना नहीं रह सकता। इसी तरह भली आदतें भी स्वभाव का अंग बन जाती हैं। अध्ययन करने की आदत, व्यायाम करने की आदत, समाज-सेवा करने की आदत स्वभाव का अङ्ग बन जाती हैं। मनुष्य का आदत के प्रतिकूल काम करना कठिन होता है। पशुओं के स्वभाव में भी आदत के प्रतिकूल काम करना कठिन होता है। पशुओं के स्वभाव में भी आदत के द्वारा कैसे महत्त्व के परिवर्तन होते हैं, इसका एक सुन्दर उदाहरण विलियम जेम्स ने अपनी प्रिन्सिपल ऑफ साइकालॉजी नामक पुस्तक में दिया है—

एक बार अमेरिका में एक रेल-दुर्घटना हो गई। रेल के कुछ डिब्बे रेल की पटरी से उतर गये और कुछ टूट फूट गये। इस रेलगाड़ी के एक

डिब्बे में कुछ दंगल (सरकस) दिखानेवालों का दल जा रहा था। उनके साथ अनेक जानवर थे। रेल की दुर्घटना होने पर एक शेर का पिंजड़ा, जिसमें शेर बन्द था, उचटकर डिब्बे से अलग जा गिरा। इससे पिंजड़े का दरवाजा खुल गया और शेर उसमें से बाहर निकल आया। पिंजडे से बाहर निकलने पर यह शेर अपनी स्वतन्त्रता के लिए जगल की ओर नहीं भागा। वह भौचक्का-सा होकर इधर-उधर घूमने लगा, मानो स्वतन्त्र जीवन की जिम्मेदारियाँ उसे भाररूप मालूम हो रही थीं। उसकी इस प्रकार की घबड़ाहट के कारण उसे सरलता से पकड़कर पिंजड़े में बन्द कर लिया गया।

रेसकोर्स में देखा गया है कि घोडे जब एक बार तेजी से दौड़ने लगते हैं तो उनके सवारों के गिर जाने पर भी वे तब तक नहीं ठहरते जब तक कि वे अपने अन्तिम लक्ष्य पर नहीं पहुँचते। वे बिना हाँके ही दौड़ते रहते हैं। इसी तरह सेना में बिगुल के बजने पर बिना सवार के ही घोडे प्रतिदिन के अभ्यास के अनुसार काम करने लगते हैं।

जब पशुओं के स्वभाव में इतना परिवर्तन होता है तो मनुष्य के स्वभाव में परिवर्तन की महत्ता कहाँ तक दर्शायी जा सकती है। मनुष्य का स्वभाव आदतों का ही पुञ्ज है। मनुष्य की बहुत-सी आदतें उसकी युवावस्था के पूर्व ही पड़ जाती हैं। यदि उसके बाल्यकाल में भली आदतें डाली गईं तो उसका जीवन सफल हो जाता है। यदि इस काल में उसकी आदतें भली न पड़ीं तो उसका जीवन सफल होना कठिन होता है। पढ़ने-लिखने की आदत, समय पर काम करने की आदत, रहन-सहन और दूसरों के साथ व्यवहार करने की आदत बाल्यकाल में ही पड़ती है, अतएव इस काल की आदतों को दृष्टि से महत्त्व का समझना चाहिए। जो काम बालक बार-बार करता है, वह उसके स्वभाव का अङ्ग बन जाता है प्रौढ़ लोगों की अपेक्षा बालकों में आदतें अधिक सरलता से डाली जा सकती हैं। प्रौढ़ लोगों में पहले कुछ आदतें पड़ी ही रहती हैं। ये आदतें नई आदतों के पड़ने में बाधक सिद्ध होती हैं। अतएव प्रौढ़ व्यक्तियों के जीवन में नई आदतें डालने के लिए उनकी पुरानी आदतों को मिटाना पड़ता है। एक यूनानी गाना-बजाना सिखलानेवाले के विषय में कहा जाता है कि जब कोई ऐसा व्यक्ति उसके पास जाता था, जिसने गाना-बजाना किसी अर्ध-शिक्षित से सीखा हो, तो वह साधारण सीखनेवालों की अपेक्षा दूनी फीस लेता था। यह आदत के महत्त्व को दर्शाता है। किसी भी मनुष्य को बीस

वर्ष के पश्चात् नई भाषा का सीखना कठिन होता है। बीस वर्ष की अवस्था तक मनुष्य का स्वभाव विशेष प्रकार का बन जाता है, पीछे इसमें परिवर्तन करना बड़ा कठिन होता है।

मनुष्य जिस काम का आदी हो जाता है, वह उसे साधारणतः प्रिय हो जाता है। यदि वह काम कठिन हुआ तो उसकी कठिनता जाती रहती है। मनुष्य जिस प्रकार के जीवन से अभ्यस्त हो जाता है, वह उसी प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहता है। गुलाम लोगों को गुलामी करना ही अच्छा लगने लगता है। यदि उन्हें स्वतन्त्रता दी जाय तो वे एकाएक अपने स्वतन्त्र जीवन के उत्तरदायित्व को सँभाल न सकेंगे। स्वतंत्रता प्रिय नहीं वरन् अप्रिय दिखाई देगी। जो बन्दी आजन्म अपना जीवन कारागृह में व्यतीत करते हैं वे जब वहाँ से छूट जाते हैं तो उनके लिए स्वतंत्र-जीवन बड़ा कठिन हो जाता है। कितने ही ऐसे बन्दी पुनः कारागृह में भरती होने के लिये प्रार्थना-पत्र देते हैं। फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के समय जब वहाँ का बेस्टायल नामक राजकीय कारागृह तोड़ दिया गया और उसके बन्दियों को एकाएक स्वतन्त्रता दे दी गई तो बहुत-से बन्दी, जो आजन्म इस बन्दीगृह में रहे थे, स्वतन्त्र नहीं होना चाहते थे।

समाज की निम्न श्रेणियों में मनुष्य आदत के कारण अपना जीवन संतोष से व्यतीत करता है। मिल के मजदूर और मिल-मालिकों के जीवन की विषमता आदत के कारण ही बनी रहती है और मजदूरों में क्रान्ति की उत्तेजना पैदा नहीं होती। भारतवर्ष में शताब्दियों से अछूत असह्य दुःख को भोगते चले आये हैं; किन्तु आदत के कारण उनका असह्य जीवन उन्हें उतना दुःखदायी नहीं प्रतीत होता, जितना कि अन्य लोगों को प्रतीत होता है, जिन्हें ऐसे जीवन में रहने का अभ्यास नहीं है। जब राजा हरिश्चन्द्र को एक चाण्डाल के घर नौकरी करनी पड़ी तो चाण्डाल के जीवन की कठिनाइयाँ कितनी असह्य हैं, यह दिखाई पड़ा। विरला ही उच्च श्रेणी का व्यक्ति ऐसे जीवन की कठिनाइयाँ सह सकता है। किन्तु चाण्डाल को अपना जीवन दुःखदायी नहीं सुखदायी ही प्रतीत होता है। यह अभ्यास का ही परिणाम है।

आदत मनुष्य की शक्ति का अपव्यय नहीं होने देती, अभ्यास के कारण मनुष्य दो-तीन काम एक साथ कर लेता है। जब कोई टाइप सीखनेवाला पहले-पहल टाइप करना सीखता है तो उसे एक-एक अक्षर पर ध्यान देना पड़ता है, तिस पर भी उससे भूलें हो जाती हैं। वही व्यक्ति जब अपने काम

में अभ्यस्त हो जाता है तो वह अक्षरों पर बिना ध्यान दिये हुए भी ठीक-ठीक टाइप कर लेता है। उसकी दृष्टि टाइप किये जानेवाली लिपि पर रहती है। पर उसके हाथ मशीन के समान काम करते रहते हैं। लेख लिखने में यही अभ्यास हमारा सहायक होता है। हमारे विचार पर ही हमारा ध्यान केन्द्रित रहता है। लिखने का काम अभ्यास के द्वारा अपने आप हो जाता है। यदि हमें अपनी हस्तलिपि, शब्दों के वर्ण विन्यास, वाक्य की रचना आदि पर ही अपने ध्यान को केन्द्रित करना पड़े तो लेख का लिखना असम्भव हो जाय। हमें विषय का सोचना तथा अपने विचारों को क्रम-बद्ध करना सम्भव ही न हो। इस तरह देखते हैं कि अभ्यास करने के कारण ही हम किसी भी जटिल काम को करने में समर्थ होते हैं। अभ्यास ध्यान की बचत करता है और भूलों में कमी होने का कारण होता है। जो रसोइया अपने काम में अभ्यस्त नहीं है, वह अनेक प्रकार की भूलें रसोई बनाने में करता है। कभी रोटी जल जाती है, तो कभी कच्ची रह जाती है, कभी नमक कम हो जाता है तो कभी अधिक, कभी किसी वस्तु में पानी कम हो जाता है तो कभी किसी में अधिक। प्रतिदिन एक न एक भूल उससे होती ही रहती है, किन्तु आदत पड़ने के पश्चात् रसोई के विषय में उससे कोई भूल नहीं होती। कुशल व्यापारी अपने व्यापार में भूल नहीं करता और कुशल शिक्षक शिक्षा के कार्य में भूल नहीं करता। इसका अर्थ यह नहीं कि व्यापार अथवा शिक्षा के प्रत्येक कार्य पर वे लोग अपना पूरा ध्यान देते हैं। बिना ध्यान के ही उनके बहुत से काम ठीक-ठीक होते हैं। यह आदत का ही फल है। इस तरह हम देखते हैं कि जीवन को सफल बनाने में आदत का कितना महत्त्व का स्थान है।

आदत डालने के नियम

विलियम जेम्स ने आदत डालने के निम्नलिखित नियम बतलाये हैं। ये नियम आदत डालने में अवश्य उपयोगी सिद्ध होते हैं—

(१) सङ्कल्प की दृढ़ता—जिस प्रकार की आदत हमें अपने जीवन में डालनी हो उसका दृढ़ सङ्कल्प करना चाहिए। हमारा सङ्कल्प जितना दृढ़ होगा हमारी आदत भी उतनी ही दृढ़ होगी। कहावत है कि भले प्रकार किसी काम को प्रारम्भ करना उसमें आधी सफलता प्राप्त करना है। अतएव जब हम किसी प्रकार की आदत अपने जीवन में डालना चाहें तो हमें उस आदत के महत्त्व को भली प्रकार से मन में बैठा लेना चाहिये। हम जितना

ही किसी आदत का महत्व समझेंगे उतना ही उसे डालने के लिए लगन के साथ अभ्यास करेंगे। जब किसी भले कामको प्रारम्भ करें तो अच्छा है कि सबके सामने प्रतिज्ञा करें कि हम अमुक भले काम को करते ही रहेंगे। इस प्रकार की प्रतिज्ञा करना हमारे संकल्प में दृढ़ता लाता है और जब कभी मानसिक कमजोरी के कारण हम अपने संकल्प से विचलित होने लगते हैं तो विचलित होने म रोकता है। बालकों में स्वाध्याय की आदत डालने के लिए एक विशेष दिन निश्चित किया जाता है, उस दिन उससे स्वाध्याय करने की प्रतिज्ञा कराई जाती है। इस प्रकार स्वाध्याय करने की प्रवृत्ति दृढ़ हो जाती है।

(२) कार्यशीलता—जब मनुष्य आदत के डालने के लिए कोई दृढ़ संकल्प कर ले तो उसे उस संकल्प के अनुसार जितनी जल्दी हो सके काम प्रारम्भ कर देना चाहिए। अंग्रेजी में कहावत है कि भले इरादे मनुष्य को नरक का भागी बनाते हैं। यदि किसी मनुष्य के इरादे तो भले हों, किन्तु उनके अनुसार उसकी क्रियाएँ कुछ भी न हों तो वह अवश्य नरक का भागी होता है। संसार मे कितने ही लोग ऐसे हैं जो नाटक में प्रदर्शित पात्रों के दुःखों के प्रति बड़ी सहानुभूति दिखाते हैं, किन्तु वे अपने नौकरों के दुःखों की परवाह नहीं करते। विलियम जेम्स ने रूस की दो महिलाओं की मनोरञ्जक मनोवृत्तियों का इस प्रसङ्ग में सुन्दर दृष्टान्त दिया है। ये महिलाएँ शहर के नाटकघरों में अपनी गाड़ी में बैठकर रात को नाटक देखने जाती थीं। वे कभी-कभी नाटक में प्रदर्शित पात्रों के कल्पित दु.खों के प्रति इतनी सहानुभूति दिखाती थीं कि अश्रुपात से उनके रूमाल भींग जाते थे; पर जाड़े के दिनों में उनका गाड़ी हाँकनेवाला नौकर गाड़ी पर ही रह जाया करता था। उसके पास काफी कपड़े न होने के कारण वह ठण्ढ के मारे सिकुड़ अथवा मर जाता था।

जो व्यक्ति बड़े-बड़े इरादे करते हैं, किन्तु उनके अनुसार कार्य प्रारम्भ नहीं कर देते वे उन रूसी महिलाओं के सदृश व्यर्थ ही अपने हृदय के उद्‌गार निकालते हैं। मनुष्य को अपने किसी सुन्दर विचार को खाली नहीं जाने देना चाहिए। निष्फल विचार मनुष्य के चरित्र को कमजोर बनाते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक सफल विचार मनुष्य के चरित्र को दृढ़ बनाता है।

(३) संलग्नता—किसी रुचि को आरम्भ करके उसे थोड़ी ही देर के पश्चात् छोड़ न देना चाहिए। आदत किसी काम को बार-बार करने से उत्पन्न होती है। यदि हम कुछ दिन तक एक आदत के डालने के लिए

अभ्यास करें, फिर एक दो दिन के लिए ढिलाई कर दें तो हमारा पहले का परिश्रम भी व्यर्थ हो जाता है। जिस प्रकार सूत का पिंडा लपेटते समय यदि वह हाथ से छूट जाय तो एक बार छूट जाने से कई मिनटों का परिश्रम व्यर्थ हो जाता है, उसी तरह जब हम किसी प्रकार की आदत डालने के लिए कोई काम पाँच सात दिन करते हैं; किन्तु एक दिन मानसिक कमजोरी के कारण उसे छोड़ देते हैं, तो हम अपनी इच्छित आदत डालने में समर्थ नहीं होते। आदत डालने की प्रारम्भिक अवस्था में काम में नागा कभी न होना चाहिए।

(४) **अभ्यास**—आदत अभ्यास का परिणाम है। जो आदत हमारे जीवन में पड़ गई है उसे जीवित रखने के लिए प्रतिदिन के अभ्यास की आवश्यकता है। भली आदतें कठिनता से जीवन में डाली जाती हैं, किन्तु सरलता से वे छूट जाती हैं, बुरी आदतें सरलता से जीवन में पड़ जाती हैं और कठिनता से छूटती हैं। जिन आदतों को हम अपने लिए लाभकारी समझते हैं, उनके रखने के लिए हमें नित्यप्रति अभ्यास करना चाहिए। नित्य प्रति व्यायाम की आदत कठिनता से पड़ती है, किन्तु सरलता से छूट जाती है। अतएव जो लोग इस आदत को बनी रहने देना चाहते हैं, वे यात्रा के समय भी या दूसरे की मेहमानी अवस्था में भी व्यायाम कर लेते हैं। कहावत है कि बैठे से बेगार भली। यदि हम किसी भी उपयोगी आदत को मिटने नहीं देना चाहते तो उस आदत के जीवन के लिए उसके अनुसार काम करना चाहिए, चाहे किसी प्रकार का अन्य लाभ हो अथवा नहीं। भले काम के करने से इतना लाभ तो अवश्य होता है कि ऐसे काम करने की आदत दृढ़ हो जायगी। जो लोग इस कथन की महत्ता समझते हैं कि संसार का सबसे स्थायी लाभ चरित्र लाभ है, उन्हें अपने चरित्र को भला बनाये रखने के लिए ही शुभ कार्य करना चाहिए।

बुरी आदतें

आदतें दो प्रकार की होती हैं, एक भली और दूसरी बुरी। भली आदतें मनुष्य के सद्गुण कहे जाते हैं और बुरी आदतें दुर्गुण। भली आदतें मनुष्य की इच्छा शक्ति को दृढ़ बनाती हैं, उसके चरित्र का विकास करती हैं, बुरी आदतें उसकी इच्छा शक्ति को कमजोर करती हैं, उसके चरित्र को दूषित बनाती हैं। भली आदतें प्रयत्न के द्वारा जीवन में डाली जाती हैं और प्रयत्न से ही वे बनी रहती हैं, बुरी आदतें अपने आप आ जाती हैं पर उनको निकालने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। जो आदत मनुष्य के विवेक

को बढ़ाती हैं वे भली हैं, जो उसमें आलस्य और पाशविकता बढ़ाती हैं वे बुरी हैं। अच्छी आदतें मनुष्य में मनुष्यत्व लाती हैं, बुरी आदतें उसमें पशुता की वृद्धि करती हैं। उनको सेवक बनाकर रखना भला है, मालिक बनाकर रखना बुरा है। जो आदतें हमारी सेविका हैं वे समय पर काम आती हैं। जब तक हम उनको रखने का प्रयत्न करते हैं वे तब तक रहती हैं। बुरी आदतें हमें अपना सेवक बना लेती हैं, वे हमें कष्टों में डालती हैं और बड़े प्रयत्न करने पर ही हम उनसे मुक्त होते हैं। चुगली करने, गाली देने, देर से सोकर उठने, तम्बाकू पीने, नशा करने, गन्दगी में रहने, उधार सामान खरीदने आदि की आदतें अनजाने ही पड़ जाती हैं, पर उनसे मुक्त होना कठिन होता है। इस प्रकार की आदतों के प्रति मनुष्य को सदा सतर्क रहना पड़ता है। असावधानी से रहने से कोई न कोई बुरी आदत अपने-आप अनजाने पड़ जाती है।

जटिल आदतों की उत्पत्ति

कई एक बुरी आदतें मन में किसी विशेष प्रकार की गाँठ के कारण पड़ जाती हैं। ये आदतें जटिल होती हैं। मनुष्य इन आदतों को यदि छोड़ना चाहता है तो भी नहीं छोड़ पाता। प्रत्येक बुरी आदत साधारण प्रयत्न से हटाई जा सकती है। जिस आदत को प्रकाशित होने का अवसर नहीं दिया जाता वह कमजोर हो जाती है, किन्तु जटिल आदत इस तरह कमजोर नहीं होती। इस प्रकार की आदत को छोड़ने के लिए मनोविश्लेषण की आवश्यकता होती है। कितने ही धनी घर के बालकों में छोटी-छोटी चीजों की चोरी करने की आदत होती है। वे इसलिए चोरी नहीं करते कि उस चीज की आवश्यकता उन्हें है, किन्तु उन्हें इस प्रकार के काम में एक प्रकार का मजा आता है। इस प्रकार की आदत को "क्लिप्टोमेनिया" कहते हैं। यह आदत मार-पीट से नहीं छूटती, मनोविश्लेषण से ही छूटती है। इसी तरह कितने ही लोगों में डींग मारने, झूठ बोलने, लड़ाई-झगड़ा करने आदि की आदतें मन में उपस्थित गाँठों के परिणाम-स्वरूप होती हैं। ऐसी अनेक गाँठों की खोज नवीन मनोविज्ञान ने की है।

नवीन मनोविज्ञान ने आदतों के पड़ने के विषय में हमारी प्राचीन धारणाओं में एकदम परिवर्तन कर दिया है। मनोविज्ञान के पुराने विचारों के अनुसार आदत की उत्पत्ति बार-बार अभ्यास से होती है। जिस घटना के संस्कार हमारे मन में बार-बार पड़ते हैं, हमारी आदत उस घटना के

अनुसार पड़ जाती है, अर्थात् हमारे मन पर वे संस्कार दृढ़ हो जाते हैं। हमारी काम करने की इच्छा भी उन्हीं संस्कारों के अनुसार होती है, जिनके अनुसार हमने पहले काम किया है। जिस प्रकार बार-बार घर्षण से जड़ पदार्थों में स्थायी-संस्कार पैदा हो जाते हैं, उसी तरह किसी काम के बार-बार करने से उसके करने की आदत पड़ जाती है। अतएव बालक से बार-बार किसी काम का कराया जाना ही उसमें उस काम को करने की आदत डालने के लिए पर्याप्त समझा जाता था। इसी तरह यदि किसी बुरी आदत को मिटाना हो तो उसकी विपरीत आदत डालने के लिए बालक से नित्य अभ्यास का कराना पर्याप्त समझा जाता था।

नवीन मनोविज्ञान ने उपर्युक्त दृष्टिकोण में पूर्णतः परिवर्तन कर दिया है। इस विज्ञान के कथनानुसार प्रत्येक आदत की जड़ किसी संवेग[1] में रहती है। इस संवेग के उत्तेजित होने पर आदत से होनेवाले काम किये जाते हैं। आदत एक प्रकार की मशीन है। यह मशीन अपने आप नहीं चल सकती। इसके चलाने के लिए स्टीम अथवा बिजली की शक्ति की आवश्यकता है। संवेग उस शक्ति का उत्पादन करते हैं जो आदत को क्रियमाण करती है। जिस समय आदत के पीछे काम करनेवाला तथा उसे शक्ति देनेवाला संवेग शिथिल हो जाता है उस समय आदत भी शिथिल हो जाती है। इस तरह भली आदत भले संवेगों के अभाव में नष्ट हो जाती है। नवीन मनोविज्ञान के अनुसार बुरी आदतों का कारण अभ्यास नहीं है, किसी एक विशेष प्रकार की मानसिक जटिलता है। बुरी आदतों के मिटाने के लिए चाहे हम कितना ही विपरीत अभ्यास बालक द्वारा क्यों न करायें, वह तब तक न मिटेगी जब तक उससे सम्बन्ध रखनेवाला विकृत संवेग[2] नष्ट नहीं हो जाता, अथवा मानसिक ग्रन्थि खुल नहीं जाती। इस सम्बन्ध में हेडफील्ड महाशय का निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय है—

"मानसिक चिकित्सा में देखा जाता है कि जब किसी भावना ग्रन्थि को पूर्णतः नष्ट कर दिया जाता है तो तत्सम्बन्धी बुरी आदत तुरन्त वैसे ही नष्ट हो जाती है, जैसे बिजली का प्रकाश बिजली के प्रवाह की धारा तोड़ देने पर समाप्त हो जाता है। कारण के हटा देने पर कार्य का अन्त अपने-आप हो जाता है। यदि आदत मानसिक ग्रन्थि के हटाने पर भी बनी रहे, अर्थात् हटाने में समय ले तो हमें यह समझना चाहिए कि मानसिक ग्रन्थि अभी तक विद्यमान है, वह पूर्णतया नष्ट नहीं की गई है। इसका प्रत्यक्ष

1. Emotion 2. Complex emotion

प्रमाण, धार्मिक परिवर्तनों में देखा जाता है। महान् से महान् पापी एक दिन में किसी अपने विशेष अनुभव से पुण्यात्मा बन जाता है और एकाएक ऐसी आदतों को छोड देता है जो आजन्म की उसकी साथिनी थी। मनुष्य के सवेगात्मक जीवन में परिवर्तन होने पर उसकी बुरी आदतें उसे सदा के लिये छोड जाती हैं। बुरी आदतों को मिटाने के लिए सम्भव है कि मानसिक चिकित्सक को उस ग्रन्थि को खोजने में, जो उस आदत का कारण है, अनेक सप्ताह अथवा महीने लगें, किन्तु एक बार उस मानसिक ग्रन्थि को ढूँढ लेने पर (जो उस आदत की जड़ है) और उसके निराकरण होने पर बुरी आदत एकाएक नष्ट हो जाती है। यह नियम न केवल कुछ आचरण की आदतों के लिए लागू होता है, वरन् शारीरिक आदतों, दुःखों की अनुभूति और अकारण भय की आदतों के लिए भी लागू होता है। नैतिक *सुधार में भी उक्त मनोवैज्ञानिक नियम कार्य करता है।*"*

उक्त सिद्धात का समर्थन अनेक ऐसे उदाहरणों से किया जा सकता है, जिन्हें मनोविश्लेषकों ने मानसिक चिकित्सा के समय प्राप्त किया है। हेडफील्ड महाशय की परिचित एक महिला ने विलियम जेम्स के भली आदत डालने के चार नियमों का अच्छी तरह से पालन किया। इन आदतों के द्वारा वह दूसरों के प्रति व्यवहार करने में अपने-आपका सुधार करना चाहती थी। उसके शिष्टाचार के नियमों के पालन के परिणाम-स्वरूप उसके व्यवहार में बाहरी रूप से बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। वह अपने व्यवहार को अपनी चाची के प्रति भी सुधारना चाहती थी, जिसके प्रति उसके मन में घृणा की जटिल ग्रन्थि थी। उसके अभ्यास से वह अपने आपको चाची के प्रति अशिष्ट व्यवहार करने से बहुत कुछ रोक सकी, किन्तु जिस दिन चाची मर रही थी उस दिन उसके मरने के विषय में उसने बात बात में अनुचित शब्दों का प्रयोग कर ही दिया। यह दिन इस महिला ने थिएटर जाने के लिए निश्चित किया था। चाची के मरने के कारण उसका यह कार्य रुक गया, अतएव वह एकाएक कह उठी, 'आखिर चाची ही तो ठहरी'; अर्थात् रग में भग डालना चाची का स्वभाव था, उसने उसे मरते समय भी प्रदर्शित किया।

सेण्ट पाल और वाल्मीकि ऋषि का जीवन हेडफील्ड महाशय के उपर्युक्त सिद्धान्त का समर्थक है। दोनों व्यक्ति एक ही बार के अनुभव से

*Psychology and Morals, p. 49

पापाचरण को छोड़कर महात्मा बन गये। उनके संवेगों में परिवर्तन होने पर न केवल उनके विचारों में परिवर्तन हो गया, वरन् उनके आचरण में भी परिवर्तन हो गया।

प्रश्न

१—आदत और मूल प्रवृत्तियों में क्या भेद है? उदाहरण देकर समझाइए।

२—आदत के काम के लक्षण क्या हैं? क्या आदत के कामों में ध्यान की पूर्ण आवश्यकता नहीं होती?

३—आदत का आधार क्या है? यह कहाँ तक सत्य है कि किसी भी कार्य को बार-बार दुहराने से उसकी आदत पड़ जाती है?

४—विलियम जेम्स के आदत डालने के नियमों को उदाहरण देकर समझाइए।

५—आदत का मानव-जीवन में क्या महत्त्व है? यह कहाँ तक सत्य है कि मनुष्य आदतों का पुञ्ज है?

६—रूसो महाशय के इस मत की समालोचना कीजिए कि इमील (आदर्श बालक) आदत नहीं डालने की एक मात्र आदत डालेगा।

७—आदतों का संवेगों के साथ क्या सम्बन्ध है? उदाहरण देकर समझाइए।

८—जटिल आदतें क्या हैं? वे मनुष्य-जीवन में कैसे पड़ जाती हैं? उनके निराकरण का उपाय क्या है?

९—किसी छोटे लड़के को सिगरेट पीने की आदत पड़ गई है, इसका क्या कारण हो सकता है? उसे इस आदत से कैसे मुक्त किया जा सकता है?

१०—"आदत सेविका के रूप में भली होती है किन्तु स्वामी के रूप में बुरी होती है"—इस कथन की सार्थकता उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

———

आठवाँ प्रकरण

ध्यान[1]

ध्यान का स्वरूप

ध्यान, चेतना की सबसे अधिक व्यापक क्रिया का नाम है। ध्यान मन की वह क्रिया है जिसका परिणाम ज्ञान होता है। प्रत्येक प्रकार के ज्ञान के लिए ध्यान की आवश्यकता होती है।

जब तक हम जाग्रत रहते हैं, हमारा ध्यान किसी-न किसी वस्तु की ओर लगा रहता है। जिस समय हम किसी वस्तु पर ध्यान नहीं देते उस समय हम सो जाते हैं। अतएव सोने की अवस्था में ही हम सर्वदा ध्यान-विहीन होते हैं। अपनी जाग्रत अवस्था में हमें विभिन्न प्रकार का ज्ञान होता रहता है। जिन वस्तुओं का हमें ज्ञान होता है उनमें से कुछ 'चेतना के विशेष केन्द्र' पर होती हैं और कुछ उसके आस-पास और कुछ तट पर। जिस वस्तु पर चेतना का प्रकाश सबसे अधिक केन्द्रित होता है, वह ध्यान का विषय कही जाती है। चेतना के प्रकाश का किसी वस्तु-विशेष पर केन्द्रीभूत होना ध्यान कहा जाता है। चेतना का प्रकाश[2] जिस पर केन्द्रित होता है उस वस्तु का स्वरूप भली भाँति स्पष्ट हो जाता है। वास्तव में किसी वस्तु के गुणों को अच्छी तरह समझने के लिए ही उस पर ध्यान दिया जाता है, अर्थात् चेतना के प्रकाश को उस पर केन्द्रित किया जाता है।

हमारा साधारण अनुभव है कि हमारे ध्यान का विषय क्षण-क्षण पर बदलता है। जब हमारी चेतना एक पदार्थ पर केन्द्रीभूत होती है तो उससे सम्बन्धित दूसरे पदार्थों का भी हमें सामान्य ज्ञान रहता है। इन पदार्थों का ज्ञान बहुत ही फीका होता है। इनमें से कोई कोई पदार्थ चेतना के ज्ञान की सीमा के अन्दर नहीं आते, किन्तु उसके निकट ही तट पर रहते हैं। जब हमारे ध्यान का विषय बदलता है तो जिस विषय पर हम पहले ध्यान दे रहे थे, चेतना के प्रकाश के केन्द्र से हटकर सामान्य ज्ञान के क्षेत्र में

---

1. Attention 2. Focus of consciousness.

अथवा ज्ञान के क्षेत्र के बाहर आ जाता है, किन्तु रहता है उसकी सीमा के समीप ही। उसका स्थान वे पदार्थ ग्रहण कर लेते हैं जो ज्ञान के सामान्य क्षेत्र में थे अथवा ज्ञान की सीमा के समीपवर्ती स्थल में वर्तमान थे। इस तरह चेतना के ज्ञान के केन्द्र, सामान्य ज्ञान के क्षेत्र और सीमा के बाहर की वस्तुओं में परिवर्तन होता रहता है।

मान लीजिए, एक व्यक्ति गेंद खेल रहा है। उसके ध्यान का विषय गेंद है, अर्थात् उसकी चेतना का प्रकाश सबसे अधिक गेंद पर केन्द्रित होता है। किन्तु इस व्यक्ति को गेंद खेलते समय अपने साथी खेलाड़ियों का ध्यान भी रहता है। यदि ऐसा न हो तो गेंद का खेलना सम्भव ही नहीं। उसे खेल के नियमों का भी स्मरण है, किन्तु इन नियमों का ज्ञान उसकी चेतना की ज्ञान-सीमा के किनारे ही रहता है। जब तक खेल निर्विघ्न चलता रहता है तब तक उसकी चेतना-शक्ति गेंद पर ही केन्द्रित रहती है, किन्तु किसी प्रकार का विघ्न उत्पन्न होने पर चेतना का प्रकाश नई परिस्थिति पर केन्द्रित हो जाता है। वह व्यक्ति अपने साथियों का चिन्तन करने लगता है अथवा खेल के नियमों के विषय में सोचने लगता है। गेंद चेतना के ज्ञानकेन्द्र से अलग हो जाती है और साधारण ज्ञान के क्षेत्र अथवा ज्ञान की सीमा के बाहर चली जाती है। दूसरी वस्तुएँ उसका स्थान ग्रहण कर लेती हैं। इस तरह खेलाड़ी की चेतनाओं के विषय में परिवर्तन होता रहता है। ध्यान का वास्तविक विषय वही है जिस पर चेतना का प्रकाश सबसे अधिक केन्द्रित हो।

ध्यान की विशेषता[1]

ध्यान की क्रिया की कुछ विशेषताएँ ऐसी हैं जिन्हें हम सरलता से समझ सकते हैं, और अपने मन के अन्तर्दर्शन तथा दूसरों के व्यवहारों द्वारा सरलता से पहचान सकते हैं। ध्यान के समझने के लिए इन विशेषताओं का समझना आवश्यक है—

प्रयत्नशीलता[2]—प्रत्येक ध्यान की मानसिक स्थिति प्रयत्न की उपस्थिति दर्शाती है। जब कभी हम मन को एक विषय पर एकाग्र करते हैं, तो हमें मानसिक प्रयत्न करना पड़ता है। यह प्रयत्न चाहे जान-बूझकर किया जाय अथवा अनजाने। जान-बूझकर प्रयत्न करने पर मानसिक शक्ति अधिक खर्च होती है। स्वाभाविक अथवा सहज ध्यान में जो अनजान होता है, इतनी मानसिक शक्ति खर्च नहीं होती, किन्तु शक्ति का कुछ-न-कुछ खर्च होना तो निश्चित ही है। जान-बूझकर किसी विषय

1. Characteristics of attention. 2. Presence of effort.

में ध्यान लगाने में सहज ध्यान की अपेक्षा थकावट भी शीघ्रता से आती है। यदि कोई मनुष्य किसी विषय पर ध्यान लगाने की चेष्टा कर रहा है और उसका ध्यान उससे बार-बार उचटता है, तो उसके ध्यान प्रयत्न में उसकी मानसिक शक्ति का अधिक व्यय होता है। ऐसी अवस्था में थकावट भी बड़े वेग से आती है।

ध्यान की स्थिति में विशेष प्रकार की शारीरिक चेष्टाएँ होती हैं। कोई मनुष्य किसी विषय पर ध्यान लगा रहा है अथवा नहीं, यह हम उसकी बाहरी चेष्टाओं तथा मुखाकृति से पहचान सकते हैं। ध्यान की स्थिति में मनुष्य अङ्ग कड़े रहते हैं। जिस प्रकार किसी काम के करने की तैयारी की अवस्था में मनुष्य की शारीरिक चेष्टाएँ विशेष प्रकार की होती हैं उसी तरह ध्यान की अवस्था में भी उसकी शारीरिक चेष्टाएँ विशेष प्रकार की होती हैं। उसकी शारीरिक चेष्टाएँ देखकर हमें ज्ञात हो सकता है कि वह किसी काम के करने के लिए सब तरह से तैयार है अथवा नहीं। फौज के सिपाहियों को जब किसी विशेष प्रकार की क्रियाओं के करने के लिए तैयार करना पड़ता है तो पहले सावधान* (अटेन्शन) शब्द कहा जाता है। सावधान के कहते ही सिपाही लोग कोई भी काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं। ध्यान इस तरह होनेवाली परिस्थिति के लिए मनुष्य को तैयार करता है।

यदि हम किसी सभा के उन लोगों की मुखाकृति और शारीरिक चेष्टाओं को देखें जो किसी वक्ता की बातों को ध्यान से सुन रहे हैं और इनकी तुलना उन लोगों की मुखाकृति और शारीरिक चेष्टाओं से करें जो वक्तृता को ध्यानपूर्वक नहीं सुन रहे हैं, तो हमें उनकी विषमता तुरन्त ही स्पष्ट हो जायगी। वक्तृता को ध्यानपूर्वक सुननेवाले लोग आगे को तने हुए दिखाई देते हैं। उनकी गर्दनें आगे को झुकी रहती हैं, आँखें खूब खुली रहती हैं तथा अग कड़े रहते हैं। इसके प्रतिकूल जो लोग इस वक्तृता पर ध्यान नहीं दे रहे हैं, वे कुर्सियों पर आराम से बैठे हुए दिखाई देंगे, उनकी दृष्टि स्थिर नहीं होगी, उनके सभी अंग शिथिल रहेंगे। इससे यह स्पष्ट है कि मनुष्य की क्रियात्मक मुद्रा में ध्यान की एकाग्रता बड़ी सरलता से होती है। क्रियात्मक मुद्रा ही ध्यान की एकाग्रता की सूचना है। लेटे हुए मनुष्य की अपेक्षा बैठे हुए मनुष्य का ध्यान अधिक एकाग्र हो सकता है। इसी तरह ढीले-ढाले बैठे रहने की अपेक्षा मेरुदण्ड को सीधा करके बैठने की स्थिति में

* सावधान = स + अवधान = ध्यान के सहित होना।

अथवा खड़े हो जाने की स्थिति में ध्यान की एकाग्रता अधिक रहती है। जो वक्ता अथवा शिक्षक अपना सम्पूर्ण ध्यान अपनी वक्तृता और शिक्षा को रोचक बनाने में लगाते हैं वे प्रायः खड़े होकर ही वक्तृता देते अथवा पाठ पढ़ाते हैं। उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि ध्यान की मानसिक स्थिति प्रयत्नात्मक है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य के क्रियात्मक मुद्रा में आते ही उसकी एकाग्रता अधिक हो जाती है।

विश्लेषणात्मक मनोवृत्ति[1]—ध्यान की अवस्था में मनुष्य की विश्लेषणात्मक मनोवृत्ति काम करती है। जिस विषय पर ध्यान दिया जाता है उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों को अलग अलग समझने की चेष्टा की जाती है। किसी भी विषय में ध्यान देने में जितने अंग अथवा पहलू दिखाई देते हैं उतने उस विषय के प्रथम ज्ञान में नहीं दिखाई देते। मान लीजिए, हम पहले-पहल किसी वायुयान को देखते हैं। हमारे प्रथम ज्ञान की अवस्था में वह हमें चील के सदृश एक पदार्थ दिखाई देता है। किन्तु जब हम वायुयान के ऊपर ध्यान देते हैं और उसे समझने का प्रयत्न करते हैं, तब हमें उसके अनेक अङ्ग-प्रत्यङ्गों का पता चलता है। हम फिर इन अङ्गों को अलग-अलग समझने का प्रयत्न करते हैं। किसी भी ध्यान के विषय का इस तरह विश्लेषण किये बिना उसका ठीक-ठीक ज्ञान जो कि विषय पर ध्यान देने का वास्तविक लक्ष्य है, नहीं होता।

रचनात्मक कार्य[2]—ध्यान की मनोवृत्ति विश्लेषणात्मक ही नहीं होती, रचनात्मक अथवा सगठनात्मक[3] भी होती है। विश्लेषण नयी रचना के लिए किया जाता है। हमारा किसी विषय का प्रथम ज्ञान स्पष्ट और तारतम्य-रहित अथवा क्रम-विहीन होता है। उस विषय पर ध्यान देने से वह ज्ञान स्पष्ट और सुसगठित हो जाता है। जब हम हवाई जहाज के विभिन्न अङ्गों का एक-एक का अलग-अलग अध्ययन कर लेते हैं तो इस समस्त ज्ञान को सुसगठित कर एक वस्तु का ज्ञान बनाते हैं। किसी भी वस्तु का परिपक्व ज्ञान इस तरह सुसगठित ज्ञान होता है। हमारे मन की विश्लेषणात्मक और सगठनात्मक क्रियाएँ साथ ही साथ होती हैं। वे एक दूसरे से अलग नहीं की जा सकतीं। हमारी प्रौढ़ावस्था के ससार का ज्ञान हमारे मन की सृष्टि ही है। जिस मनुष्य ने जितना अधिक किसी विषय पर ध्यान दिया है, वह उस विषय के बारे में उतना ही अधिक जानता है। अतएव ससार के किसी विषय क्षेत्र की मानसिक सृष्टि दूसरे लोगों की उसी क्षेत्र की

1 Analytic activity of consciousness 2 Constructive activity. 3 Synthetic

मानसिक सृष्टि से भिन्न होती है। यह ज्ञान सृष्टि ध्यान की विश्लेषणात्मक और संगठनात्मक क्रियाओं के द्वारा रची जाती है।

परिवर्तनशीलता[1]—ध्यान की उपर्युक्त विशेषताओं से यह स्पष्ट है कि ध्यान एक ही विषय के एक पहलू पर बहुत देर तक नहीं रह सकता। मान लीजिए, हम दीवाल पर लगे हुए किसी एक बिन्दु पर मन को थोड़ी देर तक एकाग्र कर रहे हैं तो हम देखते हैं कि हमारा मन उस बिन्दु पर थोड़ी देर तक एकाग्र रहता है। बहुत देर तक प्रयत्न करने पर ध्यान इधर-उधर भागने लगता है। हमारे मन में अनेक प्रकार के विचार उठने लगते हैं और हमारा ध्यान इनकी ओर जाता है। जिस विषय में हमारे समझने के लिए कुछ भी नहीं रहता, जिसके नये-नये पहलू हमारे सामने नहीं आते, उस पर अधिक देर तक ध्यान लगाना असम्भव है। जब हम एक ही विषय पर अधिक देर तक ध्यान लगाते हैं, तो हम उस विषय के अङ्ग प्रत्यङ्गों को समझते रहते हैं। हमारा ध्यान कुछ देर तक एक अग पर रहता है, फिर दूसरे और तीसरे पर चला जाता है। इस तरह ध्यान का विषय एक होते हुए भी क्षण क्षण पर बदलता रहता है। कोई व्यक्ति कितनी देर तक किसी विषय पर ध्यान लगा सकता है, यह उस विषय की जटिलता और उस व्यक्ति के मानसिक विकास पर निर्भर होता है। यदि कोई विषय ऐसा होता है जिसके अनेक पहलू नहीं हैं अथवा जो इतना सरल है कि उसके समझने के लिए कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है, तो ऐसे विषय पर अधिक देर तक ध्यान लगाना कठिन होता है। इस तरह जिस व्यक्ति को किसी विशेष विषय के समझने की शक्ति नहीं होती वह उस विषय पर अधिक देर तक ध्यान नहीं लगा सकता। जब हममें किसी विषय के समझने की शक्ति होती है तो हम उसके विभिन्न अङ्गों का एक एक कर विचार करते हैं और इस तरह हमारे ध्यान के लिए पर्याप्त सामग्री मिल जाती है। किन्तु जिस विषय के समझने की शक्ति हमारे मन में नहीं होती उसका हम भली भाँति विश्लेषण नहीं कर सकते, उसके अनेक पहलू हमें नहीं दिखाई पड़ते। अतएव हम उस पर अधिक देर तक ध्यान भी नहीं लगा सकते।

बालकों का ध्यान प्रौढ़ लोगों के ध्यान की अपेक्षा अधिक चञ्चल होता है। इसका कारण यह है कि उनके किसी भी विषय के समझने की शक्ति परिमित होती है, उसको ध्यान के विषय के उतने पहलू नहीं दिखाई देते जितने कि

1 Shifting nature

प्रौढ़ लोगों को दिखाई देते हैं। वास्तव में प्रौढ़ लोगों के ध्यान का विषय वैसे ही बदलता रहता है जैसे कि बालक के ध्यान का विषय। किन्तु प्रौढ़ व्यक्ति का एक ही विषय के अनेक पहलुओं पर ध्यान बदला करता है और बालक के ध्यान का विषय ही बदल जाता है। यदि किसी प्रौढ़ व्यक्ति की समझ सुविकसित न हो और वह किसी विषय के बारे में उतना ही समझ सके जितना कि एक बालक समझता है, अर्थात् यदि वह उस विषय के विभिन्न अङ्गों को न देख सकता हो तो इस प्रौढ़ व्यक्ति का ध्यान भी वैसा ही चचल होगा जैसा कि बालक का। ध्यान क एकाग्र करने की शक्ति वास्तव में ध्यान की अपरिवर्तनशीलता में नहीं है, किन्तु समझ के विकास में है। जिस व्यक्ति की जितनी अधिक समझ होती है वह उतना ही अधिक किसी विषय पर ध्यान एकाग्र कर सकता है।

लक्ष्य-पूर्णता[1]—ध्यान की क्रिया लक्ष्य-पूर्ण होती है। किसी विषय पर ध्यान अपनी इच्छा की सन्तुष्टि के लिये होता है। जिस विषय में जितनी अधिक दृढ़ इच्छा होती है, उस विषय पर उतनी ही एकाग्रता से ध्यान लगता है। जैसे-जैसे किसी व्यक्ति के लक्ष्य विकसित होते हैं, उसके ध्यान लगाने की शक्ति भी उतनी ही बढ़ती है। सुसङ्गठित चित्त होने पर ध्यान के विभिन्न विषयों में एकता हो जाती है। एक ही लक्ष्य सभी विषयों को सूत्रीभूत करता है। ध्यान का अधिक चंचल होना जीवन में लक्ष्य-विहीनता का सूचक है। बालक का ध्यान उसकी मूल प्रवृत्तियों द्वारा ही सञ्चालित होता है। मूल प्रवृत्ति-जनित इच्छाओं की तृप्ति करना ही ध्यान का लक्ष्य होता है। ये इच्छाएँ जल्दी-जल्दी बदलती रहती हैं। अतएव ध्यान का विषय भी बदलता रहता है। प्रौढ़ लोगों की इच्छाएँ मूल प्रवृत्तियों के अतिरिक्त उनके स्वाभिमान अथवा आदतों द्वारा भी संचालित होती हैं, अतएव वे किसी विषय पर देर तक ध्यान दे सकते हैं।

ध्यान के कारण[2]

किसी विषय पर ध्यान लगाने के दो प्रकार के कारण होते हैं—एक बहिरङ्ग[3] और दूसरा अन्तरङ्ग[4]। दोनों प्रकार के कारणों में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि वे एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। किन्तु विषय का भली भाँति प्रतिपादन करने के लिये हमें उन पर अलग-अलग विचार करना उचित है।

---

1. Purposive. 2. Conditions of attention. 3. Objective conditions 4 Subjective conditions

बहिरङ्ग कारण—किसी विषय पर ध्यान जाने के बहिरङ्ग कारण निम्नलिखित हैं। हम इन पर एक एक करके विचार करेंगे।

(१) उत्तेजना की प्रबलता[1]—हमारी चेतना के समक्ष हर समय बाहर में उत्तेजनाएँ आती रहती हैं। ये उत्तेजनाएँ संवेदना के रूप में चेतना के समक्ष उपस्थित होती हैं। हमारा ध्यान उसी उत्तेजना द्वारा आकर्षित होता है जो दूसरी उत्तेजनाओं की अपेक्षा अधिक प्रबल होती है। रेल के प्लेटफार्म पर अनेक प्रकार का हल्ला-गुल्ला होता रहता है। हमारा ध्यान उस हल्ले-गुल्ले पर इतना आकर्षित नहीं होता जितना कि रेल की सीटी पर होता है। शाम को बजनेवाला बिजलीघर का भोंपू सब हल्ला-गुल्ला होते हुए भी हमारा ध्यान आकर्षित करता है। उनके ध्यान आकर्षित करने का प्रधान कारण उत्तेजना की प्रबलता ही है। धीरे-धीरे बोलनेवाले की अपेक्षा जोर से बोलनेवाला वक्ता सभा के लोगों का ध्यान अधिक आकर्षित करता है। धीरे-धीरे रोने की अपेक्षा बालक का चिल्लाकर रोना माता तथा आस-पास के लोगों का ध्यान अधिक शीघ्रता से आकर्षित करता है। भड़कीले रङ्ग के कपड़े पहननेवाला व्यक्ति फीके रंग के कपड़े पहननेवाले व्यक्ति की अपेक्षा दूसरों का ध्यान अधिक आकर्षित करता है। चटकीले रंग से बनी तस्वीर हल्के रंग से बनी तस्वीर की अपेक्षा अधिक ध्यान आकर्षित करती है। प्रबल सुगन्ध अथवा दुर्गन्ध साधारण गन्ध की अपेक्षा शीघ्रता से ध्यान आकर्षित करती है। इस तरह हम देखते हैं कि कि उत्तेजना की प्रबलता ध्यान के आकर्षण का एक प्रधान कारण है।

(२) परिवर्त्तन[2]—ध्यान के आकर्षण का दूसरा बहिरंग कारण विषय का परिवर्तन है। मान लीजिए, हम बार-बार रेल की सीटी सुनते हैं और उसमें कुछ परिवर्तन नहीं देखते, तो उत्तेजना प्रबल होने पर भी उस पर हमारा ध्यान नहीं जा सकता है। ध्यान का एक मुख्य गुण परिवर्तन-शीलता है। प्रबल उत्तेजना तभी तक ध्यान को आकर्षित करती है जब तक उसमें हम कुछ विशेषता देखते हैं। जब उत्तेजना विशेषताविहीन हो जाती है तो वह ध्यान को आकर्षित नहीं करती। प्रबल उत्तेजना में एकाएक परिवर्तन होने पर वह ध्यान को आकर्षित करती है, चाहे वह परिवर्तन उत्तेजना में बढ़ती की ओर हो अथवा घटती की ओर। मान लीजिए, हमारे सामने एक घड़ी रखी हुई है। वह टिक-टिक शब्द कर रही है। हम अपने लिखने पढ़ने के काम में लगे हुए हैं। घड़ी का टिक-टिक शब्द मानो हमें

1. Intensity of stimulus. 2. Change.

सिर्फ सुनाई देता है। किन्तु एकाएक घड़ी बन्द हो जाती है, उसका टिक-टिक शब्द आना बन्द हो जाता है, तो वह हमारे ध्यान को आकर्षित करती है। इसी तरह यदि हम किसी फैक्टरी में काम कर रहे हैं जहाँ पर चारों तरफ से जोर की आवाज आती है। अब यदि हम एकाएक आवाज धीमी पड़ने का अनुभव करते हैं, तो हमारा ध्यान उस ओर आकर्षित हो जाता है। फैक्टरी में काम करनेवाले आवाज के घट जाने अथवा बढ़ जाने के प्रति विशेष सावधान रहते हैं। अतएव इस प्रकार आवाज का घटना या बढ़ना उनके ध्यान को तुरत आकर्षित करता है।

(३) विषय की नवीनता[1]—नवीन विषय पुराने विषय की अपेक्षा ध्यान को अधिक आकर्षित करता है। हम नवीन बातों को जानने के लिए उत्सुक रहते हैं। अतएव कोई भी नवीन विषय हमारे ध्यान को आकर्षित करता है। जिस विषय से हम परिचित हो जाते हैं उस पर ध्यान नहीं ठहरता। यदि परिचित विषय पर ही ध्यान लगाने की चेष्टा की जाती है तो हमें अकुलाई आने लगती है। ऐसी अवस्था में हम मानसिक थकावट का अनुभव करते हैं। यदि हमारे ध्यान के विषय हमारे साधारण परिचित विषय ही बने रहें तो ध्यान की उपयोगिता अधिक न रहे। नवीन वस्तु नई सम्भावना लेकर आती है; वह हमारे सुख को या तो बढ़ा सकती है या घटा सकती है। इसके प्रति सतर्क होना प्राणी के जीवन के लिए आवश्यक है। यदि इस प्रकार की सतर्कता किसी प्राणी में न हो तो उसके जीवन का अन्त हो जाय। जब पशु-पक्षी किसी नयी आवाज को सुनते हैं तो वे उसके प्रति सतर्क हो जाते हैं। वे यह जानने की चेष्टा करते हैं कि यह नयी आवाज कहीं किसी प्राणघातक जीव की तो नहीं है।

किसी विषय को रोचक बनाने के लिए वक्ता अथवा लेखक नये-नये दृष्टान्त देता है। वह अपनी वक्तृता अथवा लेख में जितनी ही नवीनता ले आ सकता है उतना ही वह श्रोताओं अथवा पाठकों का ध्यान आकर्षित कर सकता है। यदि हम किसी वक्ता के व्याख्यानों को बार-बार सुनें, तो हम उसके व्याख्यानों पर उतना ध्यान नहीं लगा सकते, जितना कि हम उसके व्याख्यानों को प्रथम बार सुनने में लगा सकते थे। बार-बार किसी वक्ता के व्याख्यानों को सुनने से हमारा मन ऊब जाता है, फिर ध्यान इधर-उधर भागता है। किसी भी वक्ता की अपने व्याख्यानों में नवीनता लाने की शक्ति परिमित होती है। जब इस नवीनता का अन्त हो जाता है तब

1. Newness.

हम उस वक्ता के व्याख्यानों को नहीं सुनना चाहते। इस मनोवृत्ति का परिचय हम वक्ता की नुक्ताचीनी करने में दिखलाते हैं।

(४) विरोध[1]—किसी तरह का विशेषत्व अथवा विरोध हमारा ध्यान आकर्षित करता है। यदि किसी चित्र में दो-तीन मिलते-जुलते रंगों का ही उपयोग किया गया है तो वह हमारे ध्यान को उतना आकर्षित नहीं करता जितना कि विरोधी रंगों से रँगा हुआ चित्र आकर्षित करता है। जब जोर से व्याख्यान देनेवाले व्यक्ति की आवाज एकाएक धीमी हो जाती है तो हमारा ध्यान उसकी ओर अधिक आकर्षित हो जाता है। पाठकगण अपने पाठ्य-विषय को रोचक बनाने के लिए कई प्रकार के विरोधी गुणों की तुलना करते हैं जिससे कि बालकों का ध्यान पाठ्य-विषय की बातों पर अधिक आकर्षित हो और वे उस विषय को अधिक देर तक स्मरण रक्खें। जिस देश में सभी लोग नाटे हैं उसमें छः फुट का आदमी सभी का ध्यान आकर्षित करता है। इसी तरह हम सभी की दृष्टि बौने की ओर जाती है। जिस व्यक्ति का आचार-व्यवहार, बोलने का ढंग, रूप रंग किसी विशेष प्रकार का होता है अर्थात् यदि किसी गुण में किसी व्यक्ति का जन-साधारण से विरोध होता है तो वह हमारा ध्यान तुरन्त आकर्षित कर लेता है। महात्मा गांधी का गृहस्थ और राजनीतिक होने पर भी लँगोटी लगाना तुरन्त ध्यान आकर्षित करता है। यदि महात्मा गांधी सन्यासी होते, तो उनका लँगोटी लगाना किसी का ध्यान आकर्षित न करता। कितने ही लोग जन-साधारण का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए ही अनेक प्रकार की विचित्र बातें करते हैं। विशेष प्रकार के कपड़े, जूते और टोपी पहनना, विशेष तरह से बोलना, दूसरों का ध्यान आकर्षित करने के लिए होते हैं। जिन लोगों में सद्गुणों का विशेषता होती है वे अपने सद्गुणों से दूसरों का ध्यान आकर्षित करते हैं और जिनमें सद्गुणों का अभाव रहता है वे दुर्गुणों से ही दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं। विरोधी का ज्ञान नवीनता का ज्ञान है। विरोध एक विशेष प्रकार की नवीनता है। अतएव जब हमने पहले कहा कि नवीनता हमारे ध्यान को आकर्षित करती है, तो उस कथन में इसका भी समावेश होता है कि विरोध ध्यान को आकर्षित करता है।

(५) गतिशीलता[2]—स्थिर पदार्थ की अपेक्षा गतिमान पदार्थ हमारे

1. Contrast. 2. Movement.

ध्यान को अधिक आकर्षित करता है। सिनेमाघर में जब स्थिर और गतिमान दोनों प्रकार से चित्र दिखाये जाते थे, तो लोगों को स्थिर चित्रों के देखने में इतना आनन्द नहीं आता था जितना चल चित्र में आता था। चुपचाप बैठे हुए व्यक्ति की अपेक्षा क्रियमाण व्यक्ति हमारे ध्यान को अधिक आकर्षित करता है। एक जगह रक्खा हुआ पदार्थ हमारे ध्यान को आकर्षित नहीं करता। जब उसी पदार्थ में हम कोई गति देखने लगते हैं तो हम एकाएक उस पदार्थ से आकर्षित हो जाते हैं। इस विषय में निम्नलिखित प्रयोग एक कुत्ते पर किया गया है।

एक कुत्ते के सामने एक हड्डी का टुकड़ा पड़ा था। कुत्ता चुपचाप बैठा हुआ था। इस हड्डी के टुकड़े में पहले से ही एक बारीक धागा बँधा हुआ था। कुत्ते का ध्यान जब विशेष प्रकार से हड्डी की ओर नहीं गया, तो हड्डी को धीरे-धीरे उस बारीक धागे के द्वारा दूर खींचा गया। इस धागे को कुत्ता देख नहीं सकता था और धागा खींचनेवाला उसे नहीं दिखाई देता था। जब हड्डी उसके सामने से सरकने लगी तो कुत्ता एकाएक चिहुँक पड़ा और उसका सम्पूर्ण ध्यान उस हड्डी की जाँच करने में लग गया। यहाँ उसके ध्यान के आकर्षित होने के दो कारण थे। एक हड्डी का गतिमान होना और दूसरा गति की नवीनता।

पाठ पढ़ाते समय जो शिक्षक बालकों को वक्तृता मात्र देते हैं वे उनका उतना ध्यान आकर्षित नहीं करते, जितना कि कई प्रकार की विधियों का प्रयोग करनेवाले शिक्षक करते हैं। घर पर बनाया हुआ चित्र या नकशा पाठ पढ़ाने में उतना उपयोगी नहीं होता, जितना कि क्लास में बनाया हुआ उपयोगी होता है। जिस वस्तु की वृद्धि हमारी आँखों के सामने होती है, वह हमारा ध्यान अधिक आकर्षित करती है।

अन्तरङ्ग कारण[1]—ध्यान का अन्तरंग कारण एकमात्र मनुष्य की रुचि है। यदि हम रुचि के कारणों का अध्ययन करें तो उन्हें दो प्रकार का पायेंगे—जन्मजात[2] और अर्जित[3]। जन्मजात रुचि के कारण मूल प्रवृत्तियाँ और परम्परागत मानसिक संस्कार हैं। अर्जित रुचि के कारण मनुष्य के विचार, आदत, स्थायीभाव, वासनाएँ तथा चरित्र हैं। प्रत्येक प्राणी का ध्यान उस ओर जाता है जिस ओर उसकी मूल प्रवृत्तियाँ उत्तेजित होती हैं। जिन वस्तुओं से मूल प्रवृत्तियाँ उत्तेजित होती हैं उनमें स्वभावतः ही रुचि रहती है। जब हम कोई नई वस्तु देखते हैं तो उसकी ओर हमारा

1. Interest, 2. Inborn, 3. Acquired.

ध्यान आकर्षित होता है। इसका अन्तरंग कारण उत्सुकता की मूल प्रवृत्ति का उत्तेजित होना है। माँ का ध्यान अपने बच्चे के रोने की आवाज से तुरन्त आकर्षित हो जाता है। इसका कारण सन्तान-प्रेम की मूल प्रवृत्ति का उत्तेजित होना है। माँ का ध्यान बड़े-बड़े शब्दों से आकर्षित नहीं होता; किन्तु बच्चे के धीमे शब्द से ही आकर्षित हो जाता है। बाहर की उत्तेजना कितनी ही प्रबल क्यों न हो, जब तक वह भीतर की किसी प्रवृत्ति को उत्तेजित नहीं करती तब तक ध्यान का कारण नहीं बनती। हम बाहर से आनेवाली प्रबल संवेदनाओं से इसलिए ही उत्तेजित होते हैं कि उनसे हम जीवन में सहायता अथवा रुकावट की सम्भावना देखते हैं।

वंशपरम्परागत मानसिक संस्कार भी मनुष्य की रुचि को विशेष ढङ्ग का बना देते हैं। माता-पिता की प्रबल इच्छाओं का भाव बालक पर भी पड़ता है। जिस परिवार में विशेष प्रकार का व्यापार होता रहता है प्रायः उसी ओर बालकों की रुचि भी हो जाती है। क्षत्रिय बालक में लड़ाई की प्रवृत्ति प्रबल होती है और ब्राह्मण बालक में पढ़ने लिखने की। किन्तु परम्परागत मानसिक सभी संस्कार जन्मजात नहीं होते। अनेक परम्परागत संस्कार वातावरण के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं अर्थात् ये संस्कार अर्जित होते हैं। अर्जित रुचि के कारण विचार, आदत स्थायीभाव और वासनाएँ हैं। चरित्र इन्हीं सबसे मिलकर बनता है। मनुष्य के विचारों में जैसे जैसे विकास होता है वैसे-वैसे उसकी रुचि में भी विकास होता है। इस तरह उसके ध्यान का विषय बदलता रहता है। जिस वस्तु के विषय में हमारा ज्ञान कुछ नहीं होता, उसमें हमारी रुचि भी नहीं होती और वह हमारा ध्यान भी आकर्षित नहीं करती। जटिल विषयों में ध्यान अधिकतर हमारे उस विषय को समझने की शक्ति पर निर्भर करता है। जिस विषय को समझने का सामर्थ्य हममें नहीं है, उस पर हम ध्यान को एकाग्र नहीं कर सकते। समझने का ज्ञान हमारे पूर्वज्ञान पर निर्भर करता है। अपना ज्ञान बढ़ाकर हम किसी ओर भी अपनी समझ बढ़ा सकते हैं। इस तरह ज्ञान-वृद्धि से ध्यान देने की शक्ति में भी विकास होता है। समझ पर निर्भर करनेवाले ध्यान को बोधजन्य ध्यान कहते हैं।

मनुष्य की वासनाएँ और स्थायीभाव भी ध्यान के कारण होते हैं। जब विचार द्वारा मूल प्रवृत्तियों का परिवर्तन होता है तो वासनाएँ उत्पन्न होती हैं, और जब मनुष्य के संवेग विशेष प्रकार से अभ्यस्त होते हैं तो स्थायी-भावों की उत्पत्ति होती है। वासनाएँ ध्यान को उस ओर ले जाती हैं जहाँ

उनकी तृप्ति की सम्भावना होती है। इसी तरह मनुष्य के स्थायीभाव भी उसके ध्यान के नियामक होते हैं। देशभक्त का ध्यान देश की बात सुनने में लगता है; उसे देशभक्तों की गाथा सुनने से कभी थकावट नहीं होती; देश के ऊपर आपत्ति आने पर वह चिंतित हो जाता है और देश को इस आपत्ति से मुक्त करने के लिए अनेक उपाय सोचता है। स्थायीभावों के रहने पर यदि मनुष्य किसी विषय में देर तक ध्यान देना चाहे तो वह विषय कितना ही कठिन क्यों न हो सरल हो जाता है।

ध्यान के अन्तर्गत कारणों में एक प्रधान कारण आदत भी है। हम जिस प्रकार की आदतें अपने जीवन में डाल लेते हैं, उसी ओर हमारा ध्यान भी जाता है। जिस मनुष्य को सिनेमा देखने की आदत पड़ जाती है, वह सिनेमा के विज्ञापनों को बड़ी रुचि से पढ़ता है। सिनेमा देखने से वह नहीं थकता। जिस विषय पर हम पहले-पहल कठिनता से ध्यान एकाग्र करते हैं, आदत पड़ने पर उस विषय पर ध्यान लगाना हमारे लिए स्वाभाविक हो जाता है। जिन बालकों को पढ़ने-लिखने की आदत नहीं पड़ी है वे पढ़ते समय जल्दी से थक जाते हैं; किन्तु आदत पड़ जाने पर थकावट नहीं आता। मनुष्य आदत के कारण बिना थकावट के घंटों कठिन काम करता रहता है। यदि हम किसी विशेष काम में ध्यान लगाना चाहते हैं तो हमें उस विषय पर ध्यान लगाने का अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास से आदत की उत्पत्ति होती है। जब किसी बात पर ध्यान डालने की आदत पड़ जाती है तो ध्यान स्वभावतः उस विषय पर एकाग्र हो जाता है।

ध्यान के प्रकार

ध्यान को साधारणतः निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया जाता है—

हम किसी भी पदार्थ की ओर या तो इच्छा से ध्यान देते हैं अथवा
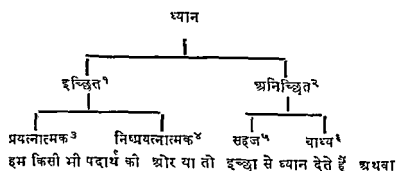
1. Voluntary. 2 Non-voluntary. 3. Effortful 4. Fffortless. 5. Spontaneous. 6. Forced.

अनिच्छा से। जब किसी विषय पर ध्यान लगाने में किसी प्रकार भी इच्छा-शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है तो वह इच्छित ध्यान कहलाता है। ध्यान के लगाने में जब इच्छाशक्ति का प्रयोग नहीं करना पड़ता तो ध्यान को अनिच्छित ध्यान कहते हैं। इच्छित ध्यान के दो प्रकार हैं—प्रयत्नात्मक और निष्प्रयत्नात्मक। इसी तरह अनिच्छित ध्यान के दो प्रकार हैं—सहज और बाध्य। अब हम इन चारों प्रकार के ध्यानों का क्रमशः वर्णन करेंगे। पहले अनिच्छित ध्यान से आरम्भ करना सुगम है।

अनिच्छित सहज ध्यान—सहज ध्यान वह है, जिसके होने में प्रधानतः हमारा सहज स्वभाव अर्थात् जन्मजात प्रवृत्तियाँ काम करती हैं, अर्थात् सहज ध्यान की प्रेरक मूल प्रवृत्तियाँ होती हैं। प्रत्येक मनुष्य को सुरीले शब्द सुनने में जन्मजात रुचि होती है। इसी तरह भूखे का भोजन में, माता का अपने बालक में और लड़नेवाले का प्रतिपक्षी की चेष्टाओं में स्वाभाविक ध्यान जाता है। इस प्रकार ध्यान हमारी मूल प्रवृत्तियों की तृप्ति का साधन होता है। अतएव जो उत्तेजनाएँ मूल प्रवृत्तियों के अनुकूल हैं, उनकी ओर ध्यान ले आने के लिए किसी प्रकार के प्रयत्न अथवा इच्छाशक्ति के उपयोग की आवश्यकता नहीं होती। ऐसी वस्तुएँ स्वतः ही रुचिकर होती हैं और उनकी ओर ध्यान अपने-आप जाता है। बालक का ध्यान खेलने की ओर स्वतः ही जाता है। इसके लिए उसे प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इस प्रकार के ध्यान को सहज ध्यान कहते हैं। यह ध्यान पशु-पक्षियों और मनुष्यों में एक-सा ही पाया जाता है। बालक और प्रौढ़ दोनों प्रकार के व्यक्तियों में इस ध्यान की शक्ति होती है।

अनिच्छित बाध्य ध्यान—इस प्रकार के ध्यान में प्रायः बाह्य उत्तेजना की प्रधानता होती है। जब बाहर से कोई जोर की आवाज आती है तो हमारी उसको सुनने की इच्छा न होने पर भी उसे हमें सुनना पड़ता है। बाध्य ध्यान अनिच्छा से नहीं होता, इच्छा के प्रतिकूल भी होता है। हमारी इच्छा हमें एक विषय पर ध्यान लगाने के लिए प्रेरित करती है, किन्तु हमारा ध्यान दूसरी ओर भी बरबस खींचा जाता है। यदि हम अपनी पढ़ाई में लगे हैं तो हम नहीं चाहते कि कोई हमारे ध्यान में विघ्न डाले; किन्तु जब कोई आगन्तुक आकर हमारा द्वार खटखटाने लगता है, तो हमारा ध्यान उस शब्द की ओर न ले जाने की इच्छा रहते हुए भी हम उसे सुने बिना नहीं रह सकते। कभी-कभी बाध्य ध्यान किसी प्रबल अन्तर्मन की उत्तेजना के कारण भी होता है। यह उत्तेजना झक के रूप में चेतना के

समक्ष आती है। विक्षिप्त अवस्था में इस प्रकार की उत्तेजनाएँ बढ़ जाती हैं। इच्छाशक्ति ऐसी अवस्था में इतनी निर्बल हो जाती है कि वह मन में आनेवाली अवाञ्छनीय विचारों को चेतना से अलग करने में समर्थ नहीं होती। मॉरगन महाशय का अपनी "साइकॉलॉजी ऑफ दी अनएड्जस्टेड स्कूल चाइल्ड" नामक पुस्तक में दिया हुआ निम्नलिखित उदाहरण यहाँ उल्लेखनीय है।

एक स्त्री को बार-बार यह विचार आता था कि कहीं वह अपने बच्चे को, जिसे वह खूब प्यार करती थी, मार न डाले। इस प्रकार का विचार निष्कारण होने पर भी वह उसे छोड़ नहीं सकती थी। उसे अपने इस अशुभ विचार से भय हो गया, अतएव उसने अपने घर के सभी छुरी चाकुओं तथा पैनी चीजों को छिपा दिया। तत्पश्चात् उसे यह विचार आया कि कहीं वह रोटी बनाने के बेलन से उसे न मार डाले। उसने इस बेलन को भी छिपा दिया। फिर उसके मन में विचार आया कि कहीं वह उस बच्चे का सिर कुर्सी पर पटककर ही उसे न मार डाले। इस प्रकार का विचार उसे बड़ा दुःखदायी हो गया, किन्तु उसके लाख प्रयत्न करने पर भी वह विचार उसे छोड़ता न था। अन्त में उसे अपने विचार से व्यथित होकर मनोविज्ञान की शरण लेनी पड़ी।

उपर्युक्त उदाहरण असाधारण है। किन्तु हमारे सामान्य जीवन में भी हमारे किसी विशेष प्रकार की धारणा को मन से हटाने का अनेक प्रयत्न करने पर भी उसे हटाने में हम समर्थ नहीं होते। जब सोते समय चिन्ता सवार हो जाती है तो हमारे प्रयत्न करने पर भी वह हमें नहीं छोड़ती। हम जानते हैं कि इस चिन्ता के रहने से हमारा ही अनर्थ होगा, किन्तु इस प्रकार का ज्ञान हमें चिन्ता से मुक्त नहीं करता। जितना ही हम चिन्ता से मुक्त होने का अधिक प्रयास करते हैं, चिन्ता और भी जटिल हो जाती है। नींद न आने की बीमारी से पीड़ित लोगों को यही चिन्ता हो जाती है कि की नींद आ जाय, यदि नींद न आई तो स्वास्थ्य बिगड़ जायगा। किन्तु यही विचार उनकी नींद आने में बाधक होता है।

बाध्य उत्तेजना से बाध्य ध्यान का होना एक साधारण सी बात है, आन्तरिक बाह्य उत्तेजना से बाध्य होकर किसी अप्रिय विषय पर ध्यान देना मानसिक दुर्बलता की बीमारी का सूचक है। इस प्रकार की मानसिक दुर्बलता अधिक बढ़ जाने पर मनुष्य विक्षिप्त हो जाता है।

इच्छित प्रयत्नात्मक ध्यान—हमारे जीवन का प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य

इच्छित ध्यान से होता है चाहे वह प्रयत्नात्मक हो अथवा निष्प्रयत्नात्मक। जब हम एक नये विषय का अध्ययन करते हैं तो उसमें हमें प्रयत्न के साथ ध्यान लगाना पड़ता है। हमारा ध्यान बार-बार इधर-उधर जाता है किन्तु हम बलपूर्वक ध्यान को पाठ्य-विषय पर एकाग्र करते हैं। जिन लोगों की इच्छा-शक्ति दुर्बल होती है वे इस प्रकार का प्रयत्न करने में असमर्थ होते हैं। किसी विषय पर जिसमें उनकी जन्मजात रुचि नहीं है, ध्यान को एकाग्र नहीं कर सकते। *वास्तव में ध्यान को एकाग्र करने की चेष्टा* इच्छाशक्ति को बली बनाने की ही चेष्टा है। जो मनुष्य जितना ही अधिक अपने ध्यान को एकाग्र कर सकता है, उसको उतना ही इच्छाशक्ति में बली समझना चाहिए। इच्छाशक्ति के बल पर ही मनुष्य के जीवन की सफलता निर्भर करती है, अतएव ध्यान की एकाग्रता मनुष्य के सामर्थ्य की सूचक है तथा उसे जीवन में सफल बनाती है। उचित वस्तु पर दीर्घकाल तक का ध्यान देने की शक्ति का नाम ही प्रतिभा है। प्रतिभा की यह व्याख्या अमनोवैज्ञानिक नहीं है। जो मनुष्य जितना ही अधिक ध्यान को उचित विषयों पर एकाग्र कर सकता है वह उतना ही प्रतिभाशाली है।

इच्छित निष्प्रयत्नात्मक ध्यान—जब किसी विषय पर प्रयत्नपूर्वक बार-बार ध्यान लगाते हैं तो उस विषय पर ध्यान लगाना सरल हो जाता है। हमें इस प्रकार के ध्यान की आदत पड़ जाती है। आदत के पड़ जाने पर अरोचक विषय भी रोचक बन जाता है। उस पर ध्यान लगाने में जो हमें पहले कठिनाई होती थी वह नहीं होती। अब आदत हमारे प्रयत्न की बचत करती है। पहले-पहल जब कोई व्यक्ति मनोविज्ञान की पुस्तक पढ़ता है तो उसे ध्यान को एकाग्र करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। पुस्तक पढ़ते समय उसका ध्यान बार-बार इधर उधर भागता है। किन्तु जब वह मनोविज्ञान की दस पाँच पुस्तकें पढ़ चुकता है और विषय से परिचित हो जाता है तो उसे मनोविज्ञान की नई पुस्तक पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती। उसका ध्यान अभ्यास के कारण स्वतः ही पुस्तक पढ़ने में लग जाता है। जिस प्रकार बालक का मन खेलने में लगता है, इसी प्रकार किसी विषय में रुचि रखनेवाले व्यक्ति का उसके अध्ययन में लगता है। इस प्रकार का स्वभाव में परिवर्तन, और स्थायीभावों के बन जाने से होता है। जब किसी भी व्यवसाय पर ध्यान देना आदत का अंग बन जाता है तभी

विषय के अध्ययन अथवा व्यवसाय में महत्वपूर्ण उन्नति करते हैं। प्रतिभाशाली व्यक्ति को वास्तव में अपने विषय के अध्ययन में हर समय उतनी शक्ति खर्च नहीं करनी पड़ती जितनी कि साधारण व्यक्तियों को करनी पड़ती है। आदत ही यहाँ शक्ति के अपव्यय को रोकती है।

हमें यहाँ यह न भूल जाना चाहिए कि इस प्रकार के ध्यान की आदत डालने में पहले पहल प्रयत्न अवश्य करना पड़ता है। यह प्रयत्न इच्छाशक्ति के प्रयास से ही होता है। अतएव ऐसी आदतों के कार्य में इच्छाशक्ति के प्रयास का सर्वथा अभाव नहीं समझना चाहिए। प्रयत्नात्मक और निष्प्रयत्नात्मक इच्छित ध्यान में अन्तर इतना ही है कि पहले प्रकार के ध्यान में जान बूझकर प्रयत्न करना पड़ता है, दूसरे प्रकार के ध्यान में पहले किया गया प्रयत्न काम करता है। अभ्यस्त कार्यों में जो भी प्रयत्न किया जाता है वह स्वभावतः होता है; अनजाने ही यह प्रयत्न हो जाता है। किन्तु जब वास्तव में प्रयत्न का अभाव हो जाता है तो आदत भी मिट जाती है और फिर किसी विषय पर ध्यान लगाना कठिन हो जाता है।

ध्यान वशीकरण[1]

जीवन की सफलता ध्यान के वशीकरण में ही है। इच्छित ध्यान की वृद्धि ध्यान का वशीकरण ही है। बुद्धि और चरित्र का विकास इच्छित ध्यान की वृद्धि पर निर्भर होता है। इच्छाविहीन ध्यान का प्राबल्य विचार तथा चरित्र की कमी का सूचक है। बालकों तथा पशुओं में इच्छाविहीन अथवा प्राकृतिक ध्यान का प्राबल्य होता है, प्रौढ़ लोगों में इच्छित ध्यान की प्रबलता होती है। ध्यान को वश में करने के निम्नलिखित प्रमुख उपाय हैं—

(१) इच्छित ध्यान का सहज ध्यान से संयोग—इच्छित ध्यान का प्रारम्भ से ही दृढ़ होना कठिन है। प्रत्येक व्यक्ति में आरम्भ से सहज ध्यान की प्रबलता होती है। यदि हम किसी वस्तु की ओर, जिस पर हमारा सहज ध्यान नहीं जाता, प्रयत्नपूर्वक ध्यान देना चाहते हैं तो हमें उसे ऐसी वस्तु से सम्बन्धित करना होगा जिसके प्रति सहज ध्यान जाता है। बालक का ध्यान पुस्तक पढ़ने में नहीं लगता, किन्तु चित्र देखने में स्वभावतः चला जाता है। यदि हम बालक की रुचि पुस्तक पढ़ने में बढ़ाना चाहते हैं तो हमें चित्र देखने की प्रवृत्ति से पुस्तक पढ़ने के कार्य को सम्बन्धित करना पड़ेगा। जब बालक चित्र देखता है और उसके विषय में अनेक प्रश्न पूछता

1. Conquest of attention.

है तो हम तो उससे कह सकते हैं कि तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर चित्र के नीचे लिखा है, तुम पढ़कर जान लो। इस तरह उसकी पुस्तक पढ़ने की इच्छा उत्तेजित होगी और वह पुस्तक पढ़ने का प्रयत्न करेगा। रेलवे टाइम टेबुल का अध्ययन अरुचिकर होता है किन्तु जब हमें कहीं जाना होता है तो हम उस पर चाव से ध्यान देते हैं।

(२) रुचि की वृद्धि—जिस वस्तु में हमारी रुचि होती है उसी में हमारा ध्यान लगता है। रुचि हमारे जन्मजात स्वभाव अथवा अर्जित संस्कारों पर निर्भर रहती है। जिन विषयों में हमारी मूल प्रवृत्तियों की तृप्ति होती है उन पर प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान जाता ही है। इन विषयों से ध्यान को हटाकर विचारपूर्वक योग्य सिद्ध किये हुए विषयों पर लगाना ध्यान को वश में करना है। योग्य पदार्थों में रुचि विचार की वृद्धि से होती है। हम जिन पदार्थों का महत्व जीवन में समझते हैं उन पर ध्यान देना सुगम होता है। वास्तव में किसी विषय का महत्व समझे बिना उस पर ध्यान जमाना असम्भव नहीं, तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। बहुत से बालकों का ध्यान उनके पाठ्य-विषय पर नहीं जमता, किन्तु जब परीक्षा का समय आता है तो ये ही बालक प्रयत्न के साथ पुस्तकों को याद करने लगते हैं। किसी नये काम का सीखना तब तक ठीक से नहीं होता जब तक हम उसका अपने जीवन की सफलता में महत्त्व नहीं देखते। प्रौढ़ व्यक्ति का नई भाषा सीखना कठिन होता है, किन्तु जब हम किसी नये देश में अपनी प्रौढ़ अवस्था में पड़ जाते हैं तो जल्दी ही उसकी भाषा को सीख लेते हैं। वास्तव में अब हम उस काम में अपने ध्यान को अधिक एकाग्र कर लेते हैं।

(३) विषय-परिवर्तन—ध्यान को वश में करने के लिए उसके विषय का परिवर्तन करते रहना आवश्यक है। हम जिस ओर चाहें अपने ध्यान को ले जा सकते हैं, किन्तु उसे एक ही स्थान पर नहीं रख सकते। यदि हम उसे एक ही स्थान पर रखने का प्रयत्न करेंगे तो वह स्वतः ही दूसरी ओर चला जायगा। अतएव हमें पहले से ही निश्चय करके रखना चाहिए कि अमुक विषय के पश्चात् किस विषय पर हमारा ध्यान जाना चाहिये। यदि पाठशाला में दिन भर एक ही विषय पढ़ाया जाय तो उस पर बालकों का ध्यान एकाग्र करना असम्भव होगा। अतएव पाठशाला में पढ़ाई का समय विभाग रहता है और उस विभाग के अनुसार पौन घण्टे में विषय-परिवर्तन हो जाता है। नैपोलियन का कथन है कि काम का बदल देना ही आराम है। काम के बदल देने से मन उस काम से नहीं ऊबता और थकावट भी नहीं आती। विषय-परिवर्तन करते समय

यह ध्यान रखना चाहिए। जितने ही दो विषय विरोधी होते हैं, एक से दूसरे में ध्यान डालना सुविधाजनक होता है। यदि हम कुछ काल तक मस्तिष्क सम्बन्धी परिश्रम करें तो उसके बाद हाथ का परिश्रम करना अच्छा होगा। यदि हम दो घण्टे तक गणित का अभ्यास करें तो इसके पश्चात् चित्रकला का अभ्यास लाभदायक होगा।

(४) क्रिया-सहयोग—ध्यान में जितना ही क्रिया का सहयोग होता है उतना ही ध्यान को एकाग्र करने में सरलता होती है। स्वयं ध्यान क्रियात्मक मानसिक वृत्ति है। अतएव जितनी ही अधिक क्रिया की प्रधानता होती है, यह मनोवृत्ति तीव्र होती है। क्रिया और ज्ञान का सदा सहयोग होता है। जैसे-जैसे मनुष्य में कार्य करने की शक्ति बढ़ती है उसका ज्ञान भी बढ़ता जाता है। अतएव मनुष्य के सक्रिय होने पर ज्ञान की वृद्धि होती है। ध्यान ज्ञान की वृद्धि का साधन है। उसके विकास में ज्ञान और क्रिया दोनों का ही विकास होता है। ध्यान उदासीनता का प्रतियोगी है। क्रिया से मनुष्य की उदासीनता नष्ट होती है, अतएव ध्यान की शक्ति की वृद्धि होती है। यदि हमारा मन पुस्तक पढ़ते समय इधर-उधर भाग रहा हो तो हमारे लिए उसके विचारों पर मनन करना अच्छा होगा। यदि इससे भी ध्यान एकाग्र नहीं हो तो हमें उसके कुछ विचारों को नोटबुक पर लिखना आरम्भ करना उत्तम है।

(५) ध्यान की आदत—किसी भी विषय पर अभ्यास के द्वारा मन एकाग्र किया जा सकता है। योगसूत्र में मन के एकाग्र करने के दो उपाय बताये गये हैं—एक वैराग्य और दूसरा अभ्यास[१]। अभ्यास आदत का जनक है। जिस काम के करने की आदत हमें पड़ जाती है वह काम रुचिकर हो जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में किसी भी जटिल विषय पर ध्यान बड़े प्रयत्न के साथ लगाया जाता है, किन्तु बार-बार इस प्रकार का प्रयत्न करने पर उस विषय पर ध्यान लगाना सरल हो जाता है। जो व्यक्ति पढ़ने-लिखने में ध्यान लगाना चाहता है उसे प्रतिदिन पढ़ने-लिखने का अभ्यास करना आवश्यक है। इस प्रकार के अभ्यास से बिना प्रयास मन पढ़ने-लिखने में लग जाता है। जब किसी प्रकार का अभ्यास बहुत दिन तक छूट जाता है तो उस विषय में पुनः ध्यान लगाना कठिन हो जाता है। किन्तु हमारा पूर्व अभ्यास यहाँ भी हमारी सहायता करता है। अभ्यास ही कठिन से कठिन अरोचक विषयों को सरल कर उन्हें रोचक विषय बना देता है।

---

१. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

(६) हठ न करना—ध्यान के लगाने में जो विक्षेप पैदा होते हैं उन्हें हठ द्वारा हटाया नहीं जा सकता। यदि हम किसी विशेष पदार्थ का चिन्तन नहीं करना चाहते तो उचित यही है कि हम किसी दूसरे रोचक काम में मन लगावें अथवा रोचक बातों की ओर ध्यान को ले जावें। यदि हम इसके बदले मन के किसी हठ से लड़ना चाहें तो अवश्य परास्त हो जायेंगे। जिस विषय को हम सोचना नहीं चाहते वही विषय बार-बार हमारे चिन्तन में आवेगा।[1] कितने ही मनुष्यों को दुश्चिन्तन की बीमारी होती है। वे जितना ही अपने दुश्चिन्तन को हटाने का प्रयत्न करते हैं उतना ही अधिक दुश्चिन्तन बढ़ता जाता है। यदि ऐसे लोग अपने दुश्चिन्तन को हटाने का प्रयत्न छोड़ दें तो सम्भव है कि उनका दुश्चिन्तन छूट जाय। दुश्चिन्तन प्रायः किसी मानसिक ग्रन्थि का परिणाम होता है। इस ग्रन्थि के खुलने पर दुश्चिन्तन दूर हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को, जो काम करना है उस पर, ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। जिस विषय पर हम ध्यान देना चाहते है, उसके विषय में ध्यान न देने की भी चिन्ता को छोड़ना चाहिए। जिस विषय को मन पकड़ लेता है, उसको उस विषय से हटाने के लिए उदासीनता लाभप्रद होती है।

(७) विक्षेप को ध्यान का अंग बनाना—मान लीजिए, हम मनोविज्ञान का अध्ययन कर रहे हैं और इस समय कोई विचार हमारे ध्यान को

१. इस सम्बन्ध में निम्नलिखित किंवदन्ती उल्लेखनीय हैं—

एक व्यक्ति किसी योगी के पास वशीकरण मंत्र (दूसरों का मन वश में करनेवाला मंत्र) सीखने गया। योगी महाराज ने उसे एक मन्त्र बताया और उससे कहा, "इस मन्त्र को एकान्त स्थान में एक हजार बार जप करने से दूसरों का मन वश में करने की सिद्धि प्राप्त हो जायगी।" उस मन्त्र को लेकर वह व्यक्ति उस योगी के पास से प्रसन्न होकर चलने लगा। चलते समय उस मनुष्य को बुलाकर योगी ने पुनः कहा—"भाई मैं एक बात कहना भूल गया था। उस मन्त्र को जपते समय बन्दर का विचार अवश्य आ जाता है, उसे तुम मत आने देना, नहीं तो सिद्धि प्राप्त नहीं होगी।" योगी का यह उपदेश सुनकर वह प्रसन्नता से घर आया। उसने निश्चय कर लिया कि वह बन्दर का विचार, मन्त्र जपते समय कभी न आने देगा। किन्तु ज्योंही उसने एकान्त स्थान खोजकर मन्त्र को जपना आरम्भ किया, बन्दर का विचार भी आ गया। जैसे-जैसे वह उसे हटाने का प्रयत्न करता था वैसे-वैसे वह विचार और भी दृढ़ होता जाता था।

उचाट रहा है। ऐसे समय उस विचार का ही मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रारम्भ कर देना उचित होगा। इस तरह प्रत्येक विषय को अध्ययन का विषय बना लेने से ठीक अध्ययन के विषय पर ही ध्यान एकत्र रहेगा।

जब बालकों का ध्यान पढ़ाई के विषय पर न जाकर अन्यत्र जाता है, तो कुशल शिक्षक इस अन्य विषय की अवहेलना न कर उसी के सम्बन्ध में इस प्रकार चर्चा करता है कि बालकों की पढ़ाई का ही वह अङ्ग बन जाता है *।

प्रश्न

१—कोई व्यक्ति किसी विषय पर ध्यान दे रहा है अथवा नहीं, यह कैसे पहचाना जा सकता है। ? उदाहरण सहित समझाइये।

२—ध्यान की क्रिया की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं ? ध्यान की परिवर्तनशीलता पर प्रकाश डालिए।

३—ध्यान के बहिरंग कारण क्या-क्या है ? यदि कोई टिक-टिक करती हुई घड़ी एकदम से बन्द हो जाती है तो हमारा ध्यान उसकी ओर क्यों जाता है ?

४—विरोध से हमारा ध्यान किसी पदार्थ की ओर आकर्षित होता है। इस सत्य का निरूपण कीजिए।

५—ध्यान के अन्तरङ्ग कारण कौन-कौन से हैं ? इनका ध्यान के बहिरङ्ग कारणों से किस प्रकार साम्य है ?

६—अनिच्छित बाध्य ध्यान का स्वरूप उदाहरण सहित समझाइये।

७—ध्यान को किस प्रकार वश में किया जा सकता है ? किसी व्यक्ति के मन में कोई अप्रिय विचार इच्छा के प्रतिकूल बार बार- आता है। ऐसे विचार से मुक्त होने का क्या उपाय है ?

---

* यहाँ यह कथा उल्लेखनीय है—कोई पुरोहित अपने टट्टू पर बैठकर यजमानो के यहाँ जाना चाहता था। ज्योंही वह घर से निकला, उसका टट्टू अड़ गया। पुरोहित टट्टू को आगे की ओर हाँकता, टट्टू पीछे जाता। पुरोहित ने इस पर टट्टू का मुँह पीछे की ओर मोड़ दिया और कहा, "चल, इसी ओर चल। इधर भी मेरी यजमानी है।" फिर टट्टू वश में हो गया। हठी मन को वश में करने का भी यही उपाय है।

नवाँ प्रकरण

संवेदना[1]

चैतन्य मन का सर्वप्रथम और सरल ज्ञान संवेदन है। संवेदन इन्द्रियों के बाह्य पदार्थ के स्पर्श से होता है। अतएव स्पर्श ही संवेदन का समीपवर्ती कारण है। इस स्पर्श की सम्भावना मन और इन्द्रियों से होती है। जिस प्रकार अंग्रेजी शब्द 'सेंसेशन' के कई अर्थ हैं, किन्तु मनोविज्ञान की पुस्तकों में वह एक विशेष अर्थ में काम आता है, इसी तरह भारतीय साहित्य में 'संवेदना' शब्द को कई अर्थों में प्रयोग करते हैं। सहानुभूति को भी सवेदना कहा जाता है। किन्तु यहाँ हम सवेदना शब्द इन्द्रियजन्य प्रथम ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त कर रहे हैं।

संवेदना की उत्पत्ति—संवेदना किसी भी इन्द्रिय की उत्तेजना से उत्पन्न होती है इसकी उत्पत्ति में शरीर की ज्ञानवाही नाड़ियाँ[2] और मस्तिष्क काम करते हैं। जब हमारे शरीर का कोई भाग बाह्य पदार्थ से स्पर्श करता है तो शरीर के उस भाग में स्थित ज्ञानवाही नाड़ियाँ उत्तेजित हो जाती हैं। ज्ञानवाही नाड़ियों का शरीर के बाहरी भाग पर रहनेवाला छोर ही विशेष प्रकार की इन्द्रिय कहलाता है। ज्ञानवाही नाड़ी के उत्तेजित होने पर उसकी उत्तेजना सुषुम्ना से होकर मस्तिष्क के ज्ञानजनक केन्द्र तक पहुँचती है। वहाँ पहुँचने पर विशेष प्रकार का इन्द्रियज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

हमारे शरीर के विभिन्न भागों के ऊपर ज्ञानवाही तन्तु फैले हुए हैं। इन्हीं तन्तुओं से सब प्रकार का इन्द्रियज्ञान अर्थात् संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। आँख की रेटिना के उत्तेजित होने पर जो ज्ञानतन्तु वहाँ से उत्तेजना ले जाते हैं उनसे रूप-सवेदना उत्पन्न होती है। इसी प्रकार कान के ज्ञानवाही तन्तुओं में उत्तेजना होने पर शब्द-सवेदना उत्पन्न होती है। जिह्वा के विशेष भाग से बाह्य पदार्थ के स्पर्श करने पर जो ज्ञानवाही तन्तुओं में उत्तेजना होती है, वह रस-संवेदना में परिणत होती है। नाक के विशेष भाग में फैले ज्ञानवाही तन्तुओं की उत्तेजना

1. Sensation. 2. Sensory nerves.

से गन्ध-संवेदना उत्पन्न होती है। इस तरह सभी प्रकार की संवेदनाओं का कारण *विशेष प्रकार की ज्ञानेन्द्रिय, अर्थात् ज्ञानतन्तुओं का* बाह्य पदार्थ के सम्पर्क में आना ही होता है।

निम्नवर्ग के प्राणियों की इन्द्रियाँ—प्राणीमात्र में संवेदना की शक्ति होती है; अर्थात् उसकी ज्ञानवाही नाड़ियाँ जो शरीर के विभिन्न भागों में फैली हैं, विभिन्न प्रकार का इन्द्रिय-ज्ञान उत्पन्न करती हैं। मनुष्य के शरीर के भिन्न भिन्न भाग पृथक्-पृथक् इन्द्रियों के स्थल हैं। किन्तु निम्नवर्ग के जीवों के अङ्गों में इस प्रकार इन्द्रियाँ स्थित नहीं हैं। केंचुआ के आँख, कान आदि नहीं होते; किन्तु जो ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा दूसरे प्राणियों को होता है वह ज्ञान केंचुआ को *भी कम या अधिक मात्रा में होता है।* 'अमीबा' नामक प्राणी के पेट के अतिरिक्त और कोई अंग नहीं होता, तिस पर भी उसे विभिन्न प्रकार के कुछ ऐसे ज्ञान होते हैं जो साधारणतः उन इन्द्रियों के अभाव में होना सम्भव नहीं। हम जैसे उत्तरोत्तर उच्च वर्ग के प्राणी के शरीर की बनावट देखते हैं, उसके शरीर के विशेष स्थलों में ही विशेष इन्द्रियों को पाते हैं, *अर्थात् उच्च वर्ग के प्राणियों के ज्ञान-तन्तुओं में* काम का बँटवारा हो जाता है। ये ज्ञान-तन्तु विशेष प्रकार का काम करने में अभ्यस्त हो जाते हैं। अतएव उनकी विशेष प्रकार के ज्ञानोत्पादन की शक्ति भी बढ़ जाती है। प्राणियों के शरीर का विकास इस तरह विभिन्न प्रकार के ज्ञान तन्तुओं तथा शरीर के अङ्गों में काम के बँटवारे से होता है।

प्रौढ़ व्यक्तियों का संवेदन चेतना का सबसे सरल ज्ञान कहा गया है। इस ज्ञान का किसी प्रकार के पूर्व और अपर ज्ञान से सम्बन्ध नहीं होता। यह बाह्य विषय का प्रथम ज्ञान है, ज्ञानेन्द्रिय की उत्तेजना मात्र से चेतना में आता है। जब इस संवेदना का सम्बन्ध पूर्व संवेदनाओं के संस्कारों से हो जाता है तो वह संवेदना विशेष प्रकार का अर्थ ग्रहण कर लेती है, अर्थात् *वह संवेदना मात्र न रहकर प्रत्यक्ष ज्ञान में परिणत हो जाती है।* संवेदना *का इस प्रकार पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित होना उसका सार्थक बनना कहलाता* है। संवेदना उस ज्ञान का नाम है जिसने उक्त प्रकार की सार्थक बनना कहलाता है। संवेदना उस ज्ञान का नाम है जिसने उक्त प्रकार की सार्थकता न प्राप्त की है। इस प्रकार की अर्थरहित संवेदना नव-शिशु को होना ही सम्भव है। *प्रौढ़ व्यक्तियों की सभी संवेदनाएँ चेतना में आते ही सार्थक बन* जाती हैं, अर्थात् प्रौढ़ व्यक्तियों का ज्ञान पदार्थ-ज्ञान ही होता है; संवेदना मात्र का ज्ञान नहीं होता। पदार्थ-ज्ञान तात्कालिन संवेदना के पुराने अनुभव

के संस्कार उत्तेजित करने से होता है। हमारे मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तुओं में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक प्रकार की उत्तेजना मस्तिष्क में आते ही मस्तिष्क के अनेक ज्ञान-केन्द्र उत्तेजित हो जाते हैं, जिससे उस विशेष प्रकार की उत्तेजना का नया स्वरूप ही हो जाता है। मनुष्य का अनुभव जैसे जैसे बढ़ता जाता है, उसके मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं में अधिकाधिक सम्बन्ध जुड़ जाता है। अतएव किसी भी प्रकार की उत्तेजना तुरन्त अनेक प्रकार के अर्थ का उद्भव मन में करती है।

इस तरह हम देखते हैं कि संवेदना मात्र का ज्ञान प्रौढ़ व्यक्तियों को होना सम्भव नहीं। उनके मस्तिष्क की बनावट ही ऐसी है कि इस प्रकार का ज्ञान होना कठिन है। संवेदन का अध्ययन हम अपनी विश्लेषणात्मक कल्पना के द्वारा करते हैं। पदार्थ ज्ञान में संवेदन का भी कार्य होता है। हम इस कार्य की कल्पना करके संवेदन के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। संवेदन निर्विकल्पक ज्ञान है, पदार्थ ज्ञान विकल्पक होता है। एक ज्ञान का पूर्व अपर ज्ञान से सम्बन्ध जुड़ना विकल्पक कहलाता है। संवेदना वह ज्ञान है जो मन की इस प्रकार की विकल्पक की क्रिया से रहित हो। यह निष्प्रकारक ज्ञान है, पदार्थ ज्ञान सप्रकारक ज्ञान होता है। प्रौढ़ व्यक्तियों का कोई भी ज्ञान पूर्णत. निर्विकल्पक अथवा निष्प्रकारक नहीं होता।

जब हम किसी पदार्थ को देखते हैं तो उसके पहचानने के पूर्व एक प्रकार का निरर्थक ज्ञान चक्षु-इन्द्रिय के उत्तेजन होने से होता है। इसे हम संवेदना कह सकते हैं। जब हम उस पदार्थ को पहचान लेते हैं तो वह प्रत्यक्ष-ज्ञान बन जाता है। इसी तरह दूर से आनेवाली आवाज का प्रथम ज्ञान संवेदना कहा जा सकता है, किन्तु जब हम यह जान लेते हैं कि यह आवाज किस प्रकार की और किस पदार्थ द्वारा पैदा की गई है तो हमारा ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है।

संवेदनाओं की उपयोगिता—हमारे समस्त ज्ञान का आधार संवेदनाएँ ही हैं। संवेदनाएँ अपने संस्कार मन पर छोड़ जाती हैं। इन संस्कारों और नई संवेदनाओं के सम्मिश्रण से पदार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है। किसी भी पदार्थ के अनुभव में इस तरह दो प्रकार का ज्ञान काम करता है। एक शीघ्र उत्पन्न हुआ अर्थात् इन्द्रियजनित ज्ञान और दूसरा संस्कारजनित ज्ञान। किन्तु इन संस्कारों का आधार भी पहले अनुभव की गई संवेदनाएँ हैं। इस तरह हम देखते हैं कि बाह्य जगत् के हमारे सभी ज्ञान का आधार संवेदनाएँ ही हैं। जिस समय में कोई इन्द्रिय की क्षति होने के कारण

विशेष प्रकार की सवेदनाएँ ग्रहण करने की शक्ति नहीं रहती, वह ससार के अनेक पदार्थों के ज्ञान से वञ्चित रह जाता है; जिन पदार्थों का उसे ज्ञान होता है, वह साधारण मनुष्यों के समान पूरा नहीं होता। उसका सभी ज्ञान अधूरा रह जाता है। जन्म से अन्धे मनुष्य को रंग की कल्पना कैसे हो सकती है ? उनमें रूप सौंदर्य को समझने की शक्ति होना ही सम्भव नहीं। इसी तरह जन्म से बहरा व्यक्ति सुरीले गानों का क्या उपभोग कर सकता है ? उसके लिए मधुर और कर्कश आवाज एक-सी है।

बहरे मनुष्य गूँगे भी हो जाते हैं। दूसरों के बोलने की आवाज सुनकर बालक अपने बोलने का प्रयत्न करता है। हमारे मस्तिष्क में विभिन्न प्रकार के ज्ञान चेत्र और क्रिया-चेत्र अलग अलग हैं, किन्तु इनका एक दूसरे से सम्बन्ध है। अतएव विशेष प्रकार के ज्ञान विशेष प्रकार की क्रियाओं को उत्तेजित करते हैं। शब्द-ज्ञान हमारी वागिन्द्रिय अर्थात् बोलने की प्रवृत्ति को उत्तेजित करता है। किन्तु जिस व्यक्ति को शब्दज्ञान ही नहीं होता उसकी बोलने की प्रवृत्ति कैसे उत्तेजित हो सकती है।

सवेदना ससार के पदार्थों के ज्ञान का प्राथमिक कारण है। सवेदन-शक्ति प्राणी के विकास के साथ साथ बढ़ती है। मनुष्य में सवेदना की शक्ति सबसे अधिक है। किन्तु पशुओं में किसी विशेष प्रकार की सवेदन-शक्ति अधिक हो सकती है। उदाहरणार्थ कुत्ता, गिद्ध आदि को देखें। कुत्ते की सूँघने की शक्ति और गिद्ध की देखने की शक्ति मनुष्य से अधिक तीव्र है। यदि हम सभी तरह की सवेदना की शक्ति देखें तो उन्हें मनुष्य की अपेक्षा बिलकुल कम पावें। कई असभ्य जातियों के लोगों में सवेदना की शक्ति सभ्य जातियों की अपेक्षा अधिक होती है। डाक्टर राइवर्स ने प्रशान्त महासागर के द्वीपों के मूल निवासियों में सवेदना की शक्ति अधिक पाई; इसी तरह अमेरिका के मूल निवासियों की सवेदन शक्ति भी साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक है। इस प्रकार की विषमता का कारण अभ्यास जान पड़ता है। अभ्यास के द्वारा भी किसी विशेष प्रकार की सवेदना-शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। एक व्यक्ति के जीवन के अभ्यास से चाहे इस प्रकार का अन्तर उत्पन्न न हो, पर परपरागत वशानुक्रम के अनुसार अभ्यास करने पर ऐसा अन्तर हो जाना सम्भव है। सभ्य समाज के लोग अपनी संवेदना-शक्ति से उतना काम नहीं लेते जितना कि असभ्य जातियों के लोग लेते हैं। उनकी चेतना अधिकतर बौद्धिक प्रश्नों को ही हल करती रहती है। अतएव जहाँ सभ्य मनुष्यों की विचारशक्ति में वृद्धि होती है, उनकी

संवेदना-शक्ति में कमी हो जाती है। जो शक्ति अभ्यास से विकसित होती है वह अभ्यास से कम हो जाती है।

मनुष्य की संवेदना की शक्ति में जिस तरह परम्परागत अभ्यास से भेद होते हैं उसी तरह व्यक्तिगत अभ्यास से भी भेद होते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि जन्म से अन्धा मनुष्य अभ्यास के फल-स्वरूप देखने लगे, अथवा बहरा मनुष्य सुनने लगे। किन्तु अभ्यास से विभिन्न प्रकार के लोगों की समझने की शक्ति, अथवा विभिन्न प्रकार की आवाजों के जानने की शक्ति में वृद्धि हो जाती है। मनुष्य की स्वस्थ अवस्था में उसकी संवेदनाएँ जितनी प्रबल होती हैं, उतनी उसकी अस्वस्थ अवस्था में नहीं होतीं।

संवेदनाओं के गुण

हमारी संवेदनाएँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। एक ओर संवेदनाओं में प्रकार-भेद होता है और दूसरी ओर शक्ति भेद। इस प्रकार के भेद संवेदना के गुण कहे जाते हैं—

प्रकारता—शब्द-संवेदना, रूप-संवेदना से भिन्न है, इसी तरह घ्राण-संवेदना, रस-संवेदना से भिन्न है। इस तरह के भेदों को संवेदना का प्रकार-भेद कहा जाता है। रूप-संवेदना में भी आभ्यन्तरिक प्रकार-भेद होते हैं। श्वेत, पीत, नील, लाल आदि रंगों की संवेदना का भेद भी प्रकार-भेद कहलाता है। यदि किसी संवेदना में से प्रकारता के भेद निकाल दिये जाएँ तो उस संवेदना का अस्तित्व ही मिट जाय।

प्रबलता—संवेदनाओं में दूसरे प्रकार का आपस का भेद शक्ति अथवा प्रबलता का भेद है। एक ही प्रकार की तीक्ष्ण आवाज मध्यम आवाज से भिन्न होती है। जब घंटा धीरे पीटा जाता है और जब वह जोर से पीटा जाता है तो दो प्रकार की ध्वनियाँ निकलती हैं। इस प्रकार का भेद ध्वनि की शक्ति का भेद कहलाता है।

संवेदना का प्रकार भेद ज्ञानेन्द्रिय के भेद से उत्पन्न होता है और प्रबलता का भेद उत्तेजना के ऊपर निर्भर होता है। उत्तेजना की जैसी शक्ति होती है उसके अनुसार संवेदना भी प्रबल या निर्बल होती है। कभी-कभी प्रबलता का भेद प्रकारता के भेद में परिणत हो जाता है। जब किसी प्रकार की उत्तेजना की शक्ति एक निश्चित सीमा से अधिक होती है तो वह उत्तेजना दूसरे ही प्रकार की ज्ञात होती है। उदाहरणार्थ, साधारण गरम लोहा लाल रंग का दिखाई देता है; जब उसकी गर्मी और भी अधिक बढ़ जाती है तो

उसका रंग सफेद हो जाता है। यहाँ गर्मी की कमी तथा बेशी ही रंगों के भेद का कारण है।

प्रकार और शक्ति के अतिरिक्त मनोविज्ञान के द्वारा सवेदनाओं के कुछ दूसरे भेद भी माने गये हैं। सवेदना की व्यापकता और उसका काल भी *सवेदना के गुण माने जाते हैं। सवेदना की व्यापकता का भेद शरीर* के कम या अधिक भाग से उत्तेजित होने पर निर्भर होता है। एक गरम तार से यदि हमारे शरीर का कोई भाग छू जाय तो हमें गर्मी की सवेदना उत्पन्न होगी, किन्तु यह सवेदना उतने ही गरम पैसे के छुलाये जाने की सवेदना से भिन्न होगी। इसी तरह जो आवाज एक सेकेण्ड ठहरती है, वह *मिनट भर ठहरनेवाली उतनी ही तीक्ष्ण आवाज से भिन्न होती है।*

पर इस प्रकार के सवेदना के भेद वास्तव में गुण-भेद नहीं हैं। ये भेद देश और काल से उत्पन्न हुए हैं। देश और काल से पैदा किये गये भेदों की सवेदना के स्वगत-भेद अथवा गुण-भेद मानना उचित नहीं।

सवेदनाओं का वर्गीकरण

ऊपर कहा जा चुका है कि हमारी सवेदनाएँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। संवेदनाओं को उनके प्रकार-भेद के अनुसार निम्नलिखित विभागों में विभक्त किया जाता है—

(१) देखने की सवेदना (दृष्टिसवेदना)[१]
(२) सुनने की सवेदना (श्रोतृसवेदना)[२]
(३) सूँघने की सवेदना (घ्राणसवेदना)[३]
(४) स्वाद की सवेदना (रससवेदना)[४]
(५) स्पर्शसवेदना[५]—इसके चार भेद माने गये हैं—
  (क) दबाने की सवेदना[६]
  (ख) पीड़ा की सवेदना[७]
  (ग) उष्णता की सवेदना[८]
  (घ) शीतसवेदना[९]

---

1 Visual sensations 2 Auditory sensations 3 Olfactory sensations 4 Gastutary sensations 5 Tectile sensations 6 Sensations of Pressure 7 Sensations of pain 8 Sensations of heat 9 Sensations of cold

(६) चलने-फिरने की संवेदना[1]
(७) समता की संवेदना[2]
(८) शरीर के भीतर चलनेवाली क्रियाओं की संवेदना[3]

उपर्युक्त संवेदनाओं के विभाजन से यह स्पष्ट है कि हमारी संवेदनाओं की प्रकार-विषयक साधारण धारणा अवैज्ञानिक और भ्रमात्मक है। साधारणतः हम इन्द्रिय-ज्ञान पाँच ही प्रकार का मानते हैं—शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्ध। मनोविज्ञान के विकास के पूर्व इसी तरह की धारणा पश्चिम के लोगों की भी थी; पर प्रयोगों द्वारा यह धारणा भ्रमात्मक सिद्ध हुई। उदाहरणार्थ, स्पर्श-ज्ञान को ही लीजिये। हमारी साधारण धारणा यह है कि हमारे शरीर में शीत, उष्ण, पीड़ा आदि का ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। शीत का अनुभव करनेवाले शरीर के भाग, उष्णता का अनुभव करनेवाले भागों से भिन्न हैं। यह सच है कि ये भाग बहुत ही सूक्ष्म होते हैं अतएव इनके विभिन्न होने का ज्ञान साधारण व्यक्तियों को नहीं हो पाता, पर प्रयोगों द्वारा इन्हें जाना जा सकता है।

अब हमें मुख्य इन्द्रियों की बनावट और विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं की उत्पत्ति की क्रिया को जानना आवश्यक है।

दृष्टि-संवेदना

दृष्टि-ज्ञान होने के लिए उचित बाह्य उत्तेजक पदार्थ और स्वस्थ चक्षु-इन्द्रिय की आवश्यकता होती है। उत्तेजक पदार्थ तथा चक्षु-इन्द्रिय का वर्णन अलग-अलग दृष्टि-संवेदना के समझने में सहायक होगा।

दृष्टि-संवेदना के उत्तेजक—देखने की संवेदना उत्पन्न करनेवाला पदार्थ सूर्य की किरणें हैं जो साधारणतः सात रंग की बनी हुई रहती हैं। इन सातों रंगों के मिलने से सफेद प्रकाश का ज्ञान होता है अर्थात् सूर्य की साधारण सफेद किरण सात प्रकार के विभिन्न रंगों के मेल से बनी है। ये सात रंग निम्नलिखित हैं :—

(१) बनफशी[4], (२) नीला[5], (३) आसमानी[6], (४) हरा[7], (५) पीला[8], (६) नारंगी[9] और (७) लाल[10]।

1. Conative sensations. 2. Sensations of balance. 3. Organic sensations. 4. Violet. 5. Indigo. 6. Blue. 7. Green. 8. Yellow. 9. Orange. 10. Red.

यदि हम किसी तिकोने शीशे[1] में से प्रकाश को देखें तो ये रग बिलकुल साफ-साफ दिखाई पड़ेंगे। प्रकाश हमारी आँख तक लहरों के रूप में आता है। किसी लहर के स्पन्दन की गति तीव्र होती है और किसी की धीमी। लहरों के स्पन्दन के गति-भेद से प्रकाश के रग का भेद होता है। हमारी आँख में सभी प्रकार की लहरों द्वारा उत्तेजित की गई सवेदना को ग्रहण करने की शक्ति नहीं है। हमारी आँख की शक्ति परिमित है। न तो वह अति धीमी गतिवाली लहरों से उत्पन्न की गई उत्तेजना को ग्रहण कर सकती है और न अति वेगवाली लहरों से पैदा की गई उत्तेजना को। जो लहरें दृष्टि सवेदना उत्पन्न करती हैं उनकी गति ४५ से लेकर ७६६ बिलियन एक सेकेण्ड में है। वैज्ञानिकों ने कुछ ऐसी किरणों की खोज की है जो प्राणियों के जीवन में बड़े महत्त्व का कार्य करती हैं, किन्तु जिन्हें हम देख नहीं सकते। उदाहरणार्थ, एक्स-रे और अल्ट्रावायलेट-रे (अति बनफ्शी) को लीजिए। इन दोनों किरणों को हमारी आँख नहीं देख सकती किन्तु हमारे जीवन में ये मौलिक कार्य करती हैं। एक्स-रे और अल्ट्रावायलेट-रे की खोज चिकित्सावैज्ञानिकों के लिए बड़े महत्त्व की सिद्ध हुई है।

समावयवी और मिश्रित प्रकाश—प्रकाश की उत्तेजना दो प्रकार की होती है—समावयवी[2] और मिश्रित[3]। समावयवी प्रकाश उपर्युक्त सात रगों का होता है। मिश्रित प्रकाश का सबसे अच्छा उदाहरण साधारण सफेद प्रकाश है। वास्तव में जब हम किसी एक ही प्रकार के रग का ज्ञान करते हैं उस समय भी समावयवी प्रकाश के साथ-साथ हमें मिश्रित प्रकाश का ज्ञान होता रहता है, अर्थात् हमारी चक्षु सवेदना कभी भी मिश्रित प्रकाश के ज्ञान से अप्रभावित नहीं रहती।

आँख की बनावट—आँख एक गोल कैमरा के समान है। इसे नेत्र-गोलक[4] कहते हैं। इसकी रक्षा पलक और बरौनी करती हैं। ये गोलक गेंद की तरह गोल नहीं होते, इसकी लम्बाई एक कोने से दूसरे कोने तक एक इञ्च की होती है। इसका अगला भाग कुछ उभरा हुआ रहता है, जिसे कनीनिका[5] कहते हैं। कनीनिका में से होकर प्रकाश एक छोटे से दरवाजे पर पहुँचता है। यह दरवाजा उपतारा[6] कहा जाता है।

---

1 Prism 2 Homogeneous 3 Mixed. 4 Eye ball
5. Cornea 6 Iris

आँख का गोलक, जैसा कि चित्र नं० ६ में दिखाया गया है, तीन तहों का बना हुआ है। इन तहों के नाम निम्नलिखित हैं—

(१) श्वेत पटल[1] (स्क्लेरोटिक)

(२) मध्य पटल[2] (कोरायड)

(३) अन्तरीय पटल[3] (रेटिना)
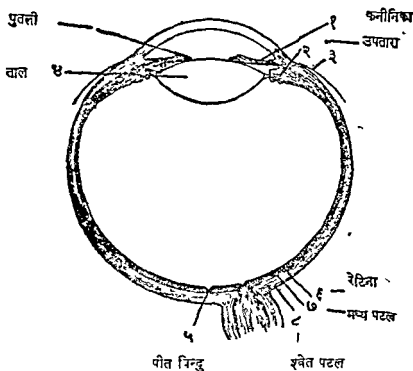
आँख के गोलक का चित्र

चित्र नं० ६

श्वेत पटल नेत्रगोलक का सबसे ऊपरी भाग है। यह नेत्र के ⅚ भाग पर फैला रहता है। इसका ही अगला भाग कनीनिका कहलाता है। कनीनिका पारदर्शी[4] होती है। श्वेत पटल पारदर्शी नहीं होता। कनीनिका का रंग भूरा या काला दिखाई देता है। इसका यह रङ्ग वास्तविक नहीं है, किन्तु यह रङ्ग उपतारे का है जो इसके बीच होकर चमकता है।

1. Selerotic, 2. Choroid, 3. Retins 4. Transparent.

मध्य पटल काले रंग का होता है। इस पटल के सामने की ओर प्रकाश को ग्रहण करनेवाला दरवाजा होता है जिसे उपतारा कहते हैं। उपतारा कनीनिका के कुछ पीछे होता है। यह कनीनिका से दिखाई देता है। इसके बीच में एक गोलाकार छेद होता है जिसे पुतली कहते हैं। उपतारा आँख में आनेवाले प्रकाश को कम या अधिक करता है। जब हम चमकीले प्रकाश में जाते हैं तो उपतारा में लगी हुई रेशेदार मांस-पेशियाँ पुतली को छोटा कर देती हैं और जब अँधेरे में आते हैं तो ये पेशियाँ उसे बड़ा कर देती हैं। यह उपतारे की क्रिया हमारे अनजाने अपने-आप होती है। इस प्रकार की क्रिया को "परावर्तन क्रिया" (सहज क्रिया) कहा जाता है। उपतारे के पीछे ताल (लेन्स) होता है। इसका वही काम है जो फोटोग्राफर के कैमरे के ताल का होता है। उपतारा किसी पदार्थ से आनेवाली किरणों को रेटिना के विशेष भाग पर केन्द्रित करता है। मध्य पटल आँख की कोठरी को अन्धकारमय बनाये रखता है। उसके कारण आँख के अन्दर आनेवाला प्रकाश चमक नहीं पैदा करता। जिस तरह फोटो लेनेवाले कैमरे के भीतर अन्धकार रहता है, इसी तरह आँख के गोलक के भीतर भी मध्य पटल के कारण अन्धकार रहता है। यदि यह अन्धकार न रहे तो आँख के सामने आनेवाले पदार्थ का ठीक चित्र रेटिना पर न पड़े।

आँख के गोलक का सबसे भीतरी भाग रेटिना या अन्तरीय पटल कहलाता है। यह मध्य पटल के नीचे और उससे लगा हुआ रहता है। रेटिना दृष्टिसंवेदना ग्रहण करनेवाली नाड़ियों के अगले भाग को कहते हैं। यह आँख के गोलक के भीतरी भाग ⅔ हिस्सों में फैला रहता है। इसके बीचोबीच एक गोलाकार पीला धब्बा होता है, जिसे पीतबिन्दु[1] अथवा फोबिया कहते हैं। जब आँख का यह भाग उत्तेजित होता है तो प्रबल दृष्टि-संवेदना होती है। जिस स्थान से होकर दृष्टि-संवेदना की नाड़ियाँ मस्तिष्क में जाती हैं उस स्थान में दृष्टि-संवेदना ग्रहण करने की शक्ति नहीं होती। इस स्थान को काला धब्बा[2] (अन्धबिन्दु) कहा जाता है।

रेटिना डण्डों और सूचियों का बना रहता है। इनकी आकृति अगले चित्र में दिखाई गई है। ये डण्डे और सूचियाँ दृष्टि-संवेदना ग्रहण करनेवाली

1. Fobia, 2. Blind spot.
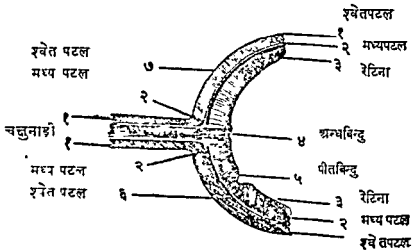
रेटिना का चित्र

चित्र नं० १०

स्नायुओं के सिरे हैं। डण्डे प्रकाश की चमक को ग्रहण करते हैं और सूचियाँ रंगों को ग्रहण करती हैं। अन्धबिन्दु पर न डण्डे रहते हैं और न सूचियाँ। फोविया अर्थात् पीतबिन्दु पर सूचियाँ मात्र रहती हैं। रङ्गों का स्पष्ट ज्ञान पीतबिन्दु और उसके आस-पास ३०० तक होता है। रेटिना के दूसरे स्थलों पर डण्डे और सूचियाँ दोनों रहती हैं। जहाँ सूचियों का अभाव होता है वहाँ रंग का ज्ञान नहीं होता। रेटिना के छोर पर सूचियों का अभाव होने के कारण किसी रंग का ज्ञान नहीं होता, सभी पदार्थ भूरे अथवा काले दिखाई देते हैं। उससे भीतरी भाग में लाल और हरे रंग का ज्ञान नहीं होता। ये रंग पीले, नीले, अथवा भूरे जैसे दिखाई देते हैं। उसके बादवाले भीतर की ओर के स्थल में अर्थात् फोविया (पीतबिन्दु) समीपवर्ती स्थल में सभी रंगों का ज्ञान होता है।

अन्धबिन्दु की खोज के लिए निम्नलिखित प्रयोग किया जा सकता है। किसी कागज पर एक गुणा का निशान लगाकर उससे तीन इञ्च दूरी पर एक वर्ग का चित्र बनाइये। इस चौकोर चित्र से एक इञ्च की दूरी पर एक स्टार का चित्र बना लें। अब अपनी बाईं आँख बन्द करके दाहिनी आँख से टकटकी लगाकर कोई पाँच इञ्च दूरी से गुणा के चिह्न को देखें। सम्भव है इस समय वर्ग और स्टार दोनों दिखाई पड़ें। अब अपनी दृष्टि को गुणा के
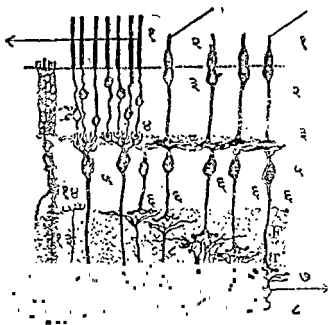
डण्डों और सूचियों का चित्र

चित्र नं० ११

ऊपर जमाये हुए जिस कागज में चित्र बने हैं उसे आगे की ओर धीरे-धीरे हटाओ। थोड़ी देर में वर्ग अदृश्य हो जायगा और फिर स्टार अदृश्य हो जायगा। इस समय वर्ग दिखाई देने लगेगा। जब स्टार या वर्ग का चित्र अन्धविन्दु के ऊपर पड़ता है तो वे अदृश्य हो जाते हैं।

× □ ❀

चित्र नं० १२

अन्धविन्दु को एक आँख बन्द कर दूसरी आँख को किसी पेंसिल की नोक पर, जो आँख से दस-बारह इञ्च दूरी पर हो, जमाकर तथा एक पैसे भर आगे-पीछे करके मालूम किया जा सकता है।

आँख के गोलक को उपतारा दो भागों में विभक्त करता है—एक सामनेवाला और दूसरा पिछला। इन भागों में दो प्रकार के तरल पदार्थ

भरे रहते हैं। एक का नाम जलीय रस (एक्यूअस ह्यूमर) है और दूसरे का स्वच्छ द्रव्य (विट्रिअस ह्यूमर) है। कनीनिका और उपतारा के बीच के भाग में जलीय रस रहता है। इस भाग को अगला कोष्ठ कहते हैं। गोलक के दूसरे भाग में अर्थात् उपतारा और रेटिना के बीच के भाग में, जिसे पिछला कोष्ठ कहते हैं, स्वच्छ द्रव्य रहता है। जलीय रस निर्मल पानी की तरह पारदर्शी होता है और स्वच्छ द्रव्य एक गाढ़ा और कुछ लसदार, स्वच्छ, अर्द्धतरल पदार्थ होता है। यह उपतारा के पीछे लगे हुए ताल (लेंस) का अपने ऊपर रखे रहता है। इन द्रव्यों और ताल का यह कार्य है कि बाहर से आनेवाले प्रकाश को तिरछा करके रेटिना के सबसे अधिक संवेदनात्मक स्थान पर केन्द्रित करें, जिससे कि बाह्य पदार्थ का प्रतिबिम्ब साफ-साफ रेटिना के ऊपर पड़ सके।

जब किसी पदार्थ की उत्तेजना हमारी आँख तक पहुँचती है अर्थात् जब बाह्य पदार्थ से आनेवाली प्रकाश की किरणें हमारी आँख के बाहरी भाग से सम्पर्क करती हैं तो हमारी आँखें तुरन्त ही इस उत्तेजना को ग्रहण करने के लिए उचित तैयारी कर लेती हैं। आँख का उपतारा या तो बढ़ जाता है या सिकुड़ जाता है जिससे तारे से होकर उतनी रोशनी जा सके जितनी कि बाह्य पदार्थ का चित्र लेने के लिए आवश्यक है। अधिक रोशनी में तारे का आकार छोटा हो जाता है और कम रोशनी में बढ़ जाता है। तारे के पीछे ताल लगा हुआ है। बाह्य पदार्थ की सभी किरणें इस ताल से होकर जाती हैं। इस ताल तक आने के पूर्व किरणें समानान्तर रूप में आती हैं। इस ताल का यह कार्य है कि ये समानान्तर किरणें इस तरह से तिरछी हो जायँ जिससे वे एक विशेष बिंदु पर एकत्रित हो सकें। यह ताल सूर्यमुखी काँच के समान बीच में मोटा और सिरों पर पतला रहता है। इस प्रकार के ताल को उन्नतोदर ताल (कानवेक्स लेन्स) कहा जाता है, किंतु हमारी आँख का उन्नतोदर ताल काँच के उन्नतोदर ताल के सदृश अपरिवर्तनशील नहीं है। यह एक जीवित पदार्थ है। इसमें परिस्थिति के अनुसार अपने को परिवर्तित करने की शक्ति होती है। यह आवश्यकतानुसार मोटा अथवा पतला हो जाता है। ताल की इस शक्ति को संयोजक शक्ति कहते हैं। इस शक्ति के द्वारा पास की और दूर की वस्तुएँ देखी जा सकती हैं; अर्थात् उनसे आनेवाली किरणों को एक ही स्थल पर केन्द्रित किया जा सकता है।

साधारणतः मनुष्य की आँखें दूर की वस्तुओं को (२० से ८० फुट तक की वस्तुओं को) सरलता से देखती हैं। किन्तु जब पढ़ाई-लिखाई का काम ज्यादा करना पड़ता है तो आँख को नजदीक की वस्तु के देखने का अभ्यास डालना पड़ता है। नजदीक की वस्तु से आनेवाली किरणों को रेटिना पर केन्द्रित करने के लिए ताल और उपतारा से लगे हुए स्नायुओं को विशेष परिश्रम पड़ता है। इसके परिणाम स्वरूप दूर के पदार्थ देखने की शक्ति आँख से जाती रहती है। ताल ऐसी स्थिति में अधिक उन्नतोदर हो जाता है। किन्हीं किन्हीं लोगों को जन्म से ही आँख की बीमारी होती है। वे दूर की चीजों को देख सकते हैं, परन्तु नजदीक की चीजों को नहीं देख सकते। इस प्रकार के रोग को दूरदृष्टि का रोग कहते हैं। इसी तरह आँख का दुरुपयोग करने से निकट दृष्टि का रोग हो जाता है। ऐसे लोग नजदीक की चीजें अच्छी तरह से देख सकते हैं, किंतु दूर की चीजें नहीं देख सकते। निकट दृष्टि वाले लोगों की आँख का ताल आवश्यकता से अधिक उन्नतोदर होता है और दूर दृष्टि के रोगवाले लोगों की आँख का ताल आवश्यकता से कम उन्नतोदर होता है। पहले प्रकार के रोग में बाहर से आनेवाली किरणें रेटिना के आगे केन्द्रित हो जाती हैं। इसे बीच में दबे हुए काँच के चश्मे (कानकेव लेन्स) की सहायता से सुधारा जा सकता है, अर्थात् इस प्रकार के चश्मे की सहायता से किरणों को रेटिना पर केन्द्रित किया जा सकता है। इसी तरह दूरदृष्टि के रोग को उन्नतोदर ताल के चश्मे से सुधारा जा सकता है।

रेटिना का समान भाग बाहरी उत्तेजना को ग्रहण करता है तो एक ही पदार्थ दिखाई देता है, पर जब बाहरी उत्तेजना दोनों आँखों के रेटिना के आस-पास के भाग को उत्तेजित करती है तो एक ही जगह दो पदार्थ दिखाई देते हैं। यह निम्नलिखित प्रयोग द्वारा देखा जा सकता है।

दो पेन्सिलों को अपने चेहरे के ठीक सामने (नाक की सीध में) इस तरह रखो कि एक चेहरे से चार इञ्च की दूरी पर हो और दूसरी पन्द्रह या बीस इञ्च की दूरी पर। अब अपनी दृष्टि दूर की पेन्सिल पर एकाग्र करो। ऐसी स्थिति में नजदीक की पेन्सिल दो दिखाई देगी। इसी तरह यदि पास वाली पेन्सिल पर दृष्टि एकाग्र की जाय तो दूर वाली पेन्सिल दो दिखाई देगी। एक की जगह दो पदार्थ दोनों आँखों के रेटिना के असमान भागों के उत्तेजित होने के कारण दिखाई देते हैं।

रंगसंवेदना का वर्गीकरण—रंगों को दो भागों में विभक्त किया जाता है, विषमधर्मी और समधर्मी। विषमधर्मी में काला सफेद-भूरा रंग की कतार है और समधर्मों में तिकोने काँच द्वारा देखे गये सात रग हैं। मनोवैज्ञानिकों और चित्रकारों में—इन सात रंगों में से मूल रंग कौन से हैं—इस विषय में मतभेद है। मनुष्य के अनुभव ने यह दर्शाया है कि कुछ थोड़े से मूल रंगों को लेकर उनको कम अथवा अधिक परिमाण में मिलाकर दूसरे सब रंग बनाये जा सकते हैं। किन्तु यह देखा गया है कि रङ्गों के मिलाने के तरीकों पर नये रग की उत्पत्ति निर्भर रहती है। पीले और नीले रङ्ग को यदि पानी में घोलकर मिलाते हैं, तो हरा रग बनता है, किन्तु यदि इन्हीं दो रङ्गों को प्रतिबिम्बित करके अथवा घूमती हुई तख्ती के द्वारा मिलावें तो पीला और नीला मिलाकर हरा न बनकर भूरा रंग बनेगा। अर्थात् जब पीले और नीले रग की संवेदनाएँ किसी प्रकार मिला दी जाती हैं तो दोनों प्रकार की संवेदनाएँ मिलकर भूरे रङ्ग की संवेदना में परिणत हो जाती हैं।

हमारे साधारण ज्ञान के अनुसार सूर्य की रोशनी में दिखाई देनेवाले सात रङ्ग होते हैं, जिन्हें हम तिकोने काँच के द्वारा देखते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इन रंगों में से केवल चार ही मूल रङ्ग हैं। ये रंग हैं लाल, पीला, हरा और नीला। नारङ्गी रङ्ग, लाल और पीले रङ्ग के मेल से बनता है, बनफशी नीले और लाल के मेल से। यदि बनफशी रङ्ग में लाल रङ्ग का परिमाण बढ़ा दिया जाय तो बैंगनी रङ्ग भी दो रङ्गों के सम्मिश्रण से बनाये जा सकते हैं।

रङ्गों में प्रकार-भेद के अतिरिक्त स्वगत भेद भी होता है। एक ही रङ्ग

गहरा और हलका हो सकता है, जैसे गहरा लाल और हल्का लाल। गहरे लाल की सवेदना हल्के लाल की संवेदनाओं से भिन्न होती है। आँख में रगों के गहरे और हल्केपन का ज्ञान रेटिना में स्थित डडों के द्वारा होता है और विभिन्न रगों का ज्ञान सूचियों द्वारा होता है।

विभिन्न प्रकार के रंगों की सवेदना में आपस में विशेष प्रकार का सम्बन्ध रहता है। यह सम्बन्ध हमारे रग के ज्ञान पर प्रभाव डालता है।

रंगों का मिश्रण—दो भिन्न भिन्न प्रकार के रग आपस में मिलकर या तो तीसरे प्रकार का रग उत्पन्न करते हैं, जो दोनों रगो क बीच का रग होता है अथवा वे आपस में मिलकर एक दूसरे को नष्ट करके भूरे रग में परिणत हो जाते हैं। यह स्मरण रहे कि इस प्रकार का सम्मिश्रण रगों के सवेदना का सम्मिश्रण है। यह चित्रकारों के काम में आनेवाले रग की बुकनियों का सम्मिश्रण नहीं है। जैसे ऊपर बताया गया है लाल और पीला मिलकर नारगी रग बनता है जो लाल और पीले के बीच का रग है। इसी तरह नीला और लाल मिलकर बनफशी अथवा बैंगनी रग बनते हैं। ये दोनो रंग नीले और लाल के बीच के रग हैं। किन्तु यदि पीले और नीले को मिला दिया जाय तो दोनों भूरे रग में परिणत हो जाते हैं। इसी तरह लाल और नीला मिलकर भूरा रग बनता है। जिन दो रगों के मिल से भूरा रग उत्पन्न होता है अर्थात् जो दो रग एक दूसरे की सवेदना को नष्ट कर देते हैं वे अनुपूरक रंग[1] कहलाते हैं। वर्णच्छत्र[2] के हरे रग को छोड़ प्रत्येक रग का अनुपूरक रग वर्णच्छत्र म ही होता है। सफेद का अनुपूरक काला रग है, लाल का हरा और पीले का नीला।

उपर्युक्त सिद्धान्त की सत्यता निम्नलिखित प्रयोग द्वारा प्रमाणित की जा सकती है—

पीले और नीले रंग की दो तख्तियाँ ले लो। दोनों तख्तियों को किसी एक घूमनेवाले पहिये पर लगा दो और वर्णच्छत्र की तख्ती की तरह इन्हें तेजी से घुमाओ। इस तरह इन तख्तियों के घुमाने से पीला और नीला रंग मिलते दिखाई देंगे। इन दोनों तख्तियों के हिस्सों को घटाते-बढ़ाते जाओ। इस प्रकार तख्तियों का रग भिन्न भिन्न परिमाण में मिलता है। एक समय ऐसा आवेगा जब कि दोनों रग नष्ट होकर भूरे रग के रूप में दिखाई देंगे। भूरा रग प्राप्त करने के लिए $\frac{3}{4}$ नीले रग और $\frac{1}{4}$ पीले रग की आवश्यकता होती है।

1. Complementary colours. 2. Spectrum.

जिस तरह पीले और नीले रंग का सम्मिश्रण भी किया जा सकता है, उसी तरह दूसरे दो अनुपूरक रंगों का सम्मिश्रण भी किया जा सकता है। जब दो अनुपूरक रंगों की तख्तियाँ नहीं ली जातीं तो दो रंगों से मिलकर भूरा रंग नहीं पैदा होता, वरन् दोनों रंगों के बीच का रंग पैदा होता है।

इस प्रयोग के करने के लिए एक विशेष प्रकार का यन्त्र काम में लाया जाता है जिसे रंग मिलानेवाला यन्त्र (कलर मिक्श्चर) कहते हैं। यह बिजली के पंखे के सदृश होता है।

रंगों का विरोध[1]—यदि दो परस्पर विरोधी रंगों को, जो एक दूसरे के अनुपूरक हैं, एक दूसरे के पास रख दिया जाय, तो जहाँ दोनों रंगों का मेल होता है वहाँ ये दोनों रंग अधिक गहरे दिखाई देंगे। पीले और नीले रंग की दो पट्टियाँ किसी ड्राइङ्ग कापी पर बनाकर यह देखा जा सकता है। यदि पीली पट्टी के पास नीले के बदले लाल या हरे रंग की पट्टी बनाई जाय तो दूसरे प्रकार का ही परिणाम होगा। अर्थात् जहाँ दोनों रंग मिलते हैं वहाँ वे उतने अधिक चटकीले न दिखाई देंगे। अनुपूरक रंगों के समीप आने पर ही दोनों रंग अधिक चटकीले दिखाई देते हैं। इस प्रकार का प्रभाव उन रंगों की विरोधी उत्तर प्रतिमा[2] के कारण होता है जिसका हम आगे वर्णन करेंगे। ऐसे विरोध को क्रमिक विरोध[3] कहते हैं।

क्रमिक विरोध के अतिरिक्त एक और दूसरे प्रकार के रंगों का विरोध है, जिसे सहकारी विरोध[4] कहते हैं। सहकारी विरोध की अवस्था में भी रंग के क्षेत्र में लगी हुई कोई भूरे रंग की चिट अनुपूरक रंग से रँगी हुई दिखाई देती है। यदि कोई पीले रंग का क्षेत्र हो और उसके ऊपर एक भूरे रंग की कागज की चिट लगा दी जाय तो यह चिट भूरे रंग की न दिखाई देकर नीली सी दिखाई देगी। इसी तरह नीले क्षेत्र में लगी हुई चिट पीली सी दिखाई देगी। अब यदि पतले कागज (टिस्यू पेपर) से चिट के सहित पूरे क्षेत्र ढाँक दिये जायँ तो देखनेवाला उन क्षेत्रों में उपस्थित भूरे रङ्ग को कदापि नहीं पहचान सकेगा। ये भूरे रंग की चिटें क्षेत्र के विरोधी रङ्ग की संवेदना उत्पन्न करेंगी।

उत्तर प्रतिमाएँ[5]—उत्तर प्रतिमाएँ किसी प्रकार की दृष्टि संवेदनाओं से पैदा होती हैं। इन्हें वास्तव में उत्तर-संवेदनाएँ कहा जाना चाहिए। ये दो

---

1. Colour contrast. 2 After-image. 3. Successive contrast. 4. Simultaneous contrast. 5. After images.

प्रकार की होती हैं—एक अनुरूप उत्तर प्रतिमा[1] और दूसरी विरोधी उत्तर प्रतिमा[2]। अनुरूप उत्तर प्रतिमा निम्नलिखित प्रयोग द्वारा प्राप्त की जा सकती है—

एक मिनट के लिए अपनी दोनों आँखें बन्द कर लो, फिर अपनी दृष्टि को किसी तेज प्रकाश, जैसे जलते हुए बिजली के बल्ब पर जमाओ। एक मिनट इस प्रकार बिजली के प्रकाश की ओर देखने के बाद एकाएक दोनों आँखें बन्द कर लो। आँखों के बन्द होने पर, दो-एक सेकेण्ड तक बिजली की रोशनी जैसा चमकीला पदार्थ सामने दिखाई देता रहेगा। वास्तव में यह पदार्थ इसके पूर्व देखी गई बिजली की रोशनी की उत्तर प्रतिमा है। यह उत्तर प्रतिमा आँख के रेटिना में पैदा हुई उत्तेजना के परिणामस्वरूप होती है। अर्थात् रेटिना उत्तेजक पदार्थ के अभाव में भी उत्तेजित अवस्था में रहता है। इस उत्तर प्रतिमा को अनुरूप उत्तर प्रतिमा कहते हैं।

विरोधी उत्तर प्रतिमा के अनुभव में इसके ठीक उल्टी प्रतिक्रिया होती है, प्रकाश अन्धकार में परिणत हो जाता है और किसी प्रकार का रंग उसके अनुपूरक रग में परिणत हो जाता है। अनुरूप प्रतिमा अनुभव के तुरन्त बाद दिखाई देती है। इसके प्रतिकूल विरोधी उत्तर प्रतिमा किसी प्रकार की उत्तेजना के तीन चार सेकेण्ड बाद दिखाई देती है। विरोधी उत्तर प्रतिमा के प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित प्रयोग किया जा सकता है—

एक ८ इञ्च लम्बे और ६ इञ्च चौड़े सफेद कागज पर सिरे से कुछ नीचे बीच में एक नीले रग की एक वर्ग इञ्च की चिट चिपका दो। इस कागज़ को अपना आँख से १ फुट की दूरी पर रखो। इस चिट की ओर टकटकी लगाकर एक मिनट तक देखो। फिर एकाएक अपनी दृष्टि इस चिट से हटाकर उस कागज के निचले सिरे के पास जमाओ। दो एक सेकेण्ड के बाद पीले रग की उतनी ही बड़ी चिट दिखाई देगी। यह पहली चिट की विरोधा उत्तर प्रतिमा है। यदि हम इस प्रयोग में पीली की जगह लाल रग की चिट लें तो विरोधी उत्तर प्रतिमा हरे रग की दिखाई देगी। यह उत्तर प्रतिमा चार-पाँच सेकेण्ड तक ठहरती है। पीछे दिये की लौ के समान कूदकर लोप हो जाती है।

यदि किसी विरोधी उत्तर प्रतिमा की ओर देखते-देखते हम उस कागज को, जिस पर वह दिखाई देती है, धीरे-धीरे आँख से दूर ले जायें तो उसका

1. Positive after-image. 2. Negative after-image.

आकार बढ़ता हुआ दिखाई देगा और यदि उसे आँख के समीप लावें तो उसका आकार घटता हुआ दिखाई देगा। अर्थात् विरोधी उत्तर प्रतिमा का अनुभव पदार्थ के संवेदनाजनक ज्ञान के ठीक प्रतिकूल होता है। साधारणतः हम जिस पदार्थ को आँख से जितना दूर रखते हैं उसकी उतनी ही छोटी प्रतिमा रेटिना पर आती है और उसे जितना समीप हम देखते हैं उसकी प्रतिमा उतनी ही बड़ी होती है। विरोधी उत्तर प्रतिमा के अनुभव में इसके प्रतिकूल परिस्थिति पाई जाती है। वह जितनी दूर रखी जाती है; उतनी ही बड़ी दिखाई देती है तथा जितनी समीप रखी जाती है उतनी छोटी दिखाई देती है।

रंग का अन्धापन—ऊपर बताया जा चुका है कि साधारणतः रेटिना के सिरे के भाग में रंग की संवेदना ग्रहण करने की शक्ति नहीं होती है। किन्तु किन्हीं-किन्हीं लोगों की आँख के पूरे रेटिना में रंग-संवेदना ग्रहण करने की शक्ति नहीं होती। ऐसे मनुष्य में रंग का अन्धापन रहता है। रंग के अन्धे व्यक्ति स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक होते हैं। कितने ही लोग लाल और हरे रंग को नहीं देख सकते; बाकी सब रंगों को देखते हैं। कितने ही लोग नीले और पीले रंगों को नहीं देख सकते। जिन लोगों में रंगों के प्रति पूरा अन्धापन होता है वे वर्णच्छत्र के किसी भी रंग को नहीं देख पाते। उन्हें सभी रंग भूरे दिखाई पड़ते हैं।

ध्वनि-संवेदना[1]

ध्वनि-संवेदना के प्रकार—ध्वनि-ज्ञान को प्रायः दो प्रकारों में विभक्त किया जाता है—हल्ला[2] (शोर) और सुर[3]। बे-ताल की आवाज हल्ला कहलाती है और तालयुक्त आवाज सुर कहलाती है। हल्ला और सुर एक दूसरे से बिलकुल पृथक नहीं होते। अधिक सुरों में हल्ला रहता है और बहुत से हल्लाओं में सुरीली आवाज रहती है। पियानो की आवाज में 'सुर' का प्रधान अंग रहता है, किन्तु हल्ला करनेवाली आवाज का पूर्ण अभाव नहीं होता। इसी तरह हथौड़े से तार को पीटने की आवाज हल्ला पैदा करती है; किन्तु दूर से यही हल्ला सुर से मिश्रित सुनाई देता है। गाड़ी की गड़गड़ाहट 'हल्ला' कहलाती है किन्तु दूर से सुनने से यही हल्ला एक प्रकार के रोचक 'सुर' के रूप में सुनाई देता है।

ध्वनि संवेदना के गुण—ध्वनि-संवेदना के तीन गुण होते हैं—ऊँचाई[4], तीव्रता[5] और माधुर्य[6]। ध्वनि-संवेदनाओं के विशेष गुणों के

1. Auditory sensations. 2. Noises. 3. Tones. 4. Pitch. 5. Intensity. 6. Quality.

भेद बाहर से आनेवाली उत्तेजना के भेदों पर निर्भर होते हैं। हवा का स्पन्दन इन अनेक प्रकार की ध्वनियों (आवाजों) को उत्पन्न करता है। सुरीली आवाज प्रति सेकेण्ड सोलह या बीस बार स्पन्दन से लेकर चालीस-पचास हजार बार प्रति सेकेण्ड तक से पैदा होती है। जब स्पन्दन इससे अधिक होता है तो सुर-ज्ञान नहीं होता। प्रायः सभी बाजे एक सेकेण्ड में चौंसठ स्पन्दन से लेकर चार-पाँच हजार स्पन्दन तक सीमित रहते हैं।

किसी आवाज की ऊँचाई स्पन्दन की संख्या[1] पर, उसकी तीक्ष्णता[2] उसके विस्तार पर और उसका माधुर्य ध्वनि की लहर[3] के आकार[4] पर निर्भर रहता है। स्वरों के विषय में सन्तोषजनक ज्ञान यहाँ पर देना सम्भव नहीं। किसी भी बाजे की विभिन्न प्रकार की सुरीली ध्वनियों के उत्पन्न करने में जितने गुणों की आवश्यकता होती है उन्हें समझना ध्वनि-विशेषज्ञ के लिए ही सम्भव है। विभिन्न प्रकार की ध्वनि की उत्पत्ति एक बड़े विज्ञान का विषय है जिसमें उतरना यहाँ सम्भव नहीं।

मनुष्य की आवाज में हल्ला और सुर दोनों ही उपस्थित रहते हैं। किसी भाषा के शब्दों में भी दोनों प्रकारों की आवाजें पाई जाती हैं। भाषा की वर्णमाला के स्वर सुर उत्पन्न करते हैं और व्यञ्जन अधिकतर हल्ला उत्पन्न करते हैं। विभिन्न व्यक्तियों की भाषा में उक्त दो प्रकार की आवाजें भिन्न-भिन्न परिमाण में मिश्रित रहती हैं। इसी कारण किसी व्यक्ति की भाषा में कर्कशता अधिक रहती है और किसी में माधुर्य अधिक रहता है। पहले की भाषा में कठोर व्यञ्जनों का बाहुल्य होता है और दूसरे की भाषा में मृदु व्यञ्जन, सानुनासिक और स्वर अधिक पाये जाते हैं। कविता की भाषा में 'सुर' की प्रधानता होती है।

कर्णेन्द्रिय की बनावट—कर्णेन्द्रिय की बनावट और उसकी ध्वनि-संवेदना को ग्रहण करने की प्रक्रिया को पूर्णतः समझना एक मनोविज्ञान की पुस्तक में सम्भव नहीं। यह डाक्टरी का विषय है और इसका सम्पूर्ण अध्ययन चिकित्सा-विज्ञान में ही हो सकता है। किन्तु इस विषय में कुछ मोटी-मोटी बातों का ज्ञान कर लेना कठिन नहीं है। इन बातों का ज्ञान करना कर्णेन्द्रिय द्वारा उत्पन्न की हुई संवेदना को समझने के लिए आवश्यक

---

1. Frequency of the vibration. 2. Amplitude. 3. Sound wave. 4. Form.

है। कान के तीन मुख्य भाग होते हैं जो नीचे दिये चित्र में दर्शाये गये हैं।
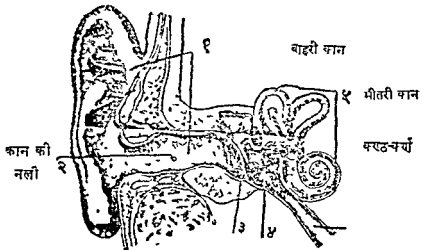
ढोल मध्य कान
कान का चित्र
चित्र नं० १३

इन भागों के निम्नलिखित नाम हैं—

(१) बाहरी कान[1]
(२) मध्य कान[2]
(३) भीतरी कान[3]

बाहरी कान—बाहरी कान के दो भाग होते हैं। एक वह है जो सीपी की तरह रहता है। यह नीचे की ओर को छोड़कर कारटिलेज का बना रहता है। दूसरा भाग 'कान की नली' कहलाता है। यह नली लगभग सवा इञ्च की होती है। यह नली टेढ़े-मेढ़े घूमकर ढोल[4] तक पहुँचती है। ढोल बाहरी कान और मध्य कान के बीच में होता है।

मध्य कान—मध्य कान एक प्रकार की कोठरी है। यह बाहर की ओर चौड़ी और भीतर की ओर सँकरी होती है। यह कोठरी कनपटी की हड्डियों के भीतर रहती है। इसमें से एक नली, जिसे कण्ठ-कर्ण नली[5] कहते हैं, गले की ओर जाती और गले तक पहुँचती है। इस कोठरी में एक पतली नली

1. The external ear. 2. The middle ear. 3. The internal ear. 4 Drum. 5. Eustachian tube.

लगी रहती है जो हवा से भरी होती है। मध्य कान में तीन तीन छोटी-छोटी हड्डियाँ होती हैं, जो ढोल से लेकर मध्य कान की भीतरी दीवाल तक फैली हुई रहती हैं। ये आपस में बन्धनों द्वारा बँधी होती हैं और इनमें बीच में हिलने-घूमनेवाले जोड़ होते हैं। ढोल के पासवाली हड्डी को मुगद्र[1] कहते हैं। बीच की हड्डी को निहाई[2] कहते हैं। तीसरी हड्डी जो भीतरी कान के समीप होती है, रकाब[3] कहलाती है। इन हड्डियों के नाम इनकी बनावट के अनुसार रखे गये हैं। उनके द्वारा ढोल तक पहुँचाती हुई आवाज की लहरें भीतरी कान तक पहुँचती हैं।

भीतरी कान—भीतरी कान कनपटी की हड्डी के भीतर रहता है। इसकी बनावट बड़ी ही जटिल होती है इसकी बनावट की जटिलता के कारण इसे घूम-घुमैया[4] भी कहा जाता है। इस कान की दीवाल एक पतली झिल्ली से ढकी रहती है। इसमें पानी भरा रहता है। इस झिल्ली की जड़ में ध्वनि-संवेदना जाननेवाली नाड़ियों के छोर रहते हैं।

जब ध्वनि-लहरें कान तक पहुँचती हैं तो वे ढोल से स्पन्दन पैदा करती हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ढोल बाहरी कान और मध्य कान के बीच होता है। इस ढोल से मुगद्र जुड़ा हुआ रहता है। इसके द्वारा ढोल का स्पन्दन निहाई तक पहुँचता है। यही स्पन्दन पीछे रकाब द्वारा, जो एक ओर निहाई से और दूसरी ओर भीतरी कान से जुड़ा रहता है, भीतरी कान तक पहुँचता है। यहाँ पहुँचने पर वह स्पन्दन भीतरी कान की झिल्ली में स्थित छोटे-छोटे बालों की कोठरियों को उत्तेजित करता है। इन बालों के उत्तेजित होने पर ध्वनि ग्रहण करनेवाली नाड़ियाँ उत्तेजित होती हैं और वे ध्वनि-संवेदना को मस्तिष्क तक ले जाती हैं। मस्तिष्क में ध्वनि-ज्ञान को उत्पन्न करनेवाले क्षेत्र में पहुँचकर यह उत्तेजना ध्वनि-ज्ञान में परिणत हो जाती है।

अर्धचक्राकार नलियाँ[5]—ये भीतरी कान से जुड़ी रहती हैं। इनका उपयोग शरीर की हलचल और उसकी समता रखने में है। ये सुनने के किसी काम में नहीं आतीं इनके अतिरिक्त उत्तेजित होने पर चक्कर आने की अनुभूति होती है।

---

1. Hammer. 2. Anvil 3. Stirrup. 4. Labyrinth. 5. Semicircular canals.

रस-संवेदना

रस-संवेदनाओं के प्रकार—अनेक प्रयोगों और तर्क-वितर्क के पश्चात् मनोवैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर आये हैं कि मूल रस-संवेदनाएँ चार प्रकार की होती हैं। खारा, खट्टा, मीठा और कड़वा—ये ही चार प्रकार के स्वाद हमारी रसना ग्रहण करती है। कुछ लोग इनके अतिरिक्त कसैले और तीक्ष्ण को भी भिन्न प्रकार का स्वाद मानते हैं। ये स्वाद अर्थात् उक्त छः प्रकार की संवेदनाएँ एक दूसरे से मिश्रित होकर अनेक प्रकार के स्वादों के अनुभवों को उत्पन्न करती हैं। इन छः प्रकार की रस संवेदनाओं का मिश्रण स्पर्श, घ्राण, शीतोष्ण आदि संवेदनाओं में हो जाता है। यों भोजन के अनेक प्रकार के स्वादों की सृष्टि होती है, किन्तु यदि किसी खाद्य पदार्थ से स्वाद का विश्लेषण किया जाय तो हम उसके मूल में उक्त चार या छः प्रकार की संवेदनाओं को ही पायेंगे। बहुत से भोजनों की रोचकता सुगन्ध के कारण बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ, चाय और काफी को लीजिए—इनकी रोचकता अधिकतर उनकी विशेष प्रकार की सुगन्ध पर निर्भर करती है। काफी में कड़वापन, मीठापन, उष्णता और स्पर्श की संवेदनाएँ रहती हैं। इन्हीं संवेदनाओं के कारण काफी इतना प्रिय पेय पदार्थ नहीं होता, अपितु उसकी विशेष प्रकार की सुगन्ध ही उसे प्रिय बनाती है। इसी तरह जब चाय की सुगन्ध चली जाती है तो वह पीने में अच्छी नहीं लगती। यदि उष्णता और स्पर्श की संवेदनाओं को भी, जो वास्तव में रस-संवेदनाएँ नहीं हैं, चाय के स्वाद से निकाल दें तो क्या चाय फिर पीने योग्य वस्तु रह जायगी? जब हमें जुकाम हो जाता है तो भोजन का स्वाद फीका पड़ जाता है। ऐसी स्थिति में लोग जीभ को दूषित मान बैठते हैं; पर वास्तव में हमारी सुगन्ध ग्रहण करने की शक्ति जुकाम के कारण कम हो जाने से ही भोजन का स्वाद बिगड़ जाता है।

किसी भोजन के स्वादिष्ट लगने में आँख से देखना भी महत्त्वपूर्ण है। कितने ही भोजन के पदार्थ स्वादिष्ट होने पर भी रूप-रङ्ग के कारण खाने में अप्रिय लगने लगते हैं। घ्राण-संवेदना और चक्षु-संवेदनाओं का किसी पदार्थ को स्वादिष्ट बनाने में कितना महत्त्व का स्थान है इसे हम एक प्रयोग द्वारा जान सकते हैं।

चार-पाँच प्रकार के अनजाने खाद्य-पदार्थ किसी व्यक्ति को खाने के लिए परोसिए। भोजन करने के पूर्व उसकी आँखें बाँध दीजिए और नाक बन्द करके उससे भोजन को चखकर भोजन के पदार्थों को पहचानने

को कहिए। आप देखेंगे कि बहुत से साधारण पदार्थों से बने भोजन को वह न पहचान सकेगा। यदि ठोस भोजन को पतला करके और उसे साधारण ताप की अवस्था में दिया जाय तो भोजन को पहचानना और भी कठिन हो जायगा। ऐसी अवस्था में भोजन के चार रसों की संवेदनाओं के अतिरिक्त दूसरे किसी प्रकार के स्वादों का ज्ञान नहीं होता। इन चारों को भी ठीक ठीक पहचानना कठिन हो जाता है। रसों के स्वाद चार ही हैं, यह उक्त प्रयोग भली प्रकार से सिद्ध कर देता है।

रस ज्ञान का वितरण—उपर्युक्त चार प्रकार की रस संवेदनाएँ जीभ के विभिन्न भागों से उत्पन्न होता हैं। हमारी साधारण धारणा है कि जीभ के प्रत्येक भाग में सभी प्रकार के रस ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति है, ठीक नहीं है।
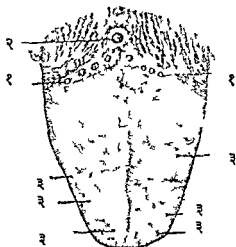
जीभ का चित्र

चित्र न० १४

जीभ की ऊपर से दिखाई देनेवाली सतहें—न० १ और २ के स्थान एक प्रकार के रसों की संवेदना ग्रहण करते हैं और ३ दूसरे प्रकार के रसों की। अंकवाले भागों के अतिरिक्त दूसरे भागों में रस संवेदना ग्रहण करने की शक्ति बहुत कम होती है। वास्तव में जीभ के मध्य भाग में किसी प्रकार के रस ज्ञान की शक्ति बहुत ही कम होती है और जीभ के चारों तरफ के विभिन्न भागों में भिन्न भिन्न प्रकार की रस संवेदनाओं के ग्रहण करने की शक्ति होती है। जीभ के अगले छोर में मीठे और

खारेपन को जानने की विशेष शक्ति होती है, जीभ की दोनों बाजुओं में खट्टेपन का ज्ञान होता है और उसके भीतरी भाग में कड़ुआपन का ज्ञान होता है। इससे प्रमाणित होता है कि भिन्न प्रकार की रस संवेदनाओं के ज्ञान के लिए प्रकृति ने भिन्न-भिन्न प्रकार की नाड़ियों की रचना की है। देखा जाता है कि एक ही पदार्थ जीभ के एक स्थान पर मीठा और दूसरे पर कड़ुआ ज्ञात होता है।

घ्राण-संवेदना

घ्राण संवेदना की उत्पत्ति—घ्राण संवेदना का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रस-संवेदना से है। घ्राण-संवेदना प्राणियों के जीवन में बड़े काम की वस्तु है। इसके द्वारा वे खाद्याखाद्य का ज्ञान करते हैं। घ्राण-संवेदना कई प्रकार की होती है। विभिन्न प्रकार की घ्राण-संवेदना को ग्रहण करनेवाली नाड़ियाँ किसी एक विशेष स्थान पर नहीं रहतीं, वरन् नाक के भीतरी भाग में सभी जगह रहती हैं। जिस तरह रस का ज्ञान किसी भी पदार्थ के द्रवरूप में आने पर होता है, इसी तरह घ्राण-संवेदना को पैदा करनेवाले उत्तेजक पदार्थ गैस के रूप में ही होते हैं। घ्राण-संवेदना के विशेषज्ञों ने उसे कई वर्गों में विभाजित किया है। प्रायः इन वर्गों के नाम उन पदार्थों के अनुसार पड़े हैं जिनमें वे संवेदनाएँ आती हैं।

घ्राणेन्द्रिय की बनावट—नाक के भीतरी भाग में बारीक धागों के सदृश छोटे छोटे कोषाणु होते हैं। इन्हीं के द्वारा घ्राण-संवेदना ग्रहण की जाती है। इनका सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है। जब हम साँस लेते हैं तो हवा में रहनेवाली विशेष प्रकार की गैस नाक की झिल्ली में उपस्थित कोषाणुओं को उत्तेजित करती है। कभी-कभी धीरे-धीरे साँस लेने से यह उत्तेजना नहीं होती, किन्तु जोर से साँस लेने से ये कोषाणु उत्तेजित हो जाते हैं। रस-संवेदना और घ्राण-संवेदना के विशेष स्थान मस्तिष्क में कौन से हैं, इसका अभी तक बिल्कुल ठीक पता नहीं चला है, पर ऐसा विश्वास किया जाता है कि इन संवेदनाओं के ग्रहण करने के वैसे ही स्थल हैं जैसे अन्य संवेदनाओं के।

स्पर्श-संवेदना

स्पर्श-संवेदनाओं के अन्तर्गत कई प्रकार की संवेदनाएँ हैं जब कोई पदार्थ हमारे शरीर के किसी भाग के सम्पर्क में आता है तो कई प्रकार की संवेदनाएँ हमें होती हैं, जैसे दबाव की, गर्मी की, ठण्डक की और पीड़ा की।

यद्यपि ये सवेदनाएँ एक दूसरे से भिन्न हैं और उनके चमड़े पर भिन्न भिन्न स्थान हैं, तिस पर भी जब कभी कोई पदार्थ शरीर के सम्पर्क में आता है तो दो-तीन प्रकार की सवेदनाओं की अनुभूति एक साथ होती है। इसके कारण हम यह नहीं जान पाते कि भिन्न भिन्न प्रकार की संवेदनाओं के शरीर पर भिन्न भिन्न प्रकार के स्थान हैं। मान लीजिए, हम एक गरम तार छू लेते हैं तो गर्मी की और पीड़ा को सवेदनाओं का अनुभव एक साथ होता है। परन्तु वास्तव में जिस स्थान में पीडा की सवेदना की अनुभूति होती है उस स्थान म गर्मी की सवेदना की अनुभूति नहीं होती। इसी तरह जिस स्थान में गर्मी की सवेदना की अनुभूति होती है वहाँ पीड़ा की सवेदना की अनुभूति नहीं होती। अर्थात् हमारे चमड क कुछ भाग शीत का, कुछ गर्मी का, कुछ पीड़ा की और कुछ दबाव का सवेदना ग्रहण करते हैं। ये स्थल बहुत पास-पास होते हैं, अतएव इनको खोजने में कठिनाई होती है, किन्तु कुछ साधारण प्रयोगों के द्वारा इन्हें खोजा जा सकता है।

स्पर्श सवेदना के प्रयोग—शरीर के किस भाग में कौन-कौन से विशेष स्थान ठण्डक या गर्मी की उत्तेजना को ग्रहण करते हैं, इसे जानने के लिए निम्नलिखित प्रयोग किया जा सकता है—एक वर्ग-इञ्च का रबर स्टैम्प ऐसा लीजिए, जिसमें सौ खाने बने हों। इसके ऊपर स्याही लगाकर हाथ के पिछले भाग पर छाप दीजिए। जब ये सौ खाने हाथ के पिछले भाग पर उभर जायँ तो एक पीतल की पेन्सिल के रूप के पतले डण्डे से, जिसे बरफ के पानी में डालकर ठण्डा कर लिया गया हो, एक एक खाने में शीत-सवेदना ग्रहण करनेवाले स्थानों को खोजिए। प्रयोग करने से ज्ञात होगा कि जब हम सावधानी के साथ हाथ पर उभरे हुए सौ घरों पर एक-एक करके इस पीतल के डण्डे की नोक चलाते हैं तो किसी स्थल पर हमें ठण्डक का ज्ञान होता है और किसी स्थल पर यह ज्ञान नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि हमारे शरीर के चमडे क सभी भागों में एक सी शीत-सवेदना ग्रहण करने की शक्ति नहीं है।

जिस प्रकार शीत सवेदना ग्रहण करनेवाले स्थल ढूँढे जा सकते हैं इसी तरह पीतल के नुकीले डण्डे को गरम पानी में डालकर कुछ गरम करके गर्मी की उत्तेजनाओं को ग्रहण करनेवाले स्थलों को ढूँढा जा सकता है। सूअर के बाल की सहायता से इसी तरह पीड़ा की सवेदना को ग्रहण करनेवाले स्थलों को ढूँढा जा सकता है।

प्रयोगों द्वारा पता चलता है कि विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं को ग्रहण करने की शक्ति शरीर के और भागों की अपेक्षा अँगुलियों के छोरों में अधिक होती है। इसी तरह जीभ की नोक पर भी स्पर्श-संवेदना ग्रहण करने की शक्ति अधिक होती है। हाथ के विभिन्न स्थानों में दबाव की संवेदना ग्रहण करने की शक्ति में भेद होता है। इसे एक साधारण प्रयोग के द्वारा जाना जा सकता है।

किसी व्यक्ति को आँख बन्द करने को कहिए। इसके पश्चात् परकार के दोनों डण्डों को एक चौथाई इञ्च दूर रखकर उसकी कुहनी के समीप धीरे से छुलाइए। अब उससे पूछिये कि परकार का एक डण्डा छू रहा है अथवा दोनों। इसी तरह इन डण्डों को हथेली पर छुलाइए और पूछिए कि कितने डण्डे छू रहे हैं। इस प्रयोग से पता चलेगा कि कुहनी के समीप के स्थान में स्पर्श-संवेदना का ठीक-ठीक ज्ञान करने की उतनी शक्ति नहीं है जितनी कि हथेली के किसी भाग में है।

वेबर का नियम[1]

वेबर महाशय ने संवेदना की तीक्ष्णता और उत्तेजना की प्रबलता में सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की है। उनकी यह खोज "वेबर के नियम" के नाम से प्रसिद्ध है। यह नियम सरल शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है।

"उत्तेजना की प्रबलता चाहे कितना ही क्यों न हो उससे उत्पन्न संवेदना में किसी प्रकार के अन्तर के लिए यह आवश्यक है कि उत्तेजना में वृद्धि किसी विशेष अनुपात में हो।" इसका अर्थ यह है कि जैसी उत्तेजना होगी उसी के अनुसार उसमें वृद्धि या कमी होनी चाहिए तभी किसी प्रकार के भेद का ज्ञान होता है, अन्यथा नहीं। मान लीजिए कोई मनुष्य एक सेर वजन अपने हाथ में रखे है, यदि उसके वजन में आधा तोला वजन और बढ़ा दिया जाय तो उसे वजन का ज्ञान न होगा। पर यदि वही मनुष्य पहले से दो तोला ही वजन अपने हाथ में लिये है

---

1 Weber's Law.

Whatever the obsolute value of a stimulus, it must be increased by a proportionate amount in order that, on the side of sensation, a difference may be noticed—Gault and Howard An Outline of Psychology, P 100

और उसके वजन में आधा तोला वजन और बढ़ा दिया जाय तो उस वजन का ज्ञान तुरन्त हो जावेगा।

जिस मकान में दो सौ लैम्प जल रहे हों उसमें यदि एक लैम्प और जला दिया जाता है तो उस घर में प्रकाश की वृद्धि का ज्ञान हमें नहीं होता। इसी तरह यदि दो सौ दियों में से एक बुझ जाय तो भी प्रकाश के अन्तर का ज्ञान हमें नहीं होगा। पर जिस कमरे में पाँच लैम्प जल रहे हों उसमें एक और लैम्प जला दिया जाय, अथवा उन पाँच लैम्पों में से एक बुझ जाय तो हमें प्रकाश का अन्तर तुरन्त ज्ञात हो जायगा। रात की शान्त अवस्था में घड़ी का टिक-टिक करना हमें बहुत खटकता है, किन्तु यही घड़ी जब एक फैक्टरी में टिक-टिक करती है तो उसकी ओर हमारा ध्यान भी नहीं जाता।

इन उदाहरणों से यह प्रत्यक्ष है कि किसी भी प्रकाश की दो उत्तेजनाओं के अन्तर का ज्ञान उस अन्तर के परिमाण पर निर्भर नहीं है, बल्कि उस अन्तर का मूल उत्तेजना के साथ अनुपात पर निर्भर रहता है।

भिन्न-भिन्न प्रकार की उत्तेजनाओं के अन्तर का ज्ञान होने के लिए भिन्न-भिन्न अनुपात में उन्हें घटाने अथवा बढ़ाने की आवश्यकता होती है। प्रयोग करके देखा गया है कि इस प्रकार की उत्तेजना में अन्तर के ज्ञान के लिए सौवें हिस्से को बढ़ाना या घटाना आवश्यक होता है, किन्तु आवाज का भेद पहचानने के लिए प्राथमिक उत्तेजना का तिहाई भाग कम या अधिक करना पड़ता है।

इस नियम की सत्यता एक प्रयोग के द्वारा सिद्ध की जा सकती है। किसी व्यक्ति को पाँच ग्राम वजन की डिबिया दो। पीछे उसे एक दूसरी ऐसी डिबिया उठाने को कहो जिसका वजन पहली डिबिया से थोड़ा अधिक है। जब तक उसे वजन में अन्तर न मालूम पड़े क्रमशः वजनी डिबियों को उठवाते जाओ। जब उसे पहिली डिबिया और इस नई डिबिया में वजन का अन्तर ज्ञात हो जाय, दोनों के वजन के अन्तर को निकाल लो। इस अन्तर से पहिली डिबिया के वजन में भाग दो तो उस अनुपात का पता चल जायगा जो वजन के अन्तर के ज्ञान के लिए आवश्यक है।

अब हम यह कह सकते हैं कि एक सेर वजन में कितना वजन बढ़ाया या घटाया जाय कि वजन बढ़ने और घटने का ज्ञान हो सके।

प्रश्न

१—संवेदना किस प्रकार के ज्ञान को कहते हैं ? इसकी उत्पत्ति कैसे होती है ? उदाहरण देकर समझाइए।

२—बच्चों और प्रौढ़ व्यक्तियों की संवेदना के भेद को स्पष्ट कीजिए। प्रौढ़ व्यक्तियों को शुद्ध संवेदना का ज्ञान होना क्यों सम्भव नहीं है ?

३—मनुष्य और पशुओं की संवेदनाओं में क्या भेद है ? उदाहरण देकर समझाइए।

४—संवेदनाओं के मुख्य गुण कौन-कौन से हैं ? संक्षेप में समझाइए।

५—भिन्न-भिन्न प्रकार की संवेदनाओं को उदाहरण देकर समझाइए।

६—दृष्टि-संवेदना कैसे उत्पन्न होती है ? आँख के चित्र को बनाकर इसे समझाइए।

७—आँख के भिन्न-भिन्न भागों को और उनके कार्यों को आँख का चित्र बनाकर समझाइए।

८—रङ्ग-संवेदना की उत्पत्ति तथा उसकी विशेषता समझाइए।

९—उत्तर प्रतिमाएँ क्या हैं ? एक ऐसे प्रयोग का वर्णन कीजिए जिससे भिन्न-भिन्न प्रकार की उत्तर-प्रतिमाएँ जानी जा सकती हैं।

१०—कान के भिन्न-भिन्न भागों और उनके कामों को चित्र बनाकर समझाइए।

११—ध्वनि-संवेदना कैसे उत्पन्न होती है ? ध्वनि संवेदना के गुणों को समझाइए।

१२—स्पर्श ज्ञान में कौन-कौन सी संवेदनाएँ सम्मिलित हैं ? उनके स्वरूप को समझाइए।

१३—शीत और पीड़ा के स्थल ढूँढ़ने के लिए जिस प्रयोग की आवश्यकता होती है, उसका वर्णन कीजिए।

१४—वेबर के नियम को उदाहरण देकर समझाइए।

दसवाँ प्रकरण

प्रत्यक्षीकरण[1]

प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप

हमारी चेतना में बाह्य पदार्थों का ज्ञान प्रत्यक्ष के रूप में ही होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान का आधार विभिन्न इन्द्रियों की संवेदना है। किन्तु संवेदना[2] मात्र का ज्ञान हमें नहीं होता। हमें सदा पदार्थ-ज्ञान होता है। इस पदार्थ-ज्ञान का आधार संवेदनाएँ हैं, यह हम विचार के द्वारा पीछे निश्चित करते हैं। प्रौढ़ लोगों को संवेदना मात्र का ज्ञान नहीं होता। दो एक रोज के बच्चे को संवेदना मात्र का ज्ञान होना सम्भव है। हमारी चेतना में जैसी भी उत्तेजना होती है वह किसी न किसी प्रकार के अर्थ के साथ आती है। संवेदना का ज्ञान निरर्थक ज्ञान है जो प्रकारता रहित है। इस प्रकार के ज्ञान को निर्विकल्पक[3] ज्ञान कहा जाता है। हमारा साधारण ज्ञान अर्थसहित होता है।

जब कभी हमें किसी बाह्य पदार्थ का ज्ञान होता है तो उस ज्ञान के साथ हमें यह भी ज्ञात होता है कि वह पदार्थ किस प्रकार का है। हम में पदार्थ-ज्ञान का आधार कोई एक विशेष प्रकार की संवेदना होती है। यह संवेदना *दृष्टि संवेदना, स्पर्श-संवेदना, ध्वनि-संवेदना, घ्राण-संवेदना अथवा स्वाद-संवेदना* होती है। बाह्य पदार्थ एक ही प्रकार की संवेदना का उत्तेजन हमारे मन में क्यों न करता हो, किन्तु जब यह संवेदना मस्तिष्क तक पहुँचती है तो वह उत्तेजक पदार्थ की पुरानी अनुभूतियों को जाग्रत करती है। इसके कारण उस पदार्थ में दूसरी जितनी संवेदनाओं को उत्तेजित करने की योग्यता है वह सब स्मरण हो जाती है, अर्थात् एक ही प्रकार की संवेदना उत्तेजित पदार्थ के सम्पूर्ण रूप को हमारी चेतना के समक्ष खड़ा कर देती है। प्रत्येक संवेदना हमारे मस्तिष्क में पहुँचते ही पुराने अनुभव के अनुसार सार्थक बन जाती है। जब कोई संवेदना सार्थक बनती है तो वह प्रत्यक्ष ज्ञान में परिणत हो जाती है। प्रत्यक्ष ज्ञान संवेदना और अर्थ का सम्मिश्रण है। संवेदना

---

1. Perception. 2. Sensation. 3. Indeterminate.

उपस्थित पदार्थ से पैदा होती है और अर्थ हमारा मन जोड़ता है। संवेदना का आधार बाह्य पदार्थ है और अर्थ का आधार हमारा मन तथा उसके पुराने संस्कार हैं।

अर्थ का स्वरूप—दूसरे विषय के साथ एक विषय के सम्बन्ध का ज्ञान अर्थ कहलाता है। यह सम्बन्ध देश, काल, गुण अथवा रूप का हो सकता है। एक पीली-पीली वस्तु को देखकर इस ज्ञान का स्मरण होना कि यह गोल है, इसका मीठा स्वाद है, इसे मैंने कल देखा था और अपने मित्र के घर देखा था—यह सब अर्थ-ज्ञान कहलाता है। अर्थ ज्ञान किसी पदार्थ का जानना मात्र नहीं है, उस पदार्थ का पहचानना भी है। जब हम एक लम्बी पतली वस्तु को अँधेरे मे पड़ी देखते हैं तो हम उसे रस्सी या साँप कहते हैं। यह हमारे उस वस्तु के जानने मात्र पर निर्भर नहीं है, हमारे पहचानने पर भी निर्भर रहता है, जो हमारे स्मरण पर निर्भर है। भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्ति एक ही पदार्थ का भिन्न-भिन्न अर्थ लगाते हैं, अतएव अर्थ-ज्ञान व्यक्तियों के पुराने अनुभव के ऊपर निर्भर होता है। जिस व्यक्ति ने कभी मोटरगाड़ी देखी ही नहीं वह पहली बार मोटरकार को देखकर उसका ठीक अर्थ लगा ही नहीं सकता। जब एक छोटा बालक पहले-पहल नारङ्गी देखता है तो उसे आम कह देता है, क्योंकि उसका अनुभव आम ही तक परिमित है। इसलिए प्रायः कहा जाता है कि हम संसार के पदार्थों को जैसा वे हैं वैसा नहीं देखते; किन्तु जैसा हम हैं वैसा देखते हैं, अर्थात् जैसा हमारा अनुभव है वैसे ही हम ससार की वस्तुओं का अर्थ लगाते हैं।

किसी वस्तु का अर्थ, जिस समय उस वस्तु का ज्ञान हो, उस पर भी निर्भर करता है। मान लीजिए, कोई व्यक्ति रात के समय भूतों की या चोरों की चर्चा सुन रहा है। इस अवसर पर उसे एकाएक गाँव से दूसरे गाँव को अँधेरे में जाना पड़े तो वह किसी पेड़ के ठूँठ को भी भूत या चोर के रूप में देखने लगेगा। यदि उसके मन की स्थिति भयपूर्ण है तो वह शीघ्रता से अपने आस-पास भूत देखने लगेगा। किसी वस्तु का अर्थ ज्ञान उस वस्तु के आस-पास की वस्तुओं और वातावरण पर निर्भर होता है। यदि देवालय में मूर्ति के ऊपर टोप टँगा दिखाई दे तो हम एकाएक उस वस्तु का अर्थ नहीं समझ पायेंगे। कितने ही लोग उस टोप को ढका हुआ घण्टा समझेंगे।

प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया—किसी वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान होने में कई प्रकार की मानसिक प्रक्रियाएँ होती हैं। प्रत्यक्ष-ज्ञान के लिए पहली प्रक्रिया वस्तुध्यान है। इस ध्यान के साथ भिन्न-भिन्न संवेदनाओं में से कुछ का

चुनाव तथा विश्लेषण होता है। इसके बाद मन की रचनात्मक क्रिया कार्य करती है। वस्तु ज्ञान मन की रचनात्मक क्रिया का फल है। इस रचनात्मक क्रिया से ही संवेदनाएँ सार्थक बनाई जाती हैं। परन्तु उपर्युक्त मानसिक क्रियाओं को ज्ञाता जान-बूझकर नहीं करता। यह कार्य अनायास होता है। यदि कोई व्यक्ति जान-बूझकर किसी वस्तु के विषय में अर्थ का निश्चय करे तो उसकी यह जानने की क्रिया प्रत्यक्ष ज्ञान न कहलाकर अनुमान कहलायेगी।

प्रत्यक्ष ज्ञान होने में उपर्युक्त ध्यान और उसकी विश्लेषणात्मक तथा रचनात्मक क्रिया के अतिरिक्त स्मृति और कल्पना की भी आवश्यकता होती है। जब हमारे मस्तिष्क में किसी बाह्य वस्तु की संवेदना पहुँचती है तो यह सवेदना विशेष प्रकार की प्रतिमा को चेतना के समक्ष ले आती है। इन्हीं प्रतिमाओं के अनुसार प्रत्यक्ष पदार्थ के स्वरूप का निरूपण होता है। जब हम दूर के सफेद-सफेद धब्बे को देखकर उसे मकान कहते हैं तो हम अपनी स्मृति तथा कल्पना से काम लेते हैं। इसी प्रकार अँधेरे में पड़ी लम्बी-लम्बी चीज को देखकर उसे साँप या रस्सी ठहराना स्मृति तथा कल्पना की सहायता से होता है।

हम इस प्रकार जब अपने प्रत्यक्ष ज्ञान का विश्लेषण करते हैं तो यह पाते हैं कि उसका अधिकांश भाग अनुमान मात्र है, जिसका आधार स्मृति और कल्पना है। वास्तविक अनुभव तो बहुत थोड़ा रहता है।

प्रत्यक्षीकरण की शक्ति में विकास—बालकों में पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान करने की शक्ति धीरे-धीरे आती है। बालक जब पहले-पहल एक घण्टी को देखता है तो इतना ही समझता है कि कोई वस्तु पड़ी है। यह उसका दृष्टि की सहायता से प्रथम ज्ञान है। जब दूसरी बार वही पदार्थ उसे फिर मिलता है और वह अपना हाथ उस पर फैलाता है तो उसे चिकनाई और ठंडई का ज्ञान होता है। अब बालक के पुराने अनुभव में उसका घन्टी के बारे में यह नया अनुभव बढ़ गया। यदि बालक उस घण्टी को फिर से देखे तो उसको दृष्टि-संवेदना के साथ-साथ स्पर्श-ज्ञान का स्मरण होगा। घण्टी को बिना छूये ही बालक जान सकेगा कि स्पर्श करने पर घन्टी किस प्रकार की सवेदना को उत्तेजित करेगी। कुछ काल के बाद बालक घण्टी को उठाने की कोशिश करता है और उसे भारी पाता है। उस पर डण्डा मारता है और उससे निकलनेवाली ध्वनि का बोध करता है। इस प्रकार बालक को घण्टी से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक

संवेदनाओं का ज्ञान होता है। ये संवेदनाएँ एक दूसरे से सम्बन्धित होती हैं। बड़ा होने पर जब बालक घण्टी को दूर से ही देखता है तो उसकी अनुभव की सभी संवेदनाएँ चेतना के समक्ष आ जाती हैं। एक आठ साल के बालक का घण्टी का ज्ञान एक शिशु के घण्टी के ज्ञान से कई प्रकार से भिन्न होता है। आठ वर्ष का बालक घण्टी का विभिन्न उपयोग भी जानता है जो शिशु के लिए सम्भव नहीं।

बालक स्वभावत. अनेक चीजों को देखता, छूता, उठाता, पटकता रहता है और इस प्रकार वह अपने वातावरण के अनेक पदार्थों को पहचानता रहता है। एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ से सम्बन्ध जानना बालक का अपने वातावरण के कुछ पदार्थों का अनुभव दूसरे पदार्थों को समझने में सहायता देता है। इस प्रकार जब एक बड़े बालक के समक्ष कोई नया पदार्थ आता है तो वह उसे शिशु काल का अपेक्षा अति शीघ्रता से समझ लेता है।

भ्रम[1]

भ्रम का स्वरूप—ऊपर बताया गया है कि प्रत्येक प्रत्यक्ष ज्ञान में स्मृति और कल्पनाएँ कार्य करती हैं। इन्हीं के आधार पर दृष्टिगोचर पदार्थ का अर्थ लगाया जाता है। जब दृष्टिगोचर पदार्थ का अर्थ उपस्थित पदार्थ के वास्तविक स्वरूप के अनुसार होता है तो उस ज्ञान को हम प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं, किन्तु जब यह अर्थ उपस्थित पदार्थ के स्वरूप के विपरीत होता है तब हम तज्जनित ज्ञान को भ्रम कहते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान एक प्रकार की प्रमा है, वह जैसा का तैसा ज्ञान है, भ्रम अयथार्थ ज्ञान अथवा अप्रमा है, जिसका परिभाषा तर्क शास्त्र में 'जैसा का तैसा ज्ञान न होना' की गई है।

मनोविज्ञान की दृष्टि से हमारे प्रत्येक प्रत्यक्ष ज्ञान में कुछ न कुछ भ्रम का अंश रहता है। सामान्य बुद्धि के अनुसार यथार्थ ज्ञान अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान एक नित्यप्रति का अनुभव है और भ्रम असामान्य अनुभव है, किन्तु वस्तु-स्थिति ठीक इसके विपरीत है। हमें यह बतलाना कठिन होता है कि हमारे ज्ञान में कहाँ तक वास्तविकता है और कहाँ तक भ्रम है। मेज के ऊपरी भाग को हम समकोण चतुर्भुज देखते हैं, परन्तु वास्तव में आँख पर उसकी जो प्रतिमा पड़ती है वह विषमकोण चतुर्भुज होती है। यदि दो समान ऊँचाई के व्यक्तियों में एक दुबला-पतला हो और दूसरा मोटा-ताजा, तो दुबला व्यक्ति ऊँचा दीख पड़ता है। इस प्रकार जब कोई आदमी एक ही रंग की

1 Illusion.

पोशाक सिर से पैर तक पहनता है तो वह अधिक ऊँचा दिखाई देने लगता है। एक स्त्री और पुरुष में एक ही ऊँचाई के होने पर भी स्त्री अधिक ऊँची जान पड़ती है। इसका कारण यह है कि स्त्री एक ही कपड़े को ऊपर से नीचे तक पहनती है जो कि पुरुष नहीं पहनता, किन्तु इस प्रकार के भ्रमों को हम भ्रम नहीं कहते। जब वास्तविकता और हमारे ज्ञान में अधिक विषमता हो जाती है तभी वह ज्ञान भ्रम कहलाता है।

भ्रम दो प्रकार के होते हैं—संवेदनाजन्य[1] और विचारजन्य[2]। संवेदनाजन्य भ्रम इन्द्रियज्ञान के दोष से पैदा होता है। इस भ्रम के कारण पदार्थों के आकार तथा दूरी जाँचने में गलतियाँ होती हैं। इसका कारण हमारी इन्द्रियों की वास्तविकता को जानने की शक्ति की कमी है। अभ्यास के कारण इस प्रकार के भ्रम होते हैं। साधारण मनुष्य ऐसे भ्रमों की पहचान भी नहीं कर सकते हैं। वैज्ञानिक खोज से इन भ्रमों का पता चलता है।

संवेदनाजन्य भ्रम के कुछ उदाहरण—संवेदनाजन्य भ्रम के अनेक उदाहरण वैज्ञानिकों ने खोजे हैं। उनमें कुछ निम्नलिखित हैं :—

(१) आड़ी लकीर की अपेक्षा उतनी ही बड़ी खड़ी लकीर बड़ी दिखाई देती है। यह नीचे के चित्र से प्रमाणित होता है।
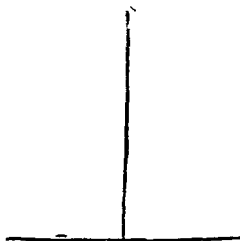
चित्र न० १५

1. Illusions of the sense. 2. Illusions of interpretation or thought.

(२) एक ही बराबर की दो लकीरों में से जिस लकीर का छोर भीतर की ओर मुड़ा रहता है, छोटी दिखाई देती है।

चित्र नं० १६

(३) तिरछी लकीरों को काटनेवाली सीधी लकीर टेढ़ी दिखाई देती है। नीचे दी हुई आड़ी रेखाएँ समानान्तर हैं, किन्तु वे टेढ़ी दिखाई देती हैं।
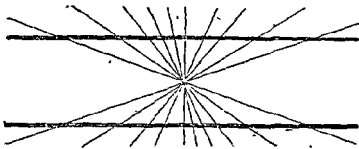
चित्र नं० १७

(४) खाली स्थान की अपेक्षा उतना ही बड़ा भरा स्थान छोटा दिखाई देता है।
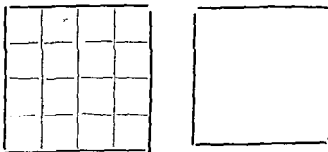
चित्र नं० १८

(५) दो समान चित्रों में ऊपर का चित्र छोटा और नीचे का बड़ा दिखाई देता है।
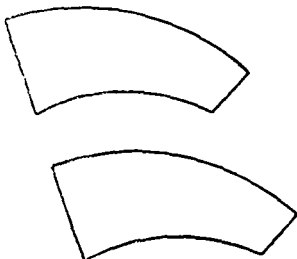
चित्र नं० १६

विचारजन्य भ्रम—विचारजन्य भ्रम के कारण मन में चलनेवाले विचार, इच्छाएँ और उद्वेग होते हैं। यदि हमारा मस्तिष्क किसी विशेष प्रकार के विचारों से भरा हुआ है तो बाहर दूसरा पदार्थ होने पर भी हम उसके विपरीत पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करते हैं। ऐसे भ्रम प्रूफ-संशोधन करने वाले प्रायः करते हैं। जब कोई लेखक, छपते समय, स्वयं अपनी पुस्तक के प्रूफ पढ़ता है तो वह ऐसी अनेक हिज्जे की गलतियाँ कर देता है जो एक साधारण लिखा-पढ़ा व्यक्ति नहीं करेगा। लेखक जिस समय प्रूफ को देखता है उस समय उसका मन लिखित वस्तु में लग जाता है। वह उसके अर्थानुसार प्रूफ को पढ़ने लगता है। उसका ध्यान शब्दों की बनावट पर नहीं रह पाता और जब कभी शब्दों की बनावट की ऐसी गलती हो जाती है जिसकी उसे आशा नहीं रहती, वह उसे सुधार नहीं पाता। अतएव सबसे अच्छा प्रूफ-संशोधक वही व्यक्ति हो सकता है जो लिखित वस्तु के अर्थ को न समझे अथवा जिसमें यह शक्ति हो कि प्रूफ देखते समय अपने मन को वस्तु के अर्थ से अलग रख सके।

उद्वेगों की उपस्थिति भी भ्रम-उत्पादन का कारण बन जाती है। कृपण व्यक्ति चोर-डाकुओं के भय से सदा पीड़ित रहते हैं। घर में रात्रि के समय थोड़ी

सी भी खटखट सुनने पर उन्हें चोर के घुस आने की आशङ्का हो जाती है और यदि कोई अनजानी वस्तु उन्हें दीख पड़े तो वे उसे चोर ही समझ बैठते हैं।

आशाएँ भी इस प्रकार का भ्रम उत्पन्न कर देती हैं। जिस व्यक्ति के अपने घर पर आने की हम आशा करते हैं और उसके लिए बड़ी देर से चिंतित रहते हैं, यदि वह न आये और बदले में दूसरा आ जावे तो कुछ देर के लिए हमें भ्रम हो जाता है। हम दूसरे व्यक्ति को तुरन्त नहीं पहचान पाते। उसे हम अपना इच्छित व्यक्ति मान लेते हैं। भय और आशा की अवस्था में बड़े-बड़े विचित्र भ्रम जन-समाज तक में हो जाते हैं। १६१७ ई० में अंग्रेज लोग भारी सङ्कट में पड़े थे। उस समय जर्मनों का ब्रिटेन पर हमला करने का भय सबसे अधिक बढ़ गया था। वे सोचते थे कि रूस के लोग उनकी मदद को शीघ्र आ रहे हैं। एक बार भ्रमवश किन्हीं दूसरे लोगों को अंग्रेजों ने देखा और उन्हें रूसी ही समझ लिया। रूसियों के इंग्लैंड में आ जाने की अफवाह सारे इंग्लैंड में बिजली की तरह फैल गई जो निराधार सिद्ध हुई।

हमारी पहले की बनी धारणाएँ भी भ्रम उत्पादन करती हैं। मनुष्य जिस धारणा को लेकर किसी विशेष घटनास्थल की जाँच करने जाता है उसे अपनी धारणा के अनुसार ही घटना में अनेक बातें दीखने लगती हैं। हिन्दू मुसलमानों के दगे में हिन्दू दृष्टि से दगे को देखनेवाला मुसलमानों के अत्याचार को अधिक देखता है और मुसलमानों की दृष्टि से देखनेवाला हिन्दुओं के अत्याचार को अधिक देखता है। किसी लड़ाई के घटनास्थल पर दो भिन्न विचार के रिपोर्टरों को भेजकर देखिए। अपनी आँख से देखी हुई घटनाओं का वर्णन वे भिन्न-भिन्न प्रकार से करेंगे। इस प्रकार भ्रम वैज्ञानिक लोगों को भी होता है। जिस प्रकार की धारणा लेकर कोई वैज्ञानिक किसी परिस्थिति का अध्ययन करता है वह अपनी धारणा का समर्थन करनेवाली बहुत-सी बातों को उस परिस्थिति में देखने लगता है जब कि उनकी सर्वथा अनुपस्थिति रहती है।

देश अथवा अवकाश का ज्ञान

अवकाश-ज्ञान का स्वरूप—वस्तु का ज्ञान अवकाश (देश) और काल के ज्ञान के साथ-साथ होता है। वस्तुज्ञान का आधार बाहर से आनेवाली सवेदनाएँ हैं। किसी पदार्थ की संवेदना हमारे पुराने अनुभव जाग्रत करती है। इस अनुभव के आधार पर हम उस संवेदन

अर्थ लगाते हैं तब हमें वस्तुज्ञान होता है। पर वस्तुज्ञान अवकाश (देश) और काल के बिना नहीं होता। अब प्रश्न यह है कि अवकाश और काल है क्या, और इनका ज्ञान हमें कैसे होता है?

कुछ दार्शनिकों के अनुसार अवकाश और काल कोई बुद्धि से स्वतन्त्र पदार्थ नहीं हैं। इनका स्वतः कोई अस्तित्व नहीं। ये वस्तुज्ञान के अङ्गमात्र हैं। यूरोप के प्रसिद्ध दार्शनिक इमेनुअल काट के अनुसार अवकाश और काल पदार्थ को समझाने के ढङ्ग मात्र हैं। देश और काल बुद्धि मे हैं, न कि पदार्थ में। वेदान्तदर्शन भी इसी मत का प्रतिपादन करता है।

मनोवैज्ञानिक इस दार्शनिक झंझट में नहीं पड़ता। उसे इस प्रश्न को हल नहीं करना पड़ता कि अवकाश और काल है क्या? वह सिर्फ इसी प्रश्न को हल करने की चेष्टा करता है कि अवकाश और काल का ज्ञान हमें कैसे होता है। यह ज्ञान जन्मजात है अथवा अर्जित और हमें किन-किन इन्द्रियों की सहायता इस ज्ञान को प्राप्त करने में लेनी होती है?

स्टाउट महाशय के कथनानुसार अवकाश की भावनाएँ जन्मजात हैं; किन्तु इन भावनाओं की वृद्धि अनुभव की वृद्धि के साथ-साथ होती है। अवकाश के ज्ञान की वृद्धि में अनेक इन्द्रियाँ सहायता करती हैं। अवकाश का ज्ञान हमें एक ही इन्द्रिय से नहीं होता। इस ज्ञान के प्राप्त करने में स्पर्शेन्द्रिय और आँख विशेष कार्य करते हैं। कान की, अवकाश का ज्ञान कर सकने की योग्यता के विषय में प्रायः तर्क-वितर्क होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार कान से भी अवकाश-ज्ञान होता है।

अवकाश-ज्ञान के अंग—अवकाश-ज्ञान के निम्नलिखित चार अङ्ग हैं—

(१) दिशाज्ञान[1]
(२) दूरी का ज्ञान[2]
(३) आकारज्ञान[3]
(४) आकृतिज्ञान[4]

इन अवकाश के चार अङ्गों में कुछ इन्द्रियों के द्वारा एक अङ्ग का ज्ञान होता है और कुछ इन्द्रियों के द्वारा अनेक अंगों का ज्ञान होता है। उदाहरणार्थ, कान के द्वारा वस्तु की दिशा और दूरी का ज्ञान हो सकता है, किन्तु उसके आकार और आकृति (सूरत) का ज्ञान नहीं हो सकता। वस्तु के आकार और आकृति का ज्ञान हमें दूसरी इन्द्रियों के द्वारा होता है।

---

1. Direction. 2. Distance. 3. Size. 4. Shape.

दिशाज्ञान

अवकाश-ज्ञान का पहला अङ्ग दिशाज्ञान है। निम्नवर्ग के प्राणियों के अवकाश ज्ञान का यह मूल अङ्ग है। उन्हें अपने भोजन खोजने और अपने शत्रुओं से बचने के लिए दिशाज्ञान की आवश्यकता होती है।

दिशा-ज्ञान का आधार स्पर्श, गति-ज्ञान, देखना, सुनना और सूँघना होते हैं। अर्थात् दिशा-ज्ञान के प्राप्त करने में मनुष्य की सभी इन्द्रियाँ सहायता करती हैं। यदि हम दिशा-ज्ञान से ही इन्द्रियों की अवकाश-ज्ञान की शक्ति के विषय में कोई निर्णय करें, तो हम उन सभी को बराबर योग्य पावेंगे। किन्तु जब हम अवकाश-ज्ञान के दूसरे अङ्गों पर विचार करते हैं तो इन्द्रियों की योग्यता में मौलिक भेद पाते हैं।

दिशा-ज्ञान के प्राप्त करने में आँख और कान का विशेष कार्य रहता है। कोई वस्तु किस ओर है इसे जानने के लिए हमें अपनी आँखों को उस ओर मोड़ना पड़ता है। हमें अपने सामने की वस्तु ही दिखाई देती है, पीछे की नहीं दिखाई देती। बाजू की वस्तु को देखने के लिए भी हमें अपनी आँख की पुतलियों को चलाना पड़ता है। जब हम आँख को इधर-उधर करते हैं तो हमें दिशा का ज्ञान होता है।

कान से दिशा का ज्ञान होता है। हमारे दो कान हैं। जब कोई आवाज कानों तक आती है तो एक कान को वह अधिक तीक्ष्ण सुनाई देती और दूसरे कान को कम सुनाई देती है। आवाज की तीक्ष्णता से हम उसकी दिशा को जानते हैं। जब कोई आवाज हमारे ठीक सामने से अथवा ठीक पीछे से आती है, अर्थात् जब वह एक ही बराबरी की तीक्ष्णता से कानों को सुनाई देती है तो हमें आवाज की दिशा के विषय में भ्रम हो जाता है। पीछे से आनेवाली आवाज को हम कभी-कभी सामने से आई समझ लेते हैं और इसी तरह सामने से आई आवाज को पीछे से आई समझ लेते हैं। कभी-कभी घण्टे की आवाज हमारे सामने से आती है और हमें उसे पीछे से आती हुई का भ्रम होता है।

सूँघ करके भी दिशा का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति जितनी किसी किसी नीचे वर्ग के प्राणी में है, मनुष्य में नहीं है। शिकारी कुत्ते अपनी घ्राणेन्द्रिय की सहायता से शिकार की खोज कर लेते हैं। उनकी घ्राणेन्द्रिय उन्हें अपने शिकार की दिशा जानने में बड़ी सहायता देती है।

दूरी का ज्ञान

दूरी का ज्ञान स्पर्श के द्वारा (चल-फिरकर), आँख के द्वारा और कान की सहायता से किया जाता है।

स्पर्श और गति के द्वारा दूरी का ज्ञान—दूरी के ज्ञान का मूल आधार स्पर्शज्ञान ही है। किसी वस्तु को प्राप्त करने में शिशु को जितना अधिक चलना फिरना पड़ता है वह उतनी दूरी समझी जाती है। पास की वस्तु तक पहुँचने में शिशु को कम चलना पड़ता है, दूर की वस्तु प्राप्त करने के लिए उसे अधिक चलना पड़ता है, अधिक परिश्रम करना अधिक दूरी का ज्ञान कराता है; कम परिश्रम का ज्ञान कम दूरी के ज्ञान का आधार है। इस तरह अपने अंगों द्वारा होनेवाली क्रिया के आधार पर ही दूरी का ज्ञान किया जाता है।

आँख से दूरी का ज्ञान—आँख के द्वारा दूरी के ज्ञान की वृद्धि धीरे-धीरे होती है। नवजात शिशु को वस्तुओं को देखकर दूरी का अनुमान करने की शक्ति नहीं होती। जब हम तीन चार महीने के शिशु के सामने कोई फूल ले जाते हैं तो वह उस फूल को पकड़ने की चेष्टा करता है। पर उसे यह ज्ञान नहीं होता कि फूल उससे कितनी दूरी पर है। अतएव बालक फूल के दूर रहने पर भी मुट्ठी बाँधने की चेष्टा करने लगता है। इस तरह कई बार चेष्टाएँ करने पर वह फूल को पकड़ पाता है।

प्रौढ़ व्यक्तियों को आँख से देखकर किसी वस्तु की दूरी जानने में देर नहीं लगती। दूरी जानने के लिए न तो किसी प्रकार का विचार करना पड़ता है और न प्रयास। अतएव प्रौढ़ व्यक्तियों के मन में यह विचार ही नहीं आता कि दूरी का ज्ञान अनेक प्रकार के मानसिक संस्कारों के ऊपर निर्भर होता है। मनोवैज्ञानिकों ने आँख से दूरी का ज्ञान उत्पन्न करने वाले साधनों के निम्नलिखित दो भेद किये हैं—

(१) एक आँख के साधन,[1] (२) दो आँखों के साधन।[2]

इन दोनों प्रकारके साधनों पर पृथक् पृथक् विचार करना अवश्यक है।

एक आँख की दूरी के ज्ञान के साधन

एक आँख से दूरी का ज्ञान कई बातों पर निर्भर है। उसमें से प्रमुख साधन निम्नलिखित हैं.—

(१) वस्तु का आकार[3]—जिस वस्तु से हम परिचित हैं, उसका

1. Monocular factors 2 Binocular factors. 3 Size of the object.

आकार यदि हमें छोटा दिखाई पड़े तो हम सहज में ही इस निष्कर्ष पर आते हैं कि यह वस्तु हमसे दूर है। जब चील को हम एक छोटी सी चिड़िया के समान देखते हैं तो हम निश्चय कर लेते हैं कि वह हमसे बहुत दूरी पर है। हम जब किसी बड़ी नदी के रेल के पुल के नीचे रहते हैं और जब हम पुल पर चलनेवाले लोगों को छोटा-छोटा देखते हैं तो हम अनुमान कर लेते हैं कि पुल बहुत ऊँचा है। आकाश में जाता हुआ दूर का वायुयान एक पक्षी के समान दिखाई देता है। हम जानते हैं कि वायुयान का आकार पक्षी के समान नहीं हो सकता, वह हमें दूरी के कारण ही छोटा दिखाई देता है। हमारे अनुमान का आधार एक ही पदार्थ का दो आकारों में दिखाई देना भी होता है। जब वायुयान दूर रहता है तो छोटा दिखाई देता है, पर जब वही वायुयान समीप आ जाता है तो बड़ा दिखाई देने लगता है। इस प्रकार के हमारे अनुभव आकार के द्वारा दूरी का ज्ञान करने के आधार बन जाते हैं।

दूर की वस्तु का छोटा दिखाई देना स्वाभाविक है। हमारी आँख एक फोटो खींचने के केमरे के समान है और आँख का 'रेटिना' केमरा के फोटो लेनेवाले प्लेट के समान है। किसी पदार्थ का चित्र लेते समय देखा जाता है कि जब केमरा पदार्थ के समीप होता है तो प्लेट पर चित्र बड़ा आता है और जब केमरा पदार्थ से दूरी पर होता है तो उसका चित्र छोटा आता है। इसी तरह जब हमारी आँख किसी वस्तु के समीप होती है तो उसका रेटिना के ऊपर बड़ा प्रतिबिम्ब आता है, इससे हमें उस वस्तु का आकार बड़ा दिखाई पड़ता है। जब वही वस्तु आँख से दूर होती है तो उसका आँख के रेटिना के ऊपर छोटा प्रतिबिम्ब पड़ता है, अतएव वह वस्तु हमें छोटी दिखाई देती है। वास्तव में वस्तु कितनी बड़ी है, इसे जानना आँख के लिए समव नहीं। यदि वह वस्तु परिचित है तो हम वस्तु को छोटी देखकर अनुमान कर लेते हैं कि वह दूरी पर है इसलिए ही छोटी दिखाई देती है।

यहाँ हमें स्मरण रखना आवश्यक है कि अपरिचित वस्तु का आकार देखकर हम उसकी दूरी का अनुमान नहीं कर सकते। जो व्यक्ति पहले-पहल वायुयान को आकाश में उड़ते देखता है वह उसकी, अपने पास से, दूरी का कुछ भी अनुमान नहीं कर सकता, क्योंकि वह वायुयान के सामान्य आकार से परिचित ही नहीं है।

(७) वस्तु की आकृति[1]—किसी वस्तु की आकृति देखने से भी

1. Shape of objects.

उसकी दूरी का ज्ञान होता है। दूर की वस्तु, चाहे वह गोल भले ही न हो, गोलाई लिये दिखाई पड़ती है। चन्द्रमा हमसे अधिक दूर पर है, अतएव उसकी वास्तविक आकृति टेढ़ी-मेढ़ी होने पर भी वह गोल दिखाई देता है, इसी तरह दूसरे पदार्थ की आकृतियों में विशेष प्रकार का परिवर्तन हो जाता है। अतएव जब हम अपनी परिचित वस्तुओं की आकृति में किसी विशेष प्रकार का परिवर्तन देखते हैं तो हम अनुमान करते हैं कि वे दूरी पर हैं।

(३) आवरण[1]—जब एक वस्तु दूसरी को हमारी दृष्टि से ढँकती है तो ढाँकनेवाली वस्तु को हम समीपवर्ती मानते हैं और ढाँकी जानेवाली वस्तु को दूरस्थ मानते हैं। जिस प्रकार किसी फोटोग्राफ के चित्र में समीप का पदार्थ दूर के पदार्थ को ढँक देता है इसी तरह आँख के रेटिना पर आनेवाले चित्र में होता है। चित्र में जब हम दो व्यक्तियों को आस-पास खड़े देखते हैं और एक व्यक्ति के एक हाथ को नहीं देखते तो यह विचार नहीं कर लेते कि उसके एक हाथ है ही नहीं, वरन् यही सोचते हैं कि वह दूसरे व्यक्ति के शरीर से ढँक गया है। इससे यह भी निर्णय होता है कि दूसरे व्यक्ति का शरीर पहले व्यक्ति के हाथ से आगे है। जब हम एक चित्र में एक दीवाल को देखते हैं और साथ ही साथ वृक्ष के ऊपर के भाग को भी देखते हैं, पर उसके नीचे के भाग को नहीं देखते, तो हम अनुमान कर लेते हैं कि वृक्ष दीवाल के पीछे है। इसी तरह आँख के रेटिना पर पड़नेवाले चित्र की दूरी का भी अर्थ लगाया जाता है। हम कहा करते हैं कि हम पेड़ को दीवाल के पीछे देख रहे हैं, पर वास्तव में किसी वस्तु का आँख के द्वारा आगे-पीछे का ज्ञान होना अनुमान मात्र है।

कभी-कभी छोटा पदार्थ, बड़े पदार्थ को दृष्टि से ढँक लेता है। इससे भी पदार्थ की दूरी का निर्णय किया जाता है। यदि कोई छोटा पदार्थ बड़े को ढँक ले तो निश्चय किया जाता है कि वह समीप होगा। उदाहरणार्थ, एक चलता-फिरता मनुष्य जब हमारी ठीक आँख के सामने आता है तो वह अपने पीछे के ऊँचे पेड़ को दृष्टि से ओझल कर देता है। इससे हम निष्कर्ष निकालते हैं कि मनुष्य पास है और वृक्ष दूरी पर।

(४) पदार्थों की गति[2]—जब हम रेल में बैठे होते हैं तो रेल-लाइन के पास तार के खम्भे बड़ी तेजी के साथ दूसरी दिशा में जाते हुए दिखाई

1. Super-imposition. 2. Movement of Objects.

देते हैं, किन्तु दूर के वृक्ष धीरे-धीरे दूसरी दिशा में दिखाई देते हैं। इस प्रकार का अनुभव हमें सुझाता है कि धीरे-धीरे चलनेवाली वस्तुएँ दूर हैं और जल्दी-जल्दी चलनेवाली पास हैं। जब हम किसी वायुयान को धीरे-धीरे चलते देखते हैं तो अनुमान करते हैं कि वह दूर है। गति का ज्ञानमात्र दूरी के जानने का साधन नहीं होता, दूसरे साधन भी सहायक होते हैं।

(५) पदार्थों की अस्पष्टता—पदार्थों के स्वरूप की अस्पष्टता भी दूरी के अनुमान का कारण होती है। दूर के पहाड़ धुँधले दिखाई देते हैं, जब ये पास में होते हैं तो उन पर के वृक्ष, चट्टानें आदि स्पष्ट दिखाई देती हैं। इसी तरह दूर पर जाती हुई रेलगाड़ी धुँधली-सी दिखाई देती है। इस अनुभव से अनुमान किया जाता है कि जो पदार्थ धुँधला दिखाई देता है वह दूर है।

कभी-कभी हमारी उक्त प्रकार की धारणा भ्रम का कारण हो जाती है। मोटर चलानेवालों को कुहरे के समय विशेष प्रकार से सावधान रहना पड़ता है। कुहरे में प्रत्येक पदार्थ अस्पष्ट दिखलाई देता है। इसलिए सड़क पर चलनेवाले मनुष्यों और जानवरों की दूरी के बारे में मोटर चलानेवालों को भ्रम हो जाता है। वे समीप की वस्तुओं और जानवरों को दूर समझ लेते हैं और इसके कारण दुर्घटनाएँ हो जाया करती हैं।

दो आँख से दूरी का ज्ञान[1]

दूरी का ज्ञान एक आँख की अपेक्षा दो आँखों से देखने से और भी ठीक होता है। इसलिए जिस व्यक्ति को एक ही आँख रहती है वह दो आँखों से देखने से दूरी का ज्ञान प्राप्त करने में जो सुविधा होती है उसका लाभ नहीं उठा सकता। दो आँख से जब एक ही पदार्थ देखा जाता है तो दोनों आँखों की दृष्टि एक ही जगह मिलती है। इस प्रकार की दृष्टि के मिलने के लिए आँखों की पुतलियों को चलाना पड़ता है और इसलिए आँख की पेशियों पर दूरी के अनुसार कम अथवा अधिक जोर पड़ता है। दूर के पदार्थों को देखने में आँख की पेशियों को उतना जोर नहीं पड़ता जितना कि समीप के पदार्थों को देखने में पड़ता है। जितना दूर पदार्थ होता है उतना ही कम दोनों आँखों की पुतलियों को मोड़ना पड़ता है, क्योंकि प्रत्येक आँख की दृष्टि के थोड़े झुकाव की आवश्यकता पड़ती है। समीप के पदार्थ में दृष्टि के अधिक झुकाव की आवश्यकता पड़ती है। अतएव यह

1. Binocular Factors.

झुकाव ही दूर के ज्ञान का कारण बन जाता है। यह नीचे दिये हुए चित्र से स्पष्ट होता है—

दृष्टि का झुकाव
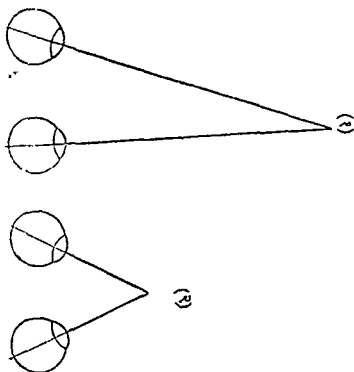
१—दूर का पदार्थ   २—समीप का पदार्थ

चित्र नं० २०

दो आँख से प्रसार का ज्ञान

प्रत्येक वस्तु का प्रसार तीन ओर होता है—लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई की ओर। एक आँख से किसी पदार्थ की लम्बाई-चौड़ाई का ज्ञान ठीक तरह से हो जाता है, किन्तु मोटाई का ठीक-ठीक ज्ञान होने के लिए वस्तु के दूसरे बाजू को देखना भी आवश्यक होता है। जब हमारी दोनों आँखें एक साथ काम करती हैं तो हम किसी पदार्थ के तीन बाजुओं को एक साथ देख लेते हैं। एक आँख से दो बाजू देखे जा सकते हैं।

एक मोटी पुस्तक को लीजिए। उसे बन्द करके इस प्रकार पकड़िए कि पुस्तक की मोटाई का भाग आपकी नाक की सीध में हो। अब अपनी बाईं

आँख बन्द करके उसकी ओर देखिए। आपको इस प्रकार देखने से पुस्तक की मोटाई और पुस्तक का दाहिना बाजू ही दिखेगा; बायाँ बाजू नहीं दिखेगा। अब अपनी बाईं आँख खोल दीजिए। बाईं आँख के खोलने पर पुस्तक के दायें और बायें बाजू तथा मोटाई अर्थात् तीन बाजू दिखेंगे। जब हम दोनों आखों से देखते हैं तो दोनों आँखों के रेटिनाओं पर किसी भी पदार्थ की दो आकृतियाँ बन जाती हैं; किन्तु पीछे दोनों मिलकर एक सम्मिलित आकृति का ज्ञान हमारे मस्तिष्क में उत्पन्न होता है।

किसी भी पदार्थ की दो भिन्न प्रकार की प्रतिमाएँ पहले-पहल हमारी आँखों के दोनों रेटिनाओं पर पड़ती हैं, पीछे ये दोनों मिलकर एक हो जाती हैं। इस बात की पुष्टि स्टीरियस्कोप के प्रयोग से होती है। स्टीरियस्कोप में देखे गये पदार्थ चित्र के रूप में नहीं, वरन् मूल पदार्थों के रूप में दिखाई देते हैं। इसके कारण स्टीरियस्कोप एक तमाशा बन जाता है। इसकी बनावट में किसी वस्तु के दो ऐसे चित्र काम में लाये जाते हैं जो केमरों को उतनी ही दूरी पर रखकर एक साथ खींचे जाते हैं जितनी कि दूर हमारी दोनों आँखें हैं। इसके कारण एक ही दृश्य के दो भिन्न ऐसे चित्र प्राप्त हो जाते हैं जिनमें उतना ही भेद होता है जितना हमारी दोनों आँखों के रेटिनाओं पर पड़े दृश्य की आकृति का होगा। अब जब हम इन दोनों चित्रों को स्टीरियस्कोप की काँचोंसे दोनों आँखों से एक साथ देखते हैं तो वे चित्र एक ही वस्तु का ज्ञान उत्पन्न करते हैं और यह ज्ञान चित्र के नहीं वस्तु के ज्ञान सदृश होता है, क्योंकि यदि हम मूल वस्तु को अपनी दोनों आँखों मे देखते तो उसी प्रकार की आकृति उनके रेटिनाओं पर पड़ती जैसी कि स्टीरियस्कोप के चित्रों में रहती है।

कान से दूरी का ज्ञान

जिस प्रकार आँख से पदार्थों की दूरी का ज्ञान होता है, उसी प्रकार कान से भी पदार्थों की दूरी का ज्ञान होता है। जब किसी परिचित पदार्थ की आवाज धीमी आती है तो हम उसे दूर मानते हैं और जब वही आवाज तेज सुनाई देती है तो उसे हम नजदीक मानते हैं। इसी तरह हम रात में घण्टों की आवाज से उनकी दूरी का अनुमान करते हैं।

समय का ज्ञान[1]

मनोविज्ञान के कथनानुसार जिस प्रकार हमें पदार्थों की आकृतिका ज्ञान तथा उनके देश का ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा होता है, उसी प्रकार समय का

1. Perception of time.

ज्ञान भी इन्द्रियों की उत्तेजना के ऊपर निर्भर रहता है। समय का ज्ञान सभी इन्द्रियों के द्वारा होता है। यह इन्द्रिय ग्राह्य घटनाओं के ऊपर निर्भर होता है। थोड़े समय को जब हम लेते हैं, तो जितनी अधिक घटनाएँ उसमें होती हैं, समय उतना ही अधिक ज्ञात होता है और जितनी कम घटनाएँ होती हैं उतना ही कम समय ज्ञात होता है। लम्बे समय के विषय में ठीक इसका उल्टा होता है। लम्बा समय घटनाओं से भरे रहने पर थोड़ा जान पड़ता है और घटनाओं से खाली रहने पर अधिक जान पड़ता है।

समय का अन्तर ग्रहण करने की भिन्न-भिन्न इन्द्रियों की भिन्न-भिन्न शक्ति होती है। आँख से प्राप्त उत्तेजना के लिए '०४४ सेकेंड के अन्तर की आवश्यकता होती है और कान के लिए '००२ सेकेंड की।

देश और काल के विषय में दार्शनिक विचार

जर्मनी के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता कान्ट के कथनानुसार देश और काल वस्तुज्ञान के उपकरण मात्र हैं। देश और काल मन से बाहर कोई वास्तविक वस्तु नहीं है। हमारी विभिन्न इन्द्रियों से विभिन्न प्रकार की सवेदनाएँ हमारे मस्तिष्क में जाती हैं। ये सवेदनाएँ आपस में मिश्रित होने पर एक पदार्थ ज्ञान की उत्पत्ति करती हैं। इस तरह पदार्थ का ज्ञान बाहर से आनेवाली सवेदनाओं पर निर्भर रहता है। देश और काल की कोई सवेदना नहीं होती। देश और काल का ज्ञान उत्पन्न करने के लिए कोई बाह्य जगत् में पदार्थ नहीं। अतएव देश और काल हमारी बुद्धि की वस्तुएँ ही हैं।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि काल की सवेदना के विषय में भले ही वाद-विवाद हो, पर देश की स्वतन्त्र उपस्थिति में कोई सशय नहीं किया जा सकता, क्योंकि हम देश को अपने से बाहर फैला हुआ देखते हैं। पर जब हम अपने ज्ञान पर सूक्ष्म विचार करते हैं तो देखते हैं कि बाहर और भीतर सम्बन्ध ज्ञान के नाम हैं। शरीर के सापेक्ष ये ज्ञान होते हैं। वास्तव में ज्ञान में ये भेद उत्पन्न होते हैं।

कान्ट महाशय ने देश और काल को वस्तु ज्ञान के उपकरण बताकर दार्शनिक विज्ञानवाद का समर्थन किया है। यदि हम देश और काल को बुद्धि के विकल्प मान लें तो बाहर और भीतर का भेद ही मिट जाता है। इस भेद के मिट जाने पर हमें सारा ससार विज्ञानमय मानना पड़ता है।

ज्ञानअणुवाद[1] और सम्पूर्णज्ञानवाद

मनोविज्ञान में प्रत्यक्ष पदार्थ के विषय में दो प्रकार के विचार हैं। एक विचार के अनुसार वस्तु का ज्ञान ज्ञानअणुओं का बना हुआ है। ये ज्ञानअणु हमारी विभिन्न प्रकार की संवेदनाएँ हैं। ये संवेदनाएँ हमारी विभिन्न इंद्रियों से मस्तिष्क की ओर जाती हैं। मस्तिष्क में जाकर वे एक दूसरे से मिश्रित होती हैं तब हमें पदार्थ-ज्ञान उत्पन्न होता है।

मान लीजिए, हमारे सामने एक नीबू पड़ा है। इस नीबू के रङ्ग और आकार की संवेदनाएँ हमारी आँख के द्वारा मस्तिष्क की ओर जाती हैं। जब हम उस नीबू को देखकर उठा लेते हैं तो उसकी ठण्डाई, नमी और चिकनाई की संवेदना स्पर्श-इन्द्रियों के द्वारा मस्तिष्क की ओर जाती है। इसी प्रकार जब हम उसे चखते हैं तो उसकी खटाई की संवेदना जीभ के द्वारा मस्तिष्क में जाती है। ये विभिन्न प्रकार की संवेदनाएँ मिलकर पदार्थज्ञान की उत्पत्ति होती है। पदार्थज्ञान इस तरह ज्ञान-अणुओं का बना हुआ है।

इस विचार के प्रतिकूल एक दूसरा विचार है, जिसका प्रवर्तन आधुनिक मनोवैज्ञानिक कर रहे हैं। वस्तुज्ञान एक ज्ञान-सागर के विश्लेषण से उत्पन्न होता है। जैसे बालक उत्पन्न होता है तो उसे संसार का स्पष्ट ज्ञान होता है। यह ज्ञान विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं का बना रहता है। इस स्पष्ट ज्ञान में पीछे मन की क्रियात्मक गति के द्वारा स्पष्टता उत्पन्न होती है। जैसे-जैसे ज्ञान-समुद्र में भेद उत्पन्न होते हैं, पृथक् पृथक् वस्तुओं का ज्ञान उत्पन्न होता है। वस्तुज्ञान का और विश्लेषण करने पर संवेदना का ज्ञान उत्पन्न होता है। इस तरह संवेदना-ज्ञान अन्य प्रकार के ज्ञान का आधार न होकर ज्ञान-क्रिया का अन्तिम परिणाम है।

निरीक्षण[2]

निरीक्षण और प्रत्यक्ष ज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध है। निरीक्षण एक विशेष प्रकार का प्रत्यक्ष ज्ञान कहा जा सकता है। प्रत्यक्ष ज्ञान का आधार संवेदनाएँ हैं। जब संवेदना का विशेष प्रकार का अर्थ लगाया जाता है तो वह प्रत्यक्ष ज्ञान के रूप में परिणत हो जाती है। प्रत्यक्ष ज्ञान में संवेदना के अतिरिक्त स्मृति और कल्पनाएँ सम्मिलित रहती हैं। जब स्मृति और कल्पनाओं का प्राबल्य हो जाता है और जब पहले से सोच-विचारकर किसी प्रकार

1. Atomic Theory of knowledge. 2. Observation.

का प्रत्यक्ष ज्ञान किया जाता है तो वह ज्ञान निरीक्षण कहा जाता है। प्रत्यक्षीकरण मात्र में बाहरी संवेदना का प्राबल्य होता है, निरीक्षण में मानसिक स्थिति की प्रबलता होती है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति की किसी विषय को जानने की उत्सुकता जितनी अधिक होती है उसका निरीक्षण उतना ही अधिक अच्छा होता है। निरीक्षण की योग्यता मनुष्य के पूर्व ज्ञान पर भी निर्भर रहती है। जिस व्यक्ति का किसी विशेष प्रकार के विषय में जितना अधिक ज्ञान होता है, उसका उससे सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थों का ज्ञान उतना ही अच्छा होता है।

मान लीजिए, दो व्यक्ति किसी कला-भवन में जाते हैं। वहाँ दोनों अनेक प्रकार के चित्र देखने लगते हैं। इनमें से एक व्यक्ति चित्रकला का विशेषज्ञ है और दूसरा उसके विषय में कुछ भी नहीं जानता। अब दोनों के निरीक्षण के भेद को हम देखें तो प्रत्यक्ष हो जायगा कि कला का विशेषज्ञ जितना अधिक किसी चित्र में देखने के लिए सामग्री पाता है उतना कला का ज्ञान न रखनेवाला नहीं पाता। एक व्यक्ति जल्दी-जल्दी चित्रों को देख लेता है, दूसरा एक ही चित्र को घंटों देखता रहता है तिस पर भी उसकी तृप्ति नहीं होती।

निरीक्षण की योग्यता जिस प्रकार मनुष्य की उत्सुकता और ज्ञान के ऊपर निर्भर करती है उसी तरह वह बुद्धि की प्रखरता के ऊपर निर्भर करती है। वास्तव में बुद्धि की प्रखरता भी मनुष्य के विभिन्न प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होती है। जो व्यक्ति बुद्धि में जितना प्रखर होता है, उसकी ज्ञान की भूख उतनी ही अधिक होती है और उसका ज्ञान-भाण्डार भी उतना ही बढ़ा-चढ़ा होता है।

किसी वस्तु का भली-भाँति निरीक्षण करने के लिए यह आवश्यक है कि हम पहले से ही उसके विषय में चिन्तन करें और अपने मन में अनेक प्रकार के प्रश्न तैयार करके निरीक्षण का कार्य आरम्भ करें। प्रश्नों के रहने पर जितना अच्छा निरीक्षण होता है उतना अच्छा निरीक्षण अन्यथा नहीं होता।

प्रश्न

१—संवेदना और प्रत्यक्ष ज्ञान का सम्बन्ध क्या है? प्रत्यक्ष ज्ञान की उत्पत्ति कैसे होती है!

२—प्रत्यक्ष ज्ञान में स्मृति और कल्पना का अंश कहाँ तक रहता है? उदाहरण देकर समझाइए।

३—भ्रम की उत्पत्ति कैसे होती है ? भ्रम-उत्पादन में उद्वेगों का क्या कार्य होता है।

४—हम संसार को जैसा वह है वैसा नहीं, वरन् जैसे हम हैं वैसा देखते हैं—इस कथन की सत्यता प्रत्यक्ष ज्ञान का स्वरूप समझकर स्पष्ट कीजिए।

५—एक आँख से दूरी का ज्ञान कैसे होता है ? एक आँख से दूरी का ज्ञान उत्पन्न करनेवाले साधनों को उदाहरण सहित समझाइए।

६—दो आँखों से दूरी का ज्ञान कैसे होता है ? चित्र के द्वारा इसे समझाइए।

७—हम दो आँखों से एक पदार्थ का ज्ञान कैसे करते हैं ? स्टीरियस्कोप में देखे गये चित्र प्रत्यक्ष पदार्थों के समान क्यों दिखाई देते हैं।

८—निरीक्षण और प्रत्यक्ष ज्ञान में क्या भेद है ? हम अपना निरीक्षण कैसे अच्छा बना सकते हैं।

९—दो व्यक्ति—एक गल्ले का व्यापारी और दूसरा कलाकार—बाजार में जाते हैं। दोनों के निरीक्षण में क्या भेद होगा ? इसका क्या कारण है।

ग्यारहवाँ प्रकरण

स्मृति[1]

स्मृति की उपयोगिता

व्यावहारिक जीवन में आवश्यकता—सांसारिक जीवन में स्मृति की इतनी अधिक आवश्यकता होती है कि प्रत्येक मनुष्य अच्छी स्मृति का इच्छुक रहता है। स्मृति हमारे व्यावहारिक जीवन के काम में आती है। यदि हम आज की बात कल न याद रख सकें तो हमारे कुल व्यवहार ही बन्द हो जायँ; किसी मनुष्य को आज हमने सौ रुपये उधार दिये और यदि कल उसे भूल जायँ तो हम अपना सब धन ही खो दें। व्यावहारिक जीवन में वही मनुष्य कुशल होता है, जिसकी स्मरण-शक्ति दूसरों से अच्छी रहती है और जो समय पर छोटी-छोटी घटनाओं को भी स्मरण कर सकता है।

पाठ याद करने में आवश्यकता—स्मृति किसी पाठ को याद करने के लिए भी आवश्यक है। विद्यार्थियों के लिए तो स्मृति इतने महत्त्व की है कि इसके बिना उनका काम ही नहीं चल सकता। जिस विद्यार्थी की स्मरण-शक्ति दूसरे विद्यार्थियों से अच्छी होती है वह पढ़ाई में दूसरे से बाजी मार ले जाता है। जिस विद्यार्थी की स्मरण-शक्ति किसी कारण बिगड़ जाती है उसे अपनी पढ़ाई में उन्नति करना असम्भव हो जाता है।

विचार के लिए आवश्यकता—स्मरण-शक्ति विचार के लिए भी आवश्यक है। विचार स्मृति के आधार पर ही चलता है। विचार करते समय हम अपने पुराने अनुभव को दुहराते हैं और भविष्य के योग्य साधन खोजने की चेष्टा करते हैं। इतना ही नहीं, प्रत्यक्ष ज्ञान और निरीक्षण भी बिना स्मृति के सम्भव नहीं। हमने प्रत्यक्ष ज्ञान का स्वरूप दर्शाते समय यह कहा था कि प्रत्यक्ष ज्ञान में तीन चतुर्थांश स्मृति तथा कल्पना का रहता है। अपने पुराने अनुभव के आधार पर ही हम वर्तमान अनुभव का अर्थ लगाते हैं। इससे यह निश्चित है कि स्मृति प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए परमावश्यक है।

---

1. Memory.

अच्छी स्मृति के लक्षण[1]

शीघ्र याद कर सकना—अच्छी स्मृति का पहला लक्षण याद करने में शीघ्रता है। जो बालक जितनी जल्दी अपना पाठ याद कर सकता है उसकी स्मृति उतनी अच्छी समझी जाती है। कितने ही लोग एक ही बार किसी बात को सुनकर उसे याद कर लेते हैं और कितने अनेक बार सुनने पर भी उसे याद नहीं कर पाते। कितने ही बालक दो-तीन बार किसी पाठ को पढ़ने पर उसे याद कर लेते हैं और कितने बालक कई बार उस पाठ को पढ़ने पर भी उसे सुनाते समय भूल जाते हैं। स्मृति की शक्ति का इस प्रकार भेद जन्मजात होता है।

देर तक याद रहना—पठित विषय का देर तक याद रहना अच्छी स्मृति का दूसरा लक्षण है। कितने ही लोग शीघ्रता से किसी भी बात को याद कर लेते हैं, किन्तु वे उसे शीघ्र भूल जाते हैं। इस प्रकार अपने पुराने अनुभवों को भूल जाने से हम उनसे कुछ लाभ नहीं उठा सकते। हमारे विचार का आधार पुराना अनुभव ही रहता है, यदि हम अपने पुराने अनुभव को आवश्यकता पड़ने पर स्मरण न कर सकें तो हमारा विचार बचपन की अवस्था में ही बना रहे। स्मृति हमारे संसार के अनुभव को संचित करके रखती है। उसके सचित और सुरक्षित रहने पर ही हम उसका समय पर उपयोग कर सकते हैं।

समय पर स्मरण होना—अच्छी स्मृति का एक प्रधान लक्षण याद किये गये विषय का समय पर स्मरण होना है। सच्ची विद्या वही कही जाती है जो समय पर काम आवे। किसी अनुभव के समय पर स्मरण होने के लिए उसका स्मृति में ठहरना मात्र आवश्यक नहीं है। उसका योग्य रीति से रखा जाना भी आवश्यक है। हमारी स्मृति एक पुस्तकालय के सदृश है। सुन्दर पुस्तकालय में न केवल अनेक पुस्तकें उपस्थित रहती हैं, किन्तु वे ढग से सजाई हुई रहती हैं, और उसका प्रबन्धक कुशल और चौकस रहता है; इसलिए जो पुस्तक जिस समय माँगी जाती है वह उसी समय मिल जाती है। इस तरह जिस व्यक्ति की स्मृति अच्छी है वह आवश्यकता पड़ने पर अपने पुराने अनुभव में से किसी भी बात को तुरंत ढूँढ निकालता है।

व्यर्थ बातों का भूलना—कितने ही व्यक्ति सोचते हैं कि अच्छी

---

1. Characteristics of good memory.

स्मृति का एकमात्र लक्षण अपने पुराने अनुभवों को याद रख सकता है; किन्तु यह हमारी भूल है। कितने ही विद्यार्थी ऐसे हैं जो किताब की किताब याद कर डालते हैं, पर परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होते। उनकी स्मृति बुरी न होने पर भी वे परीक्षा में फेल क्यों होते हैं ?

इसका प्रधान कारण यह है कि वे अपनी स्मृति का सदुपयोग नहीं करते। अतीत के अनुभव की सब छोटी-छोटी बातों को स्मरण कर सकना अच्छी स्मृति का लक्षण नहीं है। अच्छी स्मृति वह है जो हमें समय पर काम दे। यदि हमें अपने जीवन की प्रत्येक घटना स्मरण रहे, तो हमारा जीवन अब से अधिक सुखी न होकर दुखी हो जाय, हम जिस बात को भुलाना चाहेंगे उसे भूल भी न सकेंगे। फिर सब दुःख, सारी घटनाएँ हमारी आँखों के सामने झूलती रहेंगी। हमारा मस्तिष्क पुराने संस्कारों से इतना भर जायगा कि नये संस्कारों के पड़ने को स्थान ही नहीं रह जायगा। अतएव अच्छी स्मृति का एक प्रधान लक्षण व्यर्थ बातों को भूल जाना है।

स्मृति के अंग[1]

किसी वस्तु का स्मरण रहना चार बातों पर निर्भर रहता है। विषय का याद करना, याद किये विषय को मन में धारण किये रहना, उसका समय पर याद आना और स्मरण आये विषय का पहचाना जाना। इन चारों बातों को स्मृति का अंग कहा गया है। अतएव हम स्मृति के निम्नलिखित चार अङ्गों पर भले प्रकार से विचार करेंगे—

(१) याद करना या सीखना[2],
(२) धारणा[3],
(३) स्मरण (पुनरावर्तन)[4],
(४) पहचान[5]।

उपर्युक्त चार अङ्गों की समस्याओं को भली प्रकार समझने से हम स्मृति के स्वरूप और समस्याओं को सरलता से समझ सकते हैं।

याद करना

याद करने की रीतियाँ[6]—कोई विषय दो तरह से याद किया जा सकता है—एक तो रटकर और दूसरे समझ-बूझकर। रटकर याद करने से समझ-बूझकर याद करना अधिक उपयोगी होता है। यदि किसी कविता को हमें याद करना है तो उसे रटना मात्र पर्याप्त नहीं, हमें उसका अर्थ समझने की चेष्टा करनी चाहिए। हम शब्दों की विशेषताओं और उनके

1. Factors of Memory. 2. Learning. 3. Retention. 4. Recall. 5. Recognition. 6. Methods of memorising.

रखने के ढंग को जानें, कविता के प्रवाह को समझें, एक शब्द और दूसरे शब्द में क्या सम्बन्ध है तथा एक पद के बाद दूसरा पद कैसे रक्खा गया है इसे जानें। कविता में प्रयोग किये गये अलङ्कारों और कवि-कल्पना की विशेषताओं को ढूँढें तो कविता जितनी अच्छी तरह से याद होगी उतनी अच्छी तरह से रटने से नहीं होगी।

रटने की उपयोगिता[1]—आधुनिक काल में रटकर पाठ याद करना व्यर्थ ही नहीं, अपितु हानिकारक भी समझा जाता है। पाठ याद करने की पुरानी परिपाटी रटने की थी। पुराने समय में पुस्तकों की कमी थी, अतएव रटकर ही सब विद्या याद रखी जाती थी। बालक पहले-पहल किसी बात को रटकर याद कर लेता था, पीछे उसका अर्थ समझता था। पुस्तकों की वृद्धि के साथ-साथ रटने की उपयोगिता जाती रही। जो बालक रटकर कविता याद करता है वह कभी-कभी शब्दों में ऐसा हेर-फेर कर देता है जिससे कविता का अर्थ ही उल्टा हो जाता है। एक बालक ने रटकर रहीम का यह दोहा याद किया—

जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोउ तू फूल।
तोहि फूल को फूल हैं, वाको हैं तिरसूल॥

इस दोहे को सुनाते समय उसने शब्दों की मात्रा में हेर-फेर कर दिया और उसे इस तरह सुनाया—

जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोउ तू फूल।
ताहि फूल को फूल हैं, तोकों हैं तिरसूल॥

बालक ने अपनी समझ में कोई विशेष गलती नहीं की, उसने पूरे दोहे को तो याद ही कर लिया, यदि एक मात्रा की भूल हो गई तो नुकसान ही क्या? किसी विषय को रटकर याद करने में विचार से कोई काम नहीं लेना पड़ता, अतएव ऐसा याद किया विषय समय पर काम भी नहीं आता। कितने बालक इतिहास के पाठ के पाठ रट डालते हैं, पर जब प्रश्नों का उत्तर पूछा जाता है तो वे कुछ भी सार्थक उत्तर नहीं दे पाते। याद करने का सबसे योग्य साधन विषय की विशेषताओं को जानने की चेष्टा और उसके विषय में विचार करना है। सीखने का एक परम सिद्धान्त यह है कि जो जितना मस्तिष्क तथा दूसरे अवयवों से काम लेता है वह उतना ही अधिक सीखता है। जो व्यक्ति किसी कविता को याद करने के लिए उसकी विशेषताओं की खोज करता है वह अवश्य ही रटनेवाले व्यक्ति की अपेक्षा अपने मस्तिष्क से अधिक काम लेता है।

---

1 Rote Learning.

रटकर पाठ याद करना दूषित प्रणाली अवश्य है, किन्तु इसका सर्वथा त्याग नहीं किया जा सकता है। पाठ्य क्रम की कुछ बातें अवश्य ऐसी होती हैं, जिन्हें रटकर ही याद किया जा सकता है अथवा जिनका रटकर याद कर लेना लाभकारी होता है। उदाहरणार्थ, शब्दों के हिज्जे, अङ्कों के पहाड़े और शहरों के नाम। कविता को याद करने के लिए भी अर्थ समझने के साथ-साथ उसका रटना आवश्यक होता है।

मानसिक प्रयत्न का महत्त्व—जब हम किसी विषय को याद करें तो उसके अर्थ को ढूँढ़ने की चेष्टा करना उत्तम है। उसकी तुलना दूसरे किसी विषय से करने से बहुत ही लाभ होगा। जहाँ कोई अर्थ न मिले तो कुछ काल्पनिक अर्थ उसमें जोड़ देना चाहिए। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में जब लोगों को निरर्थक शब्द याद करने को दिये जाते थे तो जो व्यक्ति उन शब्दों को सार्थक बनाने में समर्थ होता था, अथवा जो किसी प्रकार की ध्वनि के अनुसार उन्हें याद करता था, वह ऐसा न करनेवालों की अपेक्षा अधिक सफल होता था। मान लीजिए, एक व्यक्ति को निम्नलिखित अंक याद करना है—७२३६१४९२५८। यदि वह इन अंकों को रटकर याद करे तो बड़े परिश्रम के बाद ही इस कार्य में सफलता पावेगा। फिर एक बार अङ्क याद होने पर भी वह कुछ काल के बाद भूल जायगा। निरर्थक बातों को हमारी स्मृति धारण नहीं करना चाहती।

अब मान लीजिए, वह इन्हीं अङ्कों को तीन-तीन के हिस्से में बाँटकर याद करता है तो वह ऊपर दिये अङ्कों को ७२३, ६१४,९२५ और ८ के हिस्सों में विभाजित हो जाने पर शीघ्रता से याद कर सकता है। इतने पर भी एक बार याद होने पर वह व्यक्ति शीघ्र उन अङ्कों को भूल जायगा। अब मान लीजिए वही व्यक्ति अपनी बुद्धि से काम लेता है और इन अङ्कों में अर्थ खोजने की अथवा उन्हें सार्थक बनाने की चेष्टा करता है। वह पाता है कि ७२ का आधा ३६ है और १४९२ कोलम्बस के अमेरिका पहुँचने की तिथि है, अब रह गये ५ और ८। यहाँ भी हम देखते हैं कि १४९२ के २ में यदि ३ जोड़ दें तो ५ हो जाता है; और फिर तीन जोड़ें तो ८ हो जाता है। अब सारे अङ्कों को याद करने की अपेक्षा, पहले दो अङ्कों को याद करना, फिर उनके आधे कर देना, फिर कोलम्बस के अमेरिका पहुँचने की तिथि जोड़ देना और पीछे ३ दो बार जोड़ने से सारी संख्या याद रह सकती है। अब यही निरर्थक संख्या सार्थक-हो जाने के कारण अनेक दिनों तक याद रह सकती है।

मान लीजिये, हम किसी दिये हुए विषय का अर्थ न लगा पावें तो भी रटने की अपेक्षा वह तब अधिक अच्छी तरह याद होगा जब हम उसका अर्थ खोजने की चेष्टा करते हैं। देखा गया है कि कितने ही बालकों को सरल पुस्तक की अपेक्षा कठिन पुस्तक का विषय अधिक देर तक याद रहता है। इसका मुख्य कारण है कि सरल पुस्तक में मानसिक परिश्रम ही नहीं करना पड़ता, बुद्धि उद्योगशील नहीं होती। अतएव उस पुस्तक के विषय का स्मरण भी ठीक नहीं रहता। जहाँ मन को समझने की चेष्टा करनी पड़ती है वहीं फल भी अच्छा मिलता है।

किसी विषय का अर्थ सूझ जाने पर वह कैसे शीघ्र याद हो जाता है इसका एक सुन्दर उदाहरण मारगन और गिलीलैण्ड महाशयों ने अपनी मनोविज्ञान की पुस्तक में दिया है। एक लड़का ९ का पहाड़ा भूल-भूल जाता था। वह उसे कई बार रटता था फिर भी कुछ गलती हो ही जाती थी। इस बालक को यह समझाया गया कि यदि ९ का किसी भी अंक से गुणा किया तो गुणनफल के जो अंक होंगे उनका पहला अंक गुणा करने-वाले अंक से १ कम होगा और दूसरा अंक ९ में से पहले अंक को घटा देने से आ जायगा। यह बात ९ के पहाड़े से इस तरह बता दी गई—

९×१=९	
९×२=१८	१+८=९
९×३=२७	२+७=९
९×४=३६	३+६=९
९×५=४५	४+५=९
९×६=५४	५+४=९
९×७=६३	६+३=९
९×८=७२	७+२=९
९×९=८१	८+१=९
९×१०=९०	९+०=९

कृत्रिम सुगमताएँ—साधारणतः किसी भी विषय का याद रहना याद करने के परिश्रम पर निर्भर रहता है। जिस विषय को जितनी देर तक और लगन के साथ याद किया जाता है वह उतनी देर तक याद रहता है, किन्तु उपयोगी विषयों के याद करने के कुछ सुगम उपाय भी सोचे गए हैं। इन्हें जानना स्मृति की शक्ति को संचित करने के लिए आवश्यक होता है। कभी-कभी कई शहरों के नाम स्मरण रखने के लिए, उनके नाम के पहले

अक्षरों को लेकर एक नया शब्द बना लिया जा सकता है। रङ्गों के नाम इसी प्रकार याद किये जाते हैं।

धारणा[1]

धारणा-शक्ति के आधार—जब एक विषय भली भाँति स्मरण हो जाता है तो उसे धारणा-शक्ति जब तक आवश्यकता होती है, धारण किये रहती है। अब प्रश्न यह है कि यह धारणा-शक्ति किन बातों पर निर्भर रहती है। इस प्रश्न के उत्तर में एक ही बात कही जा सकती है—सस्कारों की दृढ़ता। जो सस्कार जितने गहरे हैं वे उतनी देर तक मस्तिष्क में ठहरते हैं। सस्कारों की दृढ़ता निम्नलिखित बातों पर निर्भर है—

(१) मस्तिष्क की बनावट,

(२) स्वास्थ्य,

(३) रुचि,

(४) चिन्तन।

मस्तिष्क की बनावट—भिन्न-भिन्न मनुष्यों की धारणा शक्ति भिन्न-भिन्न होती है। धारणा-शक्ति के ये भेद जन्म से ही रहते हैं। किसी मनुष्य का मस्तिष्क इतना अच्छा होता है कि वह किसी बात को एक बार सुनकर भी कई दिनों तक याद रख सकता है और किसी का मस्तिष्क इतना निर्बल होता है कि उसमें कोई सस्कार अधिक काल तक स्थिर ही नहीं रहता। मनुष्य की विचारशक्ति का आधार उसकी धारणा-शक्ति ही है, अतएव यदि किसी मनुष्य की धारणा शक्ति बहुत दुर्बल हुई तो वह अवश्य मन्दबुद्धि होगा।

हम अपने मस्तिष्क की बनावट में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते। यह हमारी पैतृक सम्पत्ति तथा वंशानुक्रम के अनुसार हमें प्राप्त होती है। जिन माता पिताओं के मस्तिष्क अच्छे हैं, उनकी सतानों के भी मस्तिष्क अच्छे होते हैं।

मनुष्य अपने मस्तिष्क की बनावट में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। अतएव उसकी धारणा-शक्ति में परिवर्तन होना असम्भव है। किन्तु वह अपनी धारणा-शक्ति का सदुपयोग करके उसे साधारण लोगों की अपेक्षा अधिक कीमती बना सकता है। कितने ही लोगों में धारणा-शक्ति अच्छी होती है पर उसके दुरुपयोग के कारण वे उससे जीवन कार्यों में अधिक सहायता प्राप्त नहीं करते।

---

1. Retention.

स्वास्थ्य—धारणा-शक्ति मनुष्य के स्वास्थ्य पर निर्भर है। स्वस्थ अवस्था में धारणा-शक्ति जितनी प्रबल होती है उतनी अस्वस्थ अवस्था में नहीं रहती। किसी किसी बीमारी से धारणा-शक्ति की भारी क्षति हो जाती है। मस्तिष्क में किसी प्रकार की खराबी होने से धारणा शक्ति की हानि होती है।

रुचि[1] और चिन्तन[2]—किसी विषय का स्मृति में ठहरना रुचि और चिन्तन पर निर्भर है। रुचि और चिन्तन एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। जिस विषय पर हमारी रुचि होती है उसका चिन्तन हम बार-बार करते हैं तथा उसकी पुनरावृत्ति हमारे मन में बार-बार होती रहती है। इसी तरह जिस विषय का चिन्तन किया जाता है उसम भी रुचि उत्पन्न हो जाती है। वास्तव में किसी बात का मन में बैठ जाना अथवा स्थिर रहना उसके "मनन" पर निर्भर है और हम मनन उसी विषय पर करते हैं जो रुचिकर होता है, अथवा जिसमें हम अपना लाभ देखते हैं। चिन्तन मन की वह क्रिया है जिससे मनुष्य एक विषय के अनेक अर्थ तथा एक बात का दूसरे से क्या सम्बन्ध है, इसे जानने की चेष्टा करता है। इस प्रकार वह एक बात का अनेक दूसरी बातों से सम्बन्ध जोड़ देता है। फिर वह हमारे मन में इस प्रकार घर कर लेती है कि पुनः मस्तिष्क के बाहर नहीं जाती। जिस बात का जितना अधिक चिन्तन किया जाता है वह उतनी ही अधिक देर तक हमारी स्मृति में रहती है।

संस्कारों का दृढ़ होना आवृत्ति पर भी निर्भर होता है। आवृत्ति से संस्कार गहरे हो जाते हैं और बार-बार सजीव होने के कारण समय पर स्मृति के रूप में काम में आते हैं। चिन्तन करने से पिछले संस्कार निर्बल रहते हैं। जब हम जानी हुई बातों का अतीत की बातों से सम्बन्ध जोड़ने की चेष्टा करते हैं तो पुरानी बातें फिर मन में दुहराई जाती हैं। इसी प्रकार जब उन पुरानी बातों के सोचने का अवसर पड़ता है तो नई सीखी हुई बात भी स्मरण होती है और इस तरह उसके संस्कार भी दृढ़ हो जाते हैं।

धारणा-शक्ति की सीमा—कितने मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जिस बात के संस्कार एक बार मन में बैठ जाते हैं वे मस्तिष्क से फिर नहीं जाते। वे अचेत अवस्था में हमारे अव्यक्त मन में पड़े रहते हैं और आवश्यकता होने पर वे चेतन मन में आ जाते हैं। आधुनिक चित्त-विश्लेषण[3] विज्ञान से इस कथन की सत्यता के अनेक प्रमाण मिलते हैं। चित्त-विश्लेषक इन गुप्त संस्कारों को सम्मोहन क्रिया से सजीवित करते हैं। देखा गया है कि कोई

---

1. Interest, 2. Thinking, 3 Psycho-analysis

व्यक्ति सम्मोहन की अवस्था में अपनी बाल्यावस्था में हुई घटनाओं को इस प्रकार याद कर लेते हैं जैसे वे अभी घटित हुई हैं। कितनी दुःखद स्मृतियाँ जिन्हें चेतना अपने समक्ष आने नहीं देती, इस प्रकार सम्मोहन द्वारा चेतन मन में लाई जाती हैं। चित्त विश्लेषण उपचार की सफलता इन विस्मृत अनुभवों को चेतना के समक्ष लाने में है।

वास्तव में हमारे मन में अनेक ऐसे संस्कार वर्तमान हैं जिनकी उपस्थिति के विषय में हमें मन की साधारण अवस्था में कुछ भी ज्ञान नहीं रहता, पर वे असाधारण अवस्था में मानसपटल पर आ जाते हैं। ड्रेवियल महाशय ने अपनी मनोविज्ञान की पुस्तक में एक ऐसे व्यक्ति की अनुभूति का वर्णन किया है जो पानी में डूबकर मरने से बचा लिया गया था। वह व्यक्ति दो मिनट तक अचेत रहा। जब वह चेतन अवस्था में आया तो उसने कहा कि मैंने अपने सारे जीवन की घटनाओं को अपनी अचेत अवस्था में घटित होते फिर देख लिया। उसे जान पड़ा मानों उन दो मिनटों में वर्षों बीत गये हों।

कभी कभी हम अपनी स्वप्नावस्था में अपने बाल्यकाल की ऐसी घटनाओं को देखते हैं जिनके विषय में हमने वर्षों कभी नहीं सोचा था और यदि कोई व्यक्ति उनके विषय में हमसे पूछता तो हम कुछ भी स्मरण नहीं कर पाते। इस प्रकार के अनुभवों से अनुमान किया जाता है कि प्रत्येक अनुभव हमारे मस्तिष्क पर अमिट संस्कार छोड़ जाता है। ऐसे संस्कारों का चेतन मन में न रहना यह प्रमाणित नहीं करता कि वे मन से मिट गये हैं।

इस सिद्धान्त के विरोधी अनेक मनोवैज्ञानिक हैं। वुडवर्थ, स्टाउट, मेकडूगल आदि महाशयों का कथन है कि हमारे जीवन की सभी बातों के संस्कार हमारे मन में इस समय स्थित नहीं हैं। जिस प्रकार काल दूसरी बातों को मिटा देता है उसी तरह वह मानसिक संस्कारों को भी मिटा देता है। भली भाँति पड़े संस्कार भी कालान्तर में मिट जाते हैं। अतएव जब तक किसी बात को बार बार न दुहराया जाय, उसकी स्मृति सम्भव नहीं। इस कथन कि सत्यता प्रयोगों द्वारा प्रमाणित की गई है। इन प्रयोगों का उल्लेख हम आगे चलकर 'भूल के कारण' बताते समय करेंगे।

स्मरण[1] (पुनरावर्तन)

मन में स्थित पुराने अनुभव को फिर से चेतना में आने को स्मरण कहते हैं। किसी अनुभव की स्मृति अदृश्य मन में रहती है। यदि हमारी चेतना में वर्तमान अनुभव ही सदा उपस्थित रहें तो हम कुछ भी सांसारिक कार्य न

1 Recall

कर सकेंगे। इन अनुभवों का स्मरण समय समय पर किया जाता है। अब प्रश्न यह है कि जिन अनुभवों के संस्कार हमारे मन में हैं वे चेतना में फिर कैसे आते हैं अर्थात् हमारे संस्कार फिर कैसे होते हैं?

विचारों के सम्बन्ध[1]—पुराने अनुभवों का मानस-पटल पर आना उनके संस्कारों के उत्तेजित होने पर निर्भर रहता है। इस उत्तेजना का मुख्य कारण संस्कारों का आपस का सम्बन्ध है। यदि किन्हीं दो अनुभवों के संस्कारों में आपस में सम्बन्ध है तो वे एक दूसरे को स्मरण करावेंगे। मान लीजिए, हम राम और श्याम दो मित्रों को एक साथ कई दिनों तक देखते रहे। जब हमें राम अकेला मिलता है तो हमें श्याम की याद अपने-आप आ जाती है। यदि किसी व्यक्ति ने हमारी बड़ी सेवा की है तो जब हम उस व्यक्ति को देखते हैं तो हमें उनकी सेवा का स्मरण हो जाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने विचारों के तीन प्रकार के सम्बन्ध माने हैं। ये सम्बन्ध विचारों को मन में स्थिर करते हैं और इन्हीं के कारण वे समय पर स्मरण होते हैं। इन सम्बन्धों के नाम हैं—सहचारिता, समानता और विरोध।

सहचारिता[2]—जब हम दो किन्हीं वस्तुओं का ज्ञान एक साथ करते हैं, तो उनके अनुभवों में सहचारिता का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जब एक वस्तु का ज्ञान हमें फिर से होता है तो दूसरी का ज्ञान अपने आप हो जाता है। ऊपर दिये उदाहरणों में यह बात स्पष्ट कर दी गई है। जब हमारी कोई वस्तु खो जाती है तो उसको ढूँढते समय हम अपने दिन भर के सब अनुभवों को दुहराते हैं। कुल अनुभव एक के बाद एक मन में इसी तरह के सम्बन्ध के कारण उसी प्रकार आते हैं जिस प्रकार उनका संस्कार मन में पड़ा हो।

समानता[3]—दो समधर्मी वस्तुएँ एक दूसरी का स्मरण कराती हैं। एक सज्जन दूसरे सज्जन को याद कराते हैं। खिला हुआ फूल प्रेमी को अपनी प्रेयसी का स्मरण कराता है, टिमटिमाता दीपक जीवन की वृद्धावस्था का स्मरण कराता है, एक कवि दूसरे कवि का, एक वैज्ञानिक अन्य वैज्ञानिकों का स्मरण कराता है। इस प्रकार के स्मरण का कारण यह नहीं है कि हमने समधर्मी वस्तुओं को पहले कभी एक साथ सोचा है, किन्तु वस्तुओं के समधर्म ही उन वस्तुओं के स्मरण कराने में सहायक होते हैं। जो व्यक्ति जितना बुद्धिमान् तथा कल्पना में प्रवीण होता है, उसके मन में उतनी शीघ्रता से अनेक समधर्मा वस्तुओं का विचार किसी वस्तु को देखने पर आ जाता है।

---

1. Association of ideas. 2. Contiguity. 3. Similarity.

समधर्मों की पहचान भी मनुष्य की मानसिक बनावट तथा उसके दूसरे भावों पर निर्भर रहती है। एक वैज्ञानिक चन्द्रमा और महिला के मुख में कोई समानता नहीं देखेगा, पर कवि की दृष्टि में उन दोनों वस्तुओं में इतनी समानता है कि एक को देखकर दूसरे का स्मरण आये बिना नहीं रहता। इस प्रकार की समानता की पहचान कवि के भावों पर निर्भर रहती है। अभ्यास के द्वारा समधर्मों को पहचानने की शक्ति बढ़ाई भी जा सकती है। कवि उपमा और रूपकों का प्रयोग करते-करते इस प्रकार के प्रयोगों में कुशल हो जाता है। इसी तरह वैज्ञानिक भी समधर्मी वस्तुओं को पहचानने और उनको अपने विचारों में एकत्र करने में प्रवीण हो जाता है।

विरोध[1]—जिस प्रकार समधर्मी वस्तु एक दूसरी का स्मरण कराती है इसी तरह विरोधी धर्मवाली वस्तुएँ भी एक दूसरी का स्मरण कराती हैं। यदि हम किसी विशेष बुरे आदमी से मिलें तो वह हमें भले आदमी का भी स्मरण करा देता है। अपने दुर्दिन के समय अपने अच्छे दिन भी याद आते हैं। औरङ्गजेब के अत्याचार अकबर की राज्यकुशल नीति का स्मरण कराते हैं। मानसिंह के नाम से राणा प्रताप का स्मरण हो जाता है। देशभक्त देशद्रोहियों की याद करा देता है।

इस प्रकार का स्मरण क्योंकर होता है? किसी वस्तु के देखने पर समधर्मी अथवा विरोधी धर्मवाली वस्तुओं के मन में आने का क्या कारण है? कुछ मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि विचारों को गूँथनेवाला मौलिक सम्बन्ध एक ही है; वह है, उनकी पुराने अनुभव में सहचारिता। अर्थात् जिन दो बातों का चिंतन हमने एक साथ नहीं किया है वे कदापि एक दूसरी का स्मरण नहीं करातीं। यदि यह कथन सत्य हो तो समधर्मी अथवा विरुद्धधर्मी वस्तुओं का एक साथ स्मरण होना असम्भव होगा?

इस प्रश्न का उत्तर कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रकार दिया है। जब हमें किसी वस्तु का पहले-पहल ज्ञान होता है, तो उस नवीन वस्तु का सम्बन्ध उसी समय अनेक समधर्मी व विरुद्धधर्मी वस्तुओं के ज्ञान-संस्कार से हो जाता है। ऐसा हुए बिना उस वस्तु का पूर्णतः ज्ञान ही हमें नहीं होता। किसी भी बात के समझने की प्रकिया ही यही है, हम उस बात का विश्लेषण करते हैं और उसके अनेक धर्मों को पहचानने की चेष्टा करते हैं। इसप्रकार की चेष्टा में हम उस वस्तु को अनेक समधर्मी वस्तुओं के ज्ञान से सम्बन्धित कर देते हैं।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि 'विरोध' कोई स्वतन्त्र सम्बन्ध नहीं

---

1. Contrast.

है। किन्हीं दो वस्तुओं में आपस के विरोध का ज्ञान उनकी समानता के ज्ञान के कारण ही होता है। कोयल और कौवे में विरोध का ज्ञान इसलिए होता है कि वे अनेक बातों में एक दूसरे के समान हैं; 'कोयल कौवे का स्मरण कराती है, हाथी का नहीं। कोयल का ज्ञान प्राप्त करते समय पक्षियों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। कौवा भी रंग में उसी प्रकार का पक्षी है, पर उसकी बोली कर्कश है; अतएव दोनों पक्षी एक दूसरे का स्मरण कराते हैं। कोयल का ज्ञान करते समय पशुवर्ग के प्राणियों पर ध्यान जाने की आवश्यकता नहीं होती। अतएव कोयल का विचार करते समय हाथी का विचार मन में नहीं आता।

पहचान[1]

चेतना में आई हुई बात के विषय में यह जानना कि इस बात का अनुभव हमें पहले कभी हुआ है पहचान कहलाता है। हम किसी व्यक्ति को देखते हैं और सोचने लगते हैं कि हमने इसे पहले कभी देखा है; यह परिचित व्यक्ति है। इस प्रकार की भावना को पहचान कहते हैं।

पूर्ण पहचान के लिए यह भी आवश्यक है कि चेतना में आये अनुभव का पुराने अनुभवों में स्थान जाना जाय। कितने मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रकार के ज्ञान के बिना वास्तविक पहचान नहीं कही जा सकती। पर इस प्रकार का विवाद निरर्थक है। हमारे जीवन के कितने ही कार्य अपूर्ण पहचान से भी चलते हैं, मनुष्य के ज्ञान की वृद्धि के लिए अपूर्ण पहचान भी उतनी ही आवश्यक है जितनी पूर्ण। कहीं-कहीं चेतना में आये पुराने अनुभवों का दूसरे स्मृति-स्थित अनुभवों से सम्बन्ध जानना निरर्थक होता है।

किसी मनुष्य की पहिचानने की शक्ति उसकी स्मरण-शक्ति से कहीं अधिक होती है। हम कितने ही लोगों को देखकर पहचान सकते हैं पर यदि उनके विषय में हम चिंतन करने लग जायँ तो उनका स्मरण नहीं कर पायेंगे। हम अपने कितने ही पुराने परिचितों का नाम भूल जाते हैं, पर जब वे कहीं हमें मिलते हैं तो हम उन्हें पहचान लेते हैं। यदि इन्हीं मित्रों के नाम दूसरों के नामों के साथ किसी फिहरिस्त में निकलें तो हम उनके नामों को अवश्य पहचान लेंगे। प्रत्येक व्यक्ति की बोध-शब्दावली[2] प्रयोग-शब्दावली[3] से कहीं अधिक होती है, अर्थात् जितने शब्दों को हम समझ सकते हैं वे उनसे, जिनका हम प्रयोग करते हैं बहुत ही थोड़े होते हैं

1. Recognition 2 Recognition Vocabulary. 3. [illegible] Vocabulary.

मनुष्यों की पहचानने और स्मरण शक्ति के भेद जानने के लिए निम्न-लिखित प्रयोग किया जा सकता है—

बीस कार्ड ऐसे लो जिनमें संसार के कुछ प्रसिद्ध और कुछ अप्रसिद्ध शहरों के नाम लिखे हों। इन्हें एक मिनट तक किसी व्यक्ति को देखने को दे दो। पाँच मिनट के बाद उस व्यक्ति से पूछो कि किन-किन शहरों के नाम उन कार्डों पर लिखे थे। सही और गलत उत्तरों को लिख लो। अब इन कार्डों को दूसरे ऐसे ही सौ कार्डों में मिला दो, फिर उस व्यक्ति से कहो कि अपने पहले के देखे कार्डों को पहचानकर उठा ले।

इस प्रकार के प्रयोग से देखा गया है कि पिछले कार्य में भूलों की संख्या बहुत कम होती है और पहचान किये जानेवाले नामों की संख्या बिना देखे कहनेवाले नामों से तिगुनी-चौगुनी होती है।

याद करने के प्रयोग

जिस लोगों को अध्ययन और अध्यापन का कार्य करना पड़ता है उन्हें कई विषय ठीक ठीक याद करने पड़ते हैं। यहाँ यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि किसी दी हुई कविता अथवा किसी गद्य के खंड के अध्ययन करने का सबसे सुगम उपाय क्या है? इस विषय पर मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोग किये हैं। वे जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं उसका यहाँ उदाहरण देना आवश्यक है।

पूरी और विभाग रीति[1]—कविता या गद्यपाठ याद करने की दो प्रधान रीतियाँ मानी गई हैं। एक पूरी कविता को कई बार दुहराकर याद करना और दूसरे उसको कई भागों में विभाजित करके याद करना। मान लो, एक कविता १०० पंक्तियों की है तो १० ही पंक्तियाँ एक बार पढ़ी जा सकती हैं, अथवा बीस-बीस पंक्तियों को याद करके सारी कविता याद की जा सकती है। साधारण विद्यार्थी कविता को कई भागों में बाँटकर याद करते हैं। ऊपरी दृष्टि से ऐसा भी जान पड़ता है कि इसी प्रकार का तरीका अच्छा है। इस तरीके से जब विद्यार्थी कुछ थोड़ा काम करने में सफल होता है तो उसका उत्साह बढ़ता जाता है। इस तरह उसको पूरा काम शीघ्रता से कर सकने की आशा रहती है। पर प्रयोग द्वारा देखा गया है कि भागों की रीति पूरी कविता याद करने की रीति से अच्छी नहीं है। पाइन और सिन्डर महाशयों के प्रयोगों से पता चलता है कि २४० पंक्तियों तक की कविता पूरी रीति से ही शीघ्रता से याद होती है। पूरी रीति से ⅓ समय की बचत होती है।

1. The Whole and the Part Method

इस प्रकार की बचत का कारण वाछनीय संबंधों की स्थापना और अर्थ की सहायता है। जब कविता कई भागों में बाँटकर याद की जाती है तो एक छन्द का लगातार दूसरे छन्द से संबंध स्थापित नहीं होने पाता जो कि उसके स्मरण करने के समय अत्यन्त आवश्यक होता है। पहले ही छन्द के अन्तिम पद का सम्बन्ध उसी छन्द के प्रथम पद से हो जाता है। इस प्रकार का सम्बन्ध पूरी कविता के स्मरण में बाधक होता है।

लगातार अध्ययन और समय-विभाग[1]—समय विभाजित करके कविता का याद करना लगातार उसके याद करने से अच्छा होता है। मान लीजिए, हमें किसी कविता को याद करना है, तो लगातार उस कविता को बीस बार पढ़ने की अपेक्षा उसे ४ बार प्रतिदिन पाँच दिन तक पढ़ने से वह अधिक अच्छी तरह से याद होगी। यदि दो बार प्रतिदिन १० दिन तक पढ़ें तो और भी अच्छा परिणाम होगा। जोस्ट महाशय ने इस प्रकार का प्रयोग निरर्थक शब्दों के याद करने का किया था। उनका फल निम्नलिखित है—

लगातार और समय-विभाग द्वारा याद करना

२४ बार ना ब टा जाना।	अ के नम्बर	र के नम्बर
३ दिन तक प्रतिदिन ८ बार पढ़ना।	१८	७
४ ,, ,, ६ ,,	३९	३१
२ ,, ,, १२ ,,	५३	५५

इस प्रयोग में हम देखते हैं कि अधिक समय विभाग की रीति से कार्य अच्छा हुआ।

समय-विभाग की रीति से अधिक याद होने का कारण यह है कि इस रीति से काम में थकान नहीं आती, लगातार एक ही चीज को बार-बार दुहराने से मन ऊब जाता है, काम में रुचि नहीं रहती और थकावट शीघ्रता से आ जाती है। इस तरह मनुष्य मशीन के समान काम करता रहता है, वह अर्थ की सहायता नहीं लेता। दूसरे जब हम किसी विषय का पाठ थोड़ी देर तक करने के बाद उसे छोड़ देते हैं तो अवकाश के समय उस विषय के संस्कार मन में दृढ़ होते हैं। यह एक प्रकार की अदृश्य मानसिक क्रिया है जिसके कारण स्मरण में भारी सहायता मिलती है।

1. Unspaced and Spaced Learning.

मानसिक परीक्षा की रीति[1]—किसी पाठ को लगातार याद करने की अपेक्षा उसके विषय में अपनी मानसिक परीक्षा लेते रहने से वह अधिक शीघ्रता से याद हो जाता है। मान लीजिए, हमें एक कविता याद करनी है तो लगातार उसे १० या १५ बार न पढ़कर उसे तीन चार बार पढ़कर मन में बिना देखे दुहराने से वह अधिक शीघ्रता से याद हो जायगी। कितने विद्यार्थी अपनी पुस्तकों का पारायण कई बार कर जाते हैं, पर परीक्षा के समय वे भली भाँति उत्तीर्ण नहीं होते। यदि इन विद्यार्थियों ने अपनी मानसिक परीक्षा द्वारा पाठ याद किया होता तो वे अच्छी तरह उत्तीर्ण होते।

इस प्रकार की सफलता का एक कारण आत्मविश्वास की वृद्धि है। जो विद्यार्थी पढ़े हुए विषय में आत्म परीक्षा लिया करता है, उसे अपने आप पर भरोसा हो जाता है; अपने आपमें भरोसा रखना जिस प्रकार संसार के सभी कामों में सफलता लाने में हेतु होता है, उसी तरह वह स्मरण में भी हेतु होता है। दूसरा कारण इस प्रकार की सफलता का यह है कि जब हम अपनी मानसिक परीक्षा लेते हैं तो अपने आपको उसी प्रकार के कार्य में अभ्यस्त कर लेते हैं जिस प्रकार का कार्य हमें पीछे करना है। अर्थात् याद करने के पश्चात् हमें कविता को किसी समय स्मरण ही तो करना होगा। यदि लगातार कविता को पढ़ ही जायँ और उसको अपने आप कहने का हम अभ्यास न करें तो समय पड़ने पर हम कैसे स्मरण करने में समर्थ होंगे?

विस्मृति[2]

विस्मृति के कारण—यह प्रश्न बड़े महत्त्व का है कि हम किसी बात को भूलते क्यों हैं। इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि जो कारण स्मृति में हेतु होते हैं उनके विपरीत कारण विस्मृति में हेतु होते हैं। किसी अतीत अनुभव का स्मरण होना उसके संस्कारों की दृढ़ता और उनके आपस के सम्बन्धों की स्थिरता पर निर्भर है। जिस विषय को बार-बार नहीं दुहराया जाता वह विस्मृत हो जाता है। किसी अनुभव के संस्कार काल की गति द्वारा नष्ट हो जाते हैं। जिस बात को हम आज पूरी-पूरी तरह याद कर सकते हैं उसी बात को एक साल बाद नहीं कर पावेंगे। यदि ऐसा न हो तो हम जीवन की अनेक निरर्थक बातों को सदा ही स्मरण रखें। हम उन्हीं बातों को स्मरण रखते हैं जिनमें हमारी रुचि है और जिन्हें हम समय-समय पर दुहराया करते हैं। इस प्रकार एक बात अनेक बातों से गुँथ जाती है। और फिर उससे सम्बन्धित बातें उसे याद करने में सहायक होती

---

1. Recitation method. 2 Forgetting.

हैं। अतएव विस्मृति के कारण को कई तरह से कहा जा सकता है—रुचि की कमी, संस्कारों की अदृढ़ता, उनकी आपस के सम्बन्धों की कमी, पाठ्य-विषय का दुहराया न जाना। पर ये सब बातें एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और एक दूसरे पर निर्भर हैं। अतएव एक पर विचार करने से दूसरों का बोध अपने आप हो जाता है।

भूल सम्बन्धी प्रयोग—जर्मनी के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक इबिंघास महाशय ने विस्मृति के विषय में कुछ प्रयोग किये हैं। उनके निष्कर्ष उल्लेखनीय हैं।

इबिंघास महाशय के प्रयोगों का फल दर्शाता है कि भूलना पहले-पहल तेजी से होता है फिर धीरे-धीरे होने लगता है। कुछ समय के बाद फिर अधिक भूलना नहीं होता। इस फल को एक ग्राफ के द्वारा दिखाया जा सकता है।

स्मरण और विस्मरण की तीन रीतियों से नापा जा सकता है। पहली रीति याद करने और बचत की रीति है, दूसरी स्मरणों की और तीसरी पहचान की रीति।

याद करने और बचत की रीति में प्रयोग-पात्र को कुछ निरर्थक शब्द भली-भाँति याद करने को दिये जाते हैं। कुछ काल के बाद उससे यदि पूछा जाय कि वे उसे कहाँ तक याद हैं तो वह उनको बिल्कुल ही स्मरण न कर पायेगा। पर इसी पात्र को फिर से उन्हीं शब्दों को याद करने दिया जाय तो वह पहली बार की अपेक्षा कम समय में उन्हें याद कर डालेगा। इस प्रकार के प्रयोगों में देखा गया कि कितना अधिक समय पहली बार और दूसरी बार के याद करने में लगता है। स्मरण की रीति में कोई पाठ याद करने को दे दिया जाता है और भिन्न-भिन्न समय के अन्तर पर पात्र को उसे अपने आप बिना किसी सहायता के सुनाने के लिए कहा जाता है। इस प्रकार के प्रयोगों में भी देखा गया है कि समय के अनुसार विस्मृति कम हो जाती है।

तीसरी रीति पहचान की है। इस रीति में पुराने ज्ञात शब्दों को नये शब्दों में मिला दिया जाता है और पहचानने के लिए कहा जाता है। मान लो किसी व्यक्ति ने २० शब्द याद किये। उन्हें भिन्न भिन्न समय का अन्तर डालकर दूसरे ५० शब्दों में मिला दिया जाय और फिर जाने हुए शब्द पहचानने को कहा जाय, तो यह पहचान की रीति होगी।

असाधारण भूल[1]

असाधारण भूल के कारण—कुछ भूलें असाधारण होती हैं। इनका कारण संस्कारों की निर्बलता नहीं होती और न रुचि की कमी ही होती है

1. Abnormal Forgetting

वरन् स्मरण की प्रक्रिया में रुकावट है। इस प्रकार की रुकावटों में तीन का उल्लेख करना आवश्यक है—

(१) संवेग[1] की उत्तेजना।

(२) संशय[2] की उत्पत्ति।

(३) अदृश्य मन में किसी भावना ग्रन्थि[3] की उपस्थिति।

संवेग की उत्तेजना—किसी बात को स्मरण करते समय यदि भय अथवा और किसी दूसरे प्रकार का मनोविकार जाग उठे तो हम स्मरण करनेवाली बात को भूल जायँगे। इस तरह कितने ही विद्यार्थी परीक्षा के समय परीक्षा भवन में प्रश्नों का ठीक उत्तर भूल जाते हैं, किन्तु परीक्षा-भवन के बाहर आने पर उन्हें ठीक उत्तर याद आ जाते हैं। इसी तरह नवसिखुआ वक्ता जब किसी मंच पर वक्तृता देने जाता है तो कभी-कभी याद की हुई बातें भूल जाता है। एक बात का दूसरी से सम्बन्ध और आपस का क्रम भूल जाना तो साधारण-सी बात है।

संशय का आना—संशय का आना जिस प्रकार मनुष्य को और कामों में असफल कर देता है, स्मरण के कार्य में भी असफल कर देता है। संशय एक प्रकार का मानसिक विक्षेप है जिसके कारण अनेक अवाञ्छनीय मानसिक संस्कार उत्तेजित हो उठते हैं। इन संस्कारों के उत्तेजित हो जाने से स्मरण भली-भाँति नहीं हो पाता। जब कोई बालक अपना पाठ सुना रहा हो तो उसे अपने कथन पर संदेह न डालने देना चाहिए। इस प्रकार की प्रवृत्ति प्रबल हो जाने से मानसिक शक्ति की भारी क्षति होती है। इस सम्बन्ध में आत्मनिर्देश की महत्ता का स्मरण कराना आवश्यक है। जो व्यक्ति एक बार भी किसी पाठ को पढ़कर अपने मन में कहता है कि वह उसे भूलेगा नहीं तो सम्भव यह है कि वह उसे नहीं भूलेगा और जो सदा अपनी शक्ति पर संदेह करता रहता है उसका सबक को भूल जाना स्वाभाविक है। कितने मनुष्य आत्मविश्वास की कमी के कारण अपनी बहुत-सी मानसिक शक्ति का व्यर्थ व्यय करते हैं। यदि किसी बात का चिन्तन करते समय हमें सन्देह आ जाय तो हमें उस समय चिन्तन करना छोड़ देना चाहिए, पीछे फिर चिन्तन करने से वही बात ठीक याद आ जाती है।

मानसिक ग्रन्थि—जब किसी बात के विषय में हमारे अदृश्य मन में कोई गाँठ बन जाती है तो वह हमारी स्मरण-शक्ति में अनेक प्रकार से बाधा डालती है। मान लीजिए, किसी व्यक्ति ने हमें बचपन में दुःख दिया है। यह

1. Emotion. 2. Doubt. 3. Complex.

हमारी मानसिक वेदना हमारे अदृश्य मन में स्थित है। इस वेदना के कारण हम न केवल इस व्यक्ति का स्मरण ही कर पाते वरन् उससे सम्बन्धित दूसरी बातों का भी स्मरण नहीं कर सकते। हमारी चेतना इस प्रकार की स्मृति को दबाती है। अपनी लज्जा व ग्लानि की सभी घटनाओं को हम भूल जाते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि उन घटनाओं के संस्कार प्रबल नहीं हैं, वरन् ऐसी घटनाओं के भूल जाने में हमारी चेतना प्रयत्नशील होती है। इस प्रकार की भूल प्रत्येक दिन का अनुभव है। हम अपने स्वप्नों में पशुवत् व्यवहार करते हैं, पर ज्योंही जागते हैं अपने स्वप्न के अनुभव को तुरन्त भूल जाते हैं। यदि वे अनुभव याद रहें तो हमारा सारा दिन ग्लानियुक्त हो जाय। यदि हमने कोई पाप किया है और हमारी आत्मा उसके लिए हमें कोसती है तो हम ऐसी घटना को भूल जाते हैं। यदि कोई उसके विषय में याद दिलाने का यत्न भी करे तो हम उसे याद नहीं कर पाते। मनोविश्लेषण-विज्ञान से इस प्रकार की अनेक मानसिक क्रियाओं का पता चला है। ये घटनाएँ सम्मोहन की अवस्था में याद आ जाती हैं।

विस्मरण के उपाय—कभी कभी हम किसी बात को मन से निकाल देना चाहते हैं पर वह निकलती नहीं। उस बात के स्मरण से हमें बहुत कष्ट होता है। पर हमारे भुलाने के प्रयत्न होते हुए भी वह मन में बनी रहती है। ऐसी अवस्था में हमें भूलने के लिए क्या उपाय करना चाहिए। कितने ही लोगों को अपने कुछ पुराने अनुभव विस्मृत न कर सकने के कारण नींद न आने (इनसोमनिया) की बीमारी हो जाती है। इनसोमनिया की बीमारी से ग्रस्त पुरुष यह चाहता है कि वह सब कुछ भूल जाय पर वह नहीं भूलता। पीछे उसकी यह धारणा कि उसे नींद नहीं आती, उसे सोने नहीं देती। वह इस विचार को भी मन से अलग नहीं कर सकता कि उसे नींद नहीं आती है। कितने लोग सोने के समय आहट न होने के अनेक प्रबन्ध करते हैं जिससे उनकी नींद में बाधा न पड़े। ऐसे लोगों का यह विचार है कि उनकी नींद जल्दी से भंग हो जाती है, उन्हें सोने नहीं देती। वे सोते समय किसी आहट के बारे में ही सोचते रहते हैं। इस प्रकार कुछ न कुछ शब्द उनको बाध दिया करते हैं।

की बीमारी है। उन्हें सोते समय किसी दूसरे विचार पर लगाया जाता है। जब उनमें इस धारणा को स्थिर किया जाता है कि उनकी बीमारी छूट रही है तब बीमारी छूट जाती है। जिन्हें नींद में बाधा पड़ने का भय हो उन्हें जान बूझकर जहाँ खूब आवाज हो रही हो वहाँ सोना चाहिए। नींद तो मनुष्य हर जगह ले सकता है। गाड़ी के ड्राइवर और गार्ड रेल की गड़-गड़ाहट की आवाज होते हुए भी सो लेते हैं। नैपोलियन तोपों की आवाजों में घोड़ो पर सो लेता था। यदि हम इस विचार को अपने मन से हटा दें कि हमें आवाज की जगह नींद नहीं आती तो जहाँ चाहे वहाँ नींद आ जायेगी। नींद भग करने वाली वस्तु आवाज नहीं है, वरन् हमारा विचार ही है। यह विचार शात से शात स्थान में मनुष्य को वैसे ही बेचैन बना सकता है, जैसा कि कोलाहल होनेवाले स्थान में। जिस विचार से हम डरते हैं वही हमें तग करता है। यदि किसी विचार से हम भय खाना छोड़ दें तो वह विचार अपने आप मन से दूर हो जायगा।

प्रश्न

१—स्मृति क्या है ? मनुष्य के जीवन में उसकी उपयोगिता दर्शाइए।

२—अच्छी स्मृति के लक्षण क्या हैं ? भूलना किस अर्थ में अच्छी स्मृति का लक्षण माना जाता है ? उदाहरण देकर समझाइये कि अच्छी स्मृति के लिए कुछ बातों का भूल जाना उतना ही आवश्यक है जितना कि किन्हीं बातों का याद रखना।

३—स्मृति के अंग कौन-कौन से हैं ? पुनरावर्तन की क्रिया को समझाइए।

४—रटकर पाठ याद करने की उपयोगिता पर आपके विचार क्या हैं ? कौन सी स्थिति में रटना आवश्यक और अनिवार्य होता है ?

५—किसी विषय को ठीक से याद करने के लिए हमें क्या करना आवश्यक है ? किसी बड़ी सख्या को हम कैसे याद रख सकते हैं ? उदाहरण देकर समझाइए।

६—कोई व्यक्ति बाजार जाते समय किसी सामान के खरीदने के लिए किसी रूमाल में गाँठ बाँध लेता है। यह याद रखने के लिए कहाँ तक योग्य उपाय है ?

७—याद की हुई बात का मन में स्थिर रहना किन-किन बातों पर निर्भर है ? रुचि और चिन्तन किस तरह सस्कारों को दृढ़ करने में काम करते हैं ?

८—स्मरण का स्वरूप समझाइए। किसी बात को स्मरण करने में विचारों का संबंध किस प्रकार काम करता है ? उदाहरण देकर समझाइए।

९—विचारों के विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध एक ही प्रकार के संबंध के अनेक रूप हैं, इस सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए !

१०—उदाहरण देकर समझाइए कि हम समानता और विरोध के नियम को किस|प्रकार पाठ याद करने में काम में ला सकते हैं।

११—स्मरण क्षेत्र की अपेक्षा पहचान का क्षेत्र कहीं विस्तृत होता है—इस कथन की सत्यता को उदाहरण देकर दर्शाइए।

१२—किसी कविता को याद करने की कौन-कौन सी रीतियाँ हैं ? इनमें से कौन सी रीति सबसे अधिक उपयोगी है ? उदाहरण देकर समझाइए।

१३—मानसिक परीक्षा की रीति से याद करने से पाठ क्यों देर तक याद रहता है ? दूसरे प्रकार की रीति कब लाभकारी होती है ?

१४—विस्मृति के कारण क्या हैं ? हम इनको कैसे हटा सकते हैं ?

१५—असाधारण भूल क्या है ? असाधारण भूल के कारणों को भली भाँति समझाइए।

१६—यदि हम किसी बात को भूलना चाहते हैं तो हमें क्या उपाय काम में लाना चाहिए ?

बारहवाँ प्रकरण

कल्पना[1]

कल्पना का स्वरूप

कल्पनाशक्ति मनुष्य के प्रत्येक अनुभव में काम करती है। कल्पना शब्द का एक विस्तीर्ण अर्थ है और दूसरा साधारण व्यवहारिक अर्थ। उसके विस्तीर्ण अर्थ के अनुसार कल्पना हमारे प्रत्येक जाग्रत अवस्था के अनुभव में कार्य करती है। *कल्पना के बिना किसी प्रकार का प्रत्यक्ष ज्ञान* भी सम्भव नहीं। इस विस्तीर्ण अर्थ के अनुसार पदार्थ की अनुपस्थिति में उसके विषय में किसी प्रकार का विचार आना कल्पना माना जाता है, *अर्थात् जिस ज्ञान का आधार इन्द्रिय-संवेदना न हो वह कल्पना ही है।* इस प्रकार कल्पना के अन्तर्गत स्मृति का भी समावेश हो जाता है। प्रोफेसर ड्रीमर के अनुसार कल्पना का यही वास्तविक अर्थ है। इस प्रकार की कल्पना प्रत्येक क्षण हमारे साथ रहती है। जो कुछ हमने बचपन से लेकर आज तक कभी सोचा हो अथवा अनुभव किया हो वह हमारे वर्तमान अनुभव को सार्थक बनाने में सहायता देती है। यह पुराना अनुभव कल्पना रूप में ही चेतना के समक्ष आता है।

कल्पना का उपर्युक्त अर्थ व्यावहारिक अर्थ नहीं। मनोवैज्ञानिक तथा जनसाधारण कल्पना का प्रयोग एक विशेष तथा सकुचित अर्थ में करते हैं। इस अर्थ के अनुसार कल्पना मन की उस *रचनात्मक क्रिया का नाम* है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने पुराने अनुभवों के आधार पर नई विचार सृष्टि का निर्माण करता है। कल्पना की क्रिया एक स्वतन्त्र मानसिक क्रिया है। यह *क्रिया प्रत्यक्ष ज्ञान तथा स्मृति के समान बाह्य पदार्थ* के अनुभव से बँधी नहीं रहती। हमारे कल्पित पदार्थ का भौतिक जगत में रहना आवश्यक नहीं। कल्पना सदा अनुभव में स्वतन्त्र नये पदार्थ का निर्माण करती है।

कल्पना और स्मृति—कल्पना तथा स्मृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों ही आधार प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा प्राप्त की गई अनुभूति को जैसा का तैसा चेतना के समक्ष लाती है। इसके विपरीत कल्पना उस अनुभूति के आधार पर नई सृष्टि का निर्माण करती है। हमारी कल्पना किसी भी सपूर्ण नये जगत का निर्माण नहीं कराती। हमारा काल्पनिक पदार्थ चाहे

---

1 Imagination,

कितना ही विचित्र तथा नया क्यों न हो, प्रत्यक्ष अनुभव किये हुए पदार्थ के समान ही रहता है। हमारे मन में कोई ऐसी बात कदापि नहीं आती जिसका ज्ञान हमें इन्द्रियों द्वारा न हुआ हो। जन्म से अन्धे व्यक्ति को रङ्ग की कल्पना करना असम्भव है। इसी प्रकार जन्म से बहरा व्यक्ति शब्द की कल्पना नहीं कर सकता। इसी तरह एक सामान्य व्यक्ति के लिए ऐसे किसी रङ्ग की कल्पना करना असम्भव है जिसके समान रंग उसने कभी न देखा हो। जिन पदार्थों की सुगन्ध तथा दूसरे प्रकार के गुणों का ज्ञान नहीं है उन पदार्थों की कल्पना करना किसी भी मनुष्य के लिए सम्भव नहीं। निरामिष भोजन करनेवाले व्यक्ति को मांस के स्वाद की कल्पना नहीं होती। वह स्वप्न में भी मांस से बने पदार्थों का आस्वाद नहीं पाता। इसी प्रकार हम देखते हैं कि कल्पना का आधार सदा पुराना अनुभव रहता है। किन्तु तिस पर भी कल्पना स्मृति के समान पुराने अनुभव पर निर्भर नहीं रहती। काल्पनिक पदार्थ एक विशेष अर्थ में नया पदार्थ अवश्य है। जब हम किसी प्रकार की कल्पना करते हैं तब हम अज्ञात रूप से उस पदार्थ के निर्माण के लिए पुराने अनुभव की सहायता भले ही लें, किन्तु हमारा कल्पित पदार्थ पुराने अनुभव का दुहराना नहीं होता। यदि किसी कल्पना के पदार्थ के विषय में हमें यह ज्ञात हो जाय कि इस प्रकार के पदार्थ का अनुभव हमें पहले हुआ है तब हमारी कल्पना नहीं रहती, बल्कि स्मृति हो जाती है।

कल्पना और स्मृति में यह एक भेद और है कि जहाँ स्मृति चेतना को अतीत काल की ओर ले जाती है, कल्पना उसे भविष्य की ओर ले जाती है। कल्पना का लक्ष्य या तो मनोराज्य का निर्माण करना मात्र होता है। अथवा उसका लक्ष्य भविष्य में ऐसी वस्तुओं तथा परिस्थितियों का निर्माण करना होता है जो कि हमारे सुख के साधक हों। कलामयी कल्पना और व्यावहारिक कल्पना दोनों अतीत काल से स्वतन्त्र रहती हैं। एक में मन की रचनात्मक क्रिया स्वयं लक्ष्य बन जाती है और दूसरी में यह रचनात्मक क्रिया भावी सुख का साधन बनती है।

निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि कल्पना में पुराना अनुभव किसी प्रकार कार्य करता ही है। हमारे गणेश देवता की पौराणिक कल्पना को देखिए। जिस प्रकार गणेश जी की कल्पना है, ऐसा पदार्थ किसी भी व्यक्ति के अनुभव का पदार्थ नहीं हो सकता। मनुष्य का शरीर, हाथी का सिर और चूहे की सवारी इन तीनों का संयोग कहीं

भी नहीं देखा जाता, किन्तु प्रत्येक मनुष्य ने लम्बे पेटवाले मनुष्य को तथा हाथी के सिर को और चूहे को विभिन्न स्थानों पर देखा है। यह उसके अनुभव का विषय है। कल्पना द्वारा विभिन्न स्थान पर किये गये अनुभव को एकत्र करके पदार्थ बनाया गया। अतएव यह पदार्थ एक दृष्टि में अनुभव से स्वतन्त्र नया पदार्थ है और दूसरी दृष्टि से पुराने अनुभव पर आधारित है।

कल्पना और प्रत्यक्ष पदार्थ में भेद—संसार के साधारण व्यक्तियों के लिए कल्पना और दृष्टिगोचर पदार्थ में कोई भ्रम का कारण नहीं दिखाई देता। वे दोनों को एक दूसरे से इतना विषम देखते हैं कि काल्पनिक पदार्थ कभी प्रत्यक्ष पदार्थ के समान नहीं समझा जा सकता। किन्तु दार्शनिक लोगों को यह कठिनाई पड़ती है कि काल्पनिक पदार्थ से प्रत्यक्ष पदार्थ को किस प्रकार भिन्न समझा जाय। यहाँ कुछ इस प्रकार के भेद दर्शाये जाते हैं जो काल्पनिक पदार्थ और प्रत्यक्ष पदार्थ में अवश्य पाये जाते हैं।

(१) प्रत्यक्ष पदार्थ का अनुभव अधिक सजीव रहता है। यदि हम किसी व्यक्ति के चेहरे की कल्पना को और उसी चेहरे को प्रत्यक्ष देखें तो पायेंगे कि कल्पित चेहरा उतना सजीव नहीं जितना प्रत्यक्ष ज्ञान का।

(२) कल्पना का चित्र अधूरा रहता है। जितनी बात हम प्रत्यक्ष पदार्थ के अनुभव के विषय में जान लेते हैं, उतनी कल्पना में आये हुए पदार्थ के विषय में नहीं जानते।

(३) प्रत्यक्ष पदार्थ स्थिर रहता है। काल्पनिक पदार्थ चचल रहता है।

(४) कल्पना की वस्तु हमारे शरीर की क्रियाओं से स्वतन्त्र रहती है; किन्तु यह प्रत्यक्ष अनुभव के विषय में नहीं कहा जा सकता। हम आँख खोलकर और आँख बन्द करके एक सुन्दर कुज की कल्पना कर लेते हैं, किन्तु प्रत्यक्ष का अनुभव हमारे देखने पर निर्भर रहता है। यदि हम जिस कुज को देख रहे हैं, उससे अपनी आँख अलग कर लें अथवा आँख मूँद लें तो वह गायब हो जायगा।

(५) प्रत्यक्ष ज्ञान और कल्पना का दूसरे ज्ञानों के साथ सम्बन्ध विभिन्न प्रकार का होता है। कल्पना का देश तथा काल प्रत्यक्ष ज्ञान के देश तथा काल से भिन्न होता है।

कल्पना शक्ति में वैयक्तिक भेद[1]—भिन्न भिन्न व्यक्तियों की कल्पनाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। किसी विशेष व्यक्ति की एक प्रकार की कल्पना दूसरे

1. Individual differences in imagery.

(५) घ्राण-कल्पना[1]—इस कल्पना के आधार पर सूँघी हुई वस्तुओं के अनुभव मन में आते हैं। हम अनेक पदार्थों को उनकी गंध से पहचानते हैं। उस गन्ध की कल्पना हमारे मन में रहती है।

(६) रस-कल्पना[2]—यह पदार्थों की स्वाद की कल्पना है। इस कल्पना के द्वारा हम विभिन्न प्रकार के स्वाद उन पदार्थों की अनुपस्थिति में मन में लाते हैं। नीबू खट्टा है, यह हमारा प्रत्यक्ष अनुभव है। पर नीबू के प्रत्यक्ष अनुभव के अभाव में भी हम उसकी खटाई की कल्पना कर लेते हैं। हम अपने अनुभव में अनेक प्रकार के भोजन का आस्वादन करते हैं। यह रस-कल्पना के द्वारा ही सम्भव होता है।

जैसा ऊपर बताया जा चुका है, विभिन्न प्रकार की कल्पनाओं में व्यक्तिगत भेद होते हैं। कोई एक प्रकार की कल्पना में प्रवीण होता है तो कोई दूसरे प्रकार की कल्पना में। ये भेद जन्मजात होते हैं। परन्तु साधारणतः प्रत्येक व्यक्ति में सभी प्रकार की कल्पना को मन में लाने की शक्ति कुछ न कुछ अवश्य रहती है। यदि हम किसी पदार्थ के अनुभव को भली-भाँति मन में स्थिर करना चाहें तो हमें चाहिए कि उस पदार्थ के अनुभव को अपनी अनेक इन्द्रियों के अनुभव द्वारा दृढ़ करें। यदि किसी शब्द के वर्णक्रम (हिज्जे) को हम याद करना चाहते हैं तो हमें उस शब्द को लिखा हुआ ही नहीं रटना चाहिए वरन् उसको स्वयं लिखना चाहिए, जोर-जोर से उच्चारित करना चाहिए और एक-एक अक्षर को बार-बार जोर से दुहराना चाहिये। इस प्रकार वर्णक्रम के स्मरण करने में हमारी दृष्टि-कल्पना, ध्वनि-कल्पना और क्रिया-कल्पना सभी काम करती हैं।

कभी-कभी किसी विशेष प्रकार की बीमारी के कारण मनुष्य की एक प्रकार की कल्पना-शक्ति नष्ट हो जाती है। ऐसी स्थिति में यदि उस व्यक्ति ने अपने अनुभव को संचित करने के लिए अनेक इन्द्रियों का उपयोग किया हो तो वह एक प्रकार की कल्पना के अभाव मे दूसरे प्रकार की कल्पना से काम ले सकता है।

इस विषय में विलियम जेम्स ने वेनिस के एक व्यापारी का एक सुन्दर उदाहरण दिया है। यह व्यापारी दृष्टि-कल्पना में प्रवीण था। इसकी सहायता से उसने सैकड़ों पुस्तकें याद कर ली थीं तथा अनेक प्रकार की भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। अपने व्यवसाय में किसी भारी चिंता के कारण उसकी मानसिक शक्ति में भारी गड़बड़ी हो गई। उसकी दृष्टि-कल्पना जाती रही। अब वह अपने सब पढ़े-लिखे ज्ञान को भूल गया।

1. Olfactory imagery. 2. Gastitutary imagery.

शब्द कल्पना की महत्ता तथा उसका विकास—विचारों के शीघ्रता से चलने के लिए शब्द-कल्पना का होना अति आवश्यक है। जैसे-जैसे मनुष्य की विचार शक्ति में विकास होता है, वह किसी भी वस्तु के बोध के लिए शब्द का प्रयोग करने लगता है। वह फिर शब्द के द्वारा ही उस वस्तु के विषय में सोचता है—शीघ्रता से विचार करते समय शब्द अथवा वस्तु का नाम मात्र ही हमारे मानस-पटल पर आता है। साधारण विचार करते समय हमारा मन एक सिनेमा-फ़िल्म जैसी वस्तुओं के चित्र का स्थान नहीं बन जाता। सिनेमा-फ़िल्म के चित्रों को देखकर कोई भी व्यक्ति फ़िल्म द्वारा प्रदर्शित घटनाओं का अर्थ समझ सकता है, क्योंकि फ़िल्म पर घटनाएं उसी प्रकार घटित होती हैं जैसा कि वास्तव में हुई थीं। घटनाएं संकेत द्वारा नहीं प्रदर्शित की जातीं, यदि घटनाओं को संकेत के द्वारा दर्शाया जाता तो वे ही लोग उन घटनाओं को समझ पाते जो उन संकेतों का अर्थ जानते होते।

विचार की क्रिया होते समय जो फ़िल्म हमारे मानस-पटल पर प्रदर्शित होती है, उसकी स्थिति सिनेमा-फ़िल्म से विपरीत होती है। विचारों की फ़िल्म के चित्रों को वही समझ सकता है जिसे उसके संकेतों का बोध हो। यदि कोई दूसरा मनुष्य एक गणितज्ञ के दिमाग में विचार करते समय घुस भी जाय तो वह उसके विचारों को जानकर भी अनजाना रह जायगा। गणितज्ञ के विचार विशेष प्रकार के संकेतों द्वारा चलते हैं। हमारे प्रायः सभी प्रकार के विचार किसी न किसी प्रकार के संकेतों द्वारा चला करते हैं। ये संकेत अधिकतर शब्द ही होते हैं। शब्द हमारे विस्तीर्ण अनुभव को एक छोटे संकेत द्वारा हमारे मानस-पटल पर ले आता है। मनुष्य और पशु के विचार करने में यही विशेष भेद है कि यदि पशु किसी वस्तु के बारे में सोचे तो उसे उस वस्तु का ठीक चित्र अपने दिमाग पर खड़ा करना पड़ता है। मनुष्य उस वस्तु का चित्र अपने दिमाग में खड़ा करके उसे किसी संकेत द्वारा सोच सकता है। इन संकेतों के प्रयोग के कारण मनुष्य अपने विचारों को सुसंगठित कर सकता है और अपने विस्तीर्ण अनुभव को थोड़े से विचारों में बाँध लेता है। जिस प्रकार एक संकेत एक वस्तु के ज्ञान को लक्ष्य करता है उसी प्रकार एक संकेत अनेक संकेतों को लक्षित करता है। इस प्रकार कोई कोई संकेत हजारों संकेतों के स्थान पर काम में आता है, अर्थात् वह हजारों वस्तुओं का बोध कराता है। यह संकेत 'शब्द' के नाम से प्रसिद्ध है। मनुष्य को जटिल

समस्याओं पर विचार करने की शक्ति ऐसे ही संकेतों अर्थात् शब्दों पर निर्भर है। जब एक ही शब्द एक वस्तु का नहीं वरन् अनेक वस्तुओं का बोध कराता है अथवा एक विस्तीर्ण वस्तु का बोधक हो जाता है तो इस प्रकार के शब्द को प्रत्यय कहते हैं। प्रत्यय द्वारा विचार कर सकना, यह मनुष्य की विशेषता है।

प्रत्ययन की शक्ति का विकास मनुष्यों में धीरे-धीरे होता है। प्रत्यय और शब्द म तादात्म्य का सम्बन्ध है। जिस व्यक्ति में जितने शब्दों द्वारा विचार करने की शक्ति होती है उसमें प्रत्ययन करने की उतनी ही अधिक शक्ति रहती है। बालक में प्रत्ययन-शक्ति की कमी होती है। उसका शब्द-ज्ञान परिमित होता है। जब वह किसी विषय को सोचता है तब वह शब्द तथा संकेतों द्वारा न सोचकर उसे अपनी दृष्टि-कल्पना अथवा ध्वनि कल्पना द्वारा सोचता है। एक प्रौढ़ व्यक्ति दृष्टि-कल्पना तथा ध्वनि-कल्पना का शब्दों के स्मरणार्थ ही काम में लाता है, पदार्थ के स्मरण के लिए नहीं। चिंतन के समय स्वयं पदार्थ की कल्पना का मन में आना विचार के शीघ्रता से चलने में बाधक होता है। अतएव गम्भीर विषय पर विचार करनेवालों के लिए इस प्रकार की कल्पनाएँ उपयोगी न होकर हानिकारक ही होती हैं। उन्हें शब्द-कल्पना मात्र में प्रवीण होना आवश्यक है। बड़े-बड़े दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ अपना चिंतन शब्द-कल्पना द्वारा ही करते हैं। यदि उनमें शब्द-कल्पना के द्वारा चिंतन की शक्ति न हो तो वे बच्चों के समान ही अपने विचारों में अविकसित बने रहें।

जिस प्रकार बच्चों की ध्वनि-कल्पना का शक्ति परिमित होती है उसी प्रकार अशिक्षित अथवा बर्बर जाति के प्रौढ़ लोगों की शब्द-कल्पना की शक्ति भी परिमित रहती है। उनकी कल्पनाएँ बड़ी सजीव होती हैं; अर्थात् वे जब किसी वस्तु के बारे में सोचते हैं तब उनके मन के सामने उस वस्तु का ठीक चित्र खड़ा हो जाता है। एक प्रकार से देखा जाय तो यह अच्छा है, परन्तु दूसरी ओर से देखा जाय तो यह विचार की प्रतिक्रिया के लिए बड़ा बाधक है। जब मनुष्य की कल्पनाएँ बड़ी सजीव होती हैं, अर्थात् जब उसके मानस-पटल पर वस्तुओं की आकृति उनके विषय में विचार करते समय चित्रित हो जाती है तो वह शीघ्रता से विचार कैसे कर सकता है। भाववाची संज्ञाओं का प्रयोग शीघ्रता से विचार करने के लिए आवश्यक है। जिस जाति के लोगों में जितना ही भाववाची संज्ञाओं का प्रयोग होता है वह जाति उतनी ही

उन्नतिशील होती है। उसी प्रकार जो व्यक्ति जितने भाववाची शब्दों का सार्थक प्रयोग कर सकता है, वह उतना ही विचार में दक्ष होता है।

शब्द-प्रतिमा शब्द के सुने हुए अनुभव अथवा उसके रूप के देखे हुए अनुभव से ही प्रायः की जाती है। शब्द-कल्पना की योग्यता में व्यक्तिगत भेद होते हैं। अधिकतर मनुष्य शब्द-कल्पना में दोनों प्रकार के अनुभवों को काम में लाते हैं पर कितने लोग ऐसे भी होते हैं जिनकी शब्द-कल्पना ध्वनि-अनुभव पर अधिक आश्रित होती है और कितने ऐसे होते हैं जिनकी शब्द-कल्पना शब्द के रूप पर अधिक निर्भर रहती है। संसार का साधारण जन-समुदाय रूप और ध्वनि दोनों से ही शब्द-कल्पना में सहायता लेता है, किन्तु कोई विशेष व्यक्ति ऐसा भी हो सकता है जिसमें रूप और ध्वनि दोनों प्रकार से ज्ञान करने की शक्ति ही न हो। इस प्रकार के व्यक्ति शब्दों का स्मरण क्रिया-कल्पना के द्वारा करते हैं; अर्थात् वे क्रिया-कल्पना द्वारा ही पुराने अनुभव का सञ्चय करते हैं। हैलिन कलर, जो कि मनोविज्ञान की एक प्रसिद्ध विदुषी हो गई हैं, अन्धी और बहरी थीं। उनके लिए शब्दों का ही नहीं वरन् वस्तुओं के रूप का ज्ञान भी सम्भव नहीं था। इसी प्रकार वह उनके नाम को सुनकर भी उन्हें नहीं जान सकती थीं। इस महिला को छुटपन में मिस सेलेवेन ने क्रिया तथा स्पर्श अनुभव के द्वारा शिक्षित बनाया। उन्होंने संसार की अनेक वस्तुओं के नाम इस प्रकार से उनकी स्पर्श-संवेदना के द्वारा उन्हें सिखाये। पीछे यही विदुषी, जो स्वयं आजन्म अन्धी तथा बहरी रहीं; संसार के उपकारार्थ अनेक प्रकार के ग्रन्थ लिख सकीं।

विलियम जेम्स ने अपनी 'प्रिन्सिपल्स ऑफ साइकोलॉजी' नाम पुस्तक में एक प्रोफेसर का विचित्र अनुभव उद्धृत किया है। यह प्रोफेसर अपने श्रोताओं के समक्ष एक विशेष विषय पर व्याख्यान दे रहा था। व्याख्यान देते-देते उसका मन अपने मित्र के परिवार में चला गया तो उसकी दृष्टि-कल्पना के समक्ष परिवार के लोग आ गये और मित्र का घर खड़ा हो गया। उसने उन लोगों के साथ अनेक प्रकार की बातचीत की और उनके सम्मिलन में साथ रहा। वह व्याख्यान देते समय तनिक देर के लिए अपने-आपको भूल गया। जब तनिक अवसर के बाद उसकी चेतना फिर अपने व्याख्यान के कार्य पर सजग हुई तब उसने अपने-आपको क्रमबद्ध ठीक व्याख्यान देते हुए पाया। इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि मनुष्य की दृष्टि-कल्पना किसी दूसरी ओर रहकर भी अभ्यास के आधार पर [illegible] के द्वारा दूसरा काम कर सकती है। एक ही [illegible] चेतना के

लिए कोई असाधारण बात नहीं। यहाँ केवल इतना ही दर्शाने का प्रयोजन है कि जब एक प्रकार की कल्पना किसी दूसरे प्रकार के पदार्थ को मन में ला सकती है, तब दूसरे प्रकार की कल्पना किसी तीसरे प्रकार के पदार्थ को मन में ला सकती है। उक्त प्रोफेसर की दृष्टि-कल्पना अपने मित्र के परिवार में व्यस्त रही जब कि उसकी क्रिया-कल्पना शब्दों के उचित प्रयोगों में काम करती रही।

किसी भी व्याख्यानदाता के लिए यह आवश्यक है कि वह उसमें दृष्टि-कल्पना और ध्वनि-कल्पना ही को प्रबल न होने दे, किन्तु भाषण की सफलता के लिए उसमें क्रिया-कल्पना की भी शक्ति प्रबल होने दे, अर्थात् वह शब्दों का उचित व्यवहार ध्वनि-कल्पना, रूप-कल्पना और क्रिया-कल्पना सभी की सहायता से करता रहे। व्याख्यानदाताओं के शब्दों की ध्वनि-कल्पना और क्रिया-कल्पना प्रबल होनी आवश्यक है। कितने ही व्याख्यान-दाता व्याख्यान आरम्भ करने के पूर्व व्याख्यान देने में अपने को असमर्थ पाते हैं, पर जब एक बार उनका व्याख्यान आरम्भ हो जाता है तब वे भली-भाँति अपने विषय का प्रतिपादन कर लेते हैं। इसके विपरीत ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि किसी विषय का भली-भाँति ज्ञान होते हुए भी मनुष्य उस विषय पर व्याख्यान देने में असमर्थ रहता है, जब कि वही मनुष्य उस विषय पर लिखकर भली-भाँति विचार व्यक्त कर सकता है। इस प्रकार की स्थिति व्यक्ति की ध्वनि-कल्पना और क्रिया-कल्पना की निर्बलता के कारण होती है।

कल्पना के प्रकार—मनुष्य के मन में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ आती हैं। ऊपर हमने इन कल्पनाओं का वर्गीकरण बाह्य रूप के अनुसार किया है। इन कल्पनाओं का वर्गीकरण कल्पित पदार्थ की दृष्टि से भी किया गया है—कोई कल्पना वास्तविक जगत् से कम सम्बन्ध रखती है तो कोई अधिक। कल्पना को वास्तविकता से सम्बन्ध की दृष्टि से निम्नलिखित भागों में विभाजित करते हैं—
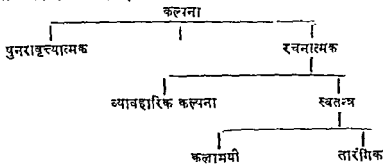
पुनरावृत्त्यात्मक कल्पना[1]—पुनरावृत्त्यात्मक कल्पना के द्वारा अनुभव की हुई घटना जैसी की तैसी मानस पटल पर चित्रित होती है। इस प्रकार की कल्पना स्मरण की *क्रिया का प्रधान अंग है*, और इसका स्मृति से भेद करना कठिन है। पुनरावृत्त्यात्मक कल्पना तथा स्मृति में इतना ही भेद है कि जहाँ पहले प्रकार के ज्ञान में अनुभूत पदार्थ के देश और काल का स्मरण होना आवश्यक नहीं, दूसरे प्रकार के ज्ञान में ये आवश्यक हैं। किन्तु प्रत्येक स्मरण के कार्य में उक्त प्रकार की कल्पना अनिवार्य है। इस प्रकार की कल्पना के विभिन्न प्रकारों का वर्णन हम पहले कर चुके हैं। हम अपने पुराने अनुभव का लाभ अपनी पुनरावृत्त्यात्मक कल्पना के द्वारा ही उठाते हैं।

रचनात्मक कल्पना[2]—रचनात्मक कल्पना नई सृष्टि का निर्माण करती है। वास्तव में इसी प्रकार की कल्पना को सच्ची कल्पना कहा जाता है। यह अतीत काल के अनुभव पर आश्रित अवश्य रहती है, किन्तु अतीत अनुभव से स्वतन्त्र भी होती है। अतीत अनुभव इस कल्पना का ईंट और गारा है, किन्तु यह अपनी स्वतन्त्र शक्ति से नये प्रासाद का निर्माण करती है। यह कल्पना सदा भविष्य से सम्बन्ध रखती है। किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य करने के पहले इस प्रकार की कल्पना का कार्य आवश्यक होता है। यह दो प्रकार की होती है—एक व्यवहार जगत् से सम्बन्ध रखनेवाली अर्थात् व्यवहार में काम आनेवाली होती है और दूसरी स्वतन्त्र। व्यावहारिक कल्पना का वास्तविकता से घनिष्ठ सबंध होता है, इतना घनिष्ठ सम्बन्ध स्वतन्त्र कल्पना का वास्तविकता से नहीं होता।

जब कोई इञ्जीनियर एक नये काम का नक्शा बनाता है तो वह व्यवहारात्मक कल्पना से काम लेता है। कोई व्यापारी अपने व्यापार के विषय में जब सोचता है और भविष्य के कार्यक्रम को निश्चित करता है तो वह व्यवहारात्मक कल्पना से काम लेता है। जब हम कहीं एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं और मार्ग की कठिनाइयों को पार करने के उपाय सोचते हैं तो व्यवहारात्मक कल्पना से काम लेते हैं। इस प्रकार की कल्पनाओं से हमारा जीवन भरा पड़ा है। जिसकी व्यवहारात्मक कल्पना जितनी युक्ति-संगत होती है उसका जीवन भी उतना ही सफल होता है। व्यवहारात्मक *कल्पना के बिना संसार का कोई भी रचनात्मक कार्य नहीं किया जा सकता।* वास्तविक जगत् में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए व्यवहारात्मक

1. Reproductive. 2. Constructive.

कल्पना की आवश्यकता होती है। इस कल्पना का आधार वास्तविकता का अनुभव होता है और वास्तविकता की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही यह कल्पना की जाती है। जब एक जनरल अपनी सेना को विशेष प्रकार की आज्ञा देता है तो वह ध्यान रखता है कि उसका शत्रु क्या करनेवाला है। यदि शत्रु की चाल के विषय में उसकी कल्पना गलत हुई तो उसकी सेना का नष्ट होना निश्चित है। इस तरह हम देखते हैं कि जीवन की सफलता व्यवहारात्मक कल्पना के ठीक होने पर निर्भर है।

स्वतन्त्र कल्पना वास्तविकता से उतनी नियन्त्रित नहीं होती जितनी कि व्यवहारात्मक कल्पना। इस कल्पना का प्रदर्शन हम कवि की सृष्टि में देखते हैं। कवि की कल्पना वास्तविकता को ध्यान में अवश्य रखती है, किन्तु उसी से पूर्णतः नियन्त्रित नहीं होती। कवि ऐसी अनेक रचनाएँ करता है जिनका अस्तित्व उसी कल्पना में ही होता है। कवि की कल्पना का हेतु उसके हृदय के उद्गारमात्र निकलना होता है। वह किसी वस्तुस्थिति में तुरन्त परिवर्तन नहीं करना चाहता। सम्भव है कि उसकी कल्पना के कारण वास्तविक जगत् में कुछ मौलिक परिवर्तन हो, किन्तु उसकी कविता का यही लक्ष्य नहीं होता। जहाँ व्यवहारात्मक कल्पना वास्तविक जगत् पर आश्रित होकर चलती है वहाँ कलामयी कल्पना इस जगत् के अनुभव से सहायता अवश्य लेती है, किन्तु उसी पर निर्भर नहीं होती। कवि के पात्र कल्पित होते हैं और उनकी क्रियाएँ भी कल्पित होती हैं।

कलामयी कल्पना वास्तविक जगत् के नियमों से पूर्णतः स्वतन्त्र नहीं होती है, किन्तु तरंगमयी कल्पना वास्तविक जगत् के नियमों से पूर्णतः स्वतन्त्र होती है। कलामयी कल्पना वास्तविक जगत् में क्या सम्भव है, इसका ध्यान रखती है; तरंगमयी कल्पना इसका ध्यान नहीं रखती। मनोराज्य के समय वास्तविकता के नियम काम नहीं करते। जिस प्रकार स्वप्न-अनुभवों में वास्तविक जगत् के नियमों का उल्लंघन होता है उसी प्रकार मनोराज्य में भी वास्तविक जगत् के नियमों का उल्लंघन होता है। वास्तविक जगत् में मनुष्य का अपने पंखों में उड़ना असम्भव है, किन्तु स्वप्न और मनोराज्य में हम अपने आपको पानी पर पैदल चलते और उपवन में पंखों से उड़ते देखते हैं।

तरंगमयी कल्पना का भी जीवन में भारी उपयोगी होता है। इसी प्रकार का कल्पना बालकों के खेल का प्रधान अंग होती है और जो कार्य खेल मनुष्य के जीवन-विकास में काम करते हैं वही कार्य तारंगिक कल्पना मनुष्य के विचार विकास में काम करती है। तारंगिक कल्पना एक प्रकार का मान-

सिक खेल है। इस प्रकार की कल्पना के द्वारा वास्तविकता से परिचय बढ़ता है, और वह परिस्थिति का सामना करने के लिए अपने आपको तैयार करता है। बालकों में इस प्रकार की कल्पना का होना उनके जीवन को रसमय बनाने के लिए आवश्यक है। उन्हें वास्तविक जगत् दुःखद होता है। शक्ति परिमित होने के कारण वे अपनी इच्छाओं को तृप्त नहीं कर पाते, अतएव वे अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए कल्पना का सहारा लेते हैं। यही उनके खेलों को रोचक बनाती है और उनके वास्तविक संसार के अनुभवों को स्थायी बनाती और वास्तविकता से उनका परिचय बढ़ाती है।

कल्पना और कला

कल्पना का स्वरूप—कल्पना और कला का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कला की वृद्धि, कल्पना की वृद्धि और उसके परिष्कृत होने पर निर्भर है। कला किसी आदर्श का चित्रण करती है। जब मनुष्यों की कल्पना आदर्शमयी होती है तो सुन्दर कला की सृष्टि होती है। कल्पना जब किसी प्रकार की कला का प्रकाशन करती है तो वह स्वयं ही आदर्शमयी बन जाती है। इस तरह कला मनुष्य की कल्पना को उच्च बनाने का उत्तम साधन है। जब मनुष्यों के आदर्श नीचे गिर जाते हैं और उनकी कल्पना पूर्णतः वास्तविकता से नियन्त्रित होने लगती है, अर्थात् जब मनुष्य व्यावहारिक सफलता को ही जीवन का सर्वोच्च आदर्श बना लेता है तो कला की सृष्टि का होना बन्द हो जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि आधुनिक पदार्थविज्ञानवाद और सुखवाद कला की वृद्धि के विरोधी हैं। जैसे-जैसे मनुष्य जड़वाद की ओर जाता है और इन्द्रियसुख की प्राप्ति को ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य बना लेता है वैसे वैसे वह कला से विमुख होता जाता है। कला का प्राण आदर्शवादी कल्पना है। कला के द्वारा मनुष्य उन आदर्शों का चित्रण करता है जो वास्तविक जीवन में उसकी पहुँच के बाहर हैं। पर इस प्रकार अपने आदर्शों का चित्रण करना उन आदर्शों को सुगम बनाना है। कविता कलामयी कल्पना की सबसे सुन्दर रचना है।

कविता का प्राण कवि का वास्तविक अनुभव है। कवि अपनी कल्पना के सहारे दूसरे लोगों के अनुभवों को अपना लेता है। कल्पना के द्वारा वह उनके हृदयों के साथ अपने आपको आत्मसात् करता है। फिर इस अनुभूति के द्वारा वह एक नये जगत की सृष्टि करता है। कविता के दो

अंग हैं—वास्तविक अनुभव और आदर्श की उपस्थिति। यह कवि को हर प्रकार की रचना के विषय में सत्य है।

कभी-कभी इन दोनों अंगो में से किसी एक अङ्ग की उपस्थिति प्रत्यक्ष नहीं होती। कभी किसी कविता में अनुभूति का प्रभाव दिखाई देता है तो किसी में आदर्श का। पर यदि हम किसी भी रचना का विश्लेषण करके देखें तो उसके पीछे कवि के मानसिक संस्कारों को ही पाएँगे। ये संस्कार पुराना अनुभूति के परिणाम हैं। जब कोई कवि किसी ऐसे विषय पर कविता करता है जिसका किञ्चिन्मात्र अनुभव उसे नहीं हो तो उसकी कविता में प्राण नहीं रहता। उसकी कविता कोरा शब्दजाल रहती है। कितने ही छायावादी कवियों की रचनाएँ इसी प्रकार की होती हैं। छायावादी कविता रहस्यमय अनुभूति का चित्रण करती है। इस अनुभूति के अभाव से,छायावादी कविता भ्रमात्मक छायामात्र हो जाती है।

जिस प्रकार वास्तविक अनुभव कविता का प्राण है, उसी प्रकार कवि का आदर्श तथा उसके उच्च विचार उसकी आत्मा हैं। कभी-कभी यह आदर्श प्रत्यक्ष रहता है; उसका ज्ञान कवि को रहता है और पाठकगण भी इसका पता चला लेते हैं। पर कभी इसका ज्ञान न तो कवि को रहता है और न पाठकगण इसका पता चला पाते हैं। देखा जाता है कि कितने ही कवि किसी दु.खद घटना का चित्रण मात्र करते हैं। उनका इस प्रकार के चित्रण का कोई प्रत्यक्ष हेतु दिखाई नहीं देता। पर यदि हम कवि के अन्तस्तल को जानने की चेष्टा करें तो उसमें हम कवि की रचना का हेतु उस दु.खद घटना से अपने आपको और दूसरों को बचाने की चेष्टा पाएगे। कविता के द्वारा कवि अपने विचारों को प्रकाशित करके अपनी वैयक्तिक अनुभूति को सबकी अनुभूति बनाता है। इस प्रकार वह अपने व्यक्तित्व के प्रतिबन्ध को पार करके सर्वात्मा में लीन होने की चेष्टा करता है।

कविता मनुष्य को देहात्मवाद से मुक्त करने का सर्वोच्च साधन है। कविता से मनुष्य का हृदय परिष्कृत होता है। वह अपने व्यक्तिगत दुःखों को भूल जाता है और अपने आपको समष्टि का एक अङ्ग मात्र जानने लगता है। जिस व्यक्ति का सुख-दु.ख अपने भाव पर बीती घटनाओं तक सीमित रहता है, वह उस आनन्द की अनुभूति नहीं करता जो कि दूसरों के साथ आत्मसात् करने से उत्पन्न होता है। जब हम कल्पना के द्वारा दूसरों के दुःख और सुख में भाग लेने लगते हैं तो हम देहात्मवाद से मुक्त हो जाते हैं। स्थायी आनन्द को प्राप्त करने के लिए इस प्रकार की

मुक्ति परमावश्यक है। अतएव कविता की रचना और उसके रस का आस्वादन मानव-जीवन के विकास के लिए उपयोगी है।

प्रश्न

१—कल्पना और स्मृति में क्या भेद है? उदाहरण देकर समझाइए।

२—प्रत्यक्ष ज्ञान और कल्पना में क्या सम्बन्ध है? क्या हम स्वप्न-अनुभव को कल्पना कह सकते हैं?

३—कल्पना कितने प्रकार की होती है? बाह्य रूप के अनुसार कल्पनाओं का वर्गीकरण कीजिए।

४—बालकों और प्रौढ़ों की कल्पना-शक्ति में क्या भेद होते हैं? बालकों की कल्पना-शक्ति कैसे बढ़ाई जा सकती है?

५—शब्द-कल्पना की वृद्धि कैसे होती है? शब्द-कल्पना की उपयोगिता क्या है?

६—कल्पना-शक्ति और मनुष्य की कार्य-शक्ति में क्या सम्बन्ध है? विभिन्न प्रकार की कल्पना के अनुसार मनुष्यों के व्यवसाय कैसे भिन्न-भिन्न होते हैं?

७—रचनात्मक कल्पना क्या है? जीवन में इसकी उपयोगिता क्या है?

८—कल्पना और विचार में क्या सम्बन्ध है? उदाहरण देकर समझाइए।

९—कला और कल्पना का क्या सम्बन्ध है? कलामयी कल्पना की वृद्धि कैसे की जा सकती है?

१०—कल्पना और खेल की तुलना कीजिए। जीवन में दोनों की उपयोगिता क्या है?

———

तेरहवाँ प्रकरण

विचार[1]

हमारे मन की सर्वश्रेष्ठ क्रिया विचार है। हमारे चेतन मन की क्रियाओं की पूर्णता विचार में होती है। संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण और कल्पना इन सबका अन्त विचार में होता है, अर्थात् इनका लक्ष्य विचार में सहायता पहुँचाता है। वास्तव में प्रत्येक विचार उसके नीचे की मानसिक क्रिया के साथ कार्य करता रहता है। हीगल महाशय का यह कथन अत्युक्ति नहीं है कि हमारी सम्पूर्ण चेतना विचार में ही है। जिन मानसिक क्रियाओं को हम विचार कही जानेवाली प्रक्रिया में स्पष्टतः होते देखते हैं वे ही मानसिक क्रियाएँ अस्पष्ट रूप से उससे नीचे स्तर की चेतना के कार्य में होती हैं। विचार के बिना कोई मानसिक क्रिया सार्थक नहीं होती।

मनुष्य की पशुओं से श्रेष्ठता उसकी विचार-शक्ति के कारण ही है। मनुष्य को यूनान के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता अरस्तू ने विवेकशील प्राणी कहा है। हमारे महर्षियों ने भी पशुता और मनुष्यता का भेद विवेक बताया है। विचार की पराकाष्ठा का नाम ही विवक है। मनुष्य अपनी विचार करने की शक्ति के कारण संसार के सभी दूसरे प्राणियों पर अपनी प्रभुता स्थापित कर लेता है। मनुष्य अपने पुराने अनुभव से जितना लाभ उठा सकता है उतना पशु नहीं उठा सकते। यह विचार के कारण ही होता है। मनुष्य किसी भी काम के करने के पूर्व अपने पुराने अनुभव को स्मरण करता है। उस अनुभव की और वर्तमान अनुभव का समानता और विषमता को देखकर इसके आधार पर क्रिया के भावी परिणामों की कल्पना करता है। उसे अपने किसी विशेष कार्य में कहाँ तक सफलता मिलेगी, इसे प्रत्येक मनुष्य पहले सोच लेता है, तब वह किसी काम में अपना हाथ डालता है। जो मनुष्य जितना ही अपने कार्य के भावी परिणाम पर भली-भाँति विचार करता है वह उतना ही सफल होता है। यह सत्य है कि हम अपनी सभी क्रियाओं को रोकने के पूर्व उन पर विचार नहीं करते, किन्तु जहाँ तक हम ऐसा नहीं करते हैं वहाँ तक हम मनुष्य कहे जाने के अधिकारी नहीं होते। आवेश में आकर किये गये कार्य पशुओं के कार्य के समान हैं। विचार ही मनुष्यत्व की कसौटी है।

विचार की प्रक्रिया

विचार मन की वह प्रक्रिया है जिसमें हम पुराने अनुभव को वर्तमान

---

1. Thinking.

समस्याओं के हल करने के काम में लाते हैं। जब हमें किसी परिस्थिति का सामना करना पड़ता है तो हम भली-भाँति इस पर ध्यान देते हैं और हमें उस परिस्थिति में क्या करना चाहिए इसका निश्चय करते हैं। इस तरह प्रत्येक विचार की क्रिया में किसी विशेष लक्ष्य की उपस्थिति रहती है और हम मन ही मन उस लक्ष्य को प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। पशुओं में विचार करने की शक्ति नहीं है। अतएव जब वे किसी परिस्थिति का सामना करते हैं, तो वे बिना विचारे ही क्रियाएँ करने लगते हैं। उनके सभी कार्य, प्रयत्न और भूल-सुधार के रूप में होते हैं। मनुष्य किसी प्रकार का प्रयत्न करने के पूर्व भूलों का सम्भावना को पहले से ही कल्पना में चित्रित करता है। वह अपनी बाधाओं का कल्पना के द्वारा निवारण करने की चेष्टा करता है, पीछे किसी क्रिया को करता है। मनुष्य की शारीरिक क्रियाएँ उसकी मानसिक क्रियाओं की अनुगामी होती हैं।

वर्डस्वर्थ महाशय के अनुसार विचार की क्रिया के निम्नलिखित प्रमुख अंग अथवा अवस्थाएँ हैं—

विचार की क्रिया के अंग

(१) किसी लक्ष्य प्राप्ति की इच्छा का उदय,
(२) उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रारम्भिक चेष्टा,
(३) पुराने अनुभव का स्मरण,
(४) उस अनुभव का नई परिस्थिति में उपयोग करना,
(५) आन्तरिक भाषण।

उपर्युक्त विचार की क्रिया के अङ्ग निम्नांकित उदाहरण से भली-भाँति समझे जा सकते हैं—

मान लीजिए, आप अपने कमरे में बिना ताला लगाये कहीं बाहर चले गये। जब वापस आते हैं तो देखते हैं कि आपके कमरे की मेज़ पर पड़ी एक किताब गायब है। अब आपके सामने समस्या उपस्थित हुई कि इस पुस्तक को कौन ले गया। समस्या के आने पर विचार की उपस्थिति होती है। आप विचार द्वारा उस समस्या को हल करने की चेष्टा करते हैं। यह विचार की प्रक्रिया की पहली अवस्था है। अब आप सोचते हैं कि आपकी पुस्तक कौन ले गया होगा। आपके मन में विचार आता है कि अपने आस-पास के लोगों से पूछें कि हमारे कमरे में कौन आया था, किन्तु इस विचार के आते ही आपको विचार आता है कि जब हम बाहर गये थे तो वे अपने कमरों में न थे। अतएव उनसे आगन्तुक के विषय

में पूछना व्यर्थ है। इसलिए आप अपने पड़ोसियों से कुछ नहीं पूछते और आगे विचार करते हैं। यह विचार की प्रकिया की दूसरी अवस्था है। विचार की तीसरी अवस्था में आप उन सभी अनुभवों को स्मरण करते हैं जब आपकी पुस्तक इसी प्रकार आपके अनजाने कमरे से गायब हो गयी थी। आप अपने मित्रों के अनुभव को, जिसको आपने सुना है, स्मरण करते हैं। इस प्रकार के अनुभव आप अपनी चेतना के समक्ष लाते हैं। आपके बिना पूछे आपका मित्र भी पुस्तक ले जाता है। एक छोटा बालक, जो पहले आपके कमरे में आया करता था, पुस्तक को ले लेता है। कभी आपका नौकर भी पुस्तक को ले लेता था। पुस्तक को चोर भी इसी प्रकार उठा ले जाते हैं। ये सभी बातें स्मृति-पटल पर आती हैं।

अपने अनेक पुराने अनुभवों में से किसी विशेष अनुभव को चुन लेना जो कि वर्तमान समस्या को हल करने में काम करे और उसके आधार पर मानसिक समस्या को हल करना, विचार की चौथी अवस्था है। मान लीजिए, आप अपनी पुस्तक के सम्बन्ध में इस निष्कर्ष पर आये कि कोई चालाक विद्यार्थी ही आपकी पुस्तक को उठा ले गया तो आप विचार की चौथी अवस्था पर पहुँचेंगे। फिर आपकी अन्य चेष्टाएँ इसी विचार के अनुसार होंगी।

जब हमारे मन में उपर्युक्त हलचल मची रहती है तो उसके साथ ही आन्तरिक भाषण भी होता रहता है। इसी भाषण के सहारे विचार चलता रहता है। जैसे-जैसे हम विचार की अन्तिम अवस्था पर पहुँचते हैं, हमारा आन्तरिक भाषण अधिकाधिक स्पष्ट हो जाता है। अतएव यह विचार की विशेष अवस्था नहीं है, किन्तु विचार की प्रक्रिया का मुख्य अंग है।

विचार का लक्ष्य किसी व्यावहारिक समस्या अथवा किसी ज्ञान समस्या को हल करना होता है। व्यावहारिक समस्या का उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है। जब हम किसी नये विषय को समझने की चेष्टा करते हैं तो हमारे सामने ज्ञान-समस्या आती है। इस समस्या के हल करने में भी विचार की वे ही प्रक्रियाएँ होती हैं जो व्यावहारिक समस्या के हल करने में काम में आती हैं।

विचार करने में पुराने अनुभव को नई समस्या के हल करने में काम में लाया जाता है। जब कोई नई परिस्थिति हमारे सामने आती है तो हम परिस्थिति के विभिन्न पहलुओं को अलग-अलग करके निरीक्षण करते हैं। हम यह जानने की चेष्टा करते हैं कि हमारे इस अनुभव और पुराने अनुभव में क्या समानता है। इस समानता के आधार पर अनुमान किया जाता है। जिस अनुमान से हमें सन्तोष हो जाता है वही हमारी समस्या

को हल करता है। बौद्धिक समस्या को हल करने का अर्थ यही है कि हम किसी एक ऐसे निष्कर्ष पर पहुँच गये हैं जिससे हमें सन्तोष होता है।

मान लीजिए, हमें दूर से एक बिगुल की आवाज सुनाई दे रही है, हम उस आवाज की ओर आकर्षित होते हैं और हमारी उत्सुकता बिगुल की आवाज का कारण जानने की होती है। बिगुल की आवाज का कारण जानना यह हमारे सामने समस्या है, अर्थात् यह विचार का विषय है। हम बिगुल के साथ होनेवाली दूसरी आवाजों के पहचानने की भी कोशिश करते हैं। किस दिशा से आवाज आ रही है इसे जानने की चेष्टा करते हैं। फिर हम अपने पुराने अनुभवों को स्मरण करते हैं जब हमने बिगुल की आवाज सुनी थी। यदि हमने पुस्तक में इस आवाज के विषय में पढ़ा हो तो इस अनुभव को भी स्मरण करते हैं। इन पुराने अनुभवों में से जो अनुभव वर्तमान अनुभव से मिलता-जुलता है, उसकी खोज करते हैं। मान लीजिए, हमने फौज की कसरत के समय बिगुल की आवाज सुनी थी, फायरब्रिगेड के जाते समय बिगुल की आवाज सुनी थी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोगों को कसरत करते समय बिगुल बजाते देखा था। इस प्रकार के और अन्य अनुभवों का हमें स्मरण होता है। हम इनमें से प्रत्येक अनुभव की वर्तमान अनुभव से समानता ढूँढ़ते हैं। हम बिगुल बजने के समय और दिशा पर विचार करते हैं और वर्तमान बिगुल बजने के अनुभव को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बिगुल बजाने के पुराने अनुभव के समान पाते हैं। जब हम यह समानता देख लेते हैं तो एकाएक इस निष्कर्ष पर आ जाते हैं कि यह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का ही बिगुल है। इस निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद दूसरे प्रकार की सम्भावनाओं पर विचार नहीं किया जाता। धीरे-धीरे ये सब शान्त हो जाती हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि अपनी किसी बौद्धिक समस्या को हल करने के लिए हमारे विचार की वही प्रक्रिया होती है जो किसी व्यावहारिक समस्या को हल करने में होती है। विचार मन की एक विश्लेषणात्मक सकलन की प्रक्रिया है।

विचार के विभिन्न स्तर

विचार साधारणतः मानस प्रत्ययों के द्वारा चलनेवाली मानसिक क्रिया को कहते हैं; अर्थात् प्रत्ययन शक्ति के अभाव में विचार होना सम्भव नहीं। किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों ने चेतना के नीचे स्तरों पर भी विचार की सम्भा-

बना मानी है। उनके मत से विचार के स्तरों के विचार तीन प्रकार के होते हैं—प्रत्यक्षात्मक विचार[1], कल्पनात्मक विचार[2] और प्रत्ययात्मक विचार[3]। हम इन विभिन्न प्रकार के विचारों पर अलग अलग विचार करेंगे।

प्रत्यक्षात्मक—प्रत्यक्षात्मक विचार का आधार प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इस प्रकार के विचार में कल्पना और प्रत्ययों की सहायता नहीं लेनी पड़ती। इस प्रकार का विचार पशुओं और बालकों में पाया जाता है। मान लीजिए, एक कुत्ता किसी मनुष्य को हाथ में लाठी लिये अपना ओर आते देखता है। वह उसे इस प्रकार आते देखकर डरता और भागता है। उसका भागने की क्रिया उसके एक प्रकार के विचार का ही परिणाम है। जब कुत्ता उस मनुष्य को लाठी लिये हुए देखता है, तब उसे उसका पुराना अनुभव याद हो जाता है। अपने पुराने अनुभव के आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि लाठी हाथ में लिये हुए उसकी ओर आनेवाला मनुष्य उसे मारेगा। अतएव वह नई परिस्थिति का सामना करने की तैयारी कर लेता है। कुत्ते के इस प्रकार के विचार में वही प्रक्रियाएँ होती हैं जो प्रौढ़ों के विचार में होती हैं। किन्तु ये प्रक्रियाएँ अस्पष्ट होती हैं। पशु में प्रत्यक्षात्मक विचार के अतिरिक्त दूसरे किसी प्रकार के विचार की शक्ति नहीं होती। प्रत्यक्षात्मक विचार दृश्य पदार्थ के अनुभव के आधार पर चलता है। इस प्रकार के विचार में शब्दों की अर्थात् पदार्थों के नाम की आवश्यकता नहीं होती। जब कोई विचार अनुपस्थित पदार्थों अथवा घटनाओं के आधार पर चलता है तो नाम की आवश्यकता होती है। मनुष्य अपने व्यवहार में नामों का प्रयोग करता है। अतएव वह अपने पुराने अनुभव को सरलता से स्मरण कर लेता है। पुराने अनुभूत पदार्थों को हम नाम के द्वारा ही याद करते हैं और जब हमें आवश्यकता होती है, अपने स्मृति-पटल पर उन्हें नामों की सहायता से ही ले आते हैं। पशुओं में नामों के प्रयोग की शक्ति न होने के कारण उनकी विश्लेषणात्मक शक्ति और विचार करने की शक्ति परिमित होती है, अर्थात् जिस तरह हम विचार कर सकते हैं, पशु नहीं कर सकते।

कल्पनात्मक विचार—कल्पनात्मक विचार मानसिक प्रतिमाओं के सहारे किया जाता है। बालक में पुराने अनुभव की प्रतिमाएँ मानस पटल पर लाने की शक्ति होती है। ये प्रतिमाएँ नाम के कारण कुछ देर तक मन

1 Perceptual thinking 2 Imaginative thinking 3 Conceptual thinking.

में ठहराई जा सकती हैं। बालक जब बाजार गये हुए अपने पिता के विषय में सोचता है तो अपनी कल्पना में यह भी चिंतित करता है कि उसका पिता उसके लिए खिलौना और मिठाई लायेगा। इस प्रकार का उसका निष्कर्ष कल्पना के आधार पर होता है। उसका पिता जब-जब बाजार से आया है खिलौना और मिठाई लाया है, अतएव पिता का बाजार से आना तथा खिलौना और मिठाई का लाना उसके अनुभव में एक साथ जुड़ गये हैं। जब वह एक विचार को मन में लाता है तो दूसरा विचार अपने-आप आ जाता है। इस प्रकार के विचार में मानसिक प्रतिमाएँ काम करती हैं। एक प्रतिमा दूसरे की उत्तेजक होती है। पिता का बाजार से आने की प्रतिमा खिलौना और मिठाई की प्रतिमा की उत्तेजक होती है। कल्पनात्मक विचार में प्रत्यक्ष अनुभव का अभाव रहता है। यह स्मृति के आधार पर चलता है। दूसरे प्रत्ययों का भी उनमें अभाव रहता है। इस प्रकार का विचार साधारणतः नाम के सहारे नहीं चलता, वरन् कल्पनाओं अर्थात् मानसिक प्रतिमाओं के सहारे चलता है।

प्रत्ययात्मक विचार[1]—प्रत्ययात्मक विचार प्रयत्नों के सहारे चलता है। इस प्रकार के विचार में कल्पनाओं का स्थान प्रत्यय ग्रहण करते हैं। प्रत्ययों के बनने और उनके मन में ठहरने के लिए शब्दों की आवश्यकता होती है। शब्द और प्रत्यय का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक को दूसरे से अलग करके समझना भी कठिन है। प्रत्यय से शब्द को, जो प्रत्यय का नाम मात्र है, अलग कर देने पर प्रत्यय का स्वरूप ही नष्ट हो जाता है।

प्रत्यय-ज्ञान का स्वरूप

एक ही प्रकार की अनेक वस्तुओं अथवा उनके विशेष गुणों के बोध करनेवाले शब्द को प्रत्यय कहते हैं। जातिवाचक अथवा भाववाचक जितनी संज्ञाएँ हैं, प्रत्यय हैं। जब हम "कुत्ता" अथवा "बिल्ली" शब्द का उच्चारण करते हैं तो इन शब्दों से किसी विशेष कुत्ते अथवा बिल्ली का ज्ञान नहीं होता, वरन् एक वर्ग का ज्ञान होता है। इसी तरह जब "कपट" या "वीरता" शब्द सुनते हैं तो किसी विशेष व्यक्ति के कपट-व्यवहार अथवा वीरता का स्मरण नहीं होता, वरन् इन गुणों के बोध करनेवाले सभी अनुभवों का ज्ञानोदय होता है।

प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं, एक इन्द्रियगोचर पदार्थों के बोधक और दूसरे बौद्धिक पदार्थों अर्थात् वस्तुओं के गुणों के बोधक। इन्द्रियगोचर पदार्थों के बोधक प्रत्ययों की वृद्धि पहले होती है, पीछे मनुष्य में भाववाची प्रत्ययों का उदय होता है। शिशु में भाववाची प्रत्ययों को समझने की शक्ति

1. Conception.

नहीं होती, पर उसमें बहुत से इन्द्रियगोचर पदार्थों का संकेत करनेवाले पदार्थों के प्रत्ययों को समझने की शक्ति होती है।

प्रत्यय-ज्ञान की उत्पत्ति

प्रत्यय-ज्ञान की उत्पत्ति के निम्नलिखित चार अङ्ग माने गये हैं—

(१) पदार्थों की अनुभूति,
(२) पदार्थों के गुणों का विश्लेषण,
(३) पदार्थों का वर्गीकरण,
(४) पदार्थों का नामकरण।

प्रत्यय-ज्ञान की उत्पत्ति के विभिन्न अगों पर एक-एक करके विचार करना प्रत्ययात्मक विचार को भली-भाँति समझने के लिए आवश्यक है।

पदार्थों की अनुभूति—प्रत्ययज्ञान शब्द-ज्ञान मात्र नहीं है। वरन् शब्द के अर्थ का ज्ञान है। कितने ही लोग अपनी भाषा में अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग करते रहते हैं जिनके अर्थ का उन्हें बोध नहीं रहता। किसी शब्द के अर्थ के बोध के लिए उस अनुभूति की आवश्यकता है जिसको संकेत करने के लिए शब्द का प्रयोग किया गया है। जब तक बालक ने शेर नहीं देखा वह शेर शब्द का ठीक अर्थ नहीं जानता। इसी तरह जिस बालक ने 'दरयाई घोड़े' का चित्र भी नहीं देखा उसे 'दरयाई घोड़े' की कल्पना क्या हो सकती है। बहुत से बालकों के मन में 'दरयाई-घोड़ा' शब्द सुनते ही एक ऐसे घोड़े का चित्र आ जाता है जो पानी में रहता है। पर वास्तव में 'दरयाई घोड़े' में घोड़े की समता रखनेवाली कोई बात नहीं है। न तो वह देखने में घोडे जैसा है और न कामों में। इसी तरह जब बालक से संख्याबोधक शब्द कहे जाते हैं और उसको वस्तुएँ गिनकर सख्याज्ञान नहीं कराया जाता तो उसका संख्याज्ञान शब्द-ज्ञान मात्र रहता है। जिन बालकों को दिशा का ज्ञान नक्शे से कराया जाता है और क्लास से बाहर जाकर वास्तविक दिशाओं की पहचान नहीं करायी जाती वे 'उत्तर' का अर्थ नक्शे के ऊपर की ओर और 'दक्षिण' का अर्थ नक्शे के नीचे की ओर ही जानते हैं। शब्दों के सार्थक प्रयोग के लिए पदार्थों की अनुभूति का होना आवश्यक है।

जैसे-जैसे व्यक्ति का अनुभव बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसे नये शब्दों की आवश्यकता पड़ती है। उसे एक ही प्रकार के अनेक अनुभवों का बोध करनेवाले शब्दों को फिर खोज करनी पड़ती है। प्रत्ययज्ञान की उत्पत्ति का प्रारम्भ इसी प्रकार होता है।

गुणों का विश्लेषण—प्रत्ययज्ञान की उत्पत्ति की दूसरी सीढ़ी अनुभूत

पदार्थ के गुणों का विश्लेषण है। प्रत्येक पदार्थ के अनेक गुण होते हैं। पदार्थ के पहले अनुभव में हमें सम्पूर्ण पदार्थ का ज्ञान होता है। पीछे हम उस पदार्थ के विभिन्न अङ्गों पर तथा उसके गुणों पर विचार करते हैं। जब तक बालक एक ही कुत्ता देखता है, उसे कुत्ते की विशेषताओं का समझने की आवश्यकता नहीं होती। जब बालक अनेक 'कुत्तों' को देखता है तो उसका ध्यान कुत्तों के विशेष गुणों के ऊपर जाता है। जब बालक बछड़े को भी देखता है तो उसे कुत्ते के विशेष गुणों के जानने की आवश्यकता और भी पड़ जाती है। पहल पहल बालक कुत्ते के उन्हीं गुणों को जानता है जो उसके अपन हेतु अथवा रुचि से सम्बन्ध रखते हैं। कुत्ता बालक के पास छोड़ दिया जाता है। वह पूँछ हिलाता है, बालक से प्यार करता है अथवा भूँकता है—ऐसी ही बातों को बालक कुत्ते की विशेषताएँ मान लेता है। इस तरह बालक 'कुत्ते' के अस्पष्ट ज्ञान को विश्लेषण करके स्पष्ट बनाता है।

वर्गीकरण—विचार की विश्लेषणात्मक क्रिया का अन्त सृजनात्मक कार्य में होता है। पदार्थ के गुणों का अलग-अलग करना विचारों की विश्लेषणात्मक क्रिया है और पदार्थ का अथवा उसके गुणों का वर्गीकरण विचार की सृजनात्मक क्रिया है। जिन पदार्थों के एक से गुण होते हैं उनको बालक एक दूसरे से सम्बन्धित करता है। वे विचार में एक साथ लाये जाते हैं। इस प्रकार विभिन्न गुणों का रखनेवाले पदार्थ अलग-अलग किये जाते हैं। जो व्यक्ति जितना ही अधिक पदार्थों के गुणों पर चिन्तन करता है उसका पदार्थों का वर्गीकरण उतना ही अच्छा होता है। वर्गीकरण के होने पर कोई भी पदार्थ एक वर्ग का अङ्ग बन जाता है। पदार्थों का वर्गीकरण करना मन की वह क्रिया है जिसके बिना मनुष्य न तो अपने पुराने अनुभव का सञ्चित कर सकता है और न उससे कोई लाभ उठा सकता है। किसी भी नई घटना का समझना उसे किसी विशेष वर्ग में जानने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जिस व्यक्ति को अनुभूत पदार्थों के वर्गीकरण करने की शक्ति जितनी प्रबल होती है उसकी समझ भी उतनी ही उन्नत होती है।

नामकरण—प्रत्यय की क्रिया का अन्त नामकरण में होता है। जब हम अपने विभिन्न प्रकार के अनुभव का विश्लेषण करके उसका वर्गीकरण कर लेते हैं तो अपने ज्ञान को स्थिर बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के पदार्थों अथवा गुणों या भावों के विभिन्न नाम देते हैं। प्रत्यय शब्द से लाग प्रायः इस नाम को ही समझते हैं। पर वास्तव में प्रत्यय नाम नहीं है। प्रत्यय शब्द वस्तु और इसके नाम दोनों ही का बोधक है। वास्तव में वस्तु और उसके

नाम का भेद करना बड़ा कठिन है। इसका वास्तविक सम्बन्ध जानने के लिए ज्ञान और भाषा के सम्बन्ध को जानना आवश्यक है।

भाषा और विचार

किसी प्रकार के ज्ञान और भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैसे-जैसे मनुष्य के शब्द-भण्डार की वृद्धि होती है, उसके ज्ञान की वृद्धि होती है। शब्दों के अभाव में बालक दृष्टिगोचर पदार्थों को ही जानता है। शब्द किसी पदार्थ की प्रतिमा को मन में स्थिर करता है। जब बालक किसी कुत्ते को देखता है और वह उसका नाम "टामी" सुनता है तो जब वह फिर से दूसरी बार "टामी" शब्द सुनता है तब उसके समक्ष अपने देखे हुए कुत्ते की प्रतिमा आ जाती है। इसी तरह जब बालक "कुत्ता" शब्द अनेक कुत्तों के लिए प्रयुक्त होते देखता है तो इसके शब्द के सुनते ही उसके मन में उस ज्ञान का उदय हो जाता है जिसका बोधक "कुत्ता" शब्द है। प्रत्येक शब्द किसी पदार्थ का बोधक होता है, चाहे वह पदार्थ इन्द्रियगोचर हो अथवा नहीं। हमारा साधारण विचार शब्दों के द्वारा ही चलता है। मन में किसी प्रकार का शब्द आते ही उसका बोध करनेवाला ज्ञान भी मन में आ जाता है। जिस व्यक्ति का भाषा-विकास पर्याप्त नहीं होता उसकी सोचने की शक्ति भी परिमित रहती है। किसी भी व्यक्ति के ज्ञान की सीमा उसके शब्द-ज्ञान से जानी जा सकती है। बुद्धिमान् व्यक्तियों का शब्द-ज्ञान साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक होता है। उनकी शब्दावली में जटिल भावों के बोधक शब्द पाये जाते हैं और वे बोलने में प्रायः इन शब्दों का प्रयोग उन्हें समझकर ठीक से जल्दी-जल्दी कर सकते हैं। शब्दों की संख्या और भाववाची शब्दों का प्रयोग मनुष्य की बुद्धि की वृद्धि के मापक हैं।

जिस प्रकार किसी व्यक्ति की बुद्धि का विकास उसकी शब्दावली पर निर्भर रहता है और उसकी शब्दावली को जानकर उसकी बुद्धि के विकास का पता चला सकते हैं, इसी तरह किसी राष्ट्र की बुद्धि के विकास का सूचक उसके सामान्य लोगों द्वारा प्रयुक्त शब्दावली है। जिस देश की भाषा में किसी जटिल भाव के बोधक शब्द नहीं हैं, उस देश के लोगों में इस भाव के ज्ञान का अभाव रहता है।* भारतवर्ष की भाषाओं में पदार्थ-विज्ञान

* विलियम जेम्स महाशय का कथन है कि जिस देश के लोगों में किसी विशेष प्रकार के सद्गुणों के बोध करनेवाले शब्दों का अभाव रहता है, उन लोगों में उन गुणों का अभाव रहता है। अतएव किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र में किसी भी प्रकार के चरित्र के गुणों के विकास करने के लिए भाषा ज्ञान की वृद्धि की आवश्यकता है।

सम्बन्धी शब्दों की न्यूनता है। यह न्यूनता जनसाधारण में पदार्थ-विज्ञान के ज्ञान के अभाव की बोधक है।

शब्द एक ओर मनुष्य को अपने-आप विषय के चिन्तन में सहायता करता है और दूसरी ओर अपने विचार दूसरे व्यक्ति से प्रकाशित करने में सहायता करता है। हम अपने विचार शब्दों के द्वारा ही दूसरों पर प्रकट करते हैं। किसी भी विचार को प्रकाशित करने के लिए किसी संकेत की आवश्यकता होती है। इस तरह मनुष्य हाथ हिलाकर, सिर हिलाकर अपने विचार प्रकाशित करता है, किन्तु वह जितना शब्दों के द्वारा अपने विचार प्रकाशित कर सकता है, दूसरे प्रकार से नहीं कर सकता।

विचार प्रकाशित करने से स्पष्ट और परिपक्व होते हैं। इससे चिन्तन करने की शक्ति बढ़ती है। जो व्यक्ति जितना ही अधिक अपने विचार दूसरों के समक्ष प्रकाशित करता है उसकी चिन्तन करने की शक्ति उतनी ही अधिक प्रबल होती है। इस तरह हम देखते हैं कि भाषा का प्रयोग हमारी सोचने की शक्ति बढ़ाने के लिए परमावश्यक है। हम देखते हैं कि बालक सदा कुछ न कुछ शारीरिक चेष्टाएँ अथवा बातचीत करता रहता है। वह शारीरिक चेष्टाओं के द्वारा भौतिक पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करता है और बातचीत करने से अपनी चिन्तन शक्ति को बढ़ाता है। जो बालक शिशुकाल में जितना ही बकवाद करनेवाला होता है वह आगे चलकर उतना ही प्रवीण चिन्तक बन जाता है। धीरे-धीरे शब्दों के ऊपर उसका अधिकार हो जाता है और जिस समय जैसे शब्द का प्रयोग करना चाहिए, उसे वह प्रयुक्त करने लगता है। इससे उसका चिन्तन करना भी स्पष्ट हो जाता है।

विचार और भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध उन लोगों के विचार की प्रक्रिया से स्पष्ट हो जाता है, जिन्हें बोलकर विचार करने की आदत है। कुछ मनोवैज्ञानिक विचार को अप्रकाशित वार्तालाप कहते हैं।* बोलने और लिखने से विचार स्पष्ट होते हैं। इससे एक ओर हमारा भाषा पर अधिकार होता है और दूसरी ओर अपने विचार स्पष्ट, क्रम-बद्ध और सुगठित हो जाते हैं। जिन लोगों को जितने ही अधिक अपने विचार दूसरों के सामने प्रकाशित करने पड़ते हैं, उनका भाषा पर उतना ही अधिक अधिकार हो जाता है और उनका बौद्धिक विकास भी उतना ही अधिक होता है। लुहार, बढ़ई, चित्रकार आदि की अपेक्षा शिक्षक,

---

* "Thought is suppressed speech."

वकील, लेखक और धर्म-प्रचारक इस कारण बुद्धि में अधिक प्रवीण होते हैं। हाथ के धन्धे करनेवाले लोगों को अपने विचारों को दूसरों को समझाने की उतनी आवश्यकता नहीं होती, जितनी बुद्धि-जीवी लोगों को होती है। अतएव वे भाषा और विचार दोनों में ही पिछड़ जाते हैं।

आधुनिक काल में मनोवैज्ञानिक लोग अपनी बुद्धिमापक परीक्षाओं में शब्दावली की माप को विशेष स्थान देते हैं। प्रत्येक बुद्धिमापक परीक्षा के प्रश्नों में शब्दावली के माप करने के प्रश्न रहते हैं। कितने ही बुद्धिमापक प्रश्न-पत्र व्यक्ति की शब्दावली का पता चलाने मात्र के लिए बनाये गये हैं। मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि यदि हम किसी व्यक्ति के शब्द-भण्डार का पता चला लें तो हम उसकी बुद्धि का अन्दाज लगा सकते हैं।

विचार-विकास[1]

विचार की वृद्धि मनुष्य की सभी प्रकार की अन्य शक्तियों के विकसित होने के लिए आवश्यक है। विचार के द्वारा मनुष्य अपने भौतिक जीवन को ही सफल नहीं बनाता, वरन् आध्यात्मिक उन्नति भी करता है। विचार के द्वारा हम भूत और वर्तमान के आधार पर भविष्य की कल्पना कर सकते हैं और अपने जीवन को इस प्रकार ढाल सकते हैं कि आनेवाली आपत्तियों से अपने आपको बचा सकें। जो कार्य इतर जाति के प्राणियों के लिए प्रकृति करती है वही कार्य मनुष्य की चेतना अपने आपके लिए करती है। जैसे मूल प्रवृत्तियों द्वारा अन्य प्राणियों का जीवन संचालित होता है, उसी तरह विचार के द्वारा मनुष्य का जीवन सचालित होता है।

विचार करने के ढंग[2]

विचार प्राप्त ज्ञान के आधार पर अप्राप्त ज्ञान की सृष्टि करने का साधन है। मान लीजिए, आज हम आकाश में बादल देख रहे हैं। इन बादलों को देखकर हम अनुमान करते हैं कि आज पानी गिरेगा। पानी का गिरना हमारी कल्पना है। इस कपना की सृष्टि वास्तविक अनुभव के आधार पर हुई। हमें स्मरण है कि जब-जब आकाश में बादल होते हैं तब-तब पानी भी गिरता है। इसी पुराने अनुभव के आधार पर हम नई कल्पना की सृष्टि करते हैं।

जिस समय १६१४ का जर्मन-युद्ध आरम्भ हुआ था, उस समय हिन्दुस्तान के बहुत से व्यापारियों ने यूरोप से आनेवाला माल जहाँ कहीं हिन्दुस्तान के बाजारों में मिला एकाएक खरीद लिया। लड़ाई के समय

1. Evolution of Thought. 2. Kinds of Reasoning.

इन लोगों ने महँगे दाम पर बेच कर इस माल से बहुत से रुपयों का मुनाफा उठाया। यह मुनाफा उनके भविष्य के विषय में चिंतन करने की शक्ति पर निर्भर था।

विचार करने में तो हम किसी सचित अनुभव को किसी नई समस्या के हल करने के काम में लाते हैं अथवा नये सिद्धान्त का आविष्कार करते हैं। इस तरह विचार निम्नलिखित दो प्रकार का होता है—

(१) निगमनात्मक विचार[1]।

(२) आगमनात्मक विचार[2]।

निगमनात्मक विचार—*निगमनात्मक विचार में हम किसी सिद्धान्त* को अपने अनुभव की किसी भी घटना को समझने में काम में लाते हैं। *हमारा जीवन अनेक सिद्धान्तों के द्वारा सचालित होता है।* ये सिद्धान्त हम अपने अनुभव पर ही बनाते हैं अथवा किसी दूसरे के अनुभव को ठीक मान लेते हैं। *समाज में प्रचलित अनेक कहावतें समाज के अनेक लोगों के अनुभव* को सुसगठित करती हैं। ये कहावतें भी हमारे जीवन के अनेक निर्णयों में काम में आती हैं। बहुत से वैज्ञानिक सिद्धान्त भी हम दूसरे लोगों से सीख लेते हैं और फिर अपने जीवन में उनको सत्यता परखते हैं।

हम किसी बालक को देखते हैं और कहते हैं कि यह बड़ा होनहार है। हम इस प्रकार का निर्णय करते हैं। इस निर्णय पर पहुँचने के लिए हम कुछ ऐसे सिद्धान्तों को काम में लाते हैं जिन्हें हम सत्य जानते हैं। सभव है कि हमने बालक में चचलता देखी और इसी के आधार पर इस निर्णय पर आये कि अमुक बालक होनहार है। यहाँ पर हमने एक व्याप्ति[3] का प्रयोग किया, "जो बालक चचल होता है वह होनहार होता है।" यह व्याप्ति सिद्धान्त के रूप में हम मान लेते हैं और इसी के आधार पर निर्णय पर आते हैं। अब यदि हम अपने विचार की प्रक्रिया को स्पष्ट करें तो उसे इस प्रकार पावेंगे—

सभी चचल बालक होनहार होते हैं,

यह बालक चचल है,

अतएव यह होनहार है।

यहाँ बालक का एक गुण स्पष्ट है। इसके आधार पर हम दूसरे गुणों का अनुमान करते हैं। यह अनुमान व्याप्ति के आधार पर होता है। यह व्याप्ति उस ज्ञात और अज्ञात गुणों की सहचारिता के ज्ञान पर आधारित होती है।

---

1. Deductive reasoning 2 Inductive reasoning. 3. Generalization.

जब हम विचार की प्रक्रिया का न्याय-शास्त्र की दृष्टि से विवेचन करते हैं तो उसे एक प्रकार का पाते हैं और जब उसका विवेचन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया जाता है तो हम उसे दूसरे प्रकार का पाते हैं। न्यायशास्त्र के ढंग से लिखे जाने पर निगमनात्मक विचार में सिद्धान्त अथवा व्याप्ति का स्थान प्रबल होता है; उसके बाद पक्ष[1] और लिंग[2] के सम्बन्ध को स्पष्ट किया जाता है; सबके पीछे पक्ष और साध्य[3] के सम्बन्ध को स्पष्ट किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पहले-पहल हमारे सामने समस्या आती है। समस्या हल करने के लिए किसी कुञ्जी[4] की आवश्यकता होती है। इस कुञ्जी की खोज में हम अपने सामने की बातों को उलट-पलट करते हैं। कुञ्जी का अनुमान होने पर उसे समस्या को हल करने में काम में लाते हैं। जब समस्या हल हो जाती है तो हम सन्तुष्ट हो जाते हैं।

मान लीजिए, हम अपने कमरे को खुला छोड़कर चले जाते हैं और हमारी सोने की जेब घड़ी टेबुल पर से खो जाती है। अब हम उसकी खोज में लग जाते हैं। यहाँ घड़ी का खो जाना हमारे सामने समस्या है। हम अनेक प्रकार की कल्पनाएँ मन में लाते हैं, इधर-उधर भी पूछते हैं। हमें कुछ देर बाद मालूम होता है कि कोई व्यापारी हमारे कमरे में आया था। अब हमें एक प्रकार का निश्चय-सा हो जाता है कि वही मनुष्य हमारी घड़ी ले गया, क्योंकि हमारी यह धारणा बनी हुई है कि अपरिचित व्यक्ति हमारा सामान ले जा सकता है।

व्यावहारिक विचार में कठिनाई वस्तु स्थिति का ठीक निरीक्षण करने में होती है। भली प्रकार स्थिति का निरीक्षण करने पर समस्या शीघ्रता से हल हो जाती है। समस्या हल होने का अर्थ यह है कि किसी भी एक घटना का एक सामान्य नियम के अन्तर्गत समावेश हो गया। मान लीजिए, हम एक नवयुवक की अचानक मृत्यु का वृत्तान्त सुनते हैं। हम इसका कारण जानना चाहते हैं। जब हम यह जान लेते हैं कि उसे एक घातक बीमारी पहले से ही थी जिससे कि उसकी मृत्यु हुई तो हमें सन्तोष हो जाता है।

आगमनात्मक विचार—अन्वेषणात्मक विचार का लक्ष्य किसी नये सिद्धान्त की खोज होता है। जब हम एक ही प्रकार की घटनाओं को बार-बार होते देखते हैं तो हम एक ऐसे नियम की खोज करना चाहते हैं जो इस प्रकार की घटनाओं से हमें बुद्धिगम्य बना दे। हम देखते हैं कि जब हम किसी भारी वस्तु को पानी में डालते हैं तो वह हलकी हो जाती है। इस

1. Minor term. 2. Middle term. 3. Major term. 4. Clue.

दो व्यक्तियों के मन में दो प्रकार का भाव डाल सकती है। एक घटना के विषय में कुछ भी परवाह नहीं करता और दूसरा उसके विषय में इतना चिन्तित हो जाता है कि उसको वह अपनी अनेक समस्याओं को हल कर लेने की कुञ्जी मान लेता है।

विचार और अन्य मानसिक शक्तियाँ

मनुष्य की प्रकृति में तीन प्रकार के तत्त्वों का मिश्रण है—क्रिया, भाव और ज्ञान। दूसरे प्राणियों के भी यही तीन तत्त्व रहते हैं। प्राणियों की क्रियात्मक प्रवृत्ति उनकी इच्छाओं में निहित रहती है और उनकी भावात्मक प्रवृत्ति उनके राग और द्वेपात्मक मनोविकारों में। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य सभी प्राणियों में ज्ञान, क्रिया और भाव का दास होता है। उसका विकास भी इन्हीं की गति पर निर्भर रहता है। जो प्राणी जितना ही क्रियाशील होता है उसका ज्ञान उतना ही बढ़ा-चढ़ा रहता है। मानव जीवन के निचले स्तरों में भी यही नियम कार्य करता है, पर आगे चलकर ज्ञान, क्रिया का स्वामी बन जाता है। शोपनहावर महाशय का इच्छा और ज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त यहाँ उल्लेखनीय है। शोपनहावर महाशय के कथनानुसार मनुष्य के जीवन में दो तत्त्व काम करते हैं—एक इच्छा और दूसरा ज्ञान। इच्छा मनुष्य की क्रियात्मक और भावात्मक मनोवृत्ति है। यह ज्ञान को अपना दास बनाकर रखती है, अर्थात् हमारा ज्ञान उसी ओर वृद्धि करता है जिस ओर कि हमारी इच्छाओं की तृप्ति होती है। इच्छा सदा अपना रूप बदलती रहती है और उसको माँगों को पूरा करना मनुष्य का कभी भी सम्भव नहीं होता। हमारा सांसारिक ज्ञान इसी इच्छा की पूर्ति पर निर्भर रहता है। हम उन्हीं बातों पर विचार करते हैं जिन्हें हम अपने लिए किसी न किसी प्रकार उपयोगी समझते हैं। विचार में काम में आनेवाली हमारी युक्तियाँ भी इच्छापूर्ति करने की ओर होती हैं। ये इच्छाएँ सांसारिक जीवन में सुखी रहने और सन्तति वृद्धि से सम्बन्ध रखती हैं। इच्छाओं के प्रतिकूल यदि कोई युक्ति हमें सुझायी जाय तो उसे हमारा मन स्वीकार नहीं करता। इस तरह हमारा तर्कयुक्त विचार भी सदा स्वार्थमय और एकांगी होता है। जब कभी प्रबल इच्छाओं के प्रतिकूल विचार जाता है और वह इन इच्छाओं की अवहेलना करने की चेष्टा करता है तो विचार में विक्षेप उत्पन्न हो जाता है जिसका परिणाम पागलपन होता है।

उपर्युक्त कथन विचार के निचले स्तरों के लिए सत्य है। इच्छा की दासता करते करते जब विचार थक जाता है तो वह स्तब्ध हो जाता है।

ऐसी अवस्था के पश्चात् विचार का रुख बदल जाता है। वह अब इच्छा से स्वतन्त्र होने की चेष्टा करता है और इच्छा का स्वामी बन जाता है। बालकों और साधारण मनुष्यों में विचार इच्छा का दास होता है। सच्चे दार्शनिकों और विवेकी पुरुषों में विचार इच्छा का स्वामी होता है। बालकों में विचार का विकास उनकी क्रियाशीलता पर निर्भर रहता है। प्रौढ़ व्यक्तियों में विचार-विकास मन की चञ्चलता पर विजय करने पर निर्भर रहता है। जो व्यक्ति जितना ही अपनी इच्छाओं को अपने वश में करने में समर्थ होता है उसका विचार उतना ही उच्च कोटि का होता है। वास्तव में मनुष्य के मानसिक जीवन के विकास का ध्येय मनुष्य को विचार-स्वातन्त्र्य प्रदान करना है। यह स्वतन्त्रता कोई बाहरी स्वतन्त्रता नहीं, यह आध्यात्मिक स्वतन्त्रता है। इसी स्वतन्त्रता में मानव-जीवन का सुख और पूर्णता है।*

पश्चिम के कुछ विद्वानों ने कुछ विचारों की उपयोगिता प्राकृतिक जीवन में सहायता करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानी है। जो विचार हमारे व्यावहारिक जीवन में काम में नहीं आता वह व्यर्थ विचार है। इस मत के लोग तत्त्व का चिन्तन एक व्यर्थ मानसिक क्रिया मानते हैं। अमेरिका में इस मत को माननेवाले अनेक लोग हैं। विलियम जेम्स और ड्यूई महाशयों ने इसी मत का समर्थन किया है। इस सिद्धान्त को प्रगमेटिज्म कहते हैं।

संसार के बड़े-बड़े दार्शनिक इस मत का प्रतिवाद करते हैं। यदि हम इस मत को मान लें तो आध्यात्मिक उन्नति जो विचार-स्वातन्त्र्य में है कोरी कल्पना मात्र हो जाय। मनुष्य के व्यक्तित्व में अनेक तत्त्व हैं, पर उनमें प्रधान विचार को माना जाता है। जब तक हम अपने जीवन को विवेक के द्वारा सञ्चालित करते हैं हम अपने आपको धन्य मानते हैं, जब हम विवेक के प्रतिकूल कुछ कर बैठते हैं तो अपने आपको कोसते हैं। यदि विचार का लक्ष्य इच्छाओं को तृप्त करना मात्र होता तो इस प्रकार की अनुभूति असम्भव होती। ज्ञान को स्वतः लक्ष्य माने बिना नैतिकता सार्थक नहीं होता। नैतिक जीवन तभी सम्भव है जब विचार में स्वार्थभाव के परे जाने अर्थात् इच्छा के प्रतिकूल काम करने की शक्ति रहे।

---

* यहाँ श्रीमद्भगवद्गीता का निम्नलिखित वाक्य उल्लेखनीय है—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥ अध्याय ५, श्लोक २३

जो मनुष्य शरीर के नाश होने के पहले ही काम और क्रोध से उत्पन्न वेग को सहन करने में समर्थ है, वह इस लोक में योगी है और वही सुखी है।

वास्तव में सबसे ऊँचे विचार का उदय तभी होता है जब हम अपने स्वार्थ के प्रतिकूल आचरण करने की चेष्टा करते हैं अथवा अपने स्वार्थमय आचरण की विवेचना करने लगते हैं। जो विचार कर्तव्य के विषय में चिन्तन करने से होता है वह अन्यथा नहीं होता, पर कर्तव्यप्रिय मार्ग का नाम नहीं है। कर्तव्यपथ पर चलकर मनुष्य अपने जीवन की आहुति भी दे डालता है। इससे यह स्पष्ट है कि वैयक्तिक जीवन का पोषण करना विचार के विकास का लक्ष्य नहीं है।

प्रश्न

१—विचार का मनुष्य के जीवन में क्या महत्त्व है? विचार और चरित्र का सम्बन्ध क्या है?

२—विचार की प्रक्रिया का विश्लेषण करके उसके विभिन्न अंगों का उदाहरण देकर समझाइए।

३—प्रत्ययात्मक विचार का स्वरूप क्या है? इसका भेद दूसरे प्रकार के विचार से उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

४—प्रत्यय ज्ञान की उत्पत्ति कैसे होती है? उदाहरण देकर समझाइए।

५—भाषा और विचार का क्या सम्बन्ध है? विचारों को भाषा में प्रकाशित करने से क्या लाभ होता है?

६—विचार करने के ढंग कौन कौन से हैं? उदाहरण देकर समझाइए।

७—आगमनात्मक विचार के मुख्य अंग कौन से हैं? इस प्रकार के विचार की प्रक्रिया को उदाहरण देकर समझाइए।

८—विचार और क्रिया का सम्बन्ध क्या है? विचार में क्रिया के द्वारा क्या विशेषता आती है?

९—विचार स्वातन्त्र्य का मनोवैज्ञानिक अर्थ क्या है? क्या मनुष्य को इस प्रकार की स्वतन्त्रता सम्भव है?

चौदहवाँ प्रकरण

इच्छाशक्ति और चरित्र[1]

इच्छाशक्ति का स्वरूप

इच्छाशक्ति मनुष्य की वह मानसिक शक्ति है, जिसके द्वारा वह किसी प्रकार के निश्चय पर पहुँचता है और उस निश्चय पर दृढ़ रहकर उसे कार्यान्वित करता है। किसी वस्तु की चाह को हम इच्छा कहते हैं। चाह मनुष्य के वातावरण के सम्पर्क से उत्पन्न होती है। उसका लक्ष्य किसी भोग की प्राप्ति होता है।

हमारा मन अनेक प्रकार के भोगों का उपभोग करना चाहता है; अर्थात् हमारे मन में अनेक प्रकार की भूखें[2] हैं। इन भूखों को चाह कहते हैं। भूखें मनुष्यों और पशुओं में समानता होती है। मनुष्य की भूखों की संख्या पशुओं की भूखों से कहीं अधिक होती है। उनके प्रकार में भेद नहीं होता। भूख का कारण किसी भी प्रकार की वेदना की निवृत्ति की आन्तरिक प्रेरणा होती है। जब किसी प्रकार की भूखों को विचार के द्वारा सोचकर वास्तविक जगत् के विभिन्न विषयों की चाह में परिणत कर दिया जाता है तो वह इच्छा कही जाती है। भूख का वास्तविकता की वस्तुस्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं। भूख खाने और जीवन-विकास की चाह मात्र होती है। इच्छा वास्तविकता के ज्ञान तथा पदार्थ-ज्ञान दोनों के उपरान्त होती है। जब भूख की दृष्टि से वास्तविक पदार्थों की ओर देखा जाता है तो ये अनेक प्रकार की इच्छाओं के कारण बन जाते हैं; अर्थात् भूख चाही हुई वस्तु का ज्ञान होने पर और विचार द्वारा नियन्त्रित होने पर इच्छा का रूप धारण कर लेती है।

इच्छा क्रियात्मक मनोवृत्ति का नाम है। हमारे मन में ऐसी अनेक क्रियात्मक मनोवृत्तियाँ हैं। कुछ क्रियात्मक मनोवृत्तियाँ प्रकाशित हैं अर्थात् चेतना को उनका ज्ञान रहता है और कुछ अप्रकाशित होती हैं। अप्रकाशित इच्छाओं को वासना कहा जाता है और प्रकाशित इच्छाओं को इच्छा[3] शब्द से ही सम्बोधित करते हैं। हमारी इच्छाएँ एक दूसरी के अनुकूल अथवा प्रतिकूल होती हैं। अनुकूल इच्छाएँ एक दूसरे का बल बढ़ाती हैं। प्रतिकूल इच्छाएँ मन में द्वन्द्व उत्पन्न करती हैं। जब मन में इच्छाओं के प्रतिकूल

1 Will and Character. 2. Appetites. 3. Desire.

होने के कारण द्वन्द्व उत्पन्न होता है तब इच्छाशक्ति की आवश्यकता होती है। इच्छाशक्ति ही दो विरोधी इच्छाओं का अन्त करती है, वही एक इच्छा को अपने निर्णय के द्वारा बलवान् अथवा विजयी बनाती है और दूसरे का दमन कर देती है। किसी प्रकार का निर्णय करना इच्छाशक्ति का सर्व-प्रथम कार्य है।

मान लीजिए, एक बालक अपने जन्म-दिवस के दिन दस रुपया अपने पिता से पाता है। वह इन रुपयों से अपनी कुछ इच्छाओं को तृप्त करना चाहता है। उन इच्छाओं में से दो इच्छाएँ प्रबल हैं। एक नया जूता खरीदने की इच्छा और दूसरी एक नयी किताब खरीदने की इच्छा। किसी को नये जूते पहने देखते ही उसके मन में नये जूते खरीदने की इच्छा उठती है। कुछ देर बाद उसे अपनी पढ़ाई की याद आती है और वह एक आवश्यक पुस्तक के न होने के कारण अनेक प्रकार की असुविधा का स्मरण करता है। अत-एव उसकी यह प्रबल इच्छा होती है कि वह उस नवीन पुस्तक को खरीदे, किन्तु जो रुपये उसके पास हैं उनसे वह दोनों कार्य नहीं कर सकता। नये जूते खरीदने पर उसे नई पुस्तक नहीं मिलेगी और नई पुस्तक खरीदने पर उसे नया जूता नहीं मिलेगा। वह अपनी एक ही इच्छा को तृप्त कर सकता है, दोनों को नहीं। ऐसी स्थिति में इन दोनों परस्परविरोधी इच्छाओं मे अन्त-र्द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। यह अन्तर्द्वन्द्व कुछ समय के लिए बाहरी क्रिया करने से बालक को रोक देता है। बालक इस अन्तर्द्वन्द्व की अवस्था में न तो जूता खरीदने के लिए सचेष्ट होता है और न पुस्तक खरीदने के लिए। वह पहले अपने प्रत्येक संकल्प के भावी परिणाम की कल्पना करता और उनकी तुलना करता है। वह अपनी कल्पना में यह निश्चित करता है कि वह नया जूता पहन कर कैसा दिखाई देगा और फिर वह यह चित्रित करता है कि नई पुस्तक को पाकर उसकी परिस्थिति कैसी बदल जायगी। जो मानसिक चित्र उसे अधिक रमणीय लगता है उसके अनुसार उसका कार्य होने लगता है। यदि उसका जूता खरीदने का निर्णय हुआ तो जूता खरीदता है और यदि पुस्तक खरीदने का हुआ तो पुस्तक खरीदता है। एक बालक इस स्थिति में जूता खरीदने का निर्णय कर सकता है और दूसरा पुस्तक खरीदने का। किसी प्रकार के निर्णय पर पहुँचना बालक की इच्छाशक्ति और चरित्र पर निर्भर रहता है। निर्णय का कार्य अपने-आप नहीं होगा।

कौन-सा कार्य करना भला है और कौन-सा कार्य करना बुरा है, इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए मनुष्य किसी विशेष सिद्धान्त का प्रयोग करता

है। इस सिद्धान्त के अनुसार ही विभिन्न प्रकार की इच्छा की तुलना की जाती है। तुलना के उपरान्त निर्णय होता है। इस निश्चय पर पहुँचने पर इच्छाशक्ति काम करती है। इच्छाशक्ति इच्छा से अतिरिक्त एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति है। कोई इच्छा कितनी ही प्रबल क्यों न हो, इच्छाशक्ति में उस इच्छा को कार्यान्वित होने से रोक देने की शक्ति है। इसी तरह निर्बल इच्छा को भी सबल बनाकर क्रियमाण करने की शक्ति इसी इच्छाशक्ति में है।

निर्णय का स्वरूप[1]

इच्छाशक्ति को निश्चयात्मक कार्य करने की शक्ति कहा गया है। यहाँ यह प्रदर्शित करना आवश्यक है कि निश्चय की विभिन्न स्थितियाँ क्या हैं, जिससे हम उसके वास्तविक रूप को समझ सकें। गाल्ट और हावर्ड महाशयों ने निश्चयात्मक क्रिया की निम्नलिखित पाँच स्थितियाँ मानी हैं—

(१) दो प्रकार की प्रवृत्तियों का चेतना के समक्ष आना।

(२) इन प्रवृत्तियों की पूर्ति की कल्पना उठना और उस पर विवेचना होना।

(३) उनके सम्भावी परिणामों का कल्पना में आना और उनकी कीमत आँका जाना।

(४) इनकी कीमत की तुलना होना और निर्णय पर पहुँचना।

(५) निर्णय का कार्यान्वित होना।

उपर्युक्त उदाहरण में हम निश्चयात्मक कार्य की इन पाँचों स्थितियों को देखते हैं। बालक के मन में पुस्तक खरीदने और नया जूता खरीदने की दो इच्छाएँ उठती हैं। पहले एक इच्छा उठती है, उसके बाद ही उसकी विरोधी दूसरी इच्छा।

चेतना में दो प्रकार की प्रवृत्तियों का सामने आना निश्चय की पहली स्थिति है। अनेक बार बालक कल्पना करता है कि वह नया जूता पहनकर कैसा दिखाई देगा और पुस्तक को प्राप्त करके उसे क्या सुविधा मिलेगी। यह निश्चय की दूसरी स्थिति है। फिर वह बालक विचार करता है कि नया जूता पहनना अच्छा है अथवा पुस्तक खरीदना। यह निश्चय की तीसरी स्थिति है। इसके उपरान्त वह दोनों बातों की तुलना कर एक निर्णय पर

---

1. Decision.

आता है, यह निश्चय की चौथी स्थिति है। मान लीजिए, वह बालक निर्णय करता है कि उसे पुस्तक ही खरीदनी चाहिए। इस निर्णय के उपरान्त वह तदनुसार काम में लगता है। यह निश्चय की पाँचवीं स्थिति है; अर्थात् निर्णय का क्रियान्वित होना निश्चय की अन्तिम स्थिति है।

स्टाउट महाशय ने निश्चयात्मक क्रिया की निम्नलिखित छः स्थितियाँ बतायीं जो उपर्युक्त गाल्ट और हावर्ड महाशय के अनुसार बताई हुई स्थितियों से मिलतीं-जुलती हैं।

(१) एक चाह का मन में उठना,
(२) उसकी विरोधी चाह का मन में उठना,
(३) दोनों में द्वन्द्व उत्पन्न होना,
(४) मन में उथल-पुथल होना,
(५) निर्णय पर पहुँचना और
(६) निर्णय का कार्यान्वित होना।

उपर्युक्त बालक के निश्चयात्मक कार्य में हम इन छः स्थितियों को देखते हैं। जूता खरीदने की चाह उसकी पहली इच्छा है। पुस्तक खरीदने की चाह उसकी दूसरी इच्छा है। ये एक के बाद एक उठती हैं। तीसरी स्थिति में उनमें द्वन्द्व उठता है। इससे मन में उथल-पुथल होती है। यह स्थिति बड़े महत्त्व की है। मन की उथल-पुथल की अवस्था में बाह्य क्रिया का अवरोध हो जाता है। अनेक प्रकार की कल्पनाएँ मन में आती और विसर्जित होती हैं। यह स्थिति बड़ी क्लेशकर होती है। इस स्थिति का अन्त मनुष्य शीघ्रातिशीघ्र चाहता है। कितने ही मनुष्यों के मन में किसी विशेष महत्त्व का काम करने के समय वह स्थिति कई दिनों तक रहती है। महत्त्व के कार्य करने के पूर्व इस स्थिति का होना आवश्यक है। विवेकी पुरुष उसी को कहते हैं जिसके प्रत्येक महत्त्वकारी निर्णय के पूर्व यह स्थिति मन में होती है, किन्तु मन का बार-बार इस स्थिति पर पहुँचना उसके मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। मन की उथल-पुथल से उसकी शक्ति की हानि होती है और यदि प्रत्येक छोटे कार्य के पूर्व किसी व्यक्ति के मन में इस प्रकार की उथल-पुथल हो तो वह व्यक्ति विक्षिप्त-सा हो जाता है। वास्तव में मनुष्य की विक्षिप्त अवस्था में ही उसे अपने छोटे कार्य करने के लिए बड़ी देर तक चिंतन करना पड़ता है। उसकी स्वस्थ अवस्था में उसके साधारण जीवन के अनेक निर्णय अभ्यास के द्वारा सञ्चालित होते हैं अर्थात् उसके निर्णय उसके अभ्यास के अनुकूल

होते हैं। जिस मनुष्य ने अपने जीवन में विशेष प्रकार की मौलिक आदतें नहीं डाली हैं उसके मन में किसी भी निर्णय को करते समय बार-बार उथल-पुथल होती है। उसका जीनव सदा क्लेशमय होत' है। सुन्दर आदतों के डालने तथा कुछ जीवन के विशेष सिद्धान्तों को मान लेने का मौलिक लाभ यह है कि मनुष्य को बार बार मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का क्लेश नहीं उठाना पड़ता। जो शक्ति हमारे अन्तर्द्वन्द्व में खर्च हो जाती है, सुरक्षित रहती है। इस शक्ति का उपयोग हम अपने निश्चय को कार्यान्वित करने में लगा सकते हैं। जिन लोगों की मानसिक शक्ति का अपव्यय किसी निर्णय पर पहुँचने में ही हो जाता है, वे दृढ़ता के साथ अपने निश्चय को कार्यान्वित नहीं कर पाते और अक्सर असफल होते हैं। शेक्सपियर के हेमलेट नाटक में हेमलेट के जीवन की असफलता का यही प्रधान कारण है।

निर्णय के प्रकार

निर्णय प्रधानतः चार प्रकार के माने जा सकते हैं—

(१) विवेकयुक्त[1]

(२) आकस्मिक[2]

(३) संवेगात्मक[3] और

(४) बाध्य[4]।

इन निर्णयों की विशेषताएँ मनुष्य की इच्छाशक्ति का कार्य समझने के लिए परमावश्यक हैं।

विवेकयुक्त निर्णय—जब किसी कार्य को करने का निश्चय करने के पूर्व मनुष्य उसके सभी पहलुओं पर विचार करता है; जब वह उस काम से अपने आपको होनेवाली सभी हानि-लाभ की कल्पना करके किसी काम को करने का निश्चय करता है तो उसके निर्णय को विवेकयुक्त निर्णय कहा जाता है। विवेकयुक्त निर्णय पर पहुँचने के लिए निर्णय की सभी मानसिक स्थितियों को पार करना पड़ता है।

जब कभी मनुष्य किसी एक निर्णय को करता है तो उसे अपनी किसी एक इच्छा को ही तृप्त करना स्वीकार करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उसकी दूसरी इच्छाएँ दलित होती हैं। विचार के द्वारा मनुष्य अपनी पारस्परिक विरोधी इच्छाओं में सामञ्जस्य स्थापित करने की कोशिश करता है तथा जिस

1. Reasonable. 2. Accidental. 3. Impulsive. 4. Forced.

इच्छा की तृप्ति से उसके जीवन की सबसे अधिक पूर्ति होती है, उसे खोजकर उसको दृढ़ बनाने का प्रयत्न करता है।

हम सभी सोचते हैं कि हमारे अधिक निर्णय विवेक-युक्त होते हैं, किन्तु बात ऐसी नहीं है। हमारा विरला ही निर्णय पूर्णतः विवेक-युक्त होता है। जिस व्यक्ति की सभी क्रियायें विवेक के द्वारा संचालित हों, ऐसा व्यक्ति विरला ही होता है। हमारे साधारण निर्णय विवेक के द्वारा संचालित न होकर हमारी सुप्त वासना की ओर संस्कारों के द्वारा संचालित होते हैं। जब कि हम विवेक से ही कार्य करने का दावा रखते हैं, उस समय भी हम पूर्णतः विवेकशील नहीं रहते। इतना ही नहीं, जो व्यक्ति जितना अपने आपको सत्य का अनुगामी और दूसरों को सत्य के प्रतिकूल जाननेवाला बताता है वह उतना ही अधिक अपने आपको धोखा देता है।

जब मनुष्य अपने जीवन के कुछ सिद्धान्त बना लेता है तो उसे किसी विशेष परिस्थिति में निर्णय पर आने में सहूलियत होती है। सिद्धान्तों के अनुसार जीवन के संचालित होने पर किसी विशेष निश्चय पर आने में देरी भी नहीं लगती। सिद्धान्त पर चलनेवाले व्यक्ति की इच्छाशक्ति दृढ़ होती है। जो व्यक्ति जितना ही अधिक अपने निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार निर्णय करता है वह उतना ही अधिक मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से मुक्त रहता है। ऐसा ही व्यक्ति संसार में उपयोगी कार्य कर सकता है। जब मनुष्य के जीवन में कोई सिद्धान्त नहीं रहते तो उसकी मानसिक शक्ति अनेक प्रकार की चिन्ताओं में नष्ट हो जाती है। उसका कोई भी कार्य पूर्ण शक्ति के साथ नहीं होता। अतएव वह अधूरा ही रहता है।

आकस्मिक निर्णय—जब किसी निर्णय के पूर्व निश्चय की सभी मानसिक स्थितियाँ घटित होती हैं अर्थात् जब मनुष्य किसी कार्य के विषय में पूर्ण तर्क-वितर्क कर किसी निर्णय पर पहुँचता है तो उसे विवेकात्मक निर्णय कहते हैं। जिस निर्णय पर पहुँचने में निश्चय की सभी अवस्थाओं को पार नहीं किया जाता, किन्तु किसी बाहरी घटना के कारण एकाएक निर्णय हो जाता है, ऐसे निर्णय को आकस्मिक निर्णय कहते हैं। मान लीजिए, हम विचार कर रहे हैं कि अपने मित्र की शादी में जायँ अथवा न जायँ। शादी में जाने के लिए हमें पढ़ाई का नुकसान करना पड़ता है। शादी कल ही होनेवाली है। हम बनारस में रहते हैं और मित्र का घर कानपुर में है। कानपुर जाने के लिए आखिरी गाड़ी के छूटने का समय आ गया। जब हम निर्णय कर ही रहे थे तभी हमें मालूम होता है कि आखिरी गाड़ी तो चली ही गई। हमें फिर वही

निर्णय करना पड़ता है कि मित्र की शादी में न जायँ। यदि हमारी इच्छा अधिक प्रबल होती तो हम मोटर से जाने की बात सोचते, किन्तु जिस समय हमारा मन डावाँडोल ही हो रहा था उसी समय हमें एक ऐसी घटना का ज्ञान होता है जो हमारे मित्र के घर पहुँचने में बाधा डालती है। अतएव हमारा आकस्मिक निर्णय यही होता है कि हम उनके घर न जायँ। कई बार इस प्रकार के आकस्मिक निर्णय कारणारोपण के विचार से युक्त होते हैं; अर्थात् हम झूठे ही किसी स्थिति को अपने निष्क्रिय होने अथवा विशेष प्रकार के कार्य का कारण मान लेते हैं। मान लीजिए, हमारी आंतरिक इच्छा मित्र के घर जाने की नहीं है, किन्तु लोकाचार-निर्वाह के लिए हम जाना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में एक साधारण-सी घटना मित्र के घर जाने में हमें रोक देती है।

संवेगात्मक निर्णय—ये वे हैं जिनमें हमारी कोई प्रबल इच्छा योग्य विचार को होने ही नहीं देती। जैसे आकस्मिक निर्णय में निश्चय की पाँचों स्थितियों को मन पार नहीं करता, इसी प्रकार संवेगात्मक निर्णय में भी मन निर्णय की पाँचों स्थितियों को पार नहीं करता। जैसे आकस्मिक निर्णय एकाएक होते हैं वैसे ही संवेगात्मक निर्णय भी एकाएक होते हैं। आकस्मिक और संवेगात्मक निर्णयों में भेद यह है कि एक का कारण बाह्य जगत् में होता है और दूसरे का कारण आन्तरिक होता है। जब किसी मनुष्य के मन में ऐसी प्रबल उत्तेजना होती है जो किसी प्रकार के बाधक विचार को मन में ठहरने ही नहीं देती और मनुष्य इस उत्तेजना के अनुसार कार्य करना निश्चय करता है तो इस प्रकार के निर्णय को संवेगात्मक निर्णय कहते हैं। मान लीजिए, हम किसी समाज में बैठे हुए हैं जहाँ हँसी-मजाक हो रहा है और हमारे साथियों में से एक हमसे भद्दा मजाक करता है। इस पर हम बिना आगा-पीछा सोचे ही गुस्से में आकर उसे एक तमाचा जड़ देते हैं। इस प्रकार का हमारा कार्य संवेगात्मक निर्णय का कार्य कहा जायगा। ऐसे कार्य के लिए अक्सर हमें पछताना पड़ता है। जिन मनुष्यों की इच्छाशक्ति कमजोर होती है अथवा जो अविवेकी हैं उनके जीवन में इस प्रकार के निर्णयों की अधिकता होती है। संवेगात्मक निर्णयों का परिणाम प्रायः दुःखदायी होता है।

बाध्य निर्णय—वह हैं जिनमें हम किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए विचार करते-करते थक जाते हैं। हमारा मन अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित हो उठता है। हम किसी प्रकार अपने मन की डावाँडोल अवस्था का अन्त कर देना चाहते हैं, किन्तु हमें मार्ग नहीं सूझ पड़ता कि क्या करना चाहिए। जितना

ही हम सोचते हैं हमारी बुद्धि और भी भ्रान्त हो जाती है। दोनों पक्षों में अनेक प्रकार के संशय उठते हैं और एक संशय को शान्त करने पर दस नये संशय उत्पन्न हो जाते हैं। तर्क-वितर्क करते-करते हम ऊब जाते हैं। ऐसी स्थिति में हम किसी भी प्रकार के निर्णय का स्वागत करते हैं। ऐसी स्थिति में कभी-कभी लोग पैसे को उछालकर उसके चित्त अथवा पट्ट होने पर किसी विशेष काम को करने अथवा न करने का निर्णय कर देते हैं। इन पहले दो प्रकार के निर्णयों में चरित्र-विकास की कमी रहती है। उनमें इच्छाशक्ति का निर्णयकारी कार्य नहीं देखा जाता। शब्द-निर्णय चरित्र का दूषित होना दर्शाता है। सुविकसित तथा सुदृढ़ चरित्र के निर्णय विवेकपूर्ण होते हैं। उसमें अन्य प्रकार के निर्णयों का सर्वथा अभाव नहीं तो कमी अवश्य रहती है।

पुनर्विचारात्मक निर्णय—वे हैं जिनमें मनुष्य एक निर्णय पर पहुँचने की पूर्ण तैयारी होने पर भी, किसी नई स्थिति का ज्ञान होने पर, उसके प्रतिकूल दूसरे निर्णय पर पहुँच जाता है। यह निर्णय ऊपरी दृष्टि से आकस्मिक निर्णय के समान होता है, किन्तु जहाँ पहले प्रकार का निर्णय विचार की कमी दर्शाता है, दूसरे प्रकार का निर्णय विचार की परिपक्वता दर्शाता है। मान लीजिए, एक व्यक्ति यह निर्णय कर रहा है कि वह एक विशेष परीक्षा में बैठे अथवा न बैठे। उसकी परीक्षा की तैयारी कम है। इसलिए उसकी प्रवृत्ति अधिकतर न बैठने की है। उसके निर्णय करने के समय ही उसे ज्ञात होता है कि यदि वह परीक्षा में पास हो गया तो उसे एक अच्छी नौकरी मिल जायगी। यह विचार उसको अपनी पूर्व-प्रवृत्ति के प्रतिकूल निर्णय करने के लिए विवश कर देता है। इस प्रकार का निर्णय पुनर्विचारात्मक निर्णय कहलाता है।

इच्छाशक्ति का विचार से सम्बन्ध

इच्छाशक्ति का विचार से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इच्छाशक्ति के कार्य मनुष्य के प्रबल विचार के अनुसार होते हैं। मनुष्य के निर्णय उसके भले और बुरे विचारों पर निर्भर करते हैं। जिस बात को वह भली समझता है उसे करने की इच्छा होती है। जिसे वह बुरी समझता है उसके न करने की उसकी इच्छा होती है। जिस मनुष्य के विचार सुविकसित नहीं होते उसके निर्णय भी योग्य नहीं होते। जिस विषय के सम्बन्ध में हमारे कोई विचार ही नहीं उस विषय में हम कुछ निर्णय ही नहीं कर सकते। जिन लोगों को देशभक्ति क्या है, यह ज्ञात ही नहीं वे ऐसे कोई भी कार्य नहीं

कर सकते जो देशभक्ति का प्रदर्शन करें, अर्थात् देशभक्ति उनके कार्यों का हेतु नहीं बन सकती। इस तरह हमारे कार्यों के हेतु हमारे ज्ञान अथवा विचारों से सीमित रहते हैं। मनुष्य के मन में नये हेतुओं की उत्पत्ति के लिए उसकी ज्ञान-वृद्धि तथा विचार-वृद्धि की आवश्यकता है। विलियम जेम्स का कथन है कि जिस देश के निवासियों की भाषा में किसी विशेष सद्गुण का सूचक शब्द नहीं होता उन लोगों में वह सद्गुण भी नहीं रहता। जिस देश की भाषा में देशभक्ति के भावसूचक शब्द नहीं हैं उनमें देशभक्ति भी नहीं होती। भाषा में किसी विशेष शब्द की कमी उस शब्द के सूचक विचार की कमी को दर्शाता है और विचार की कमी होने पर चरित्र में उस गुण का आना असम्भव है। विचार ही क्रिया का कारण होता है, चाहे यह विचार विवेकपूर्ण हो अथवा विवेकरहित।

विलियम जेम्स का कथन है कि निर्णय का मुख्य अंग यह है कि कौन सा विचार हमारा चेतना के समक्ष स्थिर रहे। जो विचार चेतना के समक्ष दृढ़ता से ठहरा रहता है, क्रिया अपने आप उसके अनुकूल होने लगती है। इच्छाशक्ति का मुख्य कार्य इसमें है कि विशेष प्रकार के विचार को चेतना के समक्ष दृढ़ता से ठहरावे और उसके प्रतिकूल विचारों का दमन कर दे।

इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्य के जैसे विचार होते हैं उसकी इच्छाशक्ति भी वैसे ही कार्य करती है और उसका चरित्र भी उसी प्रकार सुसगठित होता है। विचारों का विकास इच्छाशक्ति के योग्य काम करने के लिए और चरित्र विकास के लिए परमावश्यक है।

इच्छाशक्ति और ध्यान

इच्छाशक्ति का ध्यान की क्रिया से बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऊपर बताया गया है कि मनुष्य जिसप्रकार के विचारों में अपना ध्यान केन्द्रित करता है उसकी क्रियायें भी उसी प्रकार की होने लगती हैं। कमजोर इच्छाशक्ति के व्यक्ति का ध्यान चंचल रहता है। बालकों में इच्छाशक्ति की कमी होती है और उनके ध्यान में चंचलता भी होती है। जैसे-जैसे बालक के किसी निश्चित विषय में ध्यान देने की शक्ति की वृद्धि होती है वैसे वैसे उसकी इच्छाशक्ति में दृढ़ता भी आ जाती है। किसी पदार्थ पर ध्यान देने का अभ्यास करके इच्छाशक्ति को दृढ़ बनाया जा सकता है।

कितने ही व्यक्ति एक बात का निश्चय करके समय पड़ने पर उसके अनुसार काम नहीं करते। इसका कारण यह है कि वे अपने निर्णय की

ध्यान में नहीं रखते, उस पर बार-बार विचार नहीं करते। कोई काम कितना ही कठिन क्यों न हो यदि हम उसका चिन्तन हर समय करते रहें तो हम उसे सुगमता से कर सकते हैं। बहुत से काम कठिन इसलिए मालूम पड़ते हैं कि उनमें हमारी रुचि नहीं होती। जिस काम में रुचि होती है वह दूसरों को भले ही कठिन दिखाई दे, करनेवाले को कठिन नहीं दिखाई देता। किसी काम में रुचि का होना अथवा न होना उस काम पर ध्यान देने के ऊपर निर्भर रहता है। जिस बात के उपर ध्यान दिया जाता है वह रोचक बन जाती है और जब रोचक बन जाती है तब उसका करना सरल हो जाता है।

इच्छाशक्ति को दृढ़ बनाने में ध्यान की महत्ता भारतीय दार्शनिकों ने मानी है। जो मनुष्य अपने मन को वश में कर लेता है; अर्थात् जो अपने ध्यान को जहाँ चाहे वहाँ केन्द्रित कर सकता है, वह अपनी अन्य क्रियाओं का भी अपने विवेक के अनुसार सञ्चालन कर लेता है। इसके प्रतिकूल जिसका ध्यान चञ्चल होता है उसके आचरण में भी कोई नियमबद्धता नहीं रहती। वह संसार में कोई भी महत्व का काम नहीं कर पाता। योग की अनेक प्रकार की साधनाएँ ध्यान को स्थिर करने के प्रयत्न मात्र हैं, ध्यान के चञ्चल रहने पर मनुष्य की इच्छाशक्ति बिखर जाती है और उसकी कार्यक्षमता नष्ट हो जाती है। ऐसे व्यक्ति में न तो किसी प्रकार की प्रतिभा का विकास होता है और न पराक्रम की सम्भावना होती है। अनेक वैज्ञानिकों ने प्रतिभा को किसी विषय पर देर तक ध्यान देने की शक्ति माना है। प्रतिभावान् व्यक्ति शुष्क विषय पर अपने ध्यान को देर तक केन्द्रित रख सकता है।

संसार के साधारण व्यक्ति उन्हीं पदार्थों पर ध्यान देते हैं जिनसे उनकी मूल-प्रवृत्तियों की तृप्ति होती है। ये वस्तुएँ अनेक रहती हैं, अतएव उनका ध्यान भी चञ्चल होता है। मूलप्रवृत्तिजन्य इच्छाओं के तृप्त करने में मनुष्य को आत्मसंयम की आवश्यकता ही नहीं होती। आत्मसंयम की आवश्यकता तभी पड़ती है जब उसे किसी ऐसे लक्ष्य को प्राप्त करने की आत्म-प्रेरणा हो जो मूल-प्रवृत्तियों की तृप्ति न कर उसके प्रतिकूल जाता है। मनुष्य जितना ही अधिक अपने आपको प्राकृतिक इच्छाओं के विषयों की ओर जाने से रोकता है अपनी इच्छाशक्ति को उतना ही दृढ़ बनाता है। अतएव शारीरिक सुख देनेवाले विषयों का सदा चिन्तन करते रहना अपनी इच्छाशक्ति को निर्बल बनाना है। इच्छाशक्ति को दृढ़ बनाने के लिए आत्मोत्सर्ग करनेवाले विषय का सदा चिंतन करते रहना आवश्यक है। हम जैसे सोचते हैं वैसा

ही करते हैं और जैसा हम आचरण करते हैं उसी के अनुसार व्यक्तित्व का गठन होता है।

इच्छाशक्ति की निर्बलता

इच्छाशक्ति का बल आत्म-नियन्त्रण पर निर्भर रहता है। हमने ऊपर कहा है कि यह शक्ति निश्चित पदार्थ पर ध्यान देने की शक्ति के साथ-साथ बढ़ती है। क्रिया के संस्कार भी इस शक्ति की वृद्धि करते हैं। जो व्यक्ति जितना ही अपने निश्चयों को कार्यान्वित कर सकता है; अर्थात् एकही विषय पर देर तक ध्यान लगाये रह सकता है वह उतना ही दृढ़ इच्छाशक्ति का होता है, किन्तु कमजोर इच्छाशक्ति वाले लोगों में न तो ध्यान की एकाग्रता की क्षमता होती है और न सोच-विचारकर किसी निर्णय पर पहुँचने की। इच्छाशक्ति की कमजोरियाँ कई प्रकार की होती हैं। उनमें प्रधान ये हैं :—

(१) किसी आवेश में बह जाना,
(२) हठ करना, और
(३) सदा डावाँडोल रहना।

आवेश में बहना—पहले प्रकार की इच्छाशक्ति की कमजोरी बालकों में अधिक पाई जाती है। बालकों में विचार करने की शक्ति नहीं होती, अतएव उनका आवेश में आकर काम करना स्वाभाविक है, मनुष्य में आत्म-नियन्त्रण की शक्ति विचार के विकास के साथ साथ आती है। विचार का विकास अनुभव की वृद्धि के ऊपर निर्भर रहता है। अतएव जो व्यक्ति जितना ही अधिक आवेश में आकर काम करता है वह उतना ही बालक की मानसिक स्थिति में है और जो जितना ही अधिक आगा-पीछा सोचकर काम करता है अर्थात् अपने संवेगों के ऊपर नियन्त्रण रख सकता है, वह उतना ही प्रौढ़ कहा जा सकता है। प्रौढ़त्व मनुष्य की आयु के ऊपर निर्भर नहीं है, उसकी आत्म-नियन्त्रण की शक्ति के ऊपर निर्भर है। कितने ही लोग जीवन भर सदा बच्चे की सी मानसिक स्थिति में ही बने रहते हैं। ऐसे लोगों की इच्छाशक्ति निर्बल रहती हैं। वे सरलता से दूसरों के नियन्त्रण में आ जाते हैं। वे दूसरों के निर्देशों को, चाहे वे भले हों अथवा बुरे, ग्रहण कर लेते हैं और आप उनके अनुसार काम करने लगते हैं। शिक्षित और अशिक्षित व्यक्ति में एक भेद यह है कि शिक्षित व्यक्ति सदा आत्म-निरीक्षण करता रहता है। वह किसी भी घटना के तुरन्त के परिणाम पर ही विचार नहीं करता, वरन् उसके भावी परिणाम पर भी विचार करता है। उसके विचार

करने की शक्ति उसमें आत्म-नियन्त्रण की क्षमता लाती है। यह क्षमता अशिक्षित व्यक्ति में नहीं होती। वे आगे-पीछे का बिना सोचे ही, जो कुछ मन में आता है, कर बैठते हैं।

हठ करना—हठ करना यह इच्छाशक्ति की दूसरी कमजोरी है। इच्छाशक्ति की दृढ़ता और हठ एक ही बात नहीं है। इच्छाशक्ति की दृढ़ता विवेक के द्वारा क्रियाओं के संचालित होने में है। मनुष्य को सदा अपनी क्रियाओं को वातावरण की आवश्यकताओं के अनुसार बदलते रहना पड़ता है। जो व्यक्ति ऐसा नहीं करता वह अपना विनाश कर डालता है। हठी मनुष्य अपने तथा दूसरों के लाभ-हानि की ओर ध्यान नहीं देता। वह हठ में आकर जिस बात का निर्णय कर लेता है उसे करके ही छोड़ता है। उसकी बुद्धि भी बालकों की बुद्धि के समान है। जब बालक किसी बात के लिए रूठ जाता है तो हम जितना ही उसे रोकने का प्रयत्न करते हैं वह उतना ही और हठ करता है। बालक विवेकहीन है, इसलिए उसका इस प्रकार का आचरण स्वाभाविक है, किन्तु प्रौढ़ व्यक्तियों में इसी प्रकार का आचरण होना अस्वाभाविक है। यह विचार के विकास का अभाव अर्थात् विवेकशून्यता को दर्शाता है। हठीले लोगों को बाल-बुद्धि का ही मानना चाहिए। जिन लोगों में जितना अधिक शिक्षा का अभाव होता है उनमें हठ भी उतना ही अधिक होता है। शिक्षा आत्मनिरीक्षण की शक्ति प्रदान करती है जो हठीलेपन को नष्ट कर देती है।

कभी-कभी शिक्षित कहे जानेवाले व्यक्तियों में भी हठ करने की बड़ी प्रबल प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार की प्रवृत्ति का कारण उनके मन में उपस्थित कोई मानसिक ग्रन्थि होती है जिसका उन्हें ज्ञान नहीं रहता। जिस प्रकार कोई पतंगा जल-भुनकर भी दीपक के समीप जाने का हठ नहीं छोड़ता, उसी प्रकार हठ के वश हुए लोग सब प्रकार की हानि सहकर भी जो मन में बात आ गई उसके करने में ही लगे रहते हैं। कितने ही योद्धा अपने हठ के कारण नष्ट हो जाते हैं। कभी-कभी हठीले लोगों का अनुकरण करके राष्ट्र का राष्ट्र नष्ट हो जाता है*।

---

* विगत जर्मन युद्ध में जर्मनी की पराजय का प्रधान कारण हिटलर का हठ ही था। उसकी हठीली मनोवृत्ति ने जहाँ एक ओर उसे जर्मन राष्ट्र का नेता बना दिया वहाँ दूसरी ओर उसका तथा जर्मन राष्ट्र का विनाश कर दिया। हिटलर तथा दूसरे नाजी नेताओं के हठ का यदि कारण ढूँढ़ें तो उसे हम उसके

सदा डावाँडोल रहना—सदा डावाँडोल रहना यह इच्छाशक्ति की कमजोरी का तीसरा रूप है। जिस प्रकार अशिक्षित व्यक्तियों में एकाएक निर्णय करने की अथवा हठ करने की प्रवृत्ति रहती है उसी प्रकार बहुत से शिक्षित व्यक्तियों में किसी विषय पर अत्यधिक विचार करने की प्रवृत्ति रहती है। जो व्यक्ति अधिक देर तक किसी काम के करने के लिए सोच-विचार करता रहता है, अर्थात् जो शीघ्रता से यह निश्चय नहीं कर पाता कि उसे प्रस्तुत काम करना चाहिए या नहीं, वह अपनी सारी शक्ति निर्णय करने में ही खर्च कर देता है और जब काम करने का समय आता है तो वह काम के करने में अपने-आपको अयोग्य पाता है। कभी-कभी कोई-कोई लोग निर्णय में इतनी देर कर देते हैं कि वे जिस काम को करने का निश्चय करते हैं उसे कर ही नहीं पाते।

मान लीजिए, किसी व्यक्ति को बनारस से इलाहाबाद जाना है। वह छोटी लाइन अथवा बड़ी लाइन से जा सकता है। दोनों गाड़ियाँ एक ही समय छूटती हैं। अब यदि वह टिकट लेते समय देर तक इसी उथल-पुथल में पड़ा रहे कि किस लाइन से जाना चाहिए तो सम्भव है जब वह किसी एक निर्णय पर पहुँचे तो एक भी लाइन की गाड़ी उसे न मिले।

देखा गया है कि जिन लोगों का काम करने का अभ्यास नहीं रहता, जो सदा विचारों और सिद्धान्तों के जगत् में विचरण किया करते हैं वे दीर्घसूत्री बन जाते हैं। उनका व्यवसायात्मक बुद्धि नष्ट हो जाती है। वे न यथासमय किसी काम के करने का निश्चय कर सकते हैं और न किसी निश्चय पर आने पर कुशलता के साथ उस काम को कर सकते हैं। जो व्यक्ति अपनी निर्णय-शक्ति तथा कार्यक्षमता को नहीं खोना चाहता उसे यह आवश्यक है कि वह अपने आपको पोथी-पण्डित न बनावे, वह व्यावहारिक जगत् में भी सदा भाग लेता रहे। जो व्यक्ति सदा विद्याध्ययन में ही अपना समय बिताते रहते हैं वे व्यावहारिक जीवन में अपने आपको

मन में उपस्थित आत्महीनता की ग्रन्थि ही पावेंगे। यही ग्रन्थि उन्हें ससार में सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित करने के लिये बाध्य कर रही थी।

भारतवर्ष के दुर्दिन का प्रधान कारण यहाँ के निवासियों की हठ करने की मनोवृत्ति है। भारतवर्ष के लोग मानों समयानुसार आचरण बनाने की बिलकुल ही क्षमता नहीं रखते। वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति में भी हठ की मनोवृत्ति ही हमारी प्रगति रोक रही है।

पशु बना लेते हैं। इस तरह कितने ही अध्ययनशील व्यक्तियों का जीवन दयनीय हो जाता है।

जब हम किसी निर्णय को करने लगते हैं तो उस निर्णय पर पहुँचने में हमारी चेतना के समक्ष उपस्थित हेतु ही काम नहीं करते हैं, वरन् बहुत से अज्ञात संस्कार भी काम करते हैं। जो व्यक्ति जिस प्रकार के काम करता रहता है उसके वे संस्कार उसे उसी प्रकार के काम करने की ओर अग्रसर करते हैं। अतएव जब किसी व्यक्ति के मन में व्यावहारिक जगत् में क्रिया करने के संस्कारों का प्रभाव रहता है तो वह व्यावहारिक जीवन सम्बन्धी निर्णयों को भी शीघ्रता से नहीं कर सकता। जब उसे जीवन की कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है तो वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है।

कभी-कभी मनुष्य के मन में किसी मानसिक ग्रन्थि की उपस्थिति भी उसके मन को डावाँडोल बना देती है। वह जिस निर्णय को करता है उससे सन्तुष्ट न होकर असन्तुष्ट ही रहता है। इस प्रसङ्ग में मार्गन महाशय का "साइकॉलॉजी ऑफ दी अनएडजस्टेड स्कूल चाइल्ड" में दिया हुआ निम्नलिखित उदाहरण उल्लेखनीय है—

एक दिन एक युवक एक कपड़ेवाले की दूकान पर अपने लिए एक टोप खरीदने गया। उसने बहुत से टोप देखकर एक को चुन लिया। दूकानदार को उसका पैसा चुकाकर और उस टोप को सिर पर रखकर दूकान से वह चल दिया। ज्योंही वह दरवाजे से बाहर आया त्योंही उसके मन में यह विचार उठा कि मुझे यह टोप खरीदना नहीं चाहिये था। इसी प्रकार का विचार उसे मूर्खतापूर्ण दिखाई देता था, किन्तु फिर भी वह अपनी इस मनोभावना से मुक्त नहीं होता था कि उसने कोई बुरा काम किया है। वह रास्ते में चलते-चलते अपने आप यह तर्क करता जाता था कि टोप खरीदने में पाप करने की धारणा बे सिर-पैर की है, किन्तु उसका अवाञ्छनीय विचार उसे छोड़ता न था। अन्त में कुछ दूर जाने के पश्चात् उसने दूकान की ओर फिर मुँह मोड़ा, अब वह इसे बदलने के लिए दूकान की ओर चलने लगा।

उसकी धारणा ने अब एक नया रूप धारण कर लिया। वह मन ही मन कहने लगा कि टोप अच्छा है, यदि मैं वापस करूँगा तो दूकानदार मेरे विषय में क्या सोचेगा। इसमें यही अच्छा है कि मैं टोप को वापस न दूँ, वापस देना गलती करना है। जब तक वह दूकान पर पहुँचता तब तक उसका निश्चय यह हो गया कि टोप को उसे पास ही रखना चाहिए। यह निश्चय

हो जाने पर वह घर की ओर फिर चल दिया, किन्तु अभी वह मार्ग पर थोड़ी ही दूर चला था कि पहले के विचार फिर आ गये। उसके मन में विचार आया कि टोप को घर नहीं ही ले जाना चाहिए। वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था उसकी भावना उसे अधिक त्रास देती थी। वह दूकान की ओर फिर लौटा और दूकान पर पहुँच गया, पर उसके मन ने उसे टोप नहीं लौटाने दिया। वह उस टोप को आखिर घर ले ही गया।

इसी प्रकार बैंक से एक नई चेक-बुक लेते समय कल्पित पाप की भावना ने उसे त्रास दिया था। वह उसे नहीं लेना चाहता था, पर उसे वापस करना भी उसे वैसा ही बुरा लगता था। हर एक बात में उसे यही विचार आता था कि मैं कोई बुरा काम तो नहीं कर रहा हूँ।

इस व्यक्ति के मनोविश्लेषण से पता चला कि उसके मन की इस प्रकार की अवस्था उसके एक पुराने अनुभव का परिणाम मात्र थी। यह पुराना अनुभव एक मानसिक ग्रन्थि के रूप में उसके अज्ञात मन में उपस्थित था। यही ग्रन्थि उसके मन को अव्यवस्थित बनाये रहती थी।

यह व्यक्ति अविवाहित था। उसने एक बार विवाह करना चाहा था; पर जिस महिला को वह प्यार करता था, उसने उसे धोखा दिया। धोखा देने पर उसके मन में इस महिला के प्रति अनेक प्रकार के बुरे विचार आने लगे। वह उसे मार डालना चाहता था; पर उसकी नैतिक बुद्धि ने उसे ऐसा करने से रोका। पीछे वह इस प्रकार के विचार को मन में लाने के लिए अपने-आपको कोसने लगा। कई दिनों के पश्चात् वह इस घटना को तो भूल गया, किन्तु उसकी अपने-आपको कोसने की मनोवृत्ति का नाश न हुआ। यह मनोवृत्ति उसके प्रत्येक निर्णय के साथ उपस्थित हो जाती थी।

जो मनुष्य किसी भी कार्य को उत्साह के साथ नहीं कर सकता, जो अपने हर प्रकार के निर्णय में त्रुटि देखता है वह संसार में कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। अपने प्रत्येक निर्णय को संदेह की दृष्टि से देखना अपने मन को कमजोर बनाना है। सन्देह की मनोवृत्ति इच्छाशक्ति की कमी को दर्शाती है। इस कमजोरी का अन्त सदा काम में लगे रहने से होता है। जो मनुष्य अधिक समय निर्णय में न लगाकर शीघ्र ही अपने-आपको किसी भले काम में लगा देता है वह अपनी सभी मानसिक ग्रन्थियों को नष्ट करने में समर्थ होता है। ऐसे व्यक्ति का मन कुछ काल में ही निर्मल और स्वस्थ हो जाता है। उसकी इच्छाशक्ति दृढ़ हो जाती है।

स्वतन्त्रतावाद और नियतिवाद

इच्छाशक्ति के स्वरूप के विषय में दो प्रकार के मत हैं—एक स्वतन्त्रतावाद और दूसरा नियतिवाद। स्वतन्त्रतावाद के अनुसार इच्छाशक्ति मनुष्य की चाहों अथवा वासनाओं से भिन्न पदार्थ है। वह हमारी चाहों का नियन्त्रण करती है जिन्हें साधारण भाषा में इच्छा कहा जाता है। जब दो चाहों में पारस्परिक द्वन्द्व होता है तो जो चाह प्रबल होती है और उसी के अनुसार निर्णय होता है। निर्बल चाह के अनुकूल और प्रबल चाह के प्रतिकूल निर्णय होना असम्भव है। यह स्वतन्त्रतावाद का सिद्धान्त है। नियतिवाद के अनुसार निर्णय कोई आध्यात्मिक शक्ति का कार्य नहीं है जिसे इच्छाशक्ति कहा जाता है। वह चाहों से स्वतन्त्र कोई शक्ति नहीं है जो मनुष्य की आत्मा कही जाय। नियतिवादी स्वतन्त्रतावाद को अवैज्ञानिक सिद्ध करते हैं। वैज्ञानिक विचारधारा के अनुसार कोई भी घटना चाहे वह बाह्य जगत् की हो अथवा मानसिक, कार्य-कारणगत परम्परा का उल्लंघन नहीं कर सकती। कार्य कारणानुगत होता है; अर्थात् जैसा कारण होगा वैसा ही कार्य भी होगा। गणित-विज्ञान का यह साधारण नियम है कि जब दो शक्तियाँ किसी पदार्थ को दो विरोधी दिशाओं में खींचती हैं तो पदार्थ उसी ओर खींचता है, जिस ओर प्रबल शक्ति काम करती है। इस प्रकार द्वन्द्व में निर्बल शक्ति की विजय कभी नहीं होती। यह भौतिक जगत् का नियम है। नियतिवाद के अनुसार यही नियम मानसिक जगत् में काम करता है। जब दो चाहें हमारे निर्णय को दो विरोधी दिशाओं में खींचती हैं तो प्रबल चाह के अनुसार निर्णय होना स्वाभाविक है। इस प्रकार के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना प्रकृति के कार्य-कारण के नियम का मानस-क्षेत्र में स्वीकार करना है।

स्वतन्त्रवादी चैतन्यवादी होते हैं और नियतिवादी जड़वादी। आधुनिक मनोविज्ञान इस निर्णय पर पूर्णतः नहीं पहुँचा है कि चैतन्यवाद सत्य है अथवा जड़वाद। जहाँ तक मनोविज्ञान अपने विषय-प्रतिपादन में वैज्ञानिकता दर्शाता है, वह जड़वाद का ही अनुसरण करता है। लेकिन मनोविज्ञान चैतन्य सत्ता की अवहेलना नहीं कर सकता। यद्यपि वैज्ञानिक ढङ्ग से चैतन्य आत्मा की सिद्धि प्राप्त करना असम्भव कार्य है तो भी मनोवैज्ञानिक मन और उसकी क्रियाओं को सामान्य जड़ पदार्थवत् मानने को तैयार नहीं है।

वास्तव में इस विषय का निर्णय मनोविज्ञान की सीमा के बाहर है।

इसका निर्णय विज्ञान नहीं दर्शन ही कर सकता है। जिस प्रकार दूसरे विज्ञानों की अन्तिम समस्याओं को दर्शन हल करने की चेष्टा करता है, इसी तरह स्वतन्त्रतावाद और नियतिवाद के झगड़े का निपटारा दर्शन ही कर सकता है।

यहाँ इतना कहना आवश्यक है कि स्वतन्त्रतावाद का यह कथन भ्रमात्मक है कि हमारी इच्छाशक्ति कोई निर्णय करने में पूर्ण स्वतन्त्र है। हमारी इच्छा यद्यपि एक प्रकार से स्वतन्त्र है तो भी दूसरे प्रकार से वह परतन्त्र है। चाहे हमारी इच्छाशक्ति बाह्य परिस्थितियों से अपने निर्णय में प्रभावित न हो, चाहे वह साधारण प्रबल चाह के अनुकूल निर्णय कर सकती हो, किन्तु इतना तो निश्चित है कि वह अपने-आपके किये गये निर्णयों से अवश्य प्रभावित होती है। इच्छाशक्ति के पहले के निर्णय व्यक्ति की आदतें और चरित्र बन जाते हैं। मनुष्य की सदाचार की आदतें इच्छाशक्ति के प्रयत्न से ही उत्पन्न होती हैं। जब हमारी इच्छाशक्ति एक बार किसी विशेष प्रकार का निर्णय करती है तो उसके दूसरी बार वे निर्णय पहले की तरह होने की अधिक सम्भावना होती है। इस तरह बार बार किसी प्रकार का निर्णय करने पर इच्छाशक्ति को उसी तरह निर्णय करने की आदत पड़ जाती है। पीछे मनुष्य का निर्णय उसकी आदत के अनुसार होता है। यह आदत मनुष्य का अर्जित स्वभाव बन जाता है। मनुष्य का अपने विचारों के प्रतिकूल जाना सम्भव है। प्रत्येक मनुष्य अपने चरित्र के अनुसार ही कार्य करता है। चरित्र इच्छाशक्ति के पहले स्वतन्त्र निर्णयों का परिणाम है। चरित्र के प्रतिकूल जाना इच्छाशक्ति की स्वतन्त्रता का सूचक नहीं है, वरन् उसके अभाव का सूचक है।

अतएव जब हम इच्छाशक्ति की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं तो हम यह नहीं मानते कि इच्छाशक्ति मनुष्य की आदतों और चरित्र से भी प्रभावित नहीं होती। वास्तव में स्वतन्त्रतावाद का यह अर्थ भी नहीं लगाया जा सकता कि इच्छाशक्ति अपने पूर्वकृत्यों से स्वतन्त्र है जोकि आदत और चरित्र के रूप में परिणत हो गये हैं।

चरित्र

चरित्र और इच्छाशक्ति—इच्छाशक्ति के कार्य का मानसिक परिणाम चरित्र है। जिस प्रकार इच्छाशक्ति का अभ्यास होता है उसी प्रकार की आदत बन जाती है। अनेक आदतें एकत्र होने पर चरित्र का निर्माण होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि चरित्र-निर्माण में इच्छाशक्ति ही काम

करती है। चरित्र निर्मित होने पर इच्छाशक्ति में दृढ़ता आती है। चरित्रवान् व्यक्ति के कार्य क्षणिक उत्तेजनाओं से प्रेरित नहीं होते। उसके जीवन के समस्त कार्यों में एक सिद्धान्त तथा लक्ष्य कार्य करता है। यही सिद्धान्त तथा लक्ष्य उसकी सब चेष्टाओं को सूत्रीभूत करते हैं। चरित्रवान् व्यक्ति के कार्य अनुच्छृङ्खल होते हैं। वह किसी प्रकार के आवेश में आकर कोई कार्य नहीं करता। जहाँ तक वह ऐसा करता है वहाँ तक उसके चरित्र में कमी समझना चाहिये। भय अथवा लोभ के वश वह अपने किसी मौलिक सिद्धान्त के प्रतिकूल कार्य नहीं करता। उसके सभी कार्य स्वतन्त्रतापूर्ण होते हैं; अर्थात् उसके कार्य उसी सिद्धान्त से निर्णीत होते हैं जिसे उसकी इच्छाशक्ति ने मौलिक सिद्धान्त माना है। वह अपनी इस प्रकार की स्वतन्त्रता पर न तो किसी बाहरी और न किसी भीतरी उत्तेजना से ही आघात होने देता है।

चरित्र एक बहुत व्यापक शब्द है। इसके अन्तर्गत मनुष्य के सभी प्रकार के संस्कारों का समावेश होता है। मनुष्य के बहुत से संस्कार उसे स्मरण होते हैं पर बहुत से उसकी चेतना के परे होते हैं। किसी भी मनुष्य का चरित्र इन सभी संस्कारों द्वारा बना रहता है। पर चरित्र को मनुष्य के संस्कारों का पुञ्ज मात्र न समझ लेना चाहिए। मनुष्य में चरित्र वहीं तक होता है जहाँ तक वह इन संस्कारों में ऐक्य स्थापित कर लेता है। चरित्रवान् व्यक्ति की सभी क्रियाओं का नियन्त्रण किसी एक सिद्धान्त के द्वारा होता है। जो व्यक्ति जितना ही अधिक अपनी शारीरिक और मानसिक क्रियाओं को एक ही लक्ष्य की प्राप्ति की ओर लगाता है वह उतना ही बड़ा चरित्रवान् कहा जाता है।

चरित्र और आदत—कितने ही लोग चरित्र को आदतों का पुञ्ज कहते हैं। पर मनुष्य की आदतें भली अथवा बुरी हो सकती हैं। इस तरह हमें भला और बुरा चरित्र मानना पड़ेगा। यह चरित्र शब्द का व्यापक अर्थ है। इस अर्थ में चरित्र शब्द का नीति-शास्त्र में प्रयोग नहीं होता। चरित्र प्रायः भली आदतों का ही पुञ्ज माना जाता है। भली आदतें वे हैं जिनके बनने में इच्छाशक्ति के प्रयत्न की आवश्यकता होती है। ऐसी आदतें इच्छाशक्ति को दृढ़ बनाती हैं। ऐसी आदतें हमारी मूलप्रवृत्तियों के परिवर्तन से बनती है, नैसर्गिक रूप से जीवन चलाने से नहीं बनतीं। विवेक के द्वारा उन्हें नियन्त्रित करके जो काम किये जाते हैं और जो आदतें ऐसे कामों के करने से पड़ जाती हैं वे ही आदतें चरित्र का अंग बन जाती हैं। नैसर्गिक रूप से आचरण करने से चरित्र-गठन नहीं होता। पशु और बालकगण

में चरित्र नहीं होता; क्योंकि उनमें न विचार करने की शक्ति होती है न उनकी क्रियाएँ ही आत्मनियंत्रित रहती हैं।

चरित्र और स्थायीभाव—मैकडूगल महाशय ने चरित्र को स्थायीभावों का पुञ्ज माना है। हमारे मन में अनेक प्रकार के स्थायीभाव[1] होते हैं। कुछ स्थायीभाव पदार्थों के लिए होते हैं, कुछ व्यक्तियों के लिए और कुछ सिद्धान्तों के लिए। इन सभी स्थायीभावों के ऊपर स्वत्व का स्थायीभाव[2] होता है। यह स्थायीभाव अन्य स्थायीभावों का नियन्त्रण करता है। इसे मनुष्य का आत्माभिमान का भाव कह सकते हैं। चरित्र इसी आत्माभिमान का दूसरा नाम है। जिस मनुष्य का आत्माभिमान का भाव जितना व्यापक होता है वह उतना ही बड़ा चरित्रवान होता है। बालक का अहंभाव शरीर तथा उसके कुछ आस-पास की वस्तुओं तक परिमित रहता है। प्रौढ़ व्यक्ति का अहंभाव इतना विस्तृत हो जाता है कि उसमें न केवल अनेक वस्तुएँ स्थान पाती हैं वरन् अनेक प्रकार के सिद्धान्तों का भी समावेश होता है। जब प्रौढ़ व्यक्ति अपने विचारों के प्रतिकूल किसी को आचरण करते देखता है अथवा वह स्वयं आचरण करने लगता है तो उसे दुःख होता है।

मैकडूगल महाशय ने चरित्र का स्थायीभावों से ऐक्य कर दिया है। उनका यह सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं है। पर इसे कोई अस्वीकार न करेगा कि स्थायीभावों का चरित्र में महत्त्व का स्थान है। मनुष्य के आचरण में यह प्रत्यक्ष देखा जाता है। मनुष्य का आचरण या तो उसकी मूलप्रवृत्तियों द्वारा अथवा उसके स्थायीभावों द्वारा संचालित होता है। मनुष्य के विचार आचरण को तभी प्रभावित करते हैं जब कि वे स्थायीभाव का रूप धारण कर लेते हैं। मनुष्य के जीवन के सिद्धान्त कितने ही ऊँचे क्यों न हों पर जब तक ये सिद्धान्त स्थायीभाव का रूप नहीं ग्रहण कर लेते तब तक आचरण को प्रभावित नहीं करते। सिद्धान्तवादी व्यक्ति की बुद्धि आपत्तिकाल में बे-ठिकाने हो जाती है। उसका विवेक कुछ और करने को कहता है और वह करता कुछ और ही है। वह अपने रागद्वेष पर नियन्त्रण नहीं कर सकता। इनका स्रोत मनुष्य की मूल-प्रवृत्तियाँ होती हैं। अतएव इनको नियन्त्रित करने के लिए स्थायीभावों की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि दार्शनिक लोगों की अपेक्षा भक्त लोग चरित्र में अधिक सुदृढ़ होते हैं। दार्शनिकों में

1. Sentiments. 2. Sentiment of Self-regard.

विचार करने की शक्ति तो होती है, पर आत्मनियन्त्रण की शक्ति भक्तों के सदृश नहीं होती। इसका प्रधान कारण दार्शनिकों में योग्य स्थायीभावों की कमजोरी और भक्तों में ऐसे स्थायीभावों की दृढ़ता होती है। मनुष्य अपने सिद्धान्त मात्र के लिए अपना सर्वस्व निछावर करने के लिए तैयार नहीं होता, वह अपने स्थायीभाव के लिए ही सब कुछ त्याग करने के लिए तैयार होता है। जो व्यक्ति अपना आचरण भला बनाना चाहता है उसे सुन्दर स्थायीभावों को मन में दृढ़ करना आवश्यक है। आचरण का स्रोत विचार नहीं, भाव होता है। स्थायीभाव विचार और भाव की आपस की प्रतिक्रिया का परिणाम है।

प्रश्न

१—इच्छाशक्ति का स्वरूप क्या है ? उसकी विशेष क्रियाएँ क्या हैं ?

२—निर्णय पर आने की क्रिया का सविस्तार वर्णन कीजिए।

३—निर्णय कितने प्रकार के होते हैं ? बाध्य-निर्णय को उदाहरण देकर समझाइये।

४—इच्छाशक्ति की कमजोरियाँ कौन-कौन सी हैं ? उनसे हम कैसे मुक्त हो सकते हैं ?

५—इच्छाशक्ति कैसे दृढ़ बनाई जा सकती है ? उदाहरण देकर समझाइये।

६—इच्छाशक्ति और चरित्र में क्या सम्बन्ध है ? चरित्रगठन के विषय में मेवडूगल महाशय का सिद्धान्त क्या है ? उसकी आलोचना कीजिए।

७—चरित्र आदतों का पुञ्ज है—इस सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए और इसकी समालोचना कीजिए।

८—स्वतन्त्रवावाद और नियतिवाद का भेद समझाइये। आप किस सिद्धांत को युक्तिसंगत मानते हैं ?

पन्द्रहवाँ प्रकरण

बुद्धि और उसकी जाँच

मनुष्यों में जहाँ एक दूसरे में समानता होती है, वहाँ भेद भी होते हैं। कुछ भेद जन्मजात होते हैं और कुछ वातावरण के सम्पर्क से पैदा हो जाते हैं। आधुनिक काल में इन भिन्न-भिन्न प्रकार के भेदों को जानने की और उन्हें मापने की चेष्टा की गई। साधारणत मनुष्यों में दो प्रकार की भिन्नता पाई जाती है-एक बुद्धि की और दूसरे चरित्र की। बुद्धि की भिन्नता जन्मजात मानी जाती है और चरित्र की भिन्नता वातावरण के ऊपर निर्भर रहती है। बुद्धि में विकास अवश्य होता है, किन्तु यह विकास बुद्धि की विशेषता में एकदम परिवर्तन नहीं कर देता। कुछ लोग जन्म से ही मन्दबुद्धि होते हैं और कुछ प्रखर-बुद्धि होते हैं। शिक्षा के द्वारा इन भिन्नताओं को नहीं मिटाया जा सकता, मनुष्य की बुद्धि की माप की जा सकती है। इस बुद्धि का माप जितने अच्छे ढंग से बचपन में हो सकता है, उतना प्रौढ अवस्था में नहीं होता। बुद्धि का माप बालक की शिक्षा में बड़ा ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। पिछली लड़ाई के समय जब अमेरिकन लोगों की फौज में भरती होने के लिए सिपाहियों और अफसरों की आवश्यकता हुई थी तो बुद्धि माप की परीक्षाओं से काम लिया गया था। इन बुद्धि माप की परीक्षाओं के विषय में कुछ जानना आधुनिक मनोविज्ञान के ज्ञान को सम्पूर्ण बनाने के लिए आवश्यक है।

बुद्धिमाप की परीक्षा[1] का प्रारम्भ

बुद्धि माप की परीक्षा का आरम्भ जर्मनी के कुछ वैज्ञानिकों से हुआ। इन मन वैज्ञानिकों में वुंट महाशय प्रमुख हैं। ये लोगों की बुद्धि का माप उसी प्रकार करते थे जिस प्रकार मनुष्य की तौल उठाने की शक्ति का माप किया जा सकता है। बुद्धि का माप लैबोरेटरी के भिन्न भिन्न यंत्रों के द्वारा किया जाता था। इन यन्त्रों के द्वारा व्यक्ति की संवेदन शक्ति की विशेषताएँ जानी जाती थीं। इसीसे उसकी बुद्धि का भी अनुमान लगाया जाता था। इन मनोवैज्ञानिकों ने यह मान लिया था कि जिस व्यक्ति में जितनी ही अधिक संवेदन शक्ति है वह उतना ही अधिक बुद्धिमान् होगा,

1 Measurement of intelligence

उदाहरणार्थ यदि कोई व्यक्ति दो भिन्न वस्तुओं के वजन में थोड़ा भी अन्तर होने का पता चला लेता है; अथवा दो, एक ही प्रकार के रङ्ग में थोड़ा भेद होने पर भी इनका ठीक पता चला लेता है तो वह उस व्यक्ति से अधिक बुद्धिमान् माना जायगा जो इस प्रकार का पता नहीं चला पाता।

पुराने मनोवैज्ञानिकों की उपर्युक्त बुद्धि-सम्बन्धी कल्पना थोड़े ही अनुभव करने पर गलत सिद्ध हुई। देखा गया है कि बहुत से व्यक्ति जो बड़े ही प्रखर बुद्धिवाले माने जाते थे अपनी संवेदन-शक्ति में उतने ही कमजोर थे और बहुत से मन्द बुद्धि के लोगों की संवेदन-शक्ति बड़ी प्रबल पाई गई। बर्बर जातियों में सुशिक्षित जातियों की अपेक्षा संवेदन-शक्ति अधिक प्रबल होती है, किन्तु उनमें बुद्धि की प्रबलता नहीं होती। इससे यह स्पष्ट है कि संवेदन का प्रबलता की माप से बुद्धि की प्रखरता नहीं होती। इससे यह स्पष्ट है कि संवेदन की प्रबलता की माप से बुद्धि की प्रखरता का पता नहीं चल सकता।

बुद्धि-माप का व्यावहारिक रूप में उपयोग वर्तमान शताब्दी में ही होने लगा। प्रचलित बुद्धि की परीक्षाओं के प्रवर्तक फ्रांस के एक डा० महोदय अलफ्रेड बिने हैं। उन्होंने १९०५ में पहले-पहल अपनी बुद्धिमाप की परीक्षाएँ बनाईं। ये फ्रांस के रहनेवाले थे और पेरिस म्युनिसिपैलिटी के एक डाक्टर थे। पेरिस की म्युनिसिपैलिटी में एक बार यह समस्या आई कि बुद्धि में कमजोर बालकों की शिक्षा का अलग प्रबन्ध किया जाय, किन्तु उस समय तक बुद्धिमाप करने की कोई रीति ज्ञात न थी। बिने महाशय को यह काम सौंपा गया कि वे बालकों की बुद्धि-माप करने का कोई उपाय ढूंढें। बिने महाशय ने इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए एक विशेष प्रकार का बुद्धिमाप की परीक्षा का आविष्कार किया। उनके आविष्कार में जो संशोधन और परिवर्द्धन हुआ उसी के परिणाम-स्वरूप आज हम संसार में अनेक प्रकार की बुद्धिमाप की परीक्षाएँ पाते हैं।

'बिने' की परीक्षा की रीति

बिने महाशय ने १९०४ में अपने सहयोगी थ्योडर साइमन महाशय की सहायता से भिन्न-भिन्न आयु के बालकों की बुद्धि को परीक्षा के लिए पाँच या छः प्रश्न चुने। ये प्रश्न ऐसे थे जिनका ठीक उत्तर साधारणतः एक विशेष अवस्था के बालक दे सकते हैं। बिने महाशय ने अपने अनुभव से यह बात देखी कि जो बातें औसत चार वर्ष का बालक कर सकता है उनको तीन वर्ष का नहीं कर सकता। इसी तरह जो बातें औसत पाँच वर्ष का बालक कर सकता है वे बातें चार वर्ष की अवस्था वाला बालक नहीं कर सकता। उसने सोलह वर्ष की अवस्था के बालकों के लिए अलग-अलग प्रश्नावली बनाई

है। इसमें कुछ उम्र के बालकों को छोड़ दिया। बिने का तरीका क्रम का तरीका था, अर्थात् उसने कुछ उम्रों को छोड़कर सभी उम्रों के लिए प्रश्नावली बनाई है। जो बालक अपनी अवस्थावाली प्रश्नावली के प्रश्नों को हल कर सकता था उसे साधारण बालक कहा जाता था और जो ऐसा नहीं कर पाता था उसे मन्द बुद्धि का समझा जाता था। इसी तरह जो बालक अपनी अवस्था के आगे की प्रश्नावली के प्रश्न हल करने में समर्थ होता था उसे तीव्र बुद्धि वाला समझा जाता था। यहाँ पर बिने महाशय की प्रश्नावलियों के कुछ प्रश्न उद्धृत किये जाते हैं। ये प्रश्न अँग्रेजी बालकों के लिए संशोधित किये गये रूप में हैं।

बिने महाशय की परीक्षा के प्रश्न

तीन वर्ष के बच्चों के लिए

१—अपनी नाक, आँख और मुँह बताओ।

२—दो संख्याओं को दुहराओ। उदाहरणार्थ ३७,६४,७१ (तीनों में से एक सही होना चाहिए)।

३—अपने लिंग का ज्ञान—तुम लड़का हो अथवा लड़की ?

४—अपना नाम और गोत्र बताओ।

५—चाकू, चाबी और पैसे का नाम पूछना।

६—दो तस्वीरों में से चीजों के नाम बताओ।

चार वर्ष के लिए

१—"मुझे ठण्ढ और भूख लगी है" इस बात को कहो।

२—तीन संख्याओं को कहलवाना ६१४, २८६, ५३६ (तीनों में से एक सही होना चाहिए)।

३—चार पैसे की गिनती करो।

४—दो कीलों में से छोटी बड़ी कीलों को बताना।

५—तस्वीरों में से खूबसूरत चेहरे को बताना (तीन जोड़ी चेहरे दिखाना)।

पाँच वर्ष के लिए

१—तीन काम देना—चाबी को टेबुल पर रख दो, दरवाजा बन्द कर दो, किताब ले आओ।

२—एक समकोण चतुर्भुज की नकल करना।

३—दस पद का वाक्य दोहराना।

४—अपनी उम्र बताना।

५—सबेरे और दोपहर का भेद जानना।

६—सामान्य रङ्गों को दिखाकर पहिचनवाना—नीला, पीला, हरा और लाल।

७—चार संख्याओं को कहना।

८—तीन जोड़ी वस्तुओं के वजन जिनमें थोड़ा-थोड़ा फर्क है, बताना।

बिने की परीक्षाओं की विशेषताएँ—बिने की बुद्धिमाप की तीन विशेषताएँ थीं। पहले तो बात यह थी कि बिने ने हजारों बालकों को प्रश्न देकर उचित प्रश्नों को एकत्रित किया था। प्रश्न किसी एक विषय के नहीं थे। भिन्न भिन्न योग्यता जानने के प्रश्न थे।

दूसरी बात बिने की बुद्धिमाप में यह थी कि उसने उम्र की माप रक्खी थी, अर्थात् जो बालक कम अवस्था होने पर अधिक अवस्थावाले बालक के प्रश्नों को हल कर सकता था उसे प्रखर बुद्धिवाला समझा जाता था और जो अपनी अवस्था के प्रश्नों को नहीं कर सकता था उसे मन्दबुद्धिवाला समझा गया। इस प्रकार बालकों की एक "वास्तविक आयु" और दूसरी "मानसिक आयु" मानी गई, उन दोनों की तुलना से बुद्धिमाप की गई।

तीसरी विशेषता बिने की बुद्धिमाप में यह थी कि उसने किसी विशेष बुद्धि का सिद्धान्त नहीं बनाया। बुद्धियाँ एक ही प्रकार की हैं अथवा अनेक प्रकार की, इसकी झंझट में बिने नहीं पड़ा। उसके प्रश्न बालक की साधारण बुद्धि की माप करने के लिए ही थे।

बुद्धिमाप में उन्नति

बिने के प्रयास को देखकर अनेक लोगों ने और प्रयास किया। बिने की बुद्धिमाप से अनेक प्रकार की उन्नतियाँ हुईं और आजकल कितने ही मनोवैज्ञानिक अपना बहुमूल्य समय नई-नई बुद्धिमाप के बनाने में लगा रहे हैं तथा बुद्धि के स्वरूप और प्रकार के विषय में अनेक प्रकार के सिद्धान्त स्थिर कर रहे हैं।

बुद्धि की उपलब्धि[1]—बिने की बुद्धिमाप की पद्धति में कई परिवर्तन हुए हैं जिनकी ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है। पहला महत्त्वपूर्ण परिवर्तन जर्मनी के मालमनोवैज्ञानिक विलियम स्टर्न के सुझाने से किया गया। अब मानसिक आयु की माप नहीं मानी जाती। "बुद्धि उपलब्धि" के द्वारा अब बुद्धि मापी जाती है। मानसिक आयु[2] में वास्तविक आयु[3] का भाग देकर इसे हम प्राप्त करते हैं। इस बात को इस प्रकार लिख सकते हैं—

---

1. Intelligence Quotient. 2. Mental age. 3 Chronological age.

$$\text{बुद्धि-उपलब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}}$$

यदि मानसिक आयु में वास्तविक आयु का भाग देने से भागफल १ आया तो बालक साधारण बुद्धिवाला समझा जायगा। यदि १ से कम भागफल आया तो उसे मन्द बुद्धि समझा जायगा। आजकल इस भागफल को १०० से गुणा कर दिया जाता है। १०० भागफल आने पर बालक को साधारण बुद्धि वाला समझा जाता है। १०० से कम होने पर मन्द बुद्धि और १०० से अधिक होने पर प्रखर बुद्धि का समझा जाता है।

$$\text{अर्थात् बुद्धि-उपलब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times १००$$

निम्नलिखित प्रकार से बालकों को उनकी बुद्धि के अनुसार ९ विभागों में विभाजित किया गया है—

प्रकार का नाम	बुद्धि-उपलब्धि
प्रतिभाशाली[1]	१४० से ऊपर तक
प्रखरबुद्धि[2]	१२० से १४० ,,
तीव्रबुद्धि[3]	११० से १२० ,,
सामान्यबुद्धि[4]	९० से ११० ,,
मन्दबुद्धि[5]	८० से ९० ,,
निर्बलबुद्धि[6]	७० से ८० ,,
मूढ़[7]	५० से ७० ,,
मूर्ख[8]	२५ से ५० ,,
जड़[9]	० से २५ ,,

निम्नलिखित विधि से बालकों की बुद्धि-उपलब्धि निश्चित की जाती है। मान लीजिए, कोई बालक किसी परीक्षा में ८० नम्बर पाता है; ये दस वर्ष की उमर के बालकों के औसत नम्बर हैं। अब इस बालक की मानसिक आयु दस वर्ष की समझी जायगी। यदि इस बालक की वास्तविक आयु ८ वर्ष की हुई तो उसकी बुद्धि-उपलब्धि १०।८ × १००।१ = १२५ होगी। यदि उस बालक की वास्तविक आयु १२ साल की हुई तो उसकी बुद्धि-उपलब्धि

1. Genius, 2. Very superior. 3. Bright. 4. N[illegible]
5. Dull. 6. Borderline. 7. Moron. 8. Imbecile. 9. [illegible]

१०।१२×१००।१=३.३ होगी। पहली अवस्था में बालक प्रखर बुद्धि का कहा जायगा और दूसरी अवस्था में मन्द बुद्धि का।

टरमेन का सुधार—बिने महाशय की परीक्षाओं में दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि बालक एक प्रश्नावली के जितने प्रश्नों का उत्तर देता है उसके लिए उसे नम्बर मिलते हैं। बिने की बुद्धिमाप में यह बात न थी। जब किसी आयु की प्रश्नावली के दो प्रश्नों से अधिक के उत्तर बालक ठीक नहीं देता था, उसको कुछ भी नम्बर उस प्रश्नावली में नहीं दिये जाते थे। मान लीजिए, कोई बालक किसी प्रश्नावली के गणित के प्रश्न नहीं कर पाता पर भाषा के प्रश्न सब कर लेता है तो उसे इसके लिये नम्बर नहीं दिये जाते थे। टरमेन महाशय ने इस त्रुटि को दूर किया। उन्होंने ऐसे प्रश्न बनाये जो हरएक आयु के बालकों को दिये जा सकें और बालक को हरएक प्रश्न के लिए नम्बर दिये जायँ। इस प्रकार परीक्षा लेने से बालकों को विशेष विषय की योग्यता का पता चलने लगा है। कोई बालक गणित के कारण और कोई भाषाज्ञान के कारण अधिक नम्बर पाने लगा। अनुभव से देखा गया कि बालकों में साधारणतः एक बराबर बुद्धि होते हुए भी एक ही प्रकार की बुद्धि नहीं होती। कोई बालक गणित में तीव्र होता है, तो कोई इतिहास में, कोई भूगोल में तथा कोई भाषा में।

टरमेन का बुद्धिमापक परीक्षापत्र

तीन वर्ष के लिये

१—शरीर के अवयवों की ओर संकेत करना-(अपनी नाक बताओ)।

२—परिचित वस्तुओं का नाम बताना—दीवाल, घड़ी, तश्तरी (यह क्या है ?)

३—किसी तस्वीर की ओर देखकर और तीन वस्तुओं का नाम बताना, जो कि उसमें हो।

४—लिंग-भेद करना (तुम लड़के हो या लड़की ?)

५—नामकरण करना (तुम्हारा नाम क्या है ?)

६—दुहराना (अनुकरण के रूप में) छः या सात अङ्कों को।

चार वर्ष के लिए

१—भिन्न-भिन्न लम्बाइयों की तुलना करना (कौन बड़ा है ?)।

२—आकृति में पहचान का भेद करना (एक वृत्त दिखलाया जाय और वही आकृति बहुत से भिन्न चित्रों में से चुनवायी जाय)।

३—चार सिक्कों का गिनना।

४—एक वर्ग की आकृति बनाना।

५—व्यावहारिक प्रश्नों का जवाब देना (तुम क्या करोगे जब कि तुम थके हो, भूखे हो या ठंड लग रही हो ?)।

६—चार अङ्कों को दुहराना (अनुकरण में)।

पाँच वर्ष के लिए

१—२ भार की तुलना करना (३ और ५ ग्राम में कौन भारी है ?)

२—रङ्गों का नाम देना या लेना (चार कागज-लाल, पीले, हरे, नीले)।

३—सौन्दर्य की परख (तीन जोड़े चेहरे जिनमें से प्रत्येक में एक बदसूरत और दूसरा खूबसूरत हो —"कौन खूबसूरत है ?")।

४—साधारण ६ वस्तुओं की परिभाषा बतलाना (कुर्सी, घोड़ा, गुड़िया क्या है ?)।

५—"धैर्य का खेल" (एक आयत बनाना जो दो त्रिभुजों से दिखाया गया हो)।

६—तीन आज्ञाओं का पालन करना (इसे टेबुल पर रख दो, दरवाजा बन्द कर दो, मेरे पास वे सन्दूकें लाओ)।

छः वर्ष के लिए

१—दायें और बायें की पहचान (अपना दायाँ हाथ दिखाओ और बायाँ कान)।

२—तस्वीरों में मिटी हुई या भूली हुई बातों को बताना (एक चेहरा बिना नाक का दिखाया जाय और पूरी तस्वीर ने द है न दे)।

३—तेरह सिक्कों का गिनना।

४—व्यावहारिक प्रश्न—(क्या करोगे यदि बरसात हो रही है और तुम्हें स्कूल जाना हो)।

५—चालू सिक्कों का नाम बताना।

६—दुहराना (नकल म-वाक्य १६ से १८ व्यवहार में)।

सात वर्ष के लिए

५—स्मृति से भेद करना या पहचानना (एक मक्खी और तितली का भेद; एक पत्थर और झन्डा, लकड़ी और शीशा)

६—एक बहुभुज क्षेत्र की नकल करना।

सामूहिक बुद्धिमाप[1]

बुद्धिमाप की परीक्षा का आविष्कार फ्रांस में हुआ, किन्तु आज इसका उपयोग अमेरिका और इङ्गलैंड में अधिक होता है। बिने महाशय द्वारा आविष्कृत बुद्धिमापक परीक्षा वैयक्तिक थी। इस परीक्षा में एक-एक विद्यार्थी की बुद्धि अलग-अलग मापी जाती थी। अमेरिका के मनोवैज्ञानिकों ने सामूहिक बुद्धिमाप की परीक्षाओं का आविष्कार किया, अब हजारों व्यक्तियों की बुद्धिमाप की परीक्षा एक साथ हो सकती है। एक ही प्रश्न-पत्र सभी उमर के बालकों को दे दिया जाता है। प्रत्येक उमर के साधारण बालक के नम्बर क्या हो सकते हैं यह पहले से ही निश्चित कर लिया जाता है। इस निश्चय के लिए अनेक बालकों पर बुद्धिमापक परीक्षा का प्रयोग किया जाता है। जब प्रत्येक उमर के बालक के औसत नम्बर मिल जाते हैं तो उनके सहारे दूसरे बालकों की बुद्धि का अन्दाजा लगाया जाता है। जो बालक अपनी उमर के बालकों के औसत नम्बर पा लेता है उसे साधारण समझा जाता है, जो उससे अधिक पाता है वह तीव्र बुद्धि वाला समझा जाता है और जो कम पाता है वह मन्द बुद्धि वाला माना जाता है।

हम यहाँ देखते हैं कि सामूहिक परीक्षा मे विभिन्न आयु के बालकों के लिए विभिन्न प्रकार के प्रश्न नहीं होते। प्रश्न एक ही होते हैं। पर भिन्न-भिन्न उमर के लड़कों के हल कर सकने की योग्यता भिन्न-भिन्न होती है। इसे पहले ही निश्चित कर लिया जाता है। सामूहिक परीक्षा-पत्र में प्रश्न सभी प्रकार के होते हैं, कुछ कठिन होते हैं और कुछ सरल। इस तरह कुछ न कुछ प्रश्न सभी बालक कर लेते हैं।

अभी बुद्धिमापक परीक्षा में एक विशेष प्रकार की उन्नति हुई है। अब बालक की विभिन्न प्रकार की रुचि और योग्यताओं की जाँच करने की भी परीक्षाएँ बनाई गई हैं। किसी बालक में मस्तिष्क से काम लेने की अधिक योग्यता होती है और किसी में हाथ से काम करने की अधिक योग्यता होती है। परीक्षा के द्वारा इन विभिन्न प्रकार की योग्यताओं का पता चलाया जा सकता है और जो बालक जिस योग्य होता है उसे उस काम में लगाया जा

1. Group tests.

सकता है। इस प्रकार बालकों की शक्ति व्यर्थ नहीं जाती और उनकी प्रतिभा भले प्रकार से विकसित होती है।

बुद्धिमापक परीक्षा मनोविज्ञान का एक सबसे नया आविष्कार है। भारत वर्ष में इसका अभी तक उपयोग नहीं हुआ। इस प्रकार के परीक्षा-पत्र बनाने में बड़ी कठिनाई होती है। जब तक ऐसा परीक्षा-पत्र कई हजार व्यक्तियों को देखकर प्रमाणित नहीं बनाया जाता तब तक उस परीक्षा-पत्र का कोई महत्त्व नहीं होता। जब परीक्षा करने के उपरान्त बहुत-सी सामग्री इकट्ठी हो जाती है तो उसका ठीक उपयोग करने के लिए और परीक्षा-पत्र का प्रमाणित बनाने के लिए गणित की आवश्यकता पड़ती है। बहुत से लोगों को तो परीक्षा लेने की सुविधा नहीं होती और जिन्हें होती भी है उन्हें स्टेटिस्टिक्स (गणित की विशेष शाखा) का इतना ज्ञान नहीं होता जो परीक्षा से प्राप्त सामग्री का सदुपयोग कर सकें। अतएव भारतवर्ष में अभी तक दो-एक को छोड़ कोई प्रमाणित बुद्धि-माप परीक्षा-पत्र नहीं बन पाया है।

बुद्धि का स्वरूप[1]

हम बुद्धि के विषय में अनेक प्रकार की चर्चा करते हैं, मनुष्यों की बुद्धि भी मापते हैं, पर अभी तक बुद्धि है क्या इस पर मनोवैज्ञानिक एकमत नहीं हो पाये हैं। बुद्धि का कार्य ज्ञान मात्र देना है अथवा वह क्रियात्मक मानसिक शक्ति है, इस पर मतैक्य नहीं है। कुछ मनोवैज्ञानिकों के कथानुसार मनुष्य की ज्ञानात्मक और क्रियात्मक शक्तियों को पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकता, अतएव मनुष्य की बुद्धि की माप मनुष्य की कार्य-क्षमता से हो जा सकती है। जिस व्यक्ति में जितनी काम करने की आकांक्षा और योग्यता है वह उतना ही बुद्धिमान् होगा। मैक्डूगल महाशय बुद्धि को क्रियात्मक मानसिक शक्ति मानते हैं। दूसरे मनोवैज्ञानिक उसे ज्ञानात्मक शक्ति ही मानते हैं।

बुद्धि के स्वरूप के विषय में एक दूसरे प्रकार का भी विवाद है। कुछ लोग उसे एक ही शक्ति मानते हैं, कुछ लोग उसे कई प्रकार की शक्तियों का समुच्चय मानते हैं और कुछ बुद्धि को दो प्रकार की योग्यताओं का मिश्रण मानते हैं। साधारण विचार के अनुसार बुद्धि एक ही प्रकार की शक्ति है। जिसमें यह शक्ति होती है वह अपने सभी कामों को भले प्रकार से करता है और जिसे यह शक्ति नहीं होती उसके हरएक काम में त्रुटि हो जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक कुशल गणितज्ञ कुशल कवि भी बन सकता है। बुद्धि को जिस ओर मोड़ दिया जाय वह उसी ओर काम करने लगती है।

1. Nature of intelligence.

प्रतिभाशाली व्यक्ति जिस काम को हाथ में लेता है, अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन उसी में करता है।

इस सिद्धान्त के प्रतिकूल अमेरिका के महान् शिक्षा मनोवैज्ञानिक थार्नडाइक महाशय का सिद्धान्त है। इनके कथनानुसार बुद्धि अनेक प्रकार की शक्तियों का सञ्चय मात्र है। इन शक्तियों में समता का रहना अथवा न रहना आवश्यक नहीं है। एक व्यक्ति यदि किसी एक प्रकार का कार्य करने में कुशल है तो हम उसके दूसरे प्रकार के कार्य करने के विषय में कुछ भी अनुमान नहीं कर सकते। एक बालक भाषा के परचे में ८० प्रतिशत नम्बर पा सकता है और गणित में शून्य नम्बर पा सकता है—ऐसा देखा भी जाता है। जो व्यक्ति गाने की कला में प्रवीण है वह गणित से सम्बन्ध रखनेवाली विद्या में बिलकुल अकुशल हो सकता है।

इन दोनों सिद्धान्तों में कुछ अत्युक्ति है। बुद्धि के स्वरूप के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त अधिक मनोवैज्ञानिकों को मान्य है वह इङ्गलैण्ड के मनोवैज्ञानिक चार्ल्स स्पीयरमैन महाशय का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि दो प्रकार की शक्तियों की बनी होती है। पहले प्रकार की शक्ति ऐसी होती है जो मनुष्य की सभी प्रकार की योग्यताओं में कार्य करती है और दूसरे प्रकार की शक्ति उसकी विशेष योग्यताओं में कार्य करती है। मान लीजिए, किसी मनुष्य में गणित की योग्यता अधिक है। इस गणित की योग्यता के दो अंग हैं। एक अंग भाषा, भूगोल, इतिहास आदि समझने की योग्यता में समान है और दूसरा अंग गणित की योग्यता का विशेष अंग है। इस तरह प्रत्येक व्यक्ति, वह चाहे जिस कार्य को करता हो, दो प्रकार की बुद्धियों से काम लेता है, एक सामान्य बुद्धि और दूसरी विशेष बुद्धि। वास्तव में ये दोनों बुद्धियाँ सम्पूर्ण बुद्धि के अंग हैं।

अस्तु, मनुष्यों की इस साधारण धारणा में आंशिक सत्य है कि चतुर मनुष्य हर एक काम कुशलता से ही करता है और इस कथन में भी आंशिक सत्य है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की प्रकृति और बुद्धि भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। मनुष्य के स्वभाव में सामान्य और विशेष दोनों प्रकार की शक्तियाँ वर्तमान हैं। यही बात उसकी बुद्धि के विषय में भी है। सामान्य और विशेष मिलकर ही मनुष्य का स्वभाव बना है।

बुद्धि और ज्ञान-भण्डार

मनुष्य की बुद्धि की विशेषता जन्मजात है। मन्द बुद्धि वाला व्यक्ति प्रखर बुद्धि का नहीं बनाया जा सकता और न प्रखर बुद्धिवाले को मन्दबुद्धि

बनाया जा सकता है। बुद्धिमापक परीक्षाएँ इस जन्मजात बुद्धि का माप करती हैं। यह बुद्धि मनुष्य के ज्ञान-भण्डार से भिन्न पदार्थ है। मनुष्य का ज्ञानभण्डार उसकी बुद्धि के उपयोग पर निर्भर करता है। यह मनुष्य के अनुभव के साथ-साथ बढ़ता है। जो मनुष्य जितना अधिक मानसिक परिश्रम करता है उसका ज्ञान-भंडार उतना ही बड़ा होता है। देखा गया है कि कुछ बुद्धि में प्रखर लोगों का ज्ञानभण्डार सामान्य बुद्धिवाले व्यक्तियों के ज्ञान-भण्डार से कम है। इसका कारण प्रखर बुद्धि वालों का अपनी बुद्धि का सदुपयोग न करना है। मनुष्य अपनी बुद्धि का सदुपयोग करके ही उससे अधिक लाभ उठा सकता है।

हमारे ज्ञान-भण्डार की वृद्धि बुद्धि से बिलकुल स्वतन्त्र वस्तु नहीं माननी चाहिए। सामान्यतः प्रखर बुद्धिवाले व्यक्ति का ज्ञान-भण्डार साधारण बुद्धि वाले व्यक्ति से अधिक ही रहता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य को जो योग्यता प्रकृति देती है उसके साथ-साथ उस योग्यता को काम में लाने की प्रवृत्ति भी देती है। बुद्धि का सबसे भला उपयोग अपने ज्ञान की वृद्धि करने में है, अतएव प्रखर बुद्धि के लोग साधारणतः अपने ज्ञान की वृद्धि में लगे रहते हैं।

यहाँ भी ध्यान देने योग्य बात है कि बुद्धि की माप भी ज्ञान के भंडार के द्वारा ही की जाती है। जिस प्रकार किसी बर्तन की शक्ति की माप उस वस्तु से ही होती है जो उसमें समाती है; इसी तरह बुद्धि की माप भी, जितना ज्ञान उसमें किसी समय है, उसी से होती है। पर ये दोनों बातें एक ही नहीं हैं। बुद्धि का कार्य ज्ञान का एकत्र करना मात्र नहीं माना जाता, उसका सदुपयोग भी माना जाता है। यह सत्य है कि अर्जित ज्ञान के द्वारा ही बुद्धि का माप होता है; किन्तु अर्जित ज्ञान और बुद्धि की शक्ति दोनों एक ही वस्तु नहीं हैं।

बुद्धि और चरित्र

बुद्धि और चरित्र के आपस के सम्बन्ध की एक बड़ी मनोवैज्ञानिक समस्या है। मनुष्य की बुद्धि उसके चरित्र के गुणों की सूचक है अथवा नहीं, इस सम्बन्ध में अनेक मत हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि बुद्धि का चरित्र के गुणों से कोई संबन्ध नहीं है। बुद्धि के गुण जन्मजात हैं और चरित्र के गुण अर्जित हैं। एक प्रखर बुद्धिवाला व्यक्ति दुश्चरित्र हो सकता है और एक सामान्य बुद्धिवाला व्यक्ति चरित्रवान् हो सकता है। देखा भी गया है कि संसार के बड़े-बड़े सन्त बुद्धि में प्रखर न थे, पर वे बड़े दृढ़व्रती थे और हम कितने ही प्रतिभावान् व्यक्तियों को दुराचारी और व्यभिचारी पाते हैं। वे अपनी प्रतिभा का उपयोग संसार के कल्याण में न कर उसके विनाश करने में करते हैं

जब समाज की किंवदन्तियों को छोड़कर ठास प्रमाणों को खोजते हैं तो हम एक विचित्रही परिस्थिति पाते हैं। अमेरिका के मनोवैज्ञानिकों ने अनेक जेलखाने के कैदियों की बुद्धि का माप करके पता चलाया तो देखा कि उनमें से ८० प्रतिशत कैदियों की बुद्धि सामान्य से गिरी हुई थी—अर्थात् अधिकतर कैदी मन्दबुद्धि के पाये गए, कुछ कैदी सामान्य बुद्धि के पाए गए और बहुत ही थोड़े प्रखर बुद्धि के पाए गए। इससे यह स्पष्ट है कि बुद्धि की कमी चरित्र निर्माण में कमी का कारण बन जाती है। साधारणतः जो व्यक्ति जितना बुद्धि में प्रवीण है उसका चरित्र में उतना ही भला होना स्वाभाविक होता है। ऐसा होना युक्तिअसंगत भी नहीं है। जिस मनुष्य में विचार करने की शक्तियाँ नहीं होतीं वह अपने कामों के सुदूर भविष्य में होनेवाले परिणाम को भी नहीं देख सकता। वह उद्वेगों के आवेश में आकर कुछ का कुछ कर बैठता है। जो मनुष्य आगे पीछे की बात सोच सकता है वही अपने-आपको नियन्त्रण में रख सकता है। ऐसा ही मनुष्य समय पर उचित काम कर सकता है। पहले पहल जो काम मनुष्य स्वार्थबुद्धि से करता है वह उसी काम को पीछे आदत पड़ जाने पर सहज भाव से करने लगता है। चरित्र का विकास स्वार्थ के त्याग में नहीं, वरन् उसके विकास में है। जो व्यक्ति अपने स्वत्व को जितना बड़ा देखता है उसका चरित्र उतना ही ऊँचा होता है। उसकी सब क्रियाएँ उच्च हेतु से प्रेरित होती हैं। इन हेतुओं की उपस्थिति प्रखर बुद्धिवाले व्यक्ति के मन में ही सम्भव है। मन्द बुद्धिवाला व्यक्ति इन हेतुओं को समझ ही नहीं सकता। वह जिसे अपनी भलाई समझता है उसे प्रखर बुद्धिवाला व्यक्ति दुःख का कारण जान लेता है। अतएव वह अपने-आपको अवाञ्छनीय मार्ग से जाने से रोक लेता है और कल्याणकारी मार्ग में लगता है।

प्रश्न

१—मनुष्य की बुद्धि कैसे मापी जा सकती है? बिने महाशय ने इस सम्बन्ध में क्या आविष्कार किया है?

२—बिने और टरमेन महाशय की बुद्धिमापक परीक्षाओं की विशेषताएँ बताइये।

३—"बुद्धि-उपलब्धि" क्या है? इसे कैसे निकाला जाता है? उदाहरण देकर समझाइये।

४—सामूहिक बुद्धिमापक परीक्षाओं के क्या लाभ हैं? इनका हम क्या उपयोग कर सकते हैं?

५—बुद्धि क्या वस्तु है? क्या आप बुद्धि को एक शक्ति अथवा अनेक शक्तियों का समुच्चय मानते हैं? क्यों?

६—बुद्धि और चरित्र के सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।

सोलहवाँ प्रकरण

मन के गुप्त स्तर

अचेतन मन[1] की खोज का आरंभ

आधुनिक मनोविज्ञान ने मन की खोज में चमत्कारिक उन्नति की है। मनसम्बन्धी नवीन खोजें इतने महत्त्व की हैं कि वे हमारे मनोविज्ञान के साधारण ज्ञान में एक प्रकार की क्रान्ति उत्पन्न कर देती हैं। वास्तव में इन खोजों के परिणाम-स्वरूप "मनोविश्लेषण" नामक एक नया विज्ञान ही तैयार हो गया है। इन खोजों के करनेवाले व्यक्ति सिगमण्ड फ्रायड हैं। फ्रायड महाशय अपने समय के एक प्रतिष्ठित डाक्टर थे। उन्होंने मनुष्य की मानसिक और शारीरिक व्याधियों का भले प्रकार अध्ययन किया। उन्हें अपने अनुभव से ज्ञात हुआ कि कितनी ही शारीरिक बीमारियों का कारण मानसिक होता है। इस प्रकार की बीमारियाँ शारीरिक चिकित्सा से नहीं जातीं। उनके लिए मानसिक उपचार की आवश्यकता होती है। मनुष्य की कुछ मानसिक बीमारियाँ भी उसके कुछ अप्रिय अनुभवों के कारण होती हैं। इन बीमारियों को मानसिक उपचार के द्वारा ही हटाया जा सकता है।

फ्रायड महाशय मानसिक बीमारियों की चिकित्सा-विधि को सीखने के लिए फ्रांस के एक प्रसिद्ध मानसिक चिकित्सक इमील कूए महाशय के पास गये। इमील कूए महाशय अपनी विधि से हिस्टीरिया और अनेक प्रकार की मानसिक बीमारियों को हटा देते थे। कूए महाशय की विधि-निर्देश की विधि थी। रोगी को निर्देश दिया जाता था कि वह अपने शरीर को शिथिल कर दे। इसके पश्चात् उसे विचार-शून्य होने का निर्देश दिया जाता था। विचार शून्य होने के पश्चात् रोगी को मन में स्वास्थ्य की भावना लाने का निर्देश दिया जाता था, किसी प्रकार के विचार को उठने से रोका जाता था। इस तरह के अभ्यास से अनेक रोगी स्वास्थ्य-लाभ कर लेते थे, किन्तु फ्रायड महाशय ने देखा कि एक बार स्वास्थ्य-लाभ करने के पश्चात् भी रोगी बार-बार उसी मानसिक बीमारी से पीड़ित होते हैं, उनका रोग जड़ से नहीं जाता। कूए महाशय रोग का कारण ढूँढ़ने की चेष्टा नहीं करते थे। रोग का चाहे जो कारण

1. Unconscious mind.

हो, वे एक ही प्रकार की चिकित्सा करते थे। इस चिकित्सा की विधि थी—रोगी के मन में निर्देश के द्वारा आरोग्य के विचार प्रविष्ट करना।

फ्रायड महाशय ने देखा कि रोगी की वे भावनाएँ, जो उसके रोग के कारण हैं, समूल नष्ट नहीं होतीं। वे निर्देशक के प्रबल विचारों के कारण दब जाती हैं और जब अवसर मिलता है, तो उभड़ आती हैं। फ्रायड महाशय के मन में यह कल्पना आई कि दबी भावनाओं को प्रबल निर्देश के द्वारा दबाना नहीं वरन् उनको किसी प्रकार खोजकर बाहर लाना रोग को समूल नष्ट करने के लिए आवश्यक है। इस भावना से प्रेरित होकर उन्होंने मन के गुप्त-स्तरों की खोज करने का दृढ़ संकल्प किया। इसी के परिणाम-स्वरूप आधुनिक मन की अज्ञात क्रियाओं की चमत्कारिक खोजें हुई हैं। वास्तव में इस समय मन के दो भाग माने जाते हैं—एक वह जो हमें साधारणतः ज्ञात है जिसे चेतन मन कहते हैं और दूसरा वह जिसका ज्ञान हमें नहीं रहता और उसकी क्रियाओं का ज्ञान करना भी बड़ा कठिन होता है—वह है अचेतन मन।

डाक्टर फ्रायड ने अपना सारा शेष जीवन अचेतन मन की क्रियाओं के अध्ययन करने में व्यतीत कर दिया। उनके विचार इस समय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना प्रभाव दर्शा रहे हैं। फ्रायड के दो प्रधान शिष्य एडलर और युंग महाशय हुए। उन्होंने फ्रायड के काम को आगे बढ़ाया। फ्रायड और दोनों शिष्यों के अचेतन मन की क्रिया-सम्बन्धी सिद्धान्तों में अन्तर अवश्य है किन्तु सभी मनोवैज्ञानिक फ्रायड महाशय की इस बात के अनुयायी हैं कि अचेतन मन का क्षेत्र चेतन मन से कहीं अधिक विस्तृत है। वास्तव में संसार को अचेतन मन की कल्पना उन्होंने दी।

अचेतन मन का स्वरूप

मन के तीन भाग—नवीन मनोविज्ञान की खोजों के परिणाम-स्वरूप यह निश्चय हुआ कि मन के तीन भाग हो सकते हैं—चेतन मन[1], चेतनोन्मुख[2] और अचेतन[3]। चेतन मन, मन का वह भाग है, जिसमें मन की समस्त ज्ञात क्रियाएँ चला करती हैं। चलना, फिरना, बोलना, लिखना, पढ़ना, सोचना आदि क्रियाओं का नियन्त्रण चेतन मन करता है। चेतन मन की क्रियाओं का हमें अहंकार रहता है। यदि इन क्रियाओं में कोई भूल होती

1. Conscious mind. 2. Preconscious. 3. Unconsious,

है, तो हम अपने-आपको जिम्मेदार समझते हैं। हमारा कोई भी विचार चेतन मन में ही आकर प्रकाशित होता है।

चेतन मन के परे चेतनोन्मुख मन है। मन के इस स्तर में वे भावनाएँ स्मृतियाँ, इच्छायें तथा वेदनाएँ रहती हैं, जो प्रकाशित नहीं है, किन्तु जो चेतना पर आने के लिए तत्पर हैं। कोई भी विचार चेतन मन में प्रकाशित होने के पूर्व चेतनोन्मुख मन में ही रहता है। यदि किसी विचार को, जो कि चेतनोन्मुख मन में वर्तमान है, हम चेतना पर लाना चाहें, तो वह आ जाता है।

चेतनोन्मुख मन के परे अचेतन मन है। अचेतन मन के विचार तथा भावनाएँ न हमें ज्ञात रहती हैं और न प्रयत्न करने से ही वे चेतना के स्तर पर आती हैं। उन्हें चेतना के ऊपर लाने के लिए अथवा उनकी अचेतन मन में उपस्थिति जानने के लिए एक विशेष विज्ञान की आवश्यकता होती है।

मन की नाट्यशाला—फ्रायड महाशय ने हमारे समस्त मन की तुलना एक नाट्यशाला से की है। चेतन मन नाट्यशाला की रंग-भूमि के उस भाग के समान है, जहाँ रंग-भूमि के अनेक पात्र अभिनय दिखाने के लिए आते हैं। वे अपने खेलों को दिखाकर अदृश्य स्थान में विलीन हो जाते हैं। अचेतन मन नाट्यशाला की सजावट के कमरे के समान है, जहाँ पर पात्र अभिनय के लिए अनेक प्रकार की तैयारियाँ करते हैं। चेतनोन्मुख मन रंगशाला में घुसने के दरवाजे के समान है। हम जिन विचारों का दमन करते हैं, वे नष्ट नहीं होते। वे हमारे मन के किसी न किसी कोने में पड़े रहते हैं। यहाँ रहकर वे निष्क्रिय नहीं रहते। वे हमारे व्यक्तित्व के प्रतिकूल षड्यन्त्र रचा करते हैं। जब दमन की गई भावनाओं का समूह अधिक हो जाता है, तो मनुष्य के व्यक्तित्व में अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते हैं। मनुष्य की अनेक प्रकार की कुचेष्टाओं और मानसिक बीमारियों का प्रधान कारण दबी हुई भावनाएँ होती हैं। स्वप्न की उत्पत्ति इन्हीं के कारण होती है।

अचेतन मन की भावनाएँ और स्वप्न—अचेतन मन की भावनाओं के प्रकाशित होने का एक प्रधान मार्ग स्वप्न है। हमारी बहुत सी भावनाएँ, इच्छाएँ या स्मृतियाँ चेतना को अप्रिय होती हैं। इन भावनाओं, इच्छाओं और स्मृतियों को हमारी चेतना दमन करती है। हम अपने अप्रिय अनुभव को भुलाने की चेष्टा करते हैं। जिस अनुभव के स्मरण से हमें शोक अथवा आत्म-ग्लानि होती है, उसे हम भूल जाना चाहते हैं। इसी तरह जिन वासनाओं को हम अनैतिक मानते हैं, उन्हें भी चेतना के स्तर पर नहीं आने देना चाहते; उन्हें हम स्वीकार भी नहीं करना चाहते हैं। ऐसी स्मृतियाँ

और वासनाएँ हमारी स्वप्नावस्था में अनेक रूप धारण कर प्रकट होती हैं। स्वप्न दबी स्मृतियों और इच्छाओं का कार्य है। फ्रायड महाशय ने स्वप्न की भाषा समझने के लिए महत्त्व का प्रयास किया है। दबी हुई भावना स्वप्न में बड़े गुप्त रूप से प्रकट होती है। उसे पहचानने के लिए विशेष प्रकार की कुशलता और सूक्ष्म दृष्टि चाहिए, किन्तु इतना निश्चित है कि दबी हुई भावना के जानने का प्रमुख साधन स्वप्न-अध्ययन ही है।

गुप्त वासनाओं का प्रतिबंधक[1]—चेतन और अचेतन मन के बीच एक प्रतिबन्धक व्यवस्था रहती है। यह प्रतिबन्धक-व्यवस्था मनुष्य की नैतिक धारणाओं की बनी रहती है। यह एक पहरुआ का काम करती है। जिस तरह पहरुआ घर के भीतर जानेवाले लोगों की छानबीन करता है उसी तरह यह प्रतिबन्धक चेतन मन पर आनेवाली भावनाओं की छानबीन करता है। इसके डर के कारण कोई अनैतिक भावना चेतन मन के स्तर पर प्रकाशित नहीं होती। यह प्रतिबन्धक स्वयं चेतना के नीचे की सतह से काम करता है; अर्थात् जब किसी व्यक्ति की कोई अनैतिक वासना प्रतिबन्धक के द्वारा दबाई जाती है, तो स्वयं उस व्यक्ति की चेतना को यह ज्ञात नहीं रहता कि उसकी कोई वासना दबाई जा रही है। इसके कारण मनुष्य को अपनी ही गुप्त भावनाओं को जानने में बड़ी कठिनाई होती है। कभी-कभी इस प्रतिबन्धक के कारण मनुष्य अपने आपको, जैसा वह है, उसके ठीक प्रतिकूल जानता है।

इसी प्रतिबन्धक के कारण हम अपने स्वप्नों में कुछ-का-कुछ देखते हैं; अर्थात् हमारा प्रकट स्वप्न उसके वास्तविक अर्थ से बिलकुल भिन्न होता है। जिस तरह सतर्क खुफिया पुलिस से चोर-डाकू डरा करते हैं और उनकी ऊँघने की अवस्था में अनेकों स्वाँग रचकर बाहर निकलते हैं, उसी तरह दलित अनैतिक भावनाएँ मनुष्य की सुप्त अवस्था में अनेक स्वाँग रचकर बाहर आती हैं और स्वप्न के रूप में प्रकाशित होती हैं। इस तरह वे अपनी आत्मतुष्टि प्राप्त करने की चेष्टा करती हैं। स्वप्नों के द्वारा मनुष्य की अतृप्त वासनाओं की व्याजरूप से तृप्ति होती है। जिन व्यक्तियों की भोग की इच्छाएँ जितने अधिक कठोर नियन्त्रण में रहती हैं, उन्हें उतने ही अधिक भोग-सम्बन्धी स्वप्न होते हैं।

अचेतन मन की प्रबल वासनाएँ

कामवासना—अचेतन मन की सबसे प्रबल वासना कौन है, इसके

1. Censor.

सम्बन्ध में मनोविश्लेषण-वैज्ञानिकों में बड़ा मतभेद है। डाक्टर फ्रायड के अनुसार अचेतन मन की सबसे प्रबल वासना, कामवासना है। इस वासना के प्रकाशन का व्यक्ति के द्वारा कठोर नियन्त्रण होता है। समाज में कामवासना-सम्बन्धी बातचीत करना बुरा समझा जाता है। मनुष्यों में कामवासना की तृप्ति दूसरों की आँख बचाकर ही की जाती है। जैसे-जैसे मनुष्य की नैतिक धारणा प्रबल होती है, वह कामवासना का कठोर नियन्त्रण करने लगता है। ऐसी अवस्था में यह वासना उस व्यक्ति के स्वप्न, सांकेतिक चेष्टाओं और शारीरिक तथा मानसिक रोगों के रूप में प्रकाशित होने लगती है।

आत्म-प्रकाशन की वासना—एडलर महाशय के अनुसार मनुष्य की सबसे प्रबल वासना, आत्म-प्रकाशन की वासना है। इस वासना का योग्य रीति से तृप्त होना कठिन होता है। इसके अतृप्त रहने पर ही अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। इनका दमन ही आत्महीनता की ग्रन्थि का कारण होता है। कामवासना-सम्बन्धी मनोविकार भी आत्महीनता की ग्रन्थि से सम्बन्ध रखते हैं।

समाज-प्रेम की वासना—युङ्ग महाशय के कथनानुसार मनुष्य की सबसे प्रबल वासना समाज में रहने की वासना है। मनुष्य चाहे कितना ही गौरव प्राप्त क्यों न कर ले और चाहे कितना ही भोग-विलास क्यों न करे, वह तब तक शान्ति नहीं प्राप्त करता, जब तक कि अपने स्वार्थ का समाज के स्वार्थ से ऐक्य स्थापित नहीं करता।

जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में अपने व्यक्तित्व, सुख और समृद्धि की प्रबल इच्छाएँ होती हैं, उसी तरह उसमें समाज को सुखी बनाने की और उसका कृपापात्र बनने की भी इच्छा होती है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में अपने वैयक्तिक सुख की अनेक इच्छाएँ अतृप्त रहती हैं। ये अतृप्त इच्छाएँ उसके वैयक्तिक अचेतन मन की वस्तुएँ हैं। इसके परे मनुष्य का सामूहिक अचेतन[1] मन है। इस मन में मनुष्य की सामाजिक भावनाएँ स्थित रहती हैं। मनुष्य की नैतिक भावनाओं का उदय उसके सामूहिक अचेतन मन से होता है। इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्य की नैतिक बुद्धि का आधार समाज में प्रचलित विचार नहीं है जो उसको वातावरण से प्राप्त होते हैं, वरन् व्यक्ति का सामूहिक अचेतन मन है, जो जन्म से ही उसके साथ रहता है और जिसका प्रभाव मनुष्य की अवस्था के बढ़ने के साथ-साथ देखा जाता है।

युङ्ग महाशय के सामूहिक मन के सिद्धान्त के मानने पर हम यह

1. Collective unconscious.

नही कह सकते कि हमारी सभी दलित वासनाएँ अनैतिक हैं। मनुष्य की नैतिक वासनाओं का दमन उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार उसकी अनैतिक वासनाओं का दमन होता है। जब कभी हम उद्वेग के आवेश में आकर कोई अनुचित काम कर बैठते हैं, तो हमारा मन हमें कोसता है। हम ऐसी अवस्था में अपने हृदय की आवाज को सुनना नहीं चाहते। अपने पाप का प्रायश्चित न करके, पाप की स्मृति को भुलाने की चेष्टा करते हैं। यह दबी हुई हृदय की पुकार हमें कभी-कभी स्वप्नों में सुनाई देती है। इस तरह हमारे अनेक स्वप्न आदेशात्मक होते हैं। नैतिक भावना का दमन भयंकर मानसिक और शारीरिक रोगों का कारण बन जाता है। जितने रोग मनुष्य की अनैतिक भावनाओं के दमन के कारण उत्पन्न होते हैं, इनसे कहीं अधिक रोग उसकी नैतिक भावना के दमन के कारण उत्पन्न होते हैं। ये रोग अधिक प्रचण्ड होते हैं। जनसाधारण की यह सामान्य धारणा कि पाप का परिणाम बुरा होता है, निर्मूल नहीं है।

अचेतन मन और सांकेतिक चेष्टाएँ[1]

सांकेतिक चेष्टाओं के प्रकार—अचेतन मन की प्रबल वासनाएँ सांकेतिक चेष्टाओं के रूप में प्रकट होती हैं। कितने ही लोगों को कुर्सी पर बैठे हुए जाँघें हिलाने की आदत होती है; कितने ही सदा दाँतों से अँगुली का नख काटते रहते हैं, कितने ही होंठ चबाते रहते हैं और कितने ही सदा बगलें झाँकते रहते हैं अथवा कन्धे हिलाते रहते हैं। बहुत से लोगों को गम्भीर विचार करते समय मुँह पर हाथ फेरने की आदत होती है। कितने ही लोग बातचीत करते समय अपने हाथों को एक दूसरे पर इस तरह मलते हैं मानों उन्हें पानी से धो रहे हों। इन सब सांकेतिक चेष्टाओं की एक विशेषता यह है कि जो व्यक्ति इन्हें करता है, उसे करते समय वे ज्ञात नहीं रहतीं। ये चेष्टाएँ मानो अपने-आप होती रहती हैं। वास्तव में यह जान-बूझकर नहीं की जातीं, ये चेतन मन के कार्य नहीं, अपितु अचेतन मन के कार्य हैं।

सांकेतिक चेष्टाओं की उत्पत्ति[2]—इनकी उत्पत्ति कैसे होती है, यह निम्नलिखित दृष्टान्तों से समझा जा सकता है। लेखक के एक मित्र की एक सम्बन्धी बुढ़िया बनारस में, जहाँ कि वह मित्र के साथ रहती थी, सदा जमीन पर इस तरह खोजा करती थी कि मानों वह खोई हुई चीज को ढूंढ़ रही हो। जब इस बुढ़िया से पूछा जाता था कि अम्मा! तुम क्या खोज

1. Symptomatic acts (Automata). 2 Hand-washing mania.

रही हो, तो वह कछ उत्तर नहीं देती थी। वास्तव में उसे यह ज्ञात नहीं रहता था कि वह किसी वस्तु को खोजने जैसी चेष्टा कर रही है। लोगों के प्रश्न पर उसे आश्चर्य होता था। इस आदत की खोज करने से पता चला कि उस बुढ़िया को यह आदत तीन साल पहले न थी। तीन साल पहले बुढ़िया का कुछ धन, जिसे उसने अपने गाँव के मकान में गाड़ दिया था उसकी अनुपस्थिति में किसी ने निकाल लिया। वह गड़े धन का स्थान भूल गई। कई बार ज़मीन खोदने पर भी धन नहीं मिला। उसकी धन प्राप्त करने की इच्छा अतृप्त ही रह गई। यह अतृप्त इच्छा धन खोजने की सांकेतिक चेष्टा के रूप में प्रकट हुई। अब यह बुढ़िया जिस किसी मकान में रहती थी, वह सांकेतिक चेष्टा किया करती थी।

एक व्यक्ति सदा पास की उँगली से अँगूठा मला करता था। एक बार उसने इस तरह अनजाने पाँच रुपये का नोट पाकिट से निकालकर मलकर नष्ट कर डाला। इस सांकेतिक चेष्टा के कारण का पता चलाने से ज्ञात हुआ कि उसने एक बार धोखे में आकर एक दस्तावेज पर अपने अँगूठे की निशान दे दी थी, जिसके कारण उसे भारी हानि उठानी पड़ी थी। इस घटना से उसे भारी मानसिक क्लेश और आत्मग्लानि हुई। वह इस घटना की स्मृति भूल चुका था, किन्तु उसकी वेदनापूर्ण अनुभूति की स्मृति उसके अचेतन मन से कैसे जा सकती थी? उसका आन्तरिक मन अँगूठे में स्याही लगाने से दुखी हो गया था, जो अब सांकेतिक रूप से सदा इस स्याही को पोंछता रहता था।

हेडफील्ड महाशय ने अपनी "साइकॉलॉजी एण्ड मॉरल्स" नामक पुस्तक में सांकेतिक चेष्टाओं का एक सुन्दर उदाहरण दिया है, जिससे इनका अर्थ भली प्रकार से स्पष्ट होता है। हेडफील्ड महाशय के पास एक बार एक ऐसी महिला आयी जो अपने दाम्पत्य जीवन की बड़ी बड़ाई करती थी और अपने पति के प्रति प्रेम के विषय में अनेक बातें कहती थी। हाल ही में उसने एक स्वप्न देखा था, जिसमें उसने अपने पति को रेल की दुर्घटना से शारीरिक क्षति होते हुए पाया था। उसका पति इस समय घर के बाहर था। यह महिला हेडफील्ड महाशय से इस स्वप्न का अर्थ पूछना चाहती थी। जिस समय वह हेडफील्ड महाशय से बातचीत कर रही थी, उन्होंने देखा कि वह अपनी विवाह की अँगूठी को बार-बार अँगुली में डालती और निकालती थी। इस सांकेतिक चेष्टा को देखकर हेडफील्ड महाशय को उसके स्वप्न का कुछ अन्दाजा लगा किन्तु उन्होंने यह नहीं बताया और किसी दूसरे समय के लिये उसका बताना

टाल दिया। हेडफील्ड महाशय ने देखा कि उस महिला ने कुछ ही दिन के पश्चात् अपने पति को तलाक दे दिया है। वास्तव में वह महिला अपने विवाहित जीवन से असन्तुष्ट थी। उसकी आन्तरिक धारणा थी कि उसने पति के चुनाव में भूल की है। उसका आन्तरिक मन इस व्यक्ति से अपना पिंड छुड़ाना चाहता था। किन्तु उसकी यह इच्छा स्वयं उसे ज्ञात न थी, अर्थात् उसके चेतन मन के *समक्ष नहीं आती थी। वह स्वप्नावस्था और सांकेतिक चेष्टाओं* के रूप में प्रकाशित होती थी। उस महिला का अपने विवाह में मिली अँगूठी का अँगुली में बार बार निकालने-पहनने का अर्थ यह था कि अब वह उसे रखना नहीं चाहती, निकाल देना चाहती है। कभी-कभी ऐसी अवस्था में अँगूठी किसी ऐसे स्थान पर रख दी जाती थी, जहाँ से वह खो भी जाती थी। महिला का अपने पति के प्रति अत्यधिक प्रेम प्रदर्शन करना प्रेम भाव का एक आवरण मात्र था।[1]

जो लोग हर समय और विशेष कर किसी कठिन प्रश्न को सोचते समय दाँत से नख को काटने लगते हैं, उनके मन में भी कोई बड़ी ही प्रबल अतृप्त वासना रहती है। वे अपने ऊपर किये गये अत्याचार का बदला लेना चाहते हैं। अँगुलियों के नख काटना बदला लेने का सूचक है। होमरलेन महाशय के कथनानुसार जिस बालक की माता के स्तन से दूध पीने की इच्छा अतृप्त रह जाती है और जिसे पीने के बदले अँगूठा पीने से भी डाँटा जाता है, उसे नख काटने की आदत पड़ जाती है। मानो वह दाँत और नख से अपने ऊपर *किये गये अत्याचार का बदला लेना चाहता है। यह अचेतन मन का कार्य* है। इसका चेतन मन को ज्ञान नहीं रहता और शिष्टाचार के नियमों को जानने से इसमें सुधार भी नहीं होता। यदि सुधार हो भी जाय, तो उसका *स्थान और भी कोई इससे बुरी आदत ले लेती है।*

लेखक के एक बालक के सहपाठी को दाँत से नख काटने की आदत थी। यह आदत अनेक प्रकार के उपदेश देने पर भी नहीं छूटती थी। इस *आदत का कारण उसके आज तक के जीवन का देखकर स्पष्ट होता है।* इस व्यक्ति को अपने चचेरे भाइयों से बड़ी ईर्ष्या थी। उसके पिता की मृत्यु बचपन में हो गई थी और वह अपने चाचा के संरक्षण में रहता था। बचपन में ही उस व्यक्ति को विश्वास हो गया था कि उसका चाचा उसके पिता का सब धन हड़प जा रहा है। वह इसका बदला लेना चाहता था, किन्तु

1. Psychology and Morals

शिष्टाचारवश वह चाचा के प्रति आदर का भाव प्रकट करता था। बड़े होने पर उसने अपने चाचा से बड़ी मुकदमेबाजी और फौजदारियाँ कीं, जिसके परिणाम-स्वरूप वह कंगाल हो गया और चाचा को भी धन और मान की बड़ी हानि उठानी पड़ी। इस समय यह व्यक्ति, जिसकी अवस्था कोई चालीस साल की है, विक्षिप्त अवस्था में है।

आँखों का हिलाना अतृप्त कामवासना का सूचक है। यह सांकेतिक रूप से कामवासना को तृप्त करना है। हाथ के धोने की-सी सांकेतिक चेष्टा किसी अनुचित काम के करने से उत्पन्न आत्म-ग्लानि से मुक्त होने की चेष्टा है।

जिस प्रकार शेक्सपियर के 'मैकबेथ' नामक नाटक में लेडी मैकबेथ अपनी अर्धसुप्त अवस्था में हत्या के पाप से मुक्त होने के लिए हाथ धोने की चेष्टा करती थी, जिन्हें कि वह रक्त-रञ्जित देखती थी, इस प्रकार बहुत से लोग जो अपनी अन्तरात्मा में किसी पाप या आत्म-ग्लानि की अनुभूति करते हैं, वे अपनी जाग्रत अवस्था में ही पाप को हाथ से धोते रहते हैं। इस तरह उनका हृदय एक प्रकार से सन्तोष की अनुभूति करता है।

सांकेतिक चेष्टाओं की उपयोगिता—सांकेतिक चेष्टा व्यक्ति की अतृप्त दबी वासना की तृप्ति करने की चेष्टा से उत्पन्न होती है। इस प्रकार वासना का गुप्त रूप से तृप्त होते रहना व्यक्ति के जीवन को सुचारु रूप से चलने के लिये आवश्यक है। जब तक मानसिक ग्रन्थि अचेतन मन से नष्ट नहीं हो जाती, तब तक सांकेतिक चेष्टा होना अनिवार्य है। जिस प्रकार अतृप्त वासना के अचेतन मन में रहने पर स्वप्नों का होना अनिवार्य है, उसी तरह सांकेतिक चेष्टाओं का होना भी अनिवार्य है। जिस प्रकार स्वप्न निद्रा में विघ्न नहीं डालते, वरन् उसकी रक्षा करते हैं, इसी तरह सांकेतिक चेष्टाएँ मनुष्य के स्वास्थ्य की वृद्धि में बाधा नहीं डालतीं वरन् उसकी रक्षा करती हैं। यदि किसी व्यक्ति की सांकेतिक चेष्टाओं को हम जबरदस्ती रोकें, तो उसके मानसिक जीवन में बड़ी अस्थिरता पैदा हो जाय। जिन व्यक्तियों को सांकेतिक चेष्टाओं के करने की आदत होती है, वे किसी विषय का भली प्रकार तब तक चिन्तन कर सकते हैं, जब तक कि उनकी सांकेतिक चेष्टाएँ होती रहती हैं। सांकेतिक चेष्टाओं के रुक जाने पर विचार की धारा का प्रवाह रुक जाता है। व्यक्ति अपनी प्रतिभा के विनाश का अनुभव करने लगता है। इस प्रसंग में कुछ उदाहरण उल्लेखनीय हैं।

लेखक की एक छात्रा को किसी बात का उत्तर सोचते समय अथवा अपना पाठ याद करते समय सिर पर हाथ डालने की और उसे खुजलाने की

आदत पड़ गई थी। जब कभी वह किसी प्रश्न का उत्तर देती थी, तो वह अपने सिर को खुजलाने लगती थी। छात्रा की माता ने छात्रा को उपदेश देकर इस आदत को छुड़ाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु यह आदत नहीं छूटी। अन्त में कुछ दिन के लिए इस छात्रा के दोनों हाथ बाँध दिये गये। इससे उसके सिर खुजलाने की आदत जाती रही, किन्तु उसकी पढ़ने लिखने में रुचि और बुद्धि की तीव्रता नष्ट हो गई। छात्रा की माता ने यह परिवर्तन देखकर उसे मनमानी चेष्टाएँ करने की स्वतन्त्रता दे दी। छात्रा की प्रखर बुद्धि की स्थिरता पुन धीरे धीरे आ गई। डेढ़ साल के बाद यह आदत बिलकुल नष्ट हो गई। कितने ही लोगों को गूढ़ विषय पर चिन्तन करते समय कोट की बटन पर उँगली फेरने की आदत रहती है। यदि ऐसे व्यक्तियों के कोट की बटन टूटकर गिर जाय, तो उनके चिन्तन के कार्यों में बाधा पड़ जाती है। जिन शिक्षकों को विद्यार्थियों को पढ़ाते समय किसी विशेष प्रकार की सांकेतिक चेष्टा रहती है—जैसे, खरिया मिट्टी को हाथ में लेकर उछालते रहना, दाँत से पेंसिल को काटना, गर्दन पर हाथ फेरना आदि—वे जब इन आदतों के विषय में सावधान कर दिये जाते हैं, तो वे अपने अध्ययन का कार्य भली प्रकार नहीं कर पाते। वास्तव में ऐसी अवस्था में व्यक्ति की अचेतन भावना अपने प्रकाशन का कोई मार्ग न देखकर उसकी चेतना के कार्य में बाधा डालने लगती है।

चेतन मन और मानसिक रोग

अचेतन मन की प्रबल दबी हुई भावनाएँ अनेक प्रकार की मानसिक बीमारियाँ उत्पन्न करती हैं। वे चलने फिरनेवाले स्वप्न[1], हिस्टीरिया[2] द्विव्यक्तित्व[3], बहुव्यक्तित्व[4], अकारण भय[5] और चिन्ता तथा अनेक प्रकार के दूसरे मानसिक उन्मादों[6] का कारण बनती हैं। इस प्रसंग में कुछ उदाहरण उल्लेखनीय हैं।

चलते फिरते स्वप्न—एक महिला जो अपनी बहन से उसके पति के विषय में ईर्ष्या करती थी, अपनी अर्धसुप्त अवस्था में उठी और अपनी बहन के एक चाँदी के डब्बे को जिसमें कि उसने पति की दी हुई कीमती वस्तुओं को रखा था सन्दूक से उठा लाई। इसे उसने अपने तकिये में छिपा दिया, इसके

---

1 Somnambulism 2 Hysteria 3 Double Personality 4 Multiple personality 5 Phobia 6 Insanity.

बाद वह सो गई। सबेरा होने पर उसकी बहन ने अपने डब्बे की खोज की, किन्तु उसका पता न चला। रात को उस कमरे में उसकी बहन के अतिरिक्त कोई नहीं आया था, अतएव उसने अपनी बहन से ही इस डब्बे के बारे में पूछा। उसकी बहन को उस डब्बे का कुछ भी ज्ञान न था। उसकी सामान्य चेतना उसके विषय में कुछ भी न जानती थी। अतएव वह अपनी बहन को डब्बे के विषय में कुछ भी न बता सकी। यही महिला प्रतिदिन इस डब्बे को आधी रात के समय तकिए में से निकालती थी और उसकी वस्तुओं की देख-परख करती और डब्बे को पुनः बन्द करके तकिये के अन्दर छिपाकर रख देती थी। एक दिन उस महिला की बहन ने उसे यह कृत्य करते हुए देख लिया। सबेरा होने पर जब उसकी बहन ने उससे डब्बे का पता पूछा तो वह उसके विषय मे कुछ भी बता न सकी। वास्तव मे उसका चेतन मन उसके विषय में कुछ भी नहीं जानता था।

दुहरे व्यक्तित्व की उत्पत्ति—स्काउट महाशय ने एक स्त्री के दुहरे व्यक्तित्व का बड़ा सुन्दर उदाहरण दिया है। यह स्त्री, जिसकी अवस्था २८ वर्ष की थी, जब एक दिन सोकर उठी तो उसने अपने आपको १६ वर्ष की कुमारी समझा। वह अपने-आपको अपने पिता के घर में बैठा हुई देखने लगी और पढ़ने के लिए पुस्तकें खोजने लगी। वह अपने पति को और अन्य दूसरे सम्बन्धियों को बिलकुल नहीं पहचानती थी। बड़ी कठिनाई के साथ उसे अपने वातावरण के विषय में सिखाया गया। एक साल इस प्रकार रहने के पश्चात् उसका पहले का व्यक्तित्व फिर आ गया और वह एक साल में बीती हुई सभी बातों को भूल गई। इस तरह उसके व्यक्तित्व में अदल-बदल होती रहती थी।

विलियम जेम्स ने अपनी 'प्रिंसिपल्स ऑफ साइकॉलॉजी' नामक पुस्तक में मेरी रोनाल्ड नामक एक अठारह वर्ष की महिला के दुहरे व्यक्तित्व का उदाहरण दिया है। यह महिला जब अठारह वर्ष की थी तब एक दिन बहुत देर तक सोई। सोकर उठने के बाद उसके अपने अठारह वर्ष तक के जीवन की स्मृति जाती रही। वह अपने माता-पिता को भी नहीं पहचान सकती थी। उसे एक शिशु के समान लिखना-पढ़ना फिर से सिखाया गया। इस महिला के मस्तिष्क में कोई शारीरिक क्षति नहीं हुई थी, तिस पर भी उसकी स्मृति में यह विचित्र परिवर्तन हो गया। इस तरह का परिवर्तन व्यक्ति की दबी हुई भावना के कारण होता है।

झक[1] की उत्पत्ति—दबी हुई अचेतन मन की भावना व्यक्ति के मन में किसी विशेष झक को उत्पन्न कर देती है। जिस व्यक्ति के मन में झक रहती है, उसे कभी-कभी यह ज्ञात भी रहता है कि यह झक बिलकुल निरर्थक है किन्तु वह उसको छोड़ नहीं सकता।* लेखक को एक ऐसा व्यक्ति मिला जिसको यह झक पैदा हो गई कि उसका एक मेहतर से झगड़ा हो जायगा

1. Fixation

* इस प्रसङ्ग में एक झक के रोगी का निम्नलिखित वृत्तान्त, जिसे उसने एक हाल के पत्र में लेखक को लिखा है, उल्लेखनीय है—

"मैं दिसम्बर जनवरी दो महीने तक Catarrh रोग (हलक की बीमारी जिसमें बहुत खाँसी और कभी कभी बुखार भी रहता है) से पीड़ित था। इस कारण डाक्टरों ने ६ महीने तक घर से बाहर जाना बन्द करके मुझे धूप और धूल से बचने को कहा। फल यह हुआ कि एक जबरदस्त Mental Breakdown (मानसिक रोग) मुझे हुआ। मेरे दिमाग में २६ एप्रिल, ४५ से अनेक प्रकार के भय वहम और घिनघिनाहट पैदा हो गये। जब कभी मैं पाखाना जाता हूँ मुझे भय होता है कि मैं पाखाना हाथ में लेकर मुँह में न लगा लूँ। फिर जब कभी मैं पेशाब करने जाता हूँ तो डर होता है कि मैं हाथ में पेशाब लेकर पी न लूँ। चौबिस घण्टे मुझे यही भय बना रहता है कि मैं गुदा स्थान पर, जिसे मैं अत्यन्त गन्दा समझता हूँ, हाथ रगड़कर मुँह में न लगा लूँ! मैं पैदल यदि कहीं जाता रहूँ और राह में यदि घोड़े की लीद या ऐसी ही कोई गन्दी चीज देख लूँ तो मुझे भय होता है कि मैं उठाकर खा लूँगा। अत अब ऐसी हालत हो गई है कि मुझे चौबिसों घण्टे एक ऐसे आदमी की आवश्यकता होती है जो एक टक मेरी सारी हरकतों को देखा करे और उनका साक्षी रहे। यदि एक सेकेन्ड को भी उसकी पलकें गिरीं कि मुझे भय होने लगता है कि मैंने कुछ गन्दा काम कर दिया। तबीयत एकदम घबराने लगती है और मैं उससे सवाल जवाब करने लगता हूँ कि मैंने वैसा किया या नहीं उसके खास समझाने पर भी मुझे विश्वास नहीं होता। मैंने अपना आत्म विश्वास और मन शक्ति एकदम खो दी है। इन्हीं सब वजहों से मेरा गुस्सा अधिक बढ़ गया है और स्वभाव चिड़चिड़ा होता जा रहा है। दुनिया के किसी भी काम में मुझ को रस नहीं मिलता और तबीयत नहीं लगती। सदा वही भय सताये रहते हैं। गुदा स्थान छूनेवाली बात के डर से अब आजकल मुझे हरदम पतलून, जिसे मैं ज्यादा सुरक्षित समझता रहता हूँ, पहनना पड़ता है। पतलून के ऊपर से दो तीन बेल्ट से कसे रहता हूँ।"

और इससे उसे फाँसी हो जायगी। उसे यह ज्ञात था कि यह बिलकुल निराधार है तिस पर भी वह उसे छोड़ नहीं सकता था। लेखक के एक शिष्य को अपने ससुर के प्रति यह झक उत्पन्न हो गई थी कि वे उसका समुचित सम्मान नहीं करते, उसे निरादर की दृष्टि से देखते हैं। इस झक के कारण उसे अनिद्रा की बीमारी उत्पन्न हो गई थी। यह शिष्य बड़ा विद्वान् और प्रतिभाशाली व्यक्ति है। वह इस झक से मुक्त होना चाहता था। वह जानता था कि ऐसे विचार से उसे कोई लाभ नहीं, नुकसान ही है, किन्तु जितना ही वह इस झक को छोड़ने का प्रयत्न करता था उतनी ही वह दृढ होती जाती थी।

एक दूसरा झक का रोगी लेखक को हाल ही में मिला। यह भी बड़ा प्रतिभाशाली नवयुवक है। इसे हृदय के रोग होने की झक सवार हो गई है। इसने अपने हृदय की परीक्षा डाक्टरों से कराई। उसके हृदय की गति में कोई दोष नहीं है तिस पर उसके मन में यह भावना आती रहती है कि उसके हृदय की गति रुकी जा रही है।

एक दूसरे रोगी के, जो घर के बड़े सम्पन्न व्यक्ति हैं, मन में यह कल्पना आई कि उनके पेट में नागिन उत्पन्न हो गई है अथवा किसी तरह वह उनके पेट में पहुँच गई है और वह नागिन धीरे धीरे बढ रही है। उनका विश्वास यह हो गया कि उनकी मृत्यु निश्चित है। डाक्टरों ने उनकी शरीर की परीक्षा करने पर और विश्वास दिलाने पर कि उन्हें किसी प्रकार का चिन्ताजनक पेट का विकार नहीं है, उनको संताप नहीं होता था। यह रोगी इस बीमारी में अपनी झक को निर्मूल नहीं समझता था। अतएव उसे अपनी झक से मुक्त करना उतना कठिन नहीं था। जब रोगी स्वयं अपनी झक को झक जानता है, तिस पर भी वह उस झक से अपने को मुक्त नहीं कर सकता, तब उसका मानसिक उपचार कठिन होता है।

अकारण भय—कितने ही लोगों को कीड़े-मकोड़े और पतगों का तथा छिपकलियों आदि का भय रहता है। लेखक के एक शिष्य को मक्खियों का बड़ा भय है। जब कोई मक्खी उड़कर उसके शरीर पर बैठ जाती है तो उसे यह भय हो जाता है कि वह मक्खी अपने पैर में बहुत सा जहर बाहर से ले आई है और यह जहर वह उसके शरीर पर छोड़ दे रही है। इससे उसकी मृत्यु होने की सम्भावना है। इस भय को वह व्यक्ति निरर्थक जानता है तिस पर भी वह उससे मुक्त नहीं हो सकता, इसका कारण खोजने पर पता चला कि वह जब स्कूल में पढ़ता था तब वह बहुत से कीट-

पतिङ्गों को बटोरकर एक शीशे के गिलास में एकत्र करता था। विभिन्न प्रकार की तितलियाँ अलग-अलग शीशे के बर्तनों में रखी जाती थीं। इन पर अपनी प्राण-शक्ति के अनेक प्रयोग किये जाते थे। जहर और क्लोरोफार्म आदि का इन पर प्रयोग किया जाता था। एक दिन जब यह व्यक्ति पतिङ्गों को शीशे में लेकर बैठा हुआ था जिसमें कि एक विशेष प्रकार का जहर था, वह विचार करने लगा कि यदि इसमें से एक कीड़ा उसके ओंठ पर आकर बैठ जाय तो उसकी क्या दशा होगी! जब से यह कल्पना उसके मन में आई वह कीड़े-मकोड़ों से डरने लगा। उसके सब प्रयोग बन्द हो गये। यह व्यक्ति एक वैश्य घर का लड़का है। इसकी माँ वैष्णव है और सारा परिवार हिन्दू-धर्म के विचारों से परिपूरित है। इस परिवार में जीवों की हत्या को पाप समझा जाता है। सम्भव है, ऐसी स्थिति में इस व्यक्ति के उक्त अकारण भय का कारण इसका नैतिक भावना का दमन हो।

लेखक के एक शिष्य को साँप का बड़ा भय उत्पन्न हो गया था। इस भय के कारण वह रात को घर से नहीं निकल सकता था। वह दिन-रात इस भय से पीड़ित था। इसको निराधार जानते हुए भी वह उससे मुक्त नहीं हो सकता था। यह भय भी वास्तव में दबी हुई काम-वासना की भावना का प्रतीक था।

जो व्यक्ति अकारण भय से पीड़ित रहता है उससे उस भय के विषय में तर्क-वितर्क करके उसे भय से मुक्त करने की चेष्टा करना विफल होता है। अकारण भय वास्तविक भय की वस्तु का प्रतीक होता है। जब तक व्यक्ति को इस वास्तविक भय से मुक्त नहीं किया जाता तब तक वह अकारण भय से मुक्त नहीं होता।

मानसिक ग्रन्थि और शारीरिक रोग

जिस प्रकार मनुष्य की असन्तुष्ट वासना मानसिक रोग का कारण होती है उसी तरह वह शारीरिक रोग का भी कारण होती है। लकवा, दमा, मधुमेह, अन्धापन, कुपच, वमन, हृदय की धड़कन, किसी अंग का फड़कना आदि अनेक रोग दबी हुई मानसिक ग्रन्थि के कारण हो जाते हैं। गत महासमर के समय बहुत से सिपाहियों को लकवे की बीमारी हो गई थी। इस बीमारी को मनोविश्लेषण विधि से हटाया जा सकता था। वास्तव में मनोविश्लेषण-विज्ञान की वृद्धि इसी प्रकार के रोगियों को अच्छा करने के कारण हुई। उक्त लकवे के रोगियों के विषय में यह देखा गया कि उनकी चेतन मन की धारणा एक प्रकार की थी और अचेतन मन की वासना दूसरे प्रकार की। उनकी कर्तव्य-

बुद्धि, जो कि उनके चेतन मन की अंग थी, उन्हें युद्ध में लड़ने के लिए बाध्य करती थी और उनकी अचेतन मन की धारणा उन्हें युद्ध से मुक्त होने के लिए प्रेरित करती थी। इस तरह उनके अचेतन मन और चेतन मन में अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो गया था। जब सिपाहियों की अचेतन मन की भावना ने अपनी तृप्ति का कोई उपाय न देखा तो उसने रोगी के शरीर में लकवा की बीमारी उत्पन्न कर दी। लकवे की बीमारी के कारण सिपाही अप्रिय काम करने से बच गया।

कितने ही विद्यार्थी परीक्षा के समय, जब उनकी तैयारी ठीक से नहीं रहती, तो बीमार हो जाते हैं। इस तरह वे अप्रिय काम करने से बच जाते हैं और अपने आत्म-सम्मान को भी नहीं खोते। जिन विद्यार्थियों में आत्म-सम्मान की मात्रा अधिक होती है उन्हें ही ऐसी बीमारी होती है। इस प्रकार की बीमारी अचेतन मन का कार्य होती है और बालक को उसके कारण के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। लेखक के एक विद्यार्थी को, जो ताल्लुकेदार का लड़का था, परीक्षा के समय एक भारी फोड़ा निकल आया, जिसके आपरेशन के लिए उसे बम्बई जाना पड़ा। जब कोई मनुष्य अपने अनिच्छित काम से बचने का कोई उपाय नहीं देखता तो वह बीमारी का आश्रय लेता है। कितने ही लोगों को दमे की बीमारी उस समय हो जाती है या बढ़ जाती है जब उसकी जीवन की परिस्थितियाँ बड़ी कठिन हो जाती हैं। दमा की बीमारी के साथ-साथ मानसिक क्लेश की परिस्थितियाँ रहती हैं। मानसिक प्रसन्नता की स्थिति उत्पन्न होने पर यह बीमारी प्रायः कम हो जाती है।

कितनी ही महिलाओं को वमन की बीमारी होती है जिसका कि मानसिक कारण होता है। ऐसे रोगियों के मन में प्रायः एक दबी हुई आत्म-ग्लानि की भावना रहती है। यह आत्मग्लानि अपने किसी दुष्कृत्य से उत्पन्न होती है। व्यक्ति दुष्कृत्य की घटना को भूल जाता है। वह इस प्रकार के दुष्कृत्य की आत्म-स्वीकृति भी नहीं करना चाहता, किन्तु उसका आन्तरिक मन इस विकार को अपने अन्दर नहीं रखना चाहता, अतएव वह वमन की सांकेतिक चेष्टा के द्वारा इस विकार को बाहर निकालता रहता है। मनुष्य के बहुत से रोग किसी पाप के फलस्वरूप, अर्थात् वे दमन की गई नैतिक भावना के द्वारा उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी वमन की बीमारी रोगी के किसी विशेष स्थान में रहने की अनिच्छा से भी उत्पन्न हो जाती है। रोगी का अचेतन मन वहाँ का अन्न-जल नहीं ग्रहण करना चाहता। स्थान के बदलने पर इस प्रकार की बीमारी

अच्छी हो जाती है। इस प्रकार की बीमारी तभी उत्पन्न होती है जब उस स्थान में ठहरने से उस व्यक्ति का लाभ होता है और उसके आन्तरिक मन की इच्छा वहाँ से भागने की रहती है। स्वयं लेखक को जब वह अमलनेर तत्त्व-विज्ञान मंदिर में दार्शनिक खोजों में लगा हुआ था, इस प्रकार की बीमारी का अनुभव एक बार हुआ।

कितने ही लोगों को कोढ़, एक्जिमा, आँख के रोग आदि किसी प्रबल भावना के दमन के कारण उत्पन्न हो जाते हैं। यह भावना नैतिक अथवा साधारण प्राकृतिक इच्छा हो सकती है। रोग की उत्पत्ति से आन्तरिक इच्छा की पूर्ति होती है। अथवा उससे मानसिक विकार बाहर निकलते हैं। इन विकारों के बाहर निकलने पर रोग अपने-आप नष्ट हो जाता है।

शारीरिक रोगों के तीन प्रकार के कारण माने जाते हैं—पहला शारीरिक सुख की इच्छा का दमन, दूसरा मान-प्रतिष्ठा की रक्षा के हेतु और तीसरे नैतिक भावना का दमन और आत्म-ग्लानि। फ्रायड महाशय के अनुसार पहले प्रकार का कारण ही रोग की उत्पत्ति का प्रधान कारण होता है। एडलर महाशय के अनुसार दूसरे तथा होमरलेन और युँग महाशय के अनुसार तीसरे प्रकार का कारण रोगों की उत्पत्ति का प्रधान कारण होता है। जिस तरह स्वप्नों के विषय में तीन प्रकार के सिद्धान्त हैं, अर्थात् पुराने संस्कार और इच्छाओं का दमन, भविष्य की आकांक्षाएँ तथा वर्तमान मानसिक स्थिति, इसी तरह रोग के विषय में तीन प्रकार के सिद्धान्त हैं। ये सिद्धान्त क्रमशः फ्रायड, एडलर और युग महाशय के हैं। हमारा विचार है कि वर्तमान स्थिति को ही रोग का प्रधान कारण मानना सबसे अधिक युक्ति-संगत है। वर्तमान मानसिक स्थिति में अतीत काल के अनुभव भी स्थित रहते हैं और उसमें भविष्य की सम्भावना भी रहती है। मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं के दमन से ही रोगों की उत्पत्ति होती है; चाहे वे साधारण सुख की भावनाएँ हों अथवा उच्च आदर्शवादी भावनाएँ। बालकों के और अविकसित व्यक्तित्ववाले लोगों के रोगों का प्रधान कारण पहले प्रकार का होता है और विकसित व्यक्तित्व के लोगों के रोगों का प्रधान कारण दूसरे प्रकार का होता है। जनसाधारण की यह धारणा निर्मूल है कि मनोविज्ञान पाशविकता को प्रोत्साहन देता है तथा संयमी और आदर्शवादी जीवन का विनाश करता है। नवीन मनोविज्ञान का छिछला अध्ययन करनेवाले व्यक्ति अवश्य पाशविकता को ही प्राकृत जीवन मान लेते हैं। मनुष्य की प्रकृति पशु-प्रकृति से भिन्न है, वे इसका ध्यान नहीं रखते। मनुष्य की प्रकृति में आत्मसंयम की प्रवृत्ति उतनी ही प्रबल होती है जितनी कि पाशविक इच्छाओं की प्रवृत्ति। जैसे-जैसे मनुष्य का

जीवन विकसित होता जाता है वैसे-वैसे उसमें पाशविकता की कमी और नैतिक तथा आदर्शवादी भावनाओं की प्रबलता होती है, किसी की भी प्रबल भावनाओं का दमन करना बुरा है। इससे मानसिक तथा शारीरिक रोग की उत्पत्ति होती है। साधारणतः बालकों में शारीरिक सुख की इच्छाओं के दमन से रोग की उत्पत्ति होती है और प्रौढ़ व्यक्तियों में नैतिक भावनाओं के दमन से रोग की उत्पत्ति होती है।

मनोविश्लेषण चिकित्सा

मनोविकारजनित रोगों की चिकित्सा मनोविश्लेषण की विधि से की जा सकती है। इस विधि से बड़े-बड़े मानसिक और शारीरिक रोग नष्ट किये गये हैं। मनोविश्लेषण-विधि के प्रधानतः दो अङ्ग हैं—रेचन[1] और पुन शिक्षा[2]। रेचन-विधि दबी हुई मानसिक ग्रन्थि को चेतना की सतह लाने की विधि है। इसके लिए मनोविश्लेषण के विशेषज्ञ की अपेक्षा होती है। इसमें पहले विश्लेषण को मानसिक ग्रन्थि की खोज करनी पड़ती है। इस खोज के पश्चात् उसे व्यक्ति की चेतना पर लाकर उस व्यक्ति से उसकी आत्म-स्वीकृति करानी पड़ती है। बहुत रोगों का विनाश दबी हुई भावना के चेतना की सतह पर आने और उसकी आत्म-स्वीकृति हो जाने पर ही हो जाता है, किन्तु कुछ जटिल रोगियों को स्थायी लाभ पहुंचाने के लिए पुनः शिक्षा की आवश्यकता होती है। इस शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति के जीवन के आदर्शों और नैतिक धारणाओं में परिवर्तन करना तथा उसकी सचित शक्ति को सदुपयोग में लगाना, जिसे मनोविश्लेषक शक्ति का शोध कहते हैं, होता है। मानसिक ग्रन्थि की खोज के लिए विश्लेषक को बड़ी सावधानी और धैर्य के साथ काम लेना पड़ता है। इसके लिए कभी-कभी उसको एक ही रोगी के पीछे महीनों लगा देना पड़ता है। इसके लिए रोगी की सांकेतिक चेष्टाओं और स्वप्नों का अध्ययन करना पड़ता है। कभी-कभी इसके लिए सम्मोहन का प्रयोग करना पड़ता है। प्रायः सभी मनोविश्लेषकों को इसके अतिरिक्त सहज-शब्द सम्बद्ध[3] की प्रक्रिया से भी काम लेना पड़ता है। सम्मोहन की अवस्था में रोग की साधारण चेतना नहीं रहती। सहज-शब्द सम्बद्ध की प्रक्रिया का प्रयोग साधारण चेतना की अवस्था में ही किया जाता है। सहज-शब्द-सम्बद्ध के प्रयोग में रोगी को कुछ शब्द एक के बाद एक कहे जाते हैं और उसके मन में जो कुछ आवे उसे तुरन्त कह देने को कहा जाता है। कहे हुए

1. Catharsis. 2. Re-education. 3. word association.

शब्द को तथा कहने के समय को नोट किया जाता है। रोगी के कहे गये शब्दों में कुछ मार्मिक शब्द होते हैं। देखा गया है कि रोगी से जब इन शब्दों को कहा जाता है तो उत्तर देने में उसे देरी लगती है और विचित्र प्रकार के उत्तर आते हैं।

मानसिक ग्रन्थि और अपराध

दबी हुई मानसिक भावना जिस प्रकार किसी मानसिक या शारीरिक रोग में प्रकट होती है उसी तरह वह अपराध की मनोवृत्ति में भी प्रकट होती है। बालकों की मानसिक जटिलता का भी प्रधानतः यही कारण है। अपराधी का मन दुखी होता है। यह दुःख उसके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से उत्पन्न होता है। अपराधी को अपनी दबी हुई भावना का ज्ञान नहीं रहता, और न वह अपने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को ही जानता है। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व प्रकाशित होते समय रोग अथवा अपराध की मनोवृत्ति धारण कर लेता है। प्रत्येक अपराधी का आन्तरिक मन दुःखी रहता है, जिस तरह कि प्रत्येक रोगी का रोग की उपस्थिति के पूर्व आन्तरिक मन दुखी रहता है। रोग और अपराध मानसिक विकारों का प्रकाशन मात्र है।

अपराध की मनोवृत्ति का निराकरण भी मनोविश्लेषण विधि से किया जा सकता है। बहुत से जटिल बालकों में झूठ बोलने, चोरी करने, व्यभिचार करने, दूसरों को तंग करने आदि मनोवृत्तियों का उपचार डाक्टर होमरलेन ने सफलतापूर्ण मनोविश्लेषण विधि से किया है। सभी अपराधियों में मनुष्यमात्र के प्रति घृणा का भाव रहता है। वे अपने-आपको भी कोसते हैं। अपराधी को दण्ड देकर हम उसकी घृणा के भाव को और प्रबल कर देते हैं। मनोविश्लेषण विज्ञान की खोजें यह दर्शाती हैं कि अपराध की मनोवृत्ति के निवारण के लिए अपराधी के प्रति कठोरता का नहीं, वरन् सहानुभूति और प्रेम का बर्ताव करना चाहिए। अपराधी के प्रति सहानुभूति दिखाने से उसके हृदय के प्रेम स्रोत फिर सजीव हो जाते हैं। इनके सजीव हो जाने पर उसका मनुष्यों के प्रति घृणा का भाव नष्ट हो जाता है। वह अपने-आपसे भी घृणा करना अर्थात् अपने आपको कोसना बन्द कर देता है। उसके जीवन में आशा का संचार हो जाता है। उसमें आत्म-सम्मान का भाव आ जाता है और वह अपने-आपको ऊपर उठाने का प्रयत्न करने लगता है। जहाँ घृणा दैवी गुणों और जीवन की विनाशक है, प्रेम उनका पोषक है। प्रेम ही वह अमृत है जिससे मनुष्य के सभी प्रकार के रोग दोष नष्ट हो जाते हैं।

सत्रहवाँ प्रकरण

स्वप्न

स्वप्न का स्वरूप

स्वप्न का अध्ययन भारतवर्ष में वैदिक काल से चला आया है। 'स्वप्न' शब्द का अर्थ है 'अपने आप में स्मरण करना'। स्वप्न पर विचार करना अपने-आपको जानने के लिए आवश्यक है। इसके द्वारा मन के गुप्त स्तरों का और उसकी गुप्त क्रियाओं का पता चलता है। सीशोर महाशय का कथन है कि स्वप्न के विषय में अधिक चिन्तन करना अवाञ्छनीय है। स्वप्न के विषय में अधिक चिन्ता बढ़ाना विक्षिप्तता के आगमन को दर्शाता है। आधुनिक मनोविश्लेषण विज्ञान इस विचार को भूल समझता है। स्वप्न अध्ययन से आत्मज्ञान बढ़ता है। मानसिक रोगी की चिकित्सा बिना रोगी के स्वप्नों के अध्ययन के, सम्भव ही नहीं।

स्वप्न हमारा एक सामान्य अनुभव है। यह हमें प्रत्येक दिन होता है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का जाग्रत अवस्था और सुषुप्त अवस्था हर दिन होती है उसी प्रकार स्वप्न भी प्रतिदिन होते हैं। किन्तु बहुत से स्वप्न हमें स्मरण नहीं रहते। हम जागते ही उन्हें भूल जाते हैं। इसलिए बहुत से लोगों को प्रतिदिन स्वप्न देखने का ज्ञान नहीं होता।

स्वप्न के देश काल जाग्रत अवस्था के देश काल से भिन्न होते हैं। हमारा शरीर एक ही स्थान पर पड़ा रहता है किन्तु स्वप्नावस्था में हमारा मन संसार में विचरण करता रहता है और वह कितनी ही नई सृष्टियों की उत्पत्ति कर लेता है। कभी कभी जाग्रत अवस्था के एक मिनट में हम इतना लम्बा स्वप्न देखते हैं कि मालूम होता है कि वर्षों बीत गये। स्वप्नावस्था का अनुभव मनोराज्य के अनुभव के समान होता है। दोनों प्रकार के अनुभवों का आधार वास्तविक जगत् का अनुभव अवश्य है, किन्तु तिस पर स्वप्न और मनोराज्य की सृष्टि वास्तविक जगत् की सृष्टि से भिन्न होती है। जो घटनाएँ वास्तविक जगत् में असम्भव हैं, वे मनोराज्य और स्वप्न में घटित हो जाती हैं। यदि कोई मनुष्य अपने बिस्तर पर लेटकर अपने विचारों का चेतना द्वारा नियन्त्रण करना बन्द कर दे और मन का जो कुछ करता है--

करने दे, तो वह शीघ्र ही अपने-आपको मनोराज्य की सृष्टि करते पायेगा। इस अवस्था के पश्चात् स्वप्नावस्था आ जाती है जिसका अन्त सुषुप्ति अवस्था में होता है। मनोराज्य की अवस्था में जाग्रत अवस्था का अभिमानी (द्रष्टा) ही विचारों का सञ्चालन करता है, किन्तु स्वप्न अवस्था का द्रष्टा जाग्रत अवस्था के द्रष्टा से एकदम भिन्न होता है, जिस प्रकार स्वप्न अवस्था का दृश्य जगत् जाग्रत अवस्था के दृश्य जगत् से भिन्न होता है।

अधिक स्वप्नों का देखना बुरा माना जाता है। स्वप्नों के ऊपर हमारी चेतना का कुछ भी नियन्त्रण नहीं होता। हम जैसे स्वप्न चाहें वैसे नहीं देख सकते और न उनका आना ही रोक सकते हैं। भयंकर स्वप्नों का बार-बार देखना शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है। वास्तव में इस प्रकार के स्वप्न मन अथवा शरीर में स्थित विकार के सूचक हैं न कि उनके कारण। भयंकर स्वप्नों को रोकने के लिए स्वप्नों के कारण जानना आवश्यक है। कारण में परिवर्तन होने से स्वप्नों में परिवर्तन हो सकता है।

स्वप्न के कारण

स्वप्न शारीरिक अथवा मानसिक उत्तेजना के कारण आते हैं। शारीरिक उत्तेजनाएँ दो प्रकार की होती हैं—एक, शरीर में स्थित विकारों द्वारा और दूसरी, बाहरी पदार्थों द्वारा। मानसिक उत्तेजनाएँ भी दो प्रकार की होती हैं—एक, जाग्रत अवस्था की अनुभवजन्य और दूसरी, आन्तरिक इच्छाजन्य। इन दोनों प्रकार के कारणों पर पृथक्-पृथक् विचार करना आवश्यक है।

शारीरिक उत्तेजना—ऊपर कहा गया है कि शारीरिक उत्तेजना दो प्रकार की होती है—परिस्थितिजन्य और शारीरिक विकारजन्य। जब हम किसी गन्दे और बदबूदार कमरे में सोते हैं, अथवा गन्दे कपड़ों को ओढ़कर सोते हैं तो अप्रिय स्वप्न देखते हैं। मुँह ढँककर सोने से बुरे स्वप्न आते हैं। हमारी साँस से निकली दुर्गन्ध फिर हमारे दिमाग में आ जाती है और बुरे स्वप्नों को पैदा करती है। मुँह से निकलनेवाली हवा जहरीली और दुर्गन्धित होती है। यही हवा साँस द्वारा जब फिर हमारे शरीर में जाती है तो उसके जहर का प्रभाव हमारे दिमाग पर भी पड़ता है। इससे हमारी अचेतन अवस्था में हमें एक प्रकार की पीड़ा होती है। यह पीड़ा यदि हमारी जाग्रत अवस्था में हो तो हमें असह्य हो जाय और उससे मुक्त होने के लिए हम तुरन्त चेष्टा करें। परन्तु अपनी अचेतन अवस्था में हम इस प्रकार क्लेश से मुक्त होने की चेष्टा नहीं

करते, अतएव हमारी यह दुःखदायक उत्तेजना हमारे बुरे स्वप्नों का कारण बन जाती है। इसी प्रकार सोने की जगह पर गन्दगी रहने से स्वप्न अच्छे नहीं आते।

सोने के स्थान पर बाहर से हल्ला-गुल्ला की आवाज आना एक विशेष प्रकार के स्वप्न का कारण बन जाती है। इस प्रकार सोने की जगह पर यदि बाहर से आनेवाली आवाज कर्ण-प्रिय अथवा मन्न मुग्ध करनेवाली हो तो स्वप्न सुन्दर आते हैं और यदि वह अरोचक और दुःखदायी हुई तो स्वप्न भी अरोचक और दुःखदायी होते हैं। यदि सोते समय किसी व्यक्ति को कोई शारीरिक कष्ट दिया जाय तो वह दुःखदायी स्वप्नों का कारण बन जाता है। मान लीजिए, सोते समय किसी व्यक्ति को ठण्ड लग रही है तो वह इस समय अप्रिय स्वप्न देखेगा। सोते समय यदि किसी व्यक्ति के मुँह पर पानी छिड़क दिया जाय तो उसे बरसात होने के स्वप्न देखने की सम्भावना है। मायर महाशय ने तीन प्रकार के स्वप्नों पर अनेक प्रयोग किये हैं, यदि सोते समय किसी व्यक्ति के तलवे पर पानी लगाया जाय तो वह पानी में चलने का स्वप्न देखता है।

जिस प्रकार बाहर से आनेवाली उत्तेजनाओं के कारण स्वप्न होते हैं उसी तरह आभ्यन्तरिक और शारीरिक विकारों के कारण भी स्वप्न होते हैं*। यदि

---

*'मिलिंद राजा के प्रश्न' नामक पुस्तक में निम्नलिखित छः प्रकार के स्वप्न के कारण बताये गये हैं—

(१) वायु भर जाने से,

(२) पित्त के प्रकोप से,

(३) कफ बढ़ जाने से,

(४) देवताओं के प्रभाव में आने से,

(५) बार-बार किसी काम को करते रहने से, और

(६) भविष्य में होनेवाली बातों से।

भविष्य की बातें इसी प्रकार प्रतिबिम्बित होती हैं जिस प्रकार दर्पण में सामने आनेवाला पदार्थ प्रतिबिम्बित होता है। स्वप्न देखनेवाला अपने इस प्रकार के स्वप्नों का अर्थ नहीं लगा सकता। इसके लिए विशेषज्ञ की आवश्यकता होती है। जिनका चित्त शुद्ध है वे इस प्रकार के स्वप्नों का अर्थ लगा सकते हैं। दूसरा अपने-आप नहीं जानता। "जिस प्रकार बुरी जीविकावाले, दुराचारी, पापमित्र, शीलभ्रष्ट, कायर और उत्साहहीन भिक्षु के पास ज्ञानी लोगों के गुण नहीं आते उसी प्रकार जागते हुए के पास दिवा-स्वप्न नहीं आते।"

किसी मनुष्य को किसी विशेष प्रकार की पीड़ा है, तो उसे दुःखदायी स्वप्न होते हैं। ज्वर की अवस्था में अच्छे स्वप्न नहीं आते, जिस प्रकार रोगी की कल्पनाएँ अभद्र होती हैं, उसी प्रकार उसके स्वप्न भी अभद्र होते हैं। जब शरीर अधिक रोगग्रस्त हो जाता है तो मनुष्य भयंकर मानसिक चित्रों को अपने सामने देखने लगता है। ये मानसिक चित्र उसे स्वप्न में भी दिखाई देते हैं। सुन्दर स्वप्नों को देखने के लिए शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की आवश्यकता है।

कभी-कभी आनेवाली बीमारी स्वप्न में दिखाई देती है। यह बीमारी सम्भव है कि उसी रूप में न दिखाई दे, जिस रूप में वह आनेवाली है। कभी-कभी वह उसी रूप में दिखाई देती है जिस रूप में आनेवाली होती है। मान लीजिए, किसी व्यक्ति को उसके विशेष अङ्ग में फोड़ा निकलने वाला है, तो वह इस फोड़े क निकलने का स्वप्न फोड़े के निकलने के पहले ही देख लेता है। स्वप्न का फोड़ा कभी-कभी उसी जगह पर होता है जहाँ वह बाद को उभरता है और कभी-कभी दूसरी जगह पर भी निकलता है। कभी-कभी आने वाली मानसिक बीमारियाँ भयानक मानसिक चित्रों के रूप में हमारे सामने आती हैं। हम देखते हैं कि कोई बड़ा राक्षस हमें त्रास दे रहा है या हमें कोई भूत सता रहा है। इस प्रकार के स्वप्न आनेवाली बीमारियों के सूचक भी होते हैं। इसका वास्तविक कारण शारीरिक उत्तेजनाएँ हैं। यही उत्तेजनाएँ मानात्मक प्रतिमाओं में परिणत हो जाती हैं। हमारे अचेतन मन की शक्ति चेतन मन की शक्ति से कहीं अधिक है। हम मन की अचेतन अवस्था में शरीर के उन अनेक विकारों को जान लेते हैं जो भविष्य में बीमारी का रूप धारण करते हैं। अपने चेतन मन से हम शरीर की उन सूक्ष्म उत्तेजनाओं का ज्ञान नहीं कर सकते जो बीमारी की पूर्व अवस्था म होती है, किन्तु हमारा अचेतन मन उन उत्तेजनाओं का ज्ञान कर लेता है और स्वप्नों के रूप में उन्हें प्रदर्शित करता है।

मानसिक उत्तेजना—स्वप्न के प्रमुख कारण मानसिक उत्तेजनाएँ ही होती हैं। वे दो प्रकार की होती हैं—वातावरण के अनुभवों से उत्पन्न और आन्तरिक इच्छाजन्य। हमारे अधिक स्वप्न जाग्रत अवस्था की उत्तेजनाओं से पैदा होते हैं। मान लीजिए, हम फ्रान्स की क्रान्ति की पुस्तक पढ़ते-पढ़ते सो जाते हैं तो हम अपने स्वप्नों में उसी क्रान्ति का दृश्य देखने लगते हैं जो उस पुस्तक में चित्रित की गई है। जब सिनेमा देखने के पश्चात् सिनेमा का दर्शक सो जाता है, तो सिनेमा के दृश्य से मिलता-जुलता स्वप्न देखता है।

कभी-कभी, दृश्य जगत् की उत्तेजना तुरन्त ही स्वप्न में परिणत नहीं होती, तो वह कुछ काल के बाद स्वप्न में परिणत होती है। स्वप्न में वह उत्तेजना दूसरी उत्तेजनाओं से मिल जाने के कारण वैसे ही स्वप्न नहीं पैदा करती जैसे कि वह जाग्रत अवस्था के अनुभव मे हुई थी। स्वप्न और जाग्रत अवस्था में इतनी विषमता होती है कि हम स्वप्न अनुभव में जाग्रत अवस्था के अनुभव का कार्य पहचान नहीं सकते।

स्वप्नों के उपर्युक्त कारण प्रायः सभी मनोवैज्ञानिकों ने माने हैं। फ्रायड महाशय ने स्वप्नों के कारण के ऊपर एक नया प्रकाश डाला है। इनके अनुसार हमारे सभी स्वप्नों का कारण हमारी दबी हुई इच्छाएँ हैं। मनुष्य के मन में अनेक प्रकार की इच्छाएँ होती हैं। ये इच्छाएँ स्वभावजन्य हैं। इनमें से कुछ इच्छाएँ नैतिक होती हैं और कुछ अनैतिक। हमारी अधिक नैतिक इच्छाओं की तृप्ति जाग्रत अवस्था में हो जाती है। हमारा चेतन मन इनका विरोधी नहीं होता, किन्तु हमारी अनैतिक इच्छाओं की तृप्ति हमारी जाग्रत अवस्था में नहीं होती। हमारा नैतिक मन इनका दमन करता है। जिन इच्छाओं की तृप्ति जाग्रत अवस्था में हो जाती है, वे शान्त हो जाती हैं। वे मन में किसी प्रकार की उत्तेजना का कारण नहीं बनतीं। जिन उत्तेजनाओं की तृप्ति नहीं होती वे शान्त नहीं होतीं, बल्कि अनेक प्रकार की मानसिक उत्तेजनाएँ पैदा करती हैं। ये उत्तेजनाएँ व्यक्ति के अचेतन मन में स्थिर रहती हैं और उसकी अर्द्धचेतन अवस्था मे प्रकाशित होने की चेष्टा करती हैं। स्वप्न इन दबी हुई वासनाओं के कार्य हैं। स्वप्न मे वासनाएँ प्रकाशित होती हैं और अपनी तृप्ति के लिए अनेक प्रकार के मार्गों का निर्माण करती हैं, किन्तु स्वप्नावस्था में भी हमारा नैतिक मन पूर्णतः अचेतन नहीं रहता। हमारी पाशविक भोगेच्छाएँ इस मन से डरती हैं, अतएव अनेक प्रकार के स्वाँग रचकर वे बाहर निकलती हैं। इस प्रकार के स्वाँग नैतिक मन को धोखे मे डालने के लिए रचे जाते हैं। जिस प्रकार सरकार के सेन्सर के डर से चोर-डाकू खुले रूप मे समाज में विचरण नहीं कर पाते उसी तरह हमारी भोगेच्छाएँ स्वप्न की अवस्था में भी अपनी तृप्ति खुलकर नहीं कर पातीं और जिस तरह चोर-डाकू अनेक प्रकार के स्वाँग अपने-आपको छिपाने के लिए रचते हैं उसी तरह ये वासनाएँ भी अनेक प्रकार के स्वाँग रचती हैं। स्वप्न इस तरह सांकेतिक रूप से दबी हुई भोगेच्छाओं को अपने-आप तृप्त करने की चेष्टा है। फ्रायड महाशय के कथनानुसार हमारे अधिक स्वप्नों का कारण कामवासना ही है, क्योंकि यही जीवन में व्यक्ति की सबसे प्रबल वासना है

और इसी का दमन सबसे अधिक होता है। पानी में तैरना, हवा में उड़ना, पहाड़ों पर चढ़ना, खोहों में घुसना, पीड़ित होकर भागना और बच्चों के साथ खेलना ये सभी स्वप्न कामवासना की तृप्ति के सूचक हैं।

कामवासना के अतिरिक्त दूसरी उत्तेजनाएँ भी स्वप्नों का कारण होती हैं। किसी भी प्रकार के स्थायीभाव स्वप्न के कारण बन जाते हैं। जिन स्थायीभावों का प्रकाशन जाग्रत् अवस्था में होता रहता है उनकी शक्ति क्षीण होती रहती है, अतएव वे अधिक उद्वेगात्मक स्वप्नों के कारण नहीं बनते, किन्तु जिन स्थायीभावों का प्रकाशन प्रतिकूल परिस्थिति के कारण अथवा चेतन मन के नैतिक प्रतिबन्ध के कारण नहीं होता, वे स्थायीभाव बड़े उद्वेगात्मक स्वप्नों के कारण बन जाते हैं वैर, ईर्ष्या, लोभ सभी प्रकार के स्थायीभाव उन स्वप्नों के कारण होते हैं जिनमें हमारा मन उद्विग्न होता है। इन स्थायीभावों में से अनेक स्थायीभाव मानसिक ग्रन्थि के रूप में मनुष्य के मन में स्थिर रहते हैं जिन्हें जानना स्वयं उनके लिए कठिन होता है। ऐसी मानसिक ग्रन्थियाँ जटिल स्वप्न उत्पन्न करती हैं। अपने सम्बन्धी की मृत्यु किसी राक्षस से लड़ना, ऊपर से गिरना आदि भयकर स्वप्न अवाञ्छनीय मानसिक ग्रन्थियों के परिणाम होते हैं। जिस व्यक्ति के मन में पिता के प्रति वैर भाव है, वह ऐसे स्वप्न देखता है, जैसे किसी बड़े आदमी के मरने का स्वप्न जो कि पिता की मृत्यु की इच्छा के सूचक हैं। दूषित मन में इस प्रकार के अनेक स्वप्न होते हैं। इसी तरह जिस व्यक्ति के मन में किसी व्यक्ति के प्रति प्रबल द्वेषभाव है अथवा जो उससे ईर्ष्या या घृणा करता है वह ऐसे स्वप्न देखता है जिसमें कि उनके भावों का प्रकाशन होता है। ये भाव स्वप्न में उसी व्यक्ति के प्रति प्रकाशित हो सकते हैं जिस पर पहले पहल आरोपित हों अथवा दूसरे किसी व्यक्ति के प्रति स्थायीभावों का स्थानान्तरित होना एक साधारण मानसिक अनुभव है। जो व्यक्ति किसी विशेष व्यक्ति को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखता है वह उस व्यक्ति के अभाव में किसी दूसरे व्यक्ति को उतनी ही घृणा की दृष्टि से देखने लगता है, चाहे वह इस प्रकार की घृणा का पात्र हो या न हो। यह हमारी जाग्रत अवस्था में होता है। स्वप्नावस्था में इस प्रकार स्थायीभावों का स्थानान्तरित होना और भी सरल होता है। हमारी स्वप्नावस्था में हमारे मानसिक भाव वे ही रहते हैं, जो हमारी जाग्रत् अवस्था में रहते हैं, स्वप्न और जाग्रत अवस्था में भेद केवल दृश्यमान पदार्थों का होता है, अर्थात् भेद उन्हीं पदार्थों का होता है, जिन पर ये स्थायीभाव आरोपित होते हैं। यदि किसी

मनुष्य के मन में ईर्ष्या, घृणा और वैर के स्थायीभ व हैं तो वे जिस प्रकार जाग्रत अवस्था में आरोपित होने के लिए व्यक्तिविशेष अथवा वस्तुविशेष की खोज कर लेते हैं इसी प्रकार वे स्वप्नावस्था में भी अपने आरोपण के लिए किसी विशेष पदार्थ की खोज कर लेते हैं। जाग्रत अवस्था का पदार्थ मन-निर्मित नहीं माना जाता। स्वप्नावस्था का पदार्थ मन के द्वारा निर्मित होता है।

इस तरह हम देखते हैं कि यदि किसी मनुष्य के मन में अवाञ्छनीय स्थायीभाव है तो उसके स्वप्न भी अवाञ्छनीय रहते हैं और यदि उसके मन में सुन्दर स्थायीभाव हैं तो उसके स्वप्न भी सुन्दर होते हैं। स्थायीभावों के बदलने से स्वप्नों में भी मौलिक परिवर्तन हो जाता है।

यहाँ इस तथ्य को स्मरण रखना आवश्यक है कि वास्तविक जगत् में प्रकाशित होते समय स्थायीभाव जिस प्रकार कार्य करते हैं ठीक उसी प्रकार स्वप्नजगत् में प्रकाशित होते समय वे कार्य नहीं करते। वैर का स्थायीभाव हमारी जाग्रत् अवस्था में हमें शत्रु के नाश के लिए अनेक योजनाएँ बनाने के लिये प्रेरित करता है। हम उसका विनाश चाहते हैं। हम अपने मन में किसी से वैर के कारण अपने विनाश की कल्पना नहीं करते, पर स्वप्न में ऐसा नहीं होता। हमारा मन शत्रुओं द्वारा त्रस्त होने का अनुभव हमें कराता है, अर्थात् हमारी स्वप्न की कल्पना कभी-कभी हमारे ही प्रतिकूल होती है। जाग्रत अवस्था में हम दूसरों से घृणा करते हैं, स्वप्नावस्था में दूसरों को अपने प्रति घृणा करते पाते हैं। जाग्रत अवस्था में धनसञ्चय की कल्पना हमारे मन में आती है, स्वप्नावस्था में धन के चुराये जाने अथवा उसके विनाश की कल्पना हमारे मन में आती है। जाग्रत अवस्था में हम दूसरे की मृत्यु चाहते हैं, स्वप्नावस्था में अपनी ही मृत्यु देखते हैं।

इस प्रकार की स्थिति हमारी आत्मा की उत्तेजना रहित इच्छा के कारण होती है। ब्राउन महाशय का कथन है कि मनुष्य में मृत्यु की इच्छा उतनी ही प्रबल है जितनी जीने की। इसको उन्होंने निर्वाण की इच्छा कहा है। यह उत्तेजना-रहित होने की इच्छा है, वास्तव में यही इच्छा स्वप्नों के होने का मूल कारण है। हमारा साधारण विश्वास है कि स्वप्न हमारी नींद को भङ्ग करते हैं। यह विश्वास भूल मात्र है, स्वप्न नींद की रक्षा करते हैं। नींद निर्वाण की इच्छासूचक है। यह प्रतिदिन के निर्वाण की अनुभूति है जिसके बिना कोई मनुष्य जी नहीं सकता। इसकी प्राप्ति के लिए मन की प्रबल उत्तेजनाओं का शान्त होना आवश्यक है जिस प्रकार जीवन की

उत्तेजनाओं का शान्त होना महानिर्वाण के लिए आवश्यक है। ये उत्तेजनाएँ प्रकाशन अथवा उनके विपरीतकरण से शान्त होती है। वैर, घृणा आदि की शान्ति उनके विपरीत मनोभावों के उत्तेजन से होती है अथवा उनके फलों के भोग से होती है। इस प्रकार के मनोभावों के फलों का भोग स्वप्न में कुछ-कुछ हो जाता है। वैर और भय, घृणा और क्लेशमूलक हैं। जब हमारे मन में वैर और घृणा की प्रबलता होती है, तो हमारा स्वभाव भय और क्लेशकारी परिस्थितियों का—पूर्व मनोभावों का निराकरण करने के लिए—अपने आप निर्माण कर लेता है। इस तरह हम अपने-आपको यन्त्रणा देते हैं।

कुछ स्वप्न हम आदेश के रूप में आते हैं। ये वास्तव में हमारी अन्तरात्मा के आदेश मात्र हैं। कभी-कभी हम किसी महान् पुरुष को अपने को विशेष प्रकार का आदेश करते पाते हैं। इस प्रकार के स्वप्न हमारी आन्तरिक इच्छा के सूचक हैं। जब कभी हम किसी विकट परिस्थिति में पड़ जाते हैं जिसमें हम नहीं जानते कि हमें क्या करना उचित है और क्या नहीं और जब विचार करते करते हमारा मन शिथिल हो जाता है तो हम किसी बाहरी प्रकाश की आशा करते हैं। जब इस प्रकार की इच्छा हमारी प्रबल आन्तरिक इच्छा हो जाती है और जब इस इच्छा की तृप्ति किसी बाह्य साधन से नहीं होती तो वह आदेशात्मक स्वप्नों का कारण बन जाती है। इस प्रकार के आदेशात्मक स्वप्न कई बार वास्तव में योग्य मार्ग दर्शाते हैं। जिस निष्कर्ष पर हम अपने विचार में नहीं पहुँचते वह निष्कर्ष कभी कभी हमें स्वप्न में ज्ञात होता है। इसका कारण यह है कि हमारा साधारण ज्ञान हमारी विचार-शक्ति पर निर्भर रहता है। हमारे चेतन मन की युक्तियाँ चेतन मन के ज्ञान से परिमित रहता है। वस्तुस्थिति में ऐसी अनेक बातें होती हैं, जिनका ज्ञान हमारी चेतना को कभी नहीं होता। एडलर महाशय का कथन है कि मनुष्य अपनी विक्षिप्त अवस्था में ही किसी काम के करने के पूर्व उसके सभी पहलुओं पर विचार करता है। हमारे साधारण निर्णय कुछ हमारी अज्ञात प्रवृत्तियों और कुछ चेतन मन की युक्तियों की सहायता से होते हैं। जो व्यक्ति किसी निर्णय के समस्त हेतुओं पर विचार करता है वह कठिनता से ही किसी निर्णय पर पहुँचता है और उसका मन डावाँडोल रहता है। अचेतन मन ही हमारे जीवन के अधिक काम निश्चित करता है। अचेतन मन का आदेश जब हमारी जाग्रत अवस्था में प्राप्त नहीं होता तो वह स्वप्न में प्राप्त होता है। जब चेतन मन के विचार और अचेतन प्रवृत्ति में विरोध होता है तब प्रायः इस प्रकार के स्वप्न होते हैं।

बहुत पुराने समय से यह विचार चला आया है कि मनुष्य के कुछ स्वप्न भावी घटनाओं के सूचक होते हैं। वैज्ञानिक विचार इस प्रकार की धारणा का विरोधी है। आधुनिक विज्ञान जड़वादी है। अतएव इस प्रकार
अन्धविश्वास मात्र माना जाता है। विज्ञान यहाँ तक
। जिन घटनाओं की सम्भावना है वे स्वप्न में देखी जा
की सम्भावना का ज्ञान चेतन मन को न हो पर अचेतन
जब किसी अप्रिय घटना की सम्भावना होती है तो
के विचार की चेतना अलग करता रहता है, अतएव
मन को नहीं होता, पर अचेतन मन इस प्रकार का
रतएव स्वप्नावस्था में उस सम्भावना की रूपरेखा हम
मे वैज्ञानिक दृष्टि से यह हमारे मन की कल्पना मात्र
प्रथवा असत्य हो सकती है। जिस स्वप्न के अनुसार
। उसे हम याद नहीं रखते, हम उसी स्वप्न को याद
ार घटना घटित होती है। इसलिए हम स्वप्न के
मे विश्वास करने लगते हैं।

। सकते हैं अथवा नहीं, इस विषय पर वैज्ञानिक
ढंग से बहुत कम विचार किया गया है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यदि उत्तेजनाओं में कमी हो जाय तो स्वप्न में भी कमी हो सकती है। हम दुःखद स्वप्नों की कमी प्रयत्न से अवश्य कर सकते हैं। दुःखद स्वप्नों के बाहरी कारणों पर नियन्त्रण करना सरल है। स्वच्छ स्थान में सोने से तथा सोते समय स्वच्छ वायु में साँस लेने से; भूख प्यास को मिटाकर तथा मल-मूत्र त्याग कर सोने से, अप्रिय स्वप्नों में कमी की जा सकती है। आन्तरिक उत्तेजनाएँ धीरे-धीरे कम की जा सकती हैं। मनुष्य को इसके लिए मध्यम मार्ग का अनुसरण करना पड़ेगा। न तो भोग-विलास में ही लगा रहना ठीक है और न इच्छाओं का एकदम दमन करना ही। विवेकपूर्वक इच्छाओं की त्रास करने से मनुष्य के जीवन की विषमता जाती रहती है, उसके मन की प्रबल उत्तेजनाएँ भी शान्त हो जाती हैं, तब वह पाशविक व्यवहार के स्वप्न नहीं देखता।❋

❋ भगवान् कृष्ण का निम्नलिखित उपदेश इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

शत्रुओं द्वारा त्रस्त होने के स्वप्न तथा दूसरे प्रकार के दुःखदायी स्वप्न मैत्रीभावना के अभ्यास से कम किये जा सकते हैं। मिलिन्द राजा के प्रश्न नामक बौद्ध ग्रन्थ में भी भावना के अभ्यास के जो ग्यारह शुभ फल कहे गये हैं उनमें से बुरे स्वप्नों का अन्त हो जाना भी एक है। मैत्री-भावना का अभ्यास सबके प्रति शुभ आकांक्षा प्रकाशित करने में है। इसका अभ्यास दिन भर करना चाहिए पर सोते समय विशेषकर दया और मैत्री के विचार मन में लाने चाहिए।

आदेशात्मक स्वप्न

युङ्ग महाशय का स्वप्न के विषय में एक बड़ा विलक्षण सिद्धान्त है। उनके कथनानुसार स्वप्न हमारी वर्तमान मानसिक स्थिति और उसकी आवश्यकता को प्रदर्शित करता है। मानसिक रोगियों का मनोविश्लेषण करते समय उन्हें बड़े महत्त्व के स्वप्न होते हैं। इन स्वप्नों से रोगी के उपचार के लिए चिकित्सक को बड़ी सहायता मिलती है। इन स्वप्नों में अपने स्वास्थ्य लाभ के लिए क्या करना चाहिए इस बात का आदेश रहता है। इन आदेशों को समझकर युङ्ग महाशय बहुत से रोगियों की सफल चिकित्सा करने में समर्थ हुए हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार स्वप्न का ज्ञान प्राप्त करना हमारे साधारण जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए बड़े ही लाभ का है। अपने अपने स्वप्नों का अध्ययन करके हम अपने जीवन को योग्य मार्ग पर चला सकते हैं और बहुत-सी दुर्घटनाओं से अपने को बचा सकते हैं। असफलता और घटनाएँ उस मनुष्य को अधिक झेलनी पड़ती हैं जो अपने आन्तरिक मन के आदेशानुसार अपने नित्य-प्रति का कार्य-क्रम नहीं बनाता। हम साधारणतः अपनी आन्तरिक भावना को नहीं समझ पाते। जो हमें करना उचित है और जो वास्तव में लाभकारी है इसकी एक प्रकार की झलक तो हमें आती है, किन्तु हमारा मन तुरन्त की घटनाओं में दत्तचित्त अथवा उद्वेगपूर्ण रहने के कारण इस झलक का महत्त्व नहीं जान पाता। स्वप्न में यह झलक और भी स्पष्ट हो जाती है। बहुत से लोग अपने स्वप्नों के विषय में थोड़ा भी विचार नहीं करते। ऐसी स्थिति में वे स्वप्नों के द्वारा दी गई आन्तरिक मन की शिक्षा अथवा आदेश को ग्रहण नहीं करते। ऐसे लोगों के स्वप्न भी स्पष्ट नहीं होते। वे उन्हें या तो भूल जाते हैं अथवा बड़े ही विकृत रूप में स्मरण रखते हैं, किन्तु जो व्यक्ति अपने स्वप्नों पर इस दृष्टि से विचार करता है कि उनके द्वारा उसे आदेश मिलता है, उसके स्वप्न अधिकाधिक आदेशात्मक

हो जाते हैं। किसी स्वप्न को देखकर जब हम उसके अर्थ पर विचार करते हैं और जब हम स्वप्नादेश के अनुसार कार्य करने को तत्पर हो जाते हैं तो स्वप्न का अर्थ तुरन्त स्पष्ट हो जाता है। अपने महत्त्व के स्वप्न को लिख लेना भी यहाँ लाभदायक होता है। इसके अतिरिक्त हमें यह भी लिखना आवश्यक है कि जागने पर हमारे मन में तुरन्त कौन-सा विचार आया है। युङ्ग महाशय ने अपनी मनोविश्लेषण-विधि में स्वप्न के तुरन्त बाद के विचारों को उतना ही महत्त्व दिया है, जितना वास्तविक स्वप्नानुभव को। युङ्ग महाशय ने अपने उक्त सिद्धान्त को वैज्ञानिक रूप देकर जनसाधारण में प्रचलित स्वप्नोंके आदेशात्मक विचारों का समर्थन किया है। इस प्रसंग में लेखक के कुछ मित्रों तथा स्वयं लेखक के तुरन्त ही के स्वप्नानुभव उल्लेखनीय हैं।

लेखक के एक मित्र ने एक बार स्वप्न देखा कि वे एक ऊँचे मकान की सीढ़ी से नीचे की ओर उतर रहे हैं। उतरते समय उनका पैर फिसल गया और वे नीचे गिर पड़े। वे अचानक चौंककर उठ पड़े। मन में यह विचार आया कि आज कोई दुर्घटना होनेवाली है। उसी दिन दोपहर के समय वे जब अपने घर से बाहर शहर में गये तो किसी झगड़े में पीटे गये और इससे उन्हें काफी चोट आयी।

ये महाशय अब इस प्रकार के स्वप्न से डरने लगे। पर उन्हें सीढ़ी से उतरने और गिरने का स्वप्न बार-बार होता रहता है। इन स्वप्नों के भय के कारण उन्हें ठीक से नींद भी नहीं आती। उन्हें ये स्वप्न ही त्रास देने लगे। जब इस मित्र महाशय ने लेखक को अपनी पूरी मानसिक स्थिति बतायी तो उससे यह स्पष्ट हुआ कि वे अपने जीवन को अपने आदर्शों के अनुसार नहीं चला रहे हैं। सीढ़ी से गिरने के स्वप्न उन्हें अपने-आपको सँभालने के आदेश के रूप में आते हैं। वे उन्हें बार-बार चेतावनी देते हैं कि तुम पतन की ओर जा रहे हो और तुम्हें सावधान रहने की आवश्यकता है। पहली बार देखे गये सीढ़ी से गिरने के स्वप्न का पीटे जाने की घटना से सम्बन्ध हो जाने के कारण उनके सभी सीढ़ी से गिरने के स्वप्न आदेशात्मक हो गये। इन स्वप्नों की भाषा स्पष्ट है। यदि ये महाशय इन आदेशों के अनुसार अपना आचरण बना लें तो उनके स्वप्न और भी अधिक आदेशात्मक हो जायँ।

लेखक को हाल ही में एक स्वप्न हुआ। उसने अपने एक परिचित व्यक्ति को एक धार्मिक सभा में बैठे हुए देखा। इस व्यक्ति की उम्र कोई ७२

चर्च की है। यह स्वयं बड़ा धार्मिक व्यक्ति है। लेखक ने स्वप्न में देखा कि वह स्वयं कुर्सी पर बैठा है और वह वयोवृद्ध व्यक्ति जमीन पर बैठा है। जब उक्त स्वप्न में उस व्यक्ति के ऊपर लेखक की नजर गई तो उसे आत्म-ग्लानि हुई। इस स्वप्न के बाद नींद खुल गई।

जागकर लेखक स्वप्न के विषय में सोचने लगा। सोचते ही पहला विचार आया कि लेखक इस व्यक्ति के प्रति किसी कर्तव्य से मुख मोड़ रहा है। पहले दिन की घटना पर विचार करने से स्पष्ट हुआ कि इस महाशय की लड़की को अपनी बी० ए० की परीक्षा की तैयारी के लिए लेखक की आवश्यकता है। लेखक के सहयोगी शिक्षक ने इस लड़की को सहायता देने के लिए पिछले दिन प्रार्थना की थी, किन्तु इस काम को टाल दिया गया था। उस समय एक अस्पष्ट आन्तरिक प्रेरणा यह अवश्य हुई थी कि यदि उक्त लड़की की सहायता की जाय तो अच्छा है। इस स्वप्न के आदेशानुसार इस लड़की को सहायता देने का लेखक ने निश्चय किया। स्वयं लेखक को इस प्रकार की सहायता से पर्याप्त लाभ हुआ। लेखक को उस बालिका के पिता से कुछ मौलिक आध्यात्मिक विचार मिले।

आज ही रात को लेखक ने एक विलक्षण स्वप्न देखा। स्वप्न में उसने अपने-आपको ट्रेनिङ्ग कालेज की पन्द्रह-सोलह छात्राओं के साथ पाया। छात्राएँ बैठी हुई थीं और लेखक उन्हें अध्यापन-कला पर कुछ बातें बता रहा था। इनमें एक ऐसी थी जिसको लेखक ने दो साल पहले भी बी० ए० की परीक्षा की तैयारी के समय पढ़ाया था। इस छात्रा के प्रति लेखक को किसी कारणवश कुछ द्वेषभाव हो गया था। स्वप्न में देखा कि इस बालिका से लेखक को बार बार नाम पूछना पड़ता है। बार-बार नाम पूछे जाने के कारण यह लड़की चिढ़ जाती है और लेखक से स्वप्न में अपमान-सूचक बातें कहती है। लेखक को मानसिक दुःख होता है। किन्तु वह उस लड़की के शब्दों का कोई जवाब नहीं देता। जब उसका नाम स्मरण करने की चेष्टा करता है तब फिर भूल जाता है। लेखक को स्वप्न में ही फ्रायड महाशय के उस सिद्धान्त का स्मरण आता है जिसमें उन्होंने नाम के भूलने के विषय में लिखा है कि हम अप्रिय लोगों का बार बार नामस्मरण करने पर भी भूल जाते हैं। इस दृश्य के बाद स्वप्न का दूसरा दृश्य आता है। इसमें लेखक अपने-आपको एक बड़ी भारी बावली के बहुत ही पास से चलते हुए पाता है। उसे भय होता है कि कहीं वह उस बावली में

गिर न जाय। एक वृद्ध व्यक्ति लेखक से कहते हैं कि इसमें गिरने का कोई भय नहीं।

इस दृश्य के बाद नींद खुल जाती है। लेखक स्वप्न के विषय में चिन्तन करने लगा। पिछले दिन की घटनाओं का स्मरण किया। पिछले दिन लेखक ने बी० टी० क्लास की तीन प्रभावशाली छात्राओं को अलग बुलाकर मनोवैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में लेख लिखने के लिए प्रोत्साहित किया था और उनमें से प्रत्येक को एक-एक विषय देकर उन पर लेख लिखने के लिए कहा था। इन लेखों के सम्बन्ध में कुछ सुझाव भी उन्हें दिये गये थे। इसमें करीब एक घण्टा लगा। इसी बीच में उक्त तीनों छात्राओं के साथ दो और छात्राएँ आ बैठीं। उनमें से एक छात्रा वह थी जिसे लेखक ने स्वप्न में देखा था। जब यह छात्रा आकर बैठी थी तब लेखक के मन में यह विचार आया था कि वह छात्रा मन में इस बात के लिए अवश्य दुखी होगी कि उसे अन्य छात्राओं के साथ नहीं बुलाया गया। वह भी उतनी ही पढ़ी-लिखी है जितनी अन्य तीन छात्राएँ हैं। लड़कियों के मन में लड़कों की अपेक्षा ईर्ष्या अधिक होती है। इस बात को ध्यान में नहीं रखा गया था। विद्यार्थियों में अनुशासन रखने के निमित्त शिक्षक के लिए यह परम आवश्यक है कि वह अपने किसी व्यवहार के लिए किसी विशेष छात्र के प्रति अपना झुकाव प्रकट न होने दे, चाहे वह छात्र कितना ही प्रतिभाशाली क्यों न हो। उक्त स्वप्न इस अनुशासन सम्बन्धी नियम की अवहेलना करने के कारण हुआ और स्वप्न का उद्देश्य लेखक से अपनी भूल स्वीकार करना और सुधरवाना था।

उक्त स्वप्न पर विचार करते समय तथा पहले दिन की घटना स्मरण करते समय यह भी ध्यान में आया कि जिस समय लेखक उक्त प्रतिभाशाली छात्राओं को आदेश दे रहा था और उसी समय जो दो छात्राएँ और क्लास में आ गई थीं तो मन में इस बात की एक प्रकार की झलक अवश्य आयी थी कि वे दो आमन्त्रित छात्राएँ अपने मन में दुःख की अनुभूति कर रही हैं और उन्हें आमन्त्रित छात्राओं से ईर्ष्या हो रही है। इस झलक की उस समय विशेष परवाह नहीं की गई थी। यह झलक स्वप्न में स्पष्ट हो गई।

आध्यात्मिक विचार करनेवाले कुछ पण्डितों का कथन है कि इस प्रकार के स्वप्नों का कारण वातावरण में चलनेवाले विचार हैं, अर्थात् इन स्वप्नों का कारण स्वप्नद्रष्टा का मन ही नहीं है, वरन् स्वप्नद्रष्टा से पृथक् दूसरा

है कि जो रेडियो सेट जिस प्रकार की लहर को पकड़ना चाहता है, साधारणतः वह उसी प्रकार की लहर को पकड़ता है। यदि हम अपने मन के रेडियो सेट को इस प्रकार बनावें जिसमें कि हमारी स्वप्नावस्था में हमें आदेश मिले तो आदेशात्मक स्वप्न होना सरल हो जाय। आदेशों को चाहे हम बाहर से आया हुआ मानें चाहे उन्हें अपना ही वृहत् आत्मा का आदेश मानें। दोनों सिद्धान्तों के अनुसार स्वप्नों के आदेशात्मक होने की सम्भावना सिद्ध होती है। जो व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा के आदेश के अनुसार जितना अधिक चलते हैं उनके सामान्य विचार तथा उनके स्वप्न उतनी ही स्पष्टता के साथ उन्हें कर्तव्य का मार्ग प्रदर्शन करते हैं।

स्वप्न-निरोध

स्वप्न हमारे अचेतन मन का कार्य है। अचेतन मन की क्रियाओं पर साधारणतः हमारा कोई नियन्त्रण नहीं रहता। हम जैसा चाहते हैं वैसा स्वप्न नहीं देख सकते। हमारी जाग्रत अवस्था की अनुभव एक प्रकार का होता है और स्वप्न के समय का अनुभव दूसरे प्रकार का। स्वप्न जगत् अपने आप निर्मित होता है। जाग्रत् अवस्था की चेतना इसके निर्माण में कोई भी कार्य नहीं कर सकती। अब यह प्रश्न है कि क्या हम स्वप्नों का आना बिल्कुल बन्द कर सकते हैं अथवा अपने दुःखदायी स्वप्नों में परिवर्तन कर सकते हैं। इस प्रकार के स्वप्नों का निरोध अथवा परिवर्तन हमारे मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभकर है।

कुछ मनोविज्ञानिकों का कथन है कि स्वप्नों का निरोध किया जा सकता है। जिस प्रकार हम जाग्रत् अवस्था के विचारों का अभ्यास के द्वारा निरोध कर लेते हैं, इसी तरह स्वप्न निरोध भी सम्भव है। जाग्रत् अवस्था के विचारों का निरोध अथवा नियन्त्रण भी उतना सरल कार्य नहीं है, जितना कि मन की क्रियाओं से अनभिज्ञ लोग समझते हैं। हमारे बहुत से विचार ऐसे होते हैं कि जितना ही हम उन्हें मन में आने से रोकें वे और अधिक प्रबलता से आते हैं। मानसिक शुद्धि और अभ्यास के परिणाम स्वरूप विचारों पर नियन्त्रण अथवा उनका निरोध सम्भव होता है। अभ्यास से स्वप्न निरोध अथवा नियन्त्रण सम्भव है।

स्वप्न का निरोध आत्म-निर्देश के द्वारा किया जा सकता है। यदि हम अपने-आपको यह कहकर सोवें कि हम अमुक समय पर जाग जायँ और यदि हमारा सकल्प दृढ़ हो तो हम अवश्य ही उस समय पर जाग जाते हैं।

व्यक्ति के विचार हैं जो कि कभी स्वप्नद्रष्टा के इच्छानुसार और कभी उसकी अनिच्छा होने पर भी उसके मन में घुस जाते हैं।*

एक व्यक्ति के विचार दूसरे व्यक्ति के मन में उसकी सुप्तावस्था में चले जाते हैं और यह विचार उसके स्वप्नों के कारण बन जाते हैं। इस प्रकार के मत से हम अभिज्ञ नहीं हैं। हमारी साधारण धारणा है कि सच्चा गुरु अपने शिष्यों को अनेक प्रकार से आदेश देता है। स्वप्नों के द्वारा भी गुरु का शिष्य को आदेश होता है। इसी तरह वातावरण में चलनेवाले विचारों को भी, यदि हमारे मन की अनुकूल परिस्थिति हो, तो मन पकड़ लेता है और उसके कारण अनेक प्रकार के विचार हमारे मन में उठते हैं। सुप्त अवस्था में जब ये विचार उठते हैं तब स्वप्न का रूप ग्रहण कर लेते हैं। यहाँ अपने मन को हमें एक रेडियो सेट के समान मानना पड़ेगा। जिस ध्वनि को हमारे साधारण कान नहीं ग्रहण कर सकते उसे रेडियो सेट ग्रहण कर लेता है और इस प्रकार व्यक्त करता है कि आकाश में चलनेवाली सूक्ष्म लहरें सार्थक शब्दों का रूप धारण कर लेती हैं। पर यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि सभी प्रकार का निर्देश अचेतन मन

---

* 'रानी' में प्रकाशित राजारामजी शास्त्री के एक लेख के निम्नलिखित वाक्य इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं—"कभी-कभी विद्यार्थी परीक्षा में आनेवाले प्रश्न-पत्रों को ज्यों का त्यों देख लिया करते हैं। इन स्वप्नों को भी परीक्षक के विचारप्रेषण द्वारा समझा जा सकता है। परीक्षार्थियों का मन परीक्षापत्र की ओर लगा रहना स्वाभाविक ही है और यह मनःस्थिति प्रश्न-पत्र को बनाने या पढ़ानेवालों के विचारों को ग्रहण करने के लिए अनुकूल अवस्था उत्पन्न कर देती है। यहाँ हम अवश्य स्वीकार कर रहे हैं कि सभी व्यक्तियों के विचारों की लहरें बेतार के तार के रूप में तो चलती ही हैं, साथ ही इनको ग्रहण करनेवाले व्यक्ति के चित्त का इन व्यक्तियों या विचारों में आसक्त होना इनके ग्रहण करने के लिए आवश्यक है। यदि इन विचार-विशेष में ही आसक्ति हो तो पहले से या प्रेषण-काल में भी व्यक्ति को यह ज्ञान आवश्यक नहीं है कि यह विचार अमुक व्यक्ति का है। इतना ही आवश्यक है कि विचार-प्रेषक को विचार-ग्राहक का पूर्व परिचय या उसमें आसक्ति हो और यदि व्यक्ति के सारे जीवन में आसक्ति हो तो फिर उसके विचार-विशेष में आसक्ति होना आवश्यक नहीं है, किन्तु इस स्थिति में प्रेषक को ग्राहक का ध्यान होना सहायक होता है। विचार-प्रेषक को यह ज्ञान तो किसी हालत में होता ही नहीं कि उनके विचारों का प्रेषण या ग्रहण हो रहा है।"
—'रानी', माह अगस्त' ५५।

में कार्य करता है। जिस तरह निर्देश के द्वारा निश्चित समय पर जागा जा सकता है उसी तरह निर्देश के द्वारा स्वप्न को रोका भी जा सकता है। कितने ही लोग भयङ्कर स्वप्न होने के पूर्व जाग जाते हैं और अभ्यास से यह भी सम्भव है कि हम काम वासना सम्बन्धी स्वप्नों में काम क्रीड़ा करने के पूर्व जाग जायें।

किन्तु स्वप्नों के इस प्रकार के निरोध से स्वप्नों का कारण नष्ट नहीं होता। कारण के रहते हुए स्वप्न का होना मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभकर है। स्वप्नों का कारण प्रबल मानसिक उत्तेजना होती है। इस उत्तेजना का दमन जाग्रतावस्था में होता रहता है। अतएव वह स्वप्नों के रूप में प्रकाशित होती है। हमारी अनेक अनैतिक इच्छाएँ अपना रूप बदलकर स्वप्नों में प्रकाशित होती हैं। यदि इन इच्छाओं को स्वप्नों में प्रकाशित न होने दिया जाय तो वे भारी मानसिक उत्पात मचावें। हमारी यह धारणा भ्रमात्मक है कि स्वप्न नींद को भङ्ग करता है। वास्तव में स्वप्न नींद की रक्षा करता है। ब्राउन महाशय का कथन है कि यदि हमें स्वप्न न हो तो नींद भी न हो। हमारी प्रबल मानसिक उत्तेजना हमें सदा जाग्रतावस्था में ही बनाये रहे। स्वप्न के द्वारा इन उत्तेजनाओं की शक्ति प्रकाशित होकर कम होती है इसलिए नींद का होना सम्भव होता है। यदि आत्मनिर्देश के द्वारा हम स्वप्नों के निरोध में सफल हो जायँ तो सम्भव है कि हम निद्रा का उपभोग न कर सकें।

बहुत से लोग कहा करते हैं कि हमें स्वप्न नहीं होते। इस कथन को हमें प्रमाणिक न समझना चाहिए। वास्तव में हम अपने अनेक स्वप्न, जागते ही तुरन्त भूल जाते हैं। जो प्रतिबन्ध-व्यवस्था स्वप्नों के अनेक रूप के बनने में कारण होती है वही व्यवस्था स्वप्न-अनुभव को भुलाने का कारण बन जाती है। अतएव यदि हम थोड़े दिन के अभ्यास के पश्चात् यह सोचने लगें कि हमें कोई स्वप्न नहीं होते तो हमें स्वप्न-निरोध में सफल मान लेना चाहिए। सम्भव है कि हमें स्वप्न होते रहें किन्तु हमें उनका स्मरण न रहे।

ऊपर एक स्वप्न का उल्लेख किया गया है जिसमें एक व्यक्ति को सीढ़ी से उतरते समय गिरने का स्वप्न हुआ और उसी दिन उसके जीवन में एक भारी दुर्घटना घटित हुई। उन्हें इस प्रकार के स्वप्नों से बड़ा भारी भय हो गया। इसलिए जब से सीढ़ी के उतरने का स्वप्न देखते हैं तब जाग उठते हैं, किन्तु इस प्रकार के स्वप्न भी उन्हें बार-बार होने लगे।

इन स्वप्नों के होते ही उनकी निद्रा भङ्ग हो जाती है। अब उन्हें अनिद्रा की बीमारी हो गई है। उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर भी बड़ा असर पड़ा है। उनकी स्मरणशक्ति कम हो गई। वे एक नगर के उच्च अधिकारी हैं। उन्हें प्रत्येक बात को याद रखने के लिए अब लिख लेना पड़ता है। यदि किसी एक सभा में कोई निश्चय हुआ तो उस निश्चय के शब्द उन्हें ठीक-ठीक स्मरण नहीं रहते। उन्हें बार बार कागजों को देखना पड़ता है। उनके मन में सदा बेचैनी-सी आती है।

उपर्युक्त दृष्टान्त से यह स्पष्ट है कि स्वप्न-निरोध मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभकर नहीं है। स्वप्न-निरोध होने पर नींद भङ्ग होने की सम्भावना है अथवा स्मृति का ह्रास होने की। इस तरह स्वप्न-निरोध से अनेक प्रकार की चेष्टा करना अपने-आपको भुलाने की चेष्टा करना है। स्वप्न अपने-आपको समझने का एक उपाय है। बहुत-से सन्त लोग स्वप्नों में अपने-आपको कामी, विषय लोलुप अथवा क्रूर व्यक्ति पाते हैं। उन्हें इन स्वप्नों को देखकर आत्म-सुधार करने की चेष्टा करनी चाहिए। ये स्वप्न उनकी आन्तरिक भावनाओं के प्रतीक हैं। जब तक आन्तरिक इच्छाओं में परिवर्तन नहीं हुआ है, अप्रिय स्वप्नों का आना आत्मज्ञान के लिए आवश्यक है।

स्वप्नों में परिवर्तन आन्तरिक भावनाओं के परिवर्तन के द्वारा ही सकता है। बहुत-से दुःखद स्वप्न मैत्री-भावना के अभ्यास के द्वारा नष्ट किये जा सकते हैं। मैत्री भावना का अभ्यास सब प्राणियों के प्रति सद्भावना का अभ्यास है। यदि दिन भर इस अभ्यास को किया जाय तो दुःखदायक स्वप्नों का आना बन्द हो जाय। सोते समय इस प्रकार का अभ्यास विशेषतः लाभकारी होता है। सोते समय यदि हम अपने आपको यह सुझाकर सोवें कि हम सभी के मित्र हैं और सभी हमारे मित्र हैं, सबका कल्याण हो, संसार के सभी प्राणी सुखी हों, तो यह भावना थोड़े ही दिनों में दुःखद स्वप्नों का आना बन्द कर दे। इस प्रकार की भावना का मनुष्य के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर भी बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्रतिदिन सोते समय मैत्री-भावना का अभ्यास करने से मनुष्य के आचरण में मौलिक परिवर्तन हो जाता है। मैत्री-भावना का अभ्यास जब तक चेतन मन तक ही सीमित रहता है तब तक उसका स्वप्नों में परिवर्तन करने का कार्य नहीं देखा जाता। जब मैत्री-भावना का अभ्यास आत्म-निर्देश का रूप धारण कर लेता है अर्थात्

जब हम मैत्री-भावना का अभ्यास दृढ़ विश्वास के साथ करते हैं तो स्वप्नों पर उसका प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। बौद्धों के धर्मग्रन्थों में मैत्री-भावना की बड़ी महिमा बताई गई है। मिलिन्द राजा के प्रश्न (मलिन्दपन्हा) नामक पुस्तक में मैत्री-भावना के अभ्यास के ग्यारह लाभ बताये हैं। उनमें एक लाभ अभद्र स्वप्न का न आना भी बताया गया है। उक्त कथन की सत्यता प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में मैत्री-भावना का अभ्यास करके प्रत्यक्ष देख सकता है। इस प्रसग में लेखक का निम्नलिखित स्वप्नों के परिवर्तन-सम्बन्धी प्रयोग उल्लेखनीय है—

लेखक को कोई चार वर्ष पहले बार-बार हिन्दू मुसलमानों के दगों के स्वप्न हुआ करते थे। इन दङ्गों में लेखक अपने-आपको बड़े सकट की अवस्था में पाता था। इस स्वप्न को लेखक ने स्वप्नों की चर्चा करते समय अपने एक विद्यार्थी से कहा। इस विद्यार्थी ने यह बताया कि इसका कारण लेखक की मुसलमानों के प्रति द्वेष-भावना है। इस विद्यार्थी ने मुसलमानों के बहुत से सद्गुणों की ओर लेखक का ध्यान आकर्षित किया। लेखक स्वय इस बात को स्वीकार करने को तैयार न था कि वह मुसलमानों से घृणा करता है। उसके विचार कांग्रेसवालों के विचारों से ही अधिकतर प्रभावित हुए हैं जो कि भारत की स्वतन्त्रता अथवा उसके कल्याण के लिए हिन्दू-मुसलिम एकता अनिवार्य मानते हैं। भला यह कौन कांग्रेसवादी हिन्दू व्यक्ति मानने को तैयार होगा कि उसके हृदय में उसके अनजाने मुसलमानों के प्रति द्वेष-भावना है, किन्तु उस विद्यार्थी के कथन का एक विशेष प्रभाव लेखक के मन पर पड़ा और उसने आत्म-निरीक्षण करना आरम्भ किया। "मिलिन्द राजा के प्रश्न" में कहे मैत्रीभावना के लाभ जो कुछ ही दिन पहले लेखक ने पढ़ा था अब इसके प्रयोग का अवसर मिला। लेखक ने मुसलिम लीग-विरोधी बातें करना और सुनना बन्द कर दिया। रात को सोते समय सभी मुसलमानों के प्रति सद्भावना लाने की चेष्टा की। मुहम्मद अली जिन्ना महाशय के दुर्गुणों पर विचार न कर और उनके प्रति दुर्भावनाएँ न लाकर उनके सद्गुणों पर चिन्तन करने का अभ्यास किया गया तथा उनके प्रति नित्य प्रतिदिन सद्भावनाएँ लाई गईं। एक मुसलमान फकीर को, जिसे पहले देखकर अनेक प्रकार की दुर्भावनाएँ मन में आती थीं, कुछ दक्षिणा देना प्रारम्भ कर दिया गया। इस प्रकार के अभ्यास का परिणाम यह हुआ कि उस समय से आज दिन तक हिन्दू-मुसलिम दगे का कोई स्वप्न लेखक को नहीं आया। इतना ही नहीं, दूसरे अनेक प्रकार के भयावने अथवा दुःखद स्वप्नों का होना भी कम हो गया। वास्तव में एक ही स्वप्न हम

अनेक रूपों में देखते हैं। हमारी एक मनुष्य के प्रति दुर्भावना अथवा सद्भावना प्राणिमात्र के प्रति उसी प्रकार की भावना की प्रतीक होती है। एक विशेष व्यक्ति के प्रति अपना विचार बदलकर, अमैत्री-भावना के बदले मैत्री भावना लाकर हम ससार के सभी प्राणियों के प्रति अपनी भावनाओं को उसी प्रकार बदल देते हैं जिस प्रकार हम उस विशेष व्यक्ति के प्रति बदलते हैं।

चेतन और अचेतन मन का वास्तव में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। अचेतन मन ही कार्य का क्षेत्र है। इसी के द्वारा अचेतन मन की भावना का सुधार हो सकता है। अचेतन मन की भावना स्वप्न का कारण है। जैसी ये भावनाएँ होती हैं वैसे ही स्वप्न होते हैं, किन्तु अभ्यास के द्वारा जिस तरह ये भावनाएँ दृढ़ बनाई जाती हैं इसी तरह इनमें अभ्यास के द्वारा परिवर्तन भी सम्भव है। यह परिवर्तन एकाएक नहीं होता। कई दिनों तक अभ्यास करने पर भी हमारे चेतन मन का कोई विचार अचेतन मन में जाता और उसमें परिवर्तन करता है। विश्वास के साथ किया गया कार्य विशेष प्रभावशाली होता है। किसी बात में मनुष्य को विश्वास तभी होता है जब कि उस बात को अचेतन मन ग्रहण करने लगता है। इसके ग्रहण करने के कारण अचेतन मन की भावनाओं में मौलिक परिवर्तन हो जाते हैं।

प्रश्न

१—स्वप्न और जाग्रतावस्था में समानता और भेद क्या है? क्या स्वप्नों की तुलना मनोराज्य से की जा सकती है? दोनों में भेद बताइए।

२—स्वप्नों के प्रमुख कारण कौन कौन हैं? उनमें से सबसे महत्त्व का कारण कौन है?

३—क्या जान बूझकर किसी विशेष प्रकार के स्वप्न उत्पन्न किये जा सकते हैं? स्वप्नों के विषय में किये गये प्रयोग स्वप्न के स्वरूप के विषय में क्या दर्शाते हैं?

४—स्वप्न निरोध कैसे हो सकता है? उसके हानि लाभ बताइये।

अठारहवाँ प्रकरण

सीखने में प्रगति

सीखने में प्रगति पाँच बातों पर निर्भर करती है। जिन लोगों ने सीखने के विषय में खोज की है, उन्होंने सीखने से सम्बन्ध रखने वाली इन बातों पर अनेक प्रयोग किये हैं, जिनके निष्कर्ष बड़े ही उपयोगी हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में सीखने की शक्ति भिन्न भिन्न होती है और एक ही व्यक्ति के सीखने की शक्ति में समय तथा वातावरण के अनुसार भेद होते हैं। सीखने के कुछ प्रयोग हाथ से काम करने की कुशलता के हैं और कुछ विद्योपार्जन-सम्बन्धी। विद्योपार्जन-सम्बन्धी प्रयोगों के निष्कर्ष उतने स्पष्ट नहीं हैं, जितने कि हाथ से काम करके दक्षता प्राप्त करने के प्रयोगों के हैं। सीखने में उन्नति सदा एक-सी नहीं होती। किसी काम को सीखते समय पहले-पहल उन्नति अधिक होती है, फिर कुछ समय के लिए उन्नति स्थगित हो जाती है। यदि अभ्यास को जारी रखा जाय तो फिर उन्नति दिखाई देने लगती है।

(1) अभिप्रेरण की उपस्थिति

सीखने के लिये अभिप्रेरण सबसे महत्त्व पूर्ण वस्तु है। जब हम किसी काम को सीखते हैं, तब हमें उसे सीखने की इच्छा होती है। किसी प्रकार की अभिप्रेरणा के अभाव में सीखना सम्भव ही नहीं। हमने ऊपर जो सबंधीकरण द्वारा अथवा प्रयत्न और भूल-द्वारा सीखने की क्रिया का वर्णन किया है, उनमें किसी प्रकार की अभिप्रेरणा की उपस्थित होना नितांत आवश्यक है। पैव्लव के प्रतिवर्त क्रिया के उपाधिकरण के प्रयोग में कुत्ते का भूखा होना घंटी बजने पर उसके मुँह से लार गिरने का एक प्रधान कारण था। यदि कुत्ते को भूख ही न लगे, तो उसकी अनुक्रिया के उपाधिकारण होने का प्रश्न ही नहीं उठता; अर्थात् उसे नई बात सीखना सम्भव ही नहीं। बहुत सी बातें जीवधारी शारीरिक आवश्यकताओं के कारण ही सीखता है। भूख और प्यास तथा शारीरिक दुःख से बचने की चाह ही प्राणी के अनेक प्रकार के कार्यों के अभिप्रेरक होते हैं और इन्हीं के कारण वह नया काम करना भी सीखता है। अभिप्रेरक की उपस्थिति का प्रभाव पहले प्रकार के सीखने की अपेक्षा प्रयत्न और भूल-द्वारा सीखने की क्रिया में और स्पष्टतः देखा जाता

है। थार्नडाइक ने जिस बिल्ली के ऊपर सीखने का प्रयोग किया था, वह भूखी थी। यदि वह भूखी न होती, तो इतनी उछल-कूद ही न करती, जिससे वह चटकनी को खींच कर पिंजड़े से बाहर निकलने की विधि का पता चला लेती।

मनुष्य के कार्यों के अभिप्रेरक कभी-कभी सीधे-सादे होते हैं और कभी कभी बड़े जटिल होते हैं। सीधे-सादे अभिप्रेरकों में उसकी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति सम्बन्धी—जैसे भोजन की, यौनिक विषय की, और कष्ट निवारण की आवश्यकतायें हैं। ये अभिप्रेरक निम्न-कोटि के प्राणियों में भी कार्य करते हैं। मानव-जीवन में दूसरे प्रकार के अभिप्रेरक कार्य करने लगते हैं। ये जटिल होते हैं। इनकी चर्चा हम सामाजिक और व्यक्तिगत अभिप्रेरकों का वर्णन करते समय कर आये हैं। सामाजिक अभिप्रेरकों में दूसरों से प्रशंसित होना और उनकी आलोचना से बचना, नई बातों को सीखने के लिये विशेष अभिप्रेरणा देते हैं।

(२) पुरस्कार—अभिप्रेरणा का सम्बन्ध पुरस्कार से रहता है। अभिप्रेरक के कारण मनुष्य काम को प्रारम्भ करता है, परन्तु काम में लगे रहना पुरस्कार के ऊपर निर्भर करता है। यदि मनुष्य काम करता जाय और उसे पुरस्कार न मिले, तो सीखने की क्रिया में शिथिलता आ जाती है। अभिप्रेरक और पुरस्कार का प्राणी के सीखने की क्रिया पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस पर कुछ मनोवैज्ञानिक प्रयोग हुये हैं। एक प्रयोग में कुछ चूहों पर चार प्रकार से प्रयोग किया गया। चूहों को चार विभागों में विभक्त करके भिन्न भिन्न विभागों पर यह प्रयोग हुआ। चूहों के द्वारा नये काम को सीख लेना इस प्रयोग का उद्देश्य था। पहले वर्ग के चूहों को भूखा रखकर काम कराया गया और काम करने के पश्चात् उन्हें पुरस्कार (खाना) दिया गया। दूसरे वर्ग को भूखा रखकर काम कराया गया और पुरस्कार नहीं दिया गया। तीसरे वर्ग को भूखा रखकर काम कराया गया और पुरस्कार दिया गया। चौथे वर्ग को कम भूखा रखकर काम कराया गया और पुरस्कार नहीं दिया गया।

इस मनोवैज्ञानिक प्रयोग में देखा गया कि सीखने के काम में सबसे अधिक प्रगति उन्हीं चूहों ने की, जो भूखे थे और जिन्हें काम करने के पश्चात् पुरस्कार मिला। उससे कम प्रगति भूखे और अपुरस्कृत चूहों की हुई; उससे कम अध-भूखे और पुरस्कृत की और सबसे कम प्रगति उन

चूहों ने की जो अध-भूखे थे और पुरस्कृत नहीं हुए। यहाँ हम देखते हैं कि सीखने के लिये अभिप्रेरक और पुरस्कार दोनों बातों की आवश्यकता होती है। यदि मनुष्य को सीखने की अभिप्रेरणा न हो, उसे नये काम करने का हेतु न हो, तो वह किसी काम को क्यों सीखेगा? इसी तरह यदि पर्याप्त काम करने के बाद भी पुरस्कार न मिले, तब भी सीखना सम्भव नहीं। यदि किसी व्यक्ति को किसी चीज की चाह न हो और वह उसे मिल जाय, तो उसका मूल्य ही वह कम करता है। इससे भी सीखने में अधिक सहायता नहीं मिलती। चाह की वस्तु को देने से ही मनुष्य की काम में लगन रहती है। इस तरह अभिप्रेरक के अभाव में पुरस्कार ही सीखने में अधिक सहायता नहीं करता। सीखने का सबसे कम काम वहाँ होता है, जहाँ पर न विशेष लक्ष्य की चाह है और न पीछे वह लक्ष्य प्राप्त ही होता है।

पुरस्कार का सीखने के कार्य की प्रगति में क्या स्थान है, इस विषय में कुछ उपयोगी प्रयोग किये गये हैं। नीचे लिखा हुआ प्रयोग ई० बी० हरलक ने कुछ स्कूल के लड़कों पर किये। इन लड़कों को चार दलों में विभक्त कर दिया गया। इन चार दलों में ऐसे बालक रखे गये, जो सब मिला कर समान आयु और योग्यता के थे। इन लड़कों से पाँच दिन तक सख्यायें जोड़ने का कार्य कराया गया। इस प्रयोग में दो बातें देखी जाती हैं कि बालक कितनी जल्दी इन सख्याओं को जोड़ते हैं और वे कितनी गलती करते हैं। बालकों के चार दल निम्नलिखित प्रकार के थे।

एक दल से बिना पुरस्कार की आशा के काम कराया गया। दूसरे दल को काम कराने के बाद कक्षा में प्रतिदिन प्रशंसित किया गया। तीसरे दल को काम कराने के बाद उनकी भूलों के लिए तथा असावधानियों के लिए प्रतिदिन डाँटा-डपटा गया और चौथे दल को अपनी मर्जी के अनुसार काम करने के लिये छोड़ दिया गया। इस दल को कंट्रोल ग्रूप बना कर रखा गया। कन्ट्रोल-ग्रूप वह दल होता है, जिसके काम के आधार पर दूसरे दलों की काम में उन्नति अथवा अवनति का पता चलता है।

इस प्रयोग में देखा गया कि पहले दिन सभी दलों के बालकों ने एक-सी ही प्रगति की। सब के नम्बर करीब करीब बराबर ही थे। किन्तु जैसे-जैसे विभिन्न दलों के बालक अपना अपना काम करते गये, उनके काम सीखने में भिन्नता उत्पन्न होती गई और पाँचवें दिन उनके प्राप्त किये गये

नम्बरों में पर्याप्त भेद हो गया। इस परीक्षा का फल निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है।

प्रशंसा और निन्दा का सीखने पर प्रभाव*

संख्या	दलों के प्रकार	पहला दिन प्राप्तांक	दूसरा दिन प्राप्तांक	तीसरा दिन प्राप्तांक	चौथा दिन प्राप्तांक	पाँचवाँ दि. प्राप्तांक
१	प्रशंसित दल	११·८१	१६·५६	१८·८५	१८·८१	२०·२२
२	निन्दित दल	११·८५	१६·५६	१४·३०	१३.२६	१४·१६
३	उपेक्षित दल	११·८४	१४·१६	१३·३०	१२·६२	१२·३८
४	सामान्य दल (कन्ट्राल ग्रुप)	११·८१	१२·३४	११·६५	१०·५०	११·२५

इस प्रयोग में हम देखते हैं कि प्रशंसित बालक ही सबसे अधिक सीखते हैं। डाँटे गये बालक पहले कुछ उन्नति दिखाते हैं, परन्तु उनकी यह उन्नति बाद में नहीं ठहरती। प्रशंसा से ही शिक्षा के कार्य में स्थाई उन्नति होती है और बालकों के शिक्षण में प्रशंसा की आशा ही एक प्रधान प्रेरक होती है।

(३) प्रतिद्वन्द्विता—सीखने में प्रगति प्रतिद्वन्द्विता के भाव की उपस्थिति के कारण भी होती है। बालकों की शिक्षा में प्रतिद्वन्द्विता का कुशलता से उपयोग करने से उनकी प्रगति में पर्याप्त सहायता मिलती है। प्रतिद्वन्द्विता का भाव जब तक एक सीमा तक रहता है, तब तक प्रगति में सहायक रहता है, परन्तु जब यह भाव अत्यधिक बढ़ जाता है, तो प्रगति में बाधक भी बन जाता है। इससे ईर्ष्या की उत्पत्ति होती है, जिसके कारण पूरी कक्षा की हानि होती है। प्रतिद्वन्द्विता दो प्रकार की होती है। एक दलगत और दूसरी व्यक्तिगत। दलगत प्रतिद्वन्द्विता से अधिक प्रभावकारी व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द्विता होती है। एक प्रयोग में प्रतिद्वन्द्विता के परिणाम में दलगत प्रतिद्वन्द्विता के कारण पढ़ाई के कार्य में उन्नति १४·५ और व्यक्तिगत प्रतिद्व-

1 Quoted by Boring and Langfield in Foundations of psycholgy from Journal of Educational Psychology 1925,16—See P. 149.

न्द्विता के कारण ३४.७ हुई। बिना प्रतिद्वन्द्विता के सीखने का काम करते रहने पर उन्नति केवल ८.७ हुई। इससे यह स्पष्ट है कि प्रतिद्वन्द्विता का भाव सीखने की क्रिया के लिये एक प्रबल अभिप्रेरक होता है।

अभ्यास का प्रभाव

मनुष्य की सीखने की चाहे कितनी प्रबल इच्छा क्यों न हो, उसके अभिप्रेरक चाहे कितने प्रबल क्यों न हों, बिना सतत अभ्यास के वह किसी भी जटिल काम को करना नहीं सीखता। अंग्रेजी में कहावत है, अभ्यास ही मनुष्य में पूर्णता लाता है।[1] काम करते करते ही काम का करना आता है। हमारे यहाँ इस अभ्यास की महत्ता को गाँवों में प्रचलित कहावतों में दर्शाया गया है।* अभ्यास के परिणाम तीन प्रकार के होते हैं—

१. काम जल्दी से होता है।

२. काम सही होता है।

३. काम सुगमता से होता है।

कुशल कारीगर और फूहर में भेद इतना ही है कि कुशल कारीगर फूहर की अपेक्षा थोड़े समय में अधिक काम करता है। उससे काम में भूलें कम होती हैं और काम करने में उसे थकावट की बहुत कम अनुभूति होती है। वह सभी काम सहज भाव से करता है।

अभ्यास का सीखने पर प्रभाव कहाँ तक पड़ता है, इस विषय पर अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोग हुए हैं। इन प्रयोगों के फल प्राय. ग्राफ के द्वारा प्रकाशित किये जाते हैं। ग्राफ यह बताता है कि कितने दिन तक काम करने से कितनी प्रगति होती है। इस प्रकार का एक ग्राफ चित्र न० १४ में दिया गया है। इस ग्राफ से पता चलता है कि यदि किसी व्यक्ति की सीखने की इच्छा एक-सी रहे, तो पहले पहल नये कार्य के सीखने में पर्याप्त उन्नति होती है। कुछ समय के बाद इसकी गति धीमी हो जाती है। एक समय ऐसा भी आता है, जब उन्नति दिखाई ही नहीं पड़ती। ग्राफ के कागज पर इस प्रगति को सूचित करने से पठार का रूप सामने दिखाई देता है। इसलिए ही इसे सीखने का पठार कहा जाता है। इस पठार के रुप कारण और तोड़ने के उपायों की चर्चा हम एक पिछले संस्करण में (पृष्ठ ११६-११८ में) कर चुके हैं। यहाँ हम सीखने में प्रगति के अन्य तत्वों पर विचार करेंगे।

---

1. Pratice makes a man perfect.

* करत-करत अभ्यास के, जड़ मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिलपर बनत निसान॥

सीखनेवाले का व्यक्तित्व

बुद्धि की प्रखरता—भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में नई बातों के सीखने की क्षमता भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। सीखना मनुष्य की बौद्धिक योग्यता पर, उसके पूर्व-अभ्यास पर और उसकी अवस्था पर बहुत कुछ निर्भर करता है। जिन लोगों में बुद्धि की प्रखरता होती है, वे अन्य लोगों की अपेक्षा जल्दी सीखते हैं। सभी लोग सीखते समय भूलें करते हैं। भूलों की संख्या जितनी कम हो, उतनी ही जल्दी मनुष्य काम को सीखता है। जो लोग अन्धकार में टटोलने के समान सभी समय काम करते रहते हैं, वे किसी नये काम को सीखने में बड़ी देर लगाते हैं और जो समझ-सूझ से काम लेते हैं, वे शीघ्रता से सीख लेते हैं। यह सूझ और समझ सभी लोगों में बराबर नहीं रहती है। भूल करने के पश्चात् भी व्यक्ति जो कुछ सीखता है वह इस बात पर आश्रित है कि भूल के कारण उसे निराशा मिलती है अथवा उसे दंड मिलता है। दंड प्राणी में नई सूझ को जाग्रत कर देता है और इसी के कारण वह उपयोगी बात को जल्दी से सीख लेता है।

कुछ प्राणियों में कम भूलों के बाद ही नई सूझ पैदा हो जाती है और कुछ में अनेक भूलों के पश्चात् भी भूल-सुधार की क्षमता नहीं आती। विलियम स्टर्न ने अपनी 'साइकोलाजी ऑफ अर्ली चाइल्डहूड' नामक पुस्तक में एक प्रयोग का उल्लेख किया है, जिसमें एक नये काम को सीखने के लिए चूहों ने केवल पाँच भूलें कीं। चूहों के अपना भोजन प्राप्त करने के लिये दो मार्ग बनाये गये थे। जब वे सुगम मार्ग से जाते थे, तब उन्हें बिजली का झटका लगता था और दुर्गम मार्ग से जाने पर यह झटका नहीं लगता था। चूहों ने केवल पाँचवीं बार में ठीक मार्ग से जाना सीख लिया। इसी प्रकार का प्रयोग जब सूअर पर किया गया, तब वह ७५ बिजली के झटके खा कर भी ठीक मार्ग से जाना नहीं सीख सका।

कितने ही लोगों की बुद्धि चूहों के समान तीक्ष्ण और तत्पर रहती है और कितने लोगों की बुद्धि सूअर के समान मंद रहती है।* तीक्ष्ण बुद्धि वाले व्यक्ति नये काम को जल्दी से सीख जाते हैं और किसी नई समस्या

---

1. We can add an inch to a man's ablity, we can not add a atitit—Instinct, Intelligence anp charactor.

की उपस्थिति पर उसे अपनी प्रत्युत्पन्न मति से हल कर लेते हैं। बुद्धि की तीक्ष्णता अथवा कमी जन्म-जात वस्तु है। बुद्धि का विकास उसके उपयोग से होता है। परन्तु इस विकास की सीमायें हैं। टाम्सन महाशय का कथन है कि हम किसी की बुद्धि में एक इञ्च वृद्धि कर सकते हैं, हाथ भर वृद्धि नहीं की जा सकती।* अर्थात् किसी भी व्यक्ति की सीखने की क्षमता उसकी जन्मजात योग्यता पर निर्भर करती है।

आधुनिक काल में जन्म से प्राप्तबुद्धि की जानकारी करने के लिए अनेक प्रकार के परीक्षा-पत्र बनाये गये हैं। कुछ परीक्षा पत्र बालकों की अथवा प्रौढ़ व्यक्तियों की पढ़ने लिखने की क्षमता की जाँच करते हैं और कुछ उनकी कला-कौशल में योग्यता की। जब योग्यता के अनुसार व्यक्ति को काम मिलता है, तब वह सीखने में अधिक प्रयत्न करता है। बुद्धि की प्रखरता समान होने पर भी उसमें भेद होते हैं। कुछ लोगों को एक प्रकार के काम की क्षमता अधिक होती है और कुछ को दूसरे प्रकार की। कुछ में साहित्यिक योग्यता होती है तो कुछ में गणित की। कुछ विज्ञान में कुशलता दिखा सकते हैं और कुछ कला कौशल में। जब व्यक्ति को अपनी जन्म-जात प्रवृत्ति और योग्यता के अनुसार कार्य मिलता है, तभी वह तीव्र गति से सीखता है।

पूर्व अभ्यास—सीखना केवल जन्म-जात योग्यता पर निर्भर नहीं करता, यह व्यक्ति के पूर्व अभ्यास पर भी निर्भर करता है। जिस व्यक्ति ने पढ़ने-लिखने का काम पहले नहीं किया, उसके लिए पढ़ना-लिखना बहुत कठिन हो जाता है। जो व्यक्ति एक भाषा सीख लेता है उसी व्यक्ति को दूसरी भाषा सीखने में अधिक कठिनाई नहीं होती। अंग्रेजी की टाइपिंग सीख लेने पर हिन्दी का टाइप सीखने में सुगमता होती है। जिस व्यक्ति को किसी प्रकार के टाइप के काम का अभ्यास ही नहीं है, उसकी अपेक्षा किसी एक तरह का टाइप सीखा हुआ व्यक्ति, दूसरे तरह का टाइप करना जल्दी सीखता है। सङ्केत लिपि के सीखने में भी यही सिद्धान्त काम करता है। यही कारण है कि देहात के सामान्य विद्यार्थियों की अपेक्षा शहर के विद्यार्थी सभी प्रकार की परीक्षाओं में अधिक नम्बर पाते हैं। किसी व्यक्ति

---

* भारतवर्ष की पौराणिक गाथाओं में बुद्धि के स्वामी गणेश का वाहन चूहा बनाया गया है। 'सूअर' शब्द इतना अपमानजनक है कि इसे सभी सभ्य भाषाओं में गाली माना जाता है।

की जन्म-जात बुद्धि का पता चलाने में यह कठिनाई होती है कि व्यक्ति परीक्षा-पत्र में जो नम्बर प्राप्त करता है, उसे वह अपनी जन्मजात प्रतिभा के कारण प्राप्त कर रहा है अथवा पूर्व अभ्यास के कारण।

अवस्था का प्रभाव—सीखने पर अवस्था का प्रभाव भी पर्याप्त पड़ता है। नये कामों को सीखने की क्षमता का विकास धीरे-धीरे होता है। बीस से पचीस वर्ष की अवस्था में यह क्षमता सबसे अधिक होती है। विकोबाई महोदय ने सीखने पर १६२६ में एक प्रयोग अवस्था के प्रभाव के सम्बन्ध में किया था। इस प्रयोग में प्रयोज्यों को तीन दलों में विभक्त किया। एक दल १२ से १७ वर्ष की अवस्था का था, दूसरा ३४ से ५६ का और तीसरा ६० से ८२ तक का था। ये तीनों दल के लोग अपने सामाजिक संस्कारों में जन्मजात योग्यताओं में और प्रयोग में सहयोग देने की दृष्टि से समान थे। पाँच प्रकार के काम चुने गये थे। ये काम ऐसे थे जिससे पुरानी आदतों पर भिन्न-भिन्न मात्रा में निर्भरता रहती थी। प्रयोग कर्ता ने इस प्रयोग में पाया कि जिन कामों में नई आदतें नहीं डालनी पड़ती हैं, उन्हें अधिक उमर के लोग उसी प्रकार सीख लेते हैं, जिस प्रकार से नई उमर के लोग सीखते हैं। परन्तु जहाँ नई आदतों के बनाने का प्रश्न है, वहाँ उमर की वृद्धि के साथ-साथ यह क्षमता घट जाती है।

मानलीजिए, किसी पचास वर्ष के व्यक्ति को १६ तक का पहाड़ा याद है और उसे २० तक का पहाड़ा याद करना है। तो वह इन्हें याद करने में उतनी ही कठिनाई का अनुभव करेगा, जितनी कठिनाई का अनुभव एक किशोर बालक करेगा, परन्तु यदि उसे गलत पहाड़ा याद करना हो, तो उसे किशोर बालक की अपेक्षा अधिक कठिनाई पड़ेगी। उदाहरणार्थ—
६×२=१३, ८×४=३४, ६×६=४६, आदि।

इन प्रयोगों से इस बात का पता चलता है कि अधिक उमर के लोग रूढ़िवादी क्यों होते हैं। सभी प्रकार के समाज-सुधारों का विरोध अपढ़ लोगों से अथवा बूढे लोगों के द्वारा होता है। बुढ़ापा एक ओर विद्वत्ता का सूचक है और दूसरी ओर जड़ता का। बूढे लोग किसी काम के करने के नये तरीके को बहुत धीरे-धीरे अपनाते हैं, अतएव किसी प्रकार के समाज-सुधार की सफलता, सामाजिक अथवा राजनैतिक विप्लव नवयुवकों के यत्न ही से होते हैं।

विषय की विशेषता

सीखने में जल्दी अथवा देरी सीखने के विषय की विशेषता पर निर्भर करती है। निरर्थक शब्दों की अपेक्षा सार्थक शब्द अधिक जल्दी से सीखे जा सकते हैं। इबिंघास के प्रयोगों में मनुष्यों की स्मरण-शक्ति की जाँच निरर्थक शब्दों के उपयोग से की गयी थी। इस प्रकार के शब्दों का उपयोग इसलिए किया गया था कि विभिन्न प्रकार के व्यक्तिगत संस्कार याद करने वालों को न सहायता दें और न अड़चन पहुँचावें। ऐसे प्रयोगों में देखा गया है कि जो लोग किसी-न-किसी प्रकार इन शब्दों में अर्थ बैठा लेते हैं, वे उन्हें जल्दी से याद कर लेते हैं। मनचले अर्थ बैठाने की शक्ति बूढे लोगों में बहुत कम होती है, अतएव ये लोग निरर्थक शब्दों को याद करने में बहुत पिछड़ते हैं। सभी व्यक्ति किसी भी सार्थक शब्द को निरर्थक की अपेक्षा जल्दी याद करते हैं। यदि शब्दों को जोड़ा के रूप में याद किया जाय अथवा उनकी कविता बना ली जाय तो वे और जल्दी याद होते हैं। गद्य की अपेक्षा पद्य-पाठ शीघ्रता से याद होता है। किसी भी अधीत विषय को एक-एक शब्द याद करने की अपेक्षा उनके भाव को ग्रहण करके याद करने में सुगमता होती है। यदि किसी कठिन विषय का हम अर्थ खोज लें, तो वह जितनी देर तक याद रहता है, बिना अर्थ जाने वह उतनी देर तक याद नहीं रहता।

किसी विषय का अध्ययन करने में एक प्रकार की सहूलियत उसका दूसरे विषयों से सम्बन्ध जोड़ने में होती है। यदि कोई नया विचार किसी विशेष क्षेत्र का है और हम इस विचार के उस क्षेत्र का पता लगायें, जिसका वह है, तो इस क्षेत्र के अंग के रूप में उसका ज्ञान करने से वह जल्दी से याद होता है। सीखने के इस नियम को थार्न्डाइक महोदय ने समाविष्ट[1] का सिद्धान्त कहा है। इसी सिद्धान्त की चर्चा दूसरे प्रकार से वर्दीमर तथा उसके अनुयायियों ने की है। गेस्टाल्ट-सिद्धान्त भी इसी बात को व्यक्त करता है; अर्थात् अंगी का ज्ञान करने से अंग का ज्ञान शीघ्र तथा भली प्रकार से होता है। सीखने में सम्पूर्ण का ध्यान रखने से विषय के किसी अंग पर सरलता से अधिकार किया जा सकता है।

सीखने की रीतियाँ

सीखने में प्रगति अच्छी रीति के उपयोग से ही होती है। इन रीतियों के विषय में हम स्मृति के प्रकरण में ही कह आये हैं। यहाँ उनमें से कुछ बातों का दुहराया जाना आवश्यक है।

---

1. Belongingness.

समय का उचित विभाग—यदि हमें कोई गद्य अथवा पद्य याद करना है, तो कभी-कभी लगातार याद करना अच्छा होता है और कभी-कभी बीच-बीच में समय देकर। जब निरर्थक वस्तुओं को याद करना ही या कुछ रटकर याद करना हो, तब विभाग की रीति उपयोगी होती है, परन्तु जब याद किया जाने वाला विषय अर्थ सहित होता है, तब लगातार याद करना अच्छा होता है। निरर्थक बातों के याद करने में जी जल्दी से ऊब जाता है, इसलिए थकावट भी जल्दी आती है। सार्थक बातों के याद करने में मनुष्य की रुचि जाग्रत हो जाती है और इसके कारण वह तेजी से याद कर सकता है। यदि काम कठिन है तो समय विभाग की रीति अच्छी होती है और यदि सरल है, तो लगातार याद करने की रीति अच्छी होती है। समय विभाग से याद करने से एक लाभ यह होता है कि जब व्यक्ति याद नहीं कर रहा है, उस समय उसका याद किया हुआ विषय उसके मस्तिष्क में घर कर लेता है। कभी कभी बहुत देर तक काम करने से रुचि की कमी हो जाती है। थकावट भी आ जाती है। कुछ समय काम बन्द कर देने पर नई रुचि उत्पन्न हो जाती है और थकावट भी समाप्त हो जाती है। इसलिये समय विभाग की रीति अधिक उपयोगी होती है।

पूर्ण और विभाग रीति—किसी नई सम्पूर्ण समस्या को हल करने के लिये चेष्टा करना उसके अंगों के ऊपर अधिकार करने से अधिक अच्छा है। कभी-कभी काम के केवल हिस्सों को अच्छी तरह करने के यत्न से पूरा काम ठीक से नहीं होता। किसी अध्ययन के विषय को याद करने में प्रायः विभाग रीति की अपेक्षा पूर्ण रीति ही अच्छी होती है, परन्तु इस विषय में व्यक्तिगत भेद भी होते हैं। बच्चे प्रौढ़ व्यक्तियों की अपेक्षा विभाग रीति से शीघ्रता से याद करते हैं। प्रौढ़ लोगों के लिए पूर्ण रीति अच्छी रहती है। इसका कारण यह है कि प्रौढ़ व्यक्ति अर्थ के सहारे याद करते हैं, और बच्चे अधिकतर रटकर। प्रखर बुद्धि के बालकों के लिये पूर्ण रीति अच्छी होती है और सामान्य बुद्धि के बालकों के लिये विभाग रीति। सीखने के प्रारम्भ में विभाग रीति उपयोगी सिद्ध होती है और बाद में पूर्ण रीति। सीखी जाने वाली वस्तु यदि छोटी है, तो पूर्ण रीति अच्छी होती है और यदि वह बड़ी होती है, तो विभाग रीति अच्छी होती है।

सक्रिय भाग लेना—सीखना क्रियात्मक मनोवृत्ति है, अतएव जो व्यक्ति किसी नई वस्तु को सीखने के लिये जितना अधिक क्रियाशील होता है, वह उतना ही अधिक उसके विषय में सीखता है। कुछ सीखने की बातें ऐसी

होती हैं, जिन्हें क्रिया के द्वारा ही सीखा जा सकता है। उदाहरणार्थ, मोटर का चलाना। मोटर का चलाना बिना मोटर के चलाये सीखा ही नहीं जा सकता। तैरना सीखने के लिये मनुष्य को पानी मे ही उतरना पड़ता है। इसी प्रकार कक्षा में पढ़ाना अध्यापकगण बालकों को पढ़ाकर ही सीखते हैं। परन्तु बहुत सी बातें, जो लड़के स्कूल में सीखते हैं, वे क्रियात्मक ढग से नहीं वरन् निष्क्रिय होकर ही सीखते हैं। स्कूल और कालिजों में अधिकतर शिक्षक स्वयम् प्रवचन करते हैं और विद्यार्थीगण उन्हें सुनते हैं। कभी-कभी वे शिक्षक से कही हुई बात को नोटबुक पर भी लिख लेते हैं। इस प्रकार से वे जो कुछ सीखते हे, वह देर तक मस्तिष्क में नही ठहरता है। कोइ नई प्रकार की शिक्षा बालक को जबर्दस्ती नहीं दी जा सकती। सीखने का आधार अभिप्रेरणा है। कहावत है कि एक मनुष्य घोड़े को पानी तक ले जा सकता है, परन्तु बीस मनुष्य मिलकर उसे पानी नहीं पिला सकते। शिक्षक को सीखने में प्रगति करने के लिये बालकों की पाठ्य विषय में अभिरुचि जागृत करनी पड़ती है। यह रुचि भी बाहर से लादी हुई वस्तु नहीं। बालक उसी काम में रुचि लेता है, जिसको करने में वह स्वयं का लाभ देखता है। कभी-कभी शिक्षक-गण पाठ को रोचक बनाने के लिये अनेक प्रकार के उपायों को काम में लाते हैं, परन्तु, जब तक वे बालकों में यह प्रेरणा उत्पन्न नहीं करते कि वे पाठ्य विषयों को सीखें, तब तक पाठ जल्दी से नहीं सीखा जाता। पाठ की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये कभी-कभी शिक्षकगण बालकों से प्रश्न पूछते हैं। इससे सीखने में कुछ प्रगति होती है परन्तु बालकगण अधिक तभी सीखेंगे, जब स्वयम् वे शिक्षक से प्रश्न पूछें और शिक्षक उनके प्रश्नों के उत्तर दें। आधुनिक काल में ऐसी अनेक शिक्षण-प्रणालियाँ निकली हैं, जिनमें बालक स्वयम् सीखने का प्रयास करता है और शिक्षक बालक के इस आत्मस्फूर्ति जन्य प्रयास में सहायता मात्र करता है। इन रीतियों को ह्यूरिस्टिक[1] मेथड और प्रोजेक्शन[2] मेथड कहा जाता है।

प्रपठन रीति[3]—पाठ को याद करने में उसे लगातार याद करने की अपेक्षा अपनी परीक्षा करते हुए याद करना अच्छा होता है। अपनी परीक्षा

---

1. Heuristic method.
2. project method.
3. Recitation method.

वह नये काम को जल्दी से सीखता है। बच्चे अधिकतर शब्दों से बोल कर ही किसी नई बात को समझते हैं। शब्द मनुष्य के विचार में सहायक होते हैं। जो व्यक्ति जितना ही स्पष्ट शब्दों में अपनी समस्या को रख लेता है, वह उसके हल करने में उतना ही अधिक समर्थ होता है। यदि हमें किसी ऐसी जगह जाना है, जहाँ हम एक बार हो आये है, तो यदि हम नई जगह जाने के पूर्व अपने आप से स्पष्टतः यह कहें कि 'हमें पहले पूरब की ओर जाना है' फिर बायें तरफ मुड़ना है, फिर सीधे आगे बढ़ जाना है तो इस प्रकार के कहने से हम गन्तव्य स्थान पर सरलता से पहुँच सकेंगे। ड्रवेल महोदय ने अपनी 'फन्डामेंटल्स आफ साइकोलाजी' नामक पुस्तक में बताया है कि यदि हमें किसी विषय का अधूरा ज्ञान हो और हम उसे पूर्ण बनाना चाहते हैं तो हमें उस विषय को किसी कक्षा को पढ़ाने लग जाना चाहिये। दूसरों को अपने विचार व्यक्त करने के प्रयास से वे स्वयम् हमको स्पष्ट हो जाते हैं और हम अध्येय का ज्ञान अच्छी तरह कर सकते हैं।

हस्त कलाकौशल का सीखना[1]

सीखना दो प्रकार का होता है। एक में स्मृति और विचार का अधिक प्रयोग होता है और दूसरे में शारीरिक क्रियाओं का। किसी हस्तकला अथवा हुनर के सीखने में वही सिद्धान्त काम करते हैं, जो दूसरे प्रकार की सीखने की क्रियाओं में काम में आते हैं, परन्तु यहाँ उपयोगी नियम बताना आवश्यक है। ये नियम किसी भी प्रकार की आदत बनाने के लिये आवश्यक होते हैं। हस्तकौशल को सीखने के लिये निम्नलिखित नियम उपयोगी हैं।

उचित समय—काम को करने में प्रारम्भ में जल्दी न करके उसके सही तरीके से करने पर जोर देना चाहिये। प्रारम्भ में जल्दी करने से भूलें होती हैं। इन भूलों के कारण गलत तरह से काम करना मनुष्य सीख जाता है। बच्चों को पढ़ाते समय इस पर विशेष ध्यान देना है। उनसे अक्षरों के शुद्ध रूप ही लिखाना चाहिये चाहे समय जितना ही अधिक क्यों न लगे।

सीखने को सफल बनाने के लिये दो बातों पर ध्यान रखना होता है। एक सीखने की गति और दूसरा काम को ठीक ढग से करना। यदि सीखे हुये काम को कोई आदमी बहुत देर में करता है, तो उसका सीखना-न सीखना बराबर ही हो जाता है। इसके प्रतिकूल यदि कोई व्यक्ति काम

1. Learning Skill.

जल्दी कर लेता है परन्तु उसमें भूलें कर देता है तो भी उसका सीखना व्यर्थ हो गया। कभी-कभी सीखने में समय की बचत पर अधिक ध्यान दिया जाता है और कभी सही काम पर। लड़िया के सीखने में समय की बचत पर ही अधिक ध्यान देना उचित है क्योंकि उनकी भूलों को सुधारा जा सकता है किन्तु किसी मशीन के चलाने वाले के काम में सही रीति पर ध्यान देना आवश्यक है; क्योंकि मशीन के चलाने में थोड़ी-सी भी गलती होने पर बहुत भारी हानि हो सकती है।

किसी नये काम को सीखने में न तो अत्यधिक जल्दी की जाय और न बहुत अधिक समय लगाया जाय। समय ऐसा ही देना चाहिये जिससे थकावट, अरुचि अथवा निराशा के भाव उत्पन्न न हो जाँय। कभी-कभी जोश में होकर तेजी से काम करने से भी सीखना अच्छी तरह से आता है।

ठीक आदत—किसी काम को सीधे तरीके से करने पर ही चित्त जमाना चाहिये। मान लीजिये हमें टाइप करना सीखना है, तो प्रारम्भ से ही अक्षरों पर ध्यान न जमाकर शब्द-विधि पर ही ध्यान जमाना अच्छा है। कितने ही लोग अक्षरों को देखकर टाइप करते हैं, वे बाद में बिना देखे छूने की विधि से टाइप करने में कुशलता प्राप्त नहीं करते। सीखे जानेवाले काम को टुकड़े-टुकड़े में न बाँटकर उसे या तो पूरा-पूरा किया जाय अथवा उसे स्वाभाविक खंडों में बाँटा जाय। यदि उसे स्वाभाविक खंडों में नहीं बाँटा जाता, तो काम देर में सीखा जाता है। टाइपिंग में स्वाभाविक खंड शब्द है न कि अक्षर, इसलिये शब्द-विधि से ही सीखना प्रारम्भ करना चाहिये।

कुछ अधिक काम—कार्य में कुशलता प्राप्त करने के लिये जितनी उसे सीखने की आवश्यकता है उससे कुछ अधिक ही सीखना अच्छा है। सीखे हुये काम के संस्कार सजीव रखने के लिये भी प्रतिदिन कुछ न-कुछ सीखे हुये काम को करते रहना चाहिये। कुशल शिक्षक जब कक्षा पढ़ाने का काम कई वर्षों तक छोड़ देते हैं और फिर उन्हें कक्षा पढ़ाना पड़ता है, तो बड़ी कठिनाई होती है। ऐसी ही कठिनाई मोटर-चालक और वायुयान चालक को भी होती है।

उचित सहायता—हस्तकौशल सीखने में दूसरों से अनावश्यक सहायता लेना ठीक नहीं है। यदि आवश्यक सहायता भी अधिक जानकार लोगों से न ली जाय तब सीखना सम्भव ही नहीं होगा। परन्तु अत्यधिक सहायता लेने पर भी सीखने में लाभ नहीं होता।

अभिप्रेरणा—सभी प्रकार का सीखना सीखने की इच्छा पर निर्भर करता है, अतएव मनुष्य की अभिप्रेरणा को प्रबल बनाकर ही कोई नया हस्तकौशल सीखा जा सकता है। इसके लिये आवश्यक है कि जैसे जैसे कार्यकर्त्ता को सीखने में सफलता मिले, वैसे-वैसे उसे नये-नये पुरस्कार दिये जाँय। उचित पुरस्कारों के अभाव में काम निर्जीव हो जाता है और फिर नया कौशल प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

प्रशिक्षण का स्थानान्तरण[1]

बहुत पुराने समय से विचार चला आया है कि किसी काम का सीखना व्यर्थ नहीं जाता। देहात में कहावत प्रचलित है, 'बैठे से बेगार भली'। हमारी यह सामान्य धारणा है कि यदि हम एक काम को करना सीख लेते हैं, तब हमें दूसरे काम को करने में इससे सहूलियत मिलती है। पुराने समय के शिक्षा विशेषज्ञों की यह मान्यता थी कि मनुष्य का व्यक्तित्व अनेक प्रकार की शक्तियों का बना हुआ है और विभिन्न प्रकार के पढ़ाई के विषय उसकी विभिन्न प्रकार की शक्तियों को—जैसे निरीक्षण शक्ति, स्मरण-शक्ति, कल्पना-शक्ति, चिन्तन और तर्क-शक्ति को प्रशिक्षित करते हैं। इन शिक्षा विशेषज्ञों की मान्यता थी कि जब हम कोई विषय बालकों को पढ़ाने के लिये चुनें, तो हमें यह विचार करने की आवश्यकता नहीं कि वह बालक के जीवन में उपयोगी है, अथवा नहीं। हमें जो प्रधान बात देखना है वह यह है कि वह बालक की कौन-सी मानसिक शक्ति को प्रशिक्षित करता है। विभिन्न विषय विभिन्न मानसिक शक्तियों को प्रशिक्षित करते हैं। ग्लेज़नुक महोदय के कथनानुसार भाषा और इतिहास बालक की स्मरण-शक्ति को विशेष प्रकार से प्रशिक्षित करते हैं। कल्पना, साहित्य के द्वारा और विशेष कर ग्रीक और लैटिन कविताओं के द्वारा प्रशिक्षित होती है। निरीक्षण शक्ति वैज्ञानिक प्रयोगों से सबसे अधिक होती है। यह लैटिन और ग्रीक के पढ़ने से भी होती है। सूक्ष्म चिन्तन-शक्ति के लिये गणित सर्वोत्तम है और स्थूल चिन्तन के लिये विज्ञान तथा ज्यामेट्री। सामाजिक तार्किकता में प्रशिक्षण के लिये ग्रीक और रोमन जातियों का इतिहास और सामान्य इतिहास बहुत उपयोगी हैं। यदि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास है, तो इसके लिये उसके व्यक्तित्व के विभिन्न अङ्गों का अथवा उसकी मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षित करना नितान्त आवश्यक है।

---

1. Transfer of Training.

उक्त मान्यता से प्रेरित होकर प्राचीनकाल में विद्यार्थियों को ऐसे बहुत से विषय पढ़ाये जाते थे, जिनमें पढ़ाये गये विषयों की विद्यार्थी के जीवन में कोई उपयोगिता न थी। ये विषय विद्यार्थी को इसी दृष्टि से पढ़ाये जाते थे कि उनके द्वारा बालक की विशेष प्रकार की मानसिक शक्ति का प्रशिक्षण होता है। और इस प्रशिक्षण द्वारा उनकी मानसिक शक्ति का विकास होता है। स्कूलों में गणित का ऊँचा कोर्स इस लिये रखा जाता था कि इससे बालकों में चित्त की एकाग्रता, ठीक-ठीक काम करने की आदत और तर्क करने की शक्ति की वृद्धि होती है। बालकों को बहुत-सी कवितायें और गद्य पाठ इस लिये रटाये जाते थे कि उनके द्वारा उनकी स्मरण-शक्ति तेज हो जाती है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से यह पता चलता है कि उक्त मान्यतायें भ्रमात्मक हैं।

इस विषय पर सबसे पहले विचार हरबर्ट स्पेंसर महोदय ने अपनी 'एजुकेशन' नामक पुस्तक में प्रकट किया था। उनके मतानुसार बालक को कोई विषय इसलिए नहीं पढ़ाया जाना चाहिए कि इससे उसकी विशेष प्रकार की मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण होता है, वरन् वह विषय उसे इसलिए पढ़ाया जाना चाहिए कि वह बालक के जीवन को सफल बनाने में सहायक होता है। हरबर्ट स्पेंसर ने इस तरह मानसिक शक्तियों के प्रशिक्षण को पाठ्य क्रम बनाने में प्रथम स्थान न देकर विषय की उपयोगिता को ही प्रथम स्थान दिया है। उन्होंने बताया है कि यदि किसी उपयोगी विषय के द्वारा बालक की विशेष प्रकार की मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण होता है, तो अच्छा ही है। अनुपयोगी विषयों की अपेक्षा उपयोगी विषयों के द्वारा मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण किया जाना चाहिए। स्पेंसर ने इस प्रकार बच्चों की पढ़ाई के पाठ्यक्रम बनाने में उनकी मानसिक शक्तियों के प्रशिक्षण के सिद्धात को महत्वहीन बना दिया।

विलियम जेम्स ने प्रशिक्षण के द्वारा मानसिक शक्तियों की वृद्धि के विषय में स्वयम् पर एक प्रयोग किया। उसने यह जानना चाहा कि स्मरण-शक्ति के अभ्यास से कहाँ तक उसकी उन्नति हो सकती है। विलियम जेम्स ने एक कविता की डेढ़-सौ पंक्तियाँ याद कीं और उसका समय नोट किया। फिर इसके बाद उसने मिल्टन कवि के 'पेरॉडाइज़ लास्ट' के कुछ हिस्सों को याद किया। कई दिनों तक वह मिल्टन का 'पेरॉडाइज़ लॉस्ट' इस नियत से याद करते रहा कि उसकी स्मरण शक्ति तीव्र हो जाय। इसके बाद उसने फिर पहली कविता की एक सौ पचास पंक्तियाँ विधिवत्

याद की। इस प्रयोग के परिणाम स्वरूप उसे पता चला कि उसके स्मरण शक्ति के अभ्यास मात्र ने—अर्थात् मिल्टन की 'पैराडाइज लॉस्ट' याद करने से उसकी पहली कविता याद करने की शक्ति में कोई मौलिक विकास नहीं हुआ।

विलियम जेम्स के उक्त मनोवैज्ञानिक प्रयोग ने वर्तमान समय के बहुत से मनोवैज्ञानिकों को इस विषय पर प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया। इन प्रयोगकर्ताओं में थार्न्डाइक के प्रयोग बड़े महत्व के हैं। प्रशिक्षण को स्थानान्तरण के जाँच करने का प्रयोग निम्नलिखित रूप से होता है।

किसी एक कक्षा को दो दलों में विभक्त कर दिया जाता है। दोनों दल इस प्रकार रखे जाते हैं कि वे योग्यता में समान हों—अर्थात् प्रत्येक दल का प्रत्येक विद्यार्थी के बराबरी का विद्यार्थी दूसरे दल में भी रहे। अब इन दोनों दलों के विद्यार्थियों में से एक दल को कुछ काम को जैसे—निरर्थक शब्दों को याद करना आदि दे दिया जाता है जिसे वे प्रतिदिन आधा घण्टा करते हैं, उसी समय में दूसरे दल के विद्यार्थियों से स्कूल का सामान्य काम कराया जाता है। यह दूसरा दल कंट्रोल ग्रूप कहलाता है।

जब लगभग १५ दिन तक विद्यार्थियों से इस प्रकार का अभ्यास करा लिया जाता है, तब दोनों दलों को कुछ याद करने का काम दिया जाता है। यह काम जिस प्रकार के काम के द्वारा अभ्यास कराया गया था, उससे सर्वथा भिन्न प्रकार का होता है। ऐसे प्रयोग में देखा गया कि जिन विद्यार्थियों को स्मरणशक्ति की ट्रेनिंग दी गई थी वे कट्रोल ग्रूप की अपेक्षा काम कुछ अच्छा अवश्य करते हैं, परन्तु उनकी काम करने की योग्यता में उन्नति नगण्य होती है। यदि इन बालकों को उसी प्रकार के विषय पहले याद करने को दिये जाँय, जिस प्रकार परीक्षा के समय दिये जाते हैं, तो ये बालक प्रशिक्षण से लाभान्वित होते हुए अवश्य दिखाई देते हैं। निरर्थक शब्दों के याद करने के अभ्यास से सार्थक गद्य करने में कोई सहूलियत नहीं होती। यदि विद्यार्थियों को कविता याद करने को देकर बाद में उनकी परीक्षा गद्य को याद करने के द्वारा की जाय, तो बालकों के याद करने की शक्ति में मौलिक वृद्धि दिखाई पड़ेगी।

इस प्रकार के प्रयोगों में कई कमियाँ रह जाती हैं। थार्न्डाइक ने एक महत्व का प्रयोग सन् १९२२ में ८००० विद्यार्थियों पर किया। यह प्रयोग एक वर्ष तक चलता रहा। जिन विद्यार्थियों पर यह प्रयोग किया गया था, उन्हें यह जानने नहीं दिया गया कि उनपर कोई प्रयोग हो रहा है। इनमें

से कुछ विद्यार्थियों को अपनी विशेष प्रकार की मानसिक शक्ति बढ़ाने के लिए कुछ काम दिए गये। एक वर्ष के बाद यह पता चला कि विशेष प्रकार के प्रशिक्षण के कारण मानसिक शक्तियों में उन्नति नहीं हुई। अमेरिका के कुछ मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगों-द्वारा यह जानने की चेष्टा की है कि भूल-भूलैया में प्रशिक्षित होने से खेलने के कार्ड को ठीक से चुनने की योग्यता कहाँ तक बढ़ती है। निरर्थक पदों के याद करने से कविता याद करने में सहायता मिलती है ! क्या लैटिन में दक्षता प्राप्त करने से अंग्रेजी में दक्षता प्राप्त होती है ? थार्न्डाइक ने अपने प्रयोगों से पता चलाया कि प्रशिक्षण के स्थानान्तरण का सिद्धान्त प्रयोगों के निष्कर्ष पर आधारित नहीं है, वरन् हठवादिता पर ही आधारित है।

थार्न्डाइकने कुछ लड़कों को दो वर्गों में विभक्त किया। एक वर्ग को लैटिन, गणित और इतिहास पढ़ने को दिया गया और दूसरे वर्ग को बुक कीपिंग और कामर्स दिया गया। इन लड़कों को प्रशिक्षित करने के पूर्व उनकी तर्कशक्ति को जाँचने का एक टेस्ट भी दिया गया और फिर एक साल के बाद उसी प्रकार का टेस्ट उन विद्यार्थियों को दिया गया। थार्न्डाइक का उद्देश्य विभिन्न प्रकार के विषयों का तर्क-शक्ति के विकास में क्या प्रभाव पड़ता है, जानना था। इस टेस्ट से पता चला कि लैटिन, इतिहास और गणित, जो तर्क-शक्ति को विकसित करने के साधन माने जाते हैं, बालकों को इस शक्ति को विकसित करने में दूसरे विषयों की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध न हुये।

आज दिन तक इसी प्रकार के अनेक प्रयोग किये जा चुके हैं। इन प्रयोगों के परिणाम स्वरूप यह ज्ञात हुआ है कि किसी विशेष विषय के पढ़ने से कोई विशेष प्रकार की मानसिक शक्ति का विकास नहीं होता, अतएव किसी विषय को केवल इसीलिए नहीं पढ़ाया जाना चाहिए कि वह मानसिक शक्ति का विकास करता है, वरन् उसे इसलिए पढ़ाया जाना चाहिए कि वह मानव-जीवन में उपयोगी है। थार्न्डाइक महोदय ने अपने प्रयोगों से यह सिद्ध किया है कि प्रशिक्षणों का स्थानान्तरण उतनी दूर तक होता है, जहाँ तक प्रशिक्षण के कार्य में प्रयुक्त विषय और परीक्षा के लिए प्रयुक्त विषय में समानता रहती है। प्रशिक्षण का स्थानान्तरण यदि होता है तो दो विषयों के अंगों में समानता होने के कारण। प्रशिक्षण के स्थानान्तरण के इस सिद्धान्त को थ्योरी ऑफ कामन एलीमेन्ट्स[1] कहा जाता है।

1. Theory of Common Elements.

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका अर्थ यह नहीं कि किसी प्रकार के काम को भली प्रकारसे करने से मानसिक शक्तियों का अथवा हमारी काम करने की योग्यता का विकास होता ही नहीं। एक कठिन काम को करने से दूसरे कठिन काम में सहूलियत अवश्य होती है। यह सहूलियत इसलिये होती है कि मनुष्य की अभ्यास करने की आदत दृढ़ होती है। एक काम को सफलता पूर्वक करने से दूसरे काम को करने में मनुष्य का उत्साह बढ़ता है। इसके अतिरिक्त कठिन काम को करने से काम करने का ढंग भी व्यक्ति को आता है। इसीलिए एक कठिन काम करने के पश्चात् मनुष्य दूसरा कठिन काम सरलता से कर सकता है।

विशेष अध्ययन के लिए सहायक ग्रंथ

1. Raymont : Principles of Education, Chap. IV.

2. Thomson : Instinct, Intilligence end Character, Chap. VI.

3. L. R. Shukla : Elements of Educational Psychology, Chap. XVII

4. Munn : Psychology : Fundamentals of Human Adjustment, Chap. III

प्रश्न

१—सीखने में प्रगति किन किन बातों पर निर्भर करती है ? अभिप्रेरण की सीखने में महत्ता बताइये।

२—सीखने में मनुष्य के व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण स्थान है। इस कथन की प्रमाणिकता सिद्ध कीजिये।

३—लगातार पाठ याद करने के बदले प्रपठन की रीति अधिक उपयोगी है। इस सम्बन्ध में किसी एक प्रयोग का उल्लेख कीजिये।

४—प्रशिक्षण का स्थानान्तरण कहां तक होता है ? इस विषय में थार्न्डाइक महोदय के प्रयोगों को सक्षेप में लिखिये।

५—हस्तकला कौशल के सीखने में कौन-कौन-सी बातें सहायक होती हैं ? बालकों की हस्तकला सीखने में ठीक क्रिया पर जोर देना कहाँ तक उचित है ?

उन्नीसवाँ प्रकरण

व्यक्तित्व[1]

व्यक्तित्व के अध्ययन का महत्व

प्रत्येक मनुष्य अपने व्यक्तित्व को मूल्यवान वस्तु मानता है। वह अपने व्यक्तित्व को नगण्य न बनाकर कीमती बनाना चाहता है। हम जो कुछ हैं, वह सभी व्यक्तित्व शब्द से सांकेतित होता है। हम कहा करते हैं कि किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व दुर्बल है अथवा सुदृढ़ है, आकर्षक है अथवा अनाकर्षक है। कभी-कभी एक विशेष गुण के कारण ही मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व को विशेष प्रकार का मान लिया जाता है। हम कभी-कभी कहते हैं कि अमुक आदमी बड़ा डरपोक है अथवा बड़ा बहादुर है, कमजोर है अथवा सुदृढ़ है, ढीला-ढाला है अथवा लगन का पक्का है, हठी है अथवा दूरदर्शी है। ये सभी शब्द व्यक्तित्व के गुणों के बोधक हैं। कभी-कभी भावावेश में आने पर अथवा किसी व्यक्ति के बारे में अपनी विशेष धारणा बन जाने पर हम मनुष्य के एक ही गुण को इतनी महत्ता दे देते हैं कि हम यह सोचते ही नहीं कि उस व्यक्ति में दूसरे गुण भी ऐसे हो सकते हैं, जो उसके उस विशेष गुण को ढँक सकते हैं। साधारणतः व्यक्ति के एक ही गुण से हम उसके व्यक्तित्व का नाम करण कर देते हैं।

व्यक्तित्व के विषय में अध्ययन करना इसलिए उपयोगी है कि हम सभी अपने व्यक्तित्व को अच्छा बनाना चाहते हैं। अपने बालकों के व्यक्तित्व को भी हम ऐसा बनाना चाहते हैं, ताकि जगत में उनकी प्रशंसा हो, वे ऐसे बनें कि दूसरे लोग उन्हें भार न मानकर सहायक मित्र के रूप में देखें। इसके लिए आवश्यक है कि हम व्यक्तित्व शब्द के अर्थ समझें और यह जानें कि वह किन-किन तत्वों का बना हुआ है तथा उसका विकास किन-किन बातों पर निर्भर करता है। यदि हम अपना अथवा अपने बालकों का व्यक्तित्व वांछनीय बनाना चाहते हैं, तो हमें यह भी जानना होगा कि व्यक्तित्व में पूर्णता कैसे आती है, किन मूल्यों को प्राप्त करके व्यक्तित्व महान बनाया जा सकता है और शिक्षा का इस पर क्या प्रभाव पड़ता है।

---

1. Personality.

व्यक्तित्व का अर्थ और स्वरूप

व्यक्तित्व शब्द का अर्थ है मनुष्य की वे विशेषतायें, जो उसे दूसरे मनुष्यों से भिन्न करती हैं। प्रत्येक मनुष्य के किसी परिस्थिति में पड़ने पर काम करने के अपने ही ढंग होते हैं। वह दूसरों के साथ विशेष ढंग से व्यवहार करता है। उसकी लगन किसी विशेष काम में होती है। वह विशेष प्रकार के लोगों से मिलना-जुलना पसन्द करता है और उसके विशेष प्रकार के जीवन के आदर्श होते हैं। ये सभी बातें व्यक्तित्व शब्द से सबोधित होती हैं। अंग्रेजी भाषा में व्यक्तित्व शब्द का पर्याय शब्द परसोनैलिटी है। परसोनैलिटी मनुष्य के स्वत्व का भाग है, जिसके विषय में उसे अभिमान होता है और जिसे वह अपना आप समझता है। मनुष्य का व्यक्तित्व समाज में आने पर दिखाई देता है।

व्यक्तित्व शब्द से उन सभी बातों का बोध होता है, जो हममें हैं और जिनका हम अभिमान रखते हैं। हमारे शरीर, मन और चरित्र सभी का समावेश व्यक्तित्व में होता है। मनुष्य की सवेदनाएँ, सहज वृत्तियाँ, उद्वेग, प्रत्यक्ष ज्ञान, कल्पना, स्मृति, बुद्धि तथा विवेक, सभी मानसिक शक्तियों का सम्बोधन व्यक्तित्व शब्द से होता है, अर्थात् ये सभी व्यक्तित्व के अन्तर्गत हैं। इतना ही नहीं, व्यक्तित्व से हमारा दूसरे व्यक्तियों से सम्बन्ध भी सम्बोधित होता है। वास्तव में हमारे व्यक्तित्व का गठन दूसरों के सम्पर्क में आने से ही होता है और दूसरों के सम्बन्ध से ही उसका विकास होता है। इसका अर्थ है कि हमारे व्यक्तित्व का अधिक भाग सामाजिक है।

व्यक्तित्व उपर्युक्त मनोभावों का समुच्चय मात्र नहीं है। इन सब अंगों में सगठन और एकत्व स्थापन होने पर ही व्यक्तित्व बनता है। जैसे-जैसे बालक आयु में बढता है, उसका जन्मजात स्वभाव वातावरण के अनुभवों से परिवर्तित होता जाता है। मनुष्य का व्यक्तित्व उसकी प्रौढ़ अवस्था में ही सम्पूर्णतः बनता है और प्रौढ अवस्था में भी हमारे व्यक्तित्व में अनेक प्रकार की उन्नति होती रहती है। अवस्था के बढ़ने के साथ साथ मनुष्य के अनुभव भी बढ़ते हैं। इन अनुभवों को वह सुसगठित करता है। अर्थात् वह उन्हें एक सूत्र में बाँधता है। इस प्रकार के अनुभवों को सूत्रीभूत करना सुविकसित व्यक्तित्व के लिए आवश्यक है। हम प्रतिक्षण परिवर्तित होते हैं। जो हम एक वर्ष पूर्व थे, वह आज नहीं हैं। यदि हम अपने आपको दस वर्ष की अवस्था से तुलना करें तो हम कठिनता से अपने को पहचानेंगे।

इतने पर भी हम कहते हैं कि हम वही व्यक्ति हैं जो दस वर्ष पूर्व थे। हम ऐसा इसलिए कहते हैं कि हम अपने प्रत्येक अनुभव को एकता में सूत्रीभूत करते हैं। एक ही अहंकार तब से अब तक के हमारे सभी अनुभवों में काम करता है। आदर्श व्यक्तित्व वह है, जिसमें सभी अनुभवों का सुसंगठन भी एक सत्ता-द्वारा हो और व्यक्तित्व का कोई भी अङ्ग इस सङ्गठन के बाहर न हो। जिस समय मनुष्य के विभिन्न अनुभवों के कारण विभिन्न संस्कारों में विरोध रहता है और उसकी विभिन्न शक्तियों में एकता नहीं होती, उस समय व्यक्तित्व-विच्छेद होता है। व्यक्तित्व-विच्छेद होना एक भयानक मानसिक परिस्थिति है। व्यक्तित्व-विच्छेद से मनुष्य का सर्वस्व ही नष्ट हो जाता है।

गम्भीर मनोविज्ञान की खोजों के अनुसार मनुष्य का व्यक्तित्व उसका संपूर्ण स्वत्व नहीं है, वह उसके सम्पूर्ण स्वत्व का वह भाग है, जो समाज-सम्पर्क से और समाज में व्यवहार करने से उसमें निर्मित होता है। मनुष्य अपने आप को भी वैसा ही जानता है, जैसा समाज के लोग उसके विषय में राय रखते हैं। परन्तु कभी-कभी मनुष्य के स्वत्व का अदृश्य भाग उसके स्वत्व के दृश्य भाग से भिन्न ही होता है। जो व्यक्ति समाज में बहुत उदार दिखाई देता है, वह आन्तरिक स्वत्व में कृपण हो सकता है, जो दयालु दिखाई देता है, वह भीतरी स्वत्व में निर्दय हो सकता है और जो अपने प्रकाशित स्वत्व में संयमी दिखाई देता है वह भीतरी मन से विषय लोलुप हो सकता है। इस बात को यूनान के प्राचीन दार्शनिकों ने जाना था और इसलिए ही उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन को सफल बनाने के लिए मध्यम मार्ग पर चलने की सलाह दी थी। प्लेटो का कथन है कि जिन कामों को पापी अपने व्यवहारिक जीवन में करते हैं उन्हीं को संत पुरुष स्वप्न देखकर संतोष कर लेते हैं।[1] यूनानी भाषा में परसोनैलिटी शब्द का अर्थ चेहरा है। यह चेहरा लगा कर यूनान के नाटककार भिन्न-भिन्न स्वाग बनाते थे। गंभीर मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि जिस प्रकार प्राचीन काल में किसी ड्रामा के खिलाड़ी रंगमंच पर आने के पूर्व विशेष प्रकार का चेहरा लगा लेते थे उसी तरह प्रत्येक व्यक्ति समाज में आने के पूर्व एक विशेष प्रकार का स्वाग बना कर आता है। जो व्यक्ति जितना ही इस स्वाग बनाने की क्रिया में निपुण होता है वह अपने भीतरी स्वभाव के विषय में न केवल दूसरों को वरन् स्वयम् को भी उतना ही धोखा देता है।

1. Saints content themselves with dreaming what the siners do in actual life—Republic.

व्यवहारवादी और प्रयोगवादी मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व शब्द का उतना ही सीमित अर्थ नहीं लेते, जितना कि गम्भीर मनवैज्ञानिक अथवा मनोविश्लेषक उसका अर्थ लेते हैं। जहाँ मनोविश्लेषकों ने मनुष्य के सपूर्ण स्वत्व के बोध के लिए इन्डिविजुएलिटी शब्द का प्रयोग किया है और उसके सामाजिक स्वत्व के लिए परसानैलिटी शब्द का प्रयोग किया है, वहाँ व्यवहारवादी और प्रयोगवादी मनोवैज्ञानिको ने परसानैलिटी (व्यक्तित्व) शब्द से सपूर्ण स्वत्व का अर्थ किया है। इन लोगों के कथनानुसार जब मनुष्य के स्वत्व से उसके व्यक्तित्व को निकाल दिया जाता है, तो फिर बाकी कुछ रह ही नहीं जाता। प्रयोगवादी, व्यवहारवादी अथवा अनुभववादी मनोविज्ञान इसके अतिरिक्त दूसरा कोई दृष्टिकोण रख ही नहीं सकता। इनके कथनानुसार मनुष्य का स्वत्व उतना ही है, जितना हम अनुभव से अथवा प्रयोग से उसे जान सकते हैं अथवा जो स्वत्व उसके व्यवहार में प्रकाशित होता है। हम इन पक्तियों में उसी व्यक्तित्व के बनावट की चर्चा करेंगे, जिसकी चर्चा इन अनुभववादी अथवा प्रयोग वादा मनोवैज्ञानिकों ने की है। सामान्य अनुभव अथवा प्रयोगों के परे भी मनुष्य का कोई व्यक्तित्व है, इस बात की चर्चा करना यहाँ अप्रासगिक है।

व्यक्ति के अङ्ग[1]

ऊपर कहा जा चुका है कि व्यक्तित्व अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक शक्तियों के सगठन का नाम है। व्यक्तित्व के प्रधान अङ्ग निम्न लिखित हैं:—

(१) व्यक्ति का रूप[2]।
(२) बुद्धि[3]।
(३) व्यक्ति के भाव[4]।
(४) चरित्र तथा मानसिक दृढ़ता[5]।
(५) सामाजिकता[6]।

अब व्यक्तित्व के एक एक अङ्ग पर क्रमश विचार किया जायगा।

व्यक्ति का रूप—व्यक्ति के रूप के अन्तर्गत साधारणत उसके शरीर की बनावट, उसकी सज धज आती है। कोई मनुष्य, नाटा होता है तो कोई ऊँचा कोई दुबला पतला होता है तो कोई मोटा, कोई गोरा और कोई काला किसी

---

1 Factors of Personality 2 Physical appearance
3 Intelligence 4 Emotionality
5 Character 6 Sociability

से मनुष्य शरीर से सुन्दर न होते हुए भी देखने में सुन्दर लगते हैं। वास्तव में उनके व्यवहारों की सुन्दरता उनकी शारीरिक कुरूपता को ढक देती है अथवा उसमें इतना मौलिक परिवर्तन कर देती है कि कुरूपता ही सुन्दरता समझी जाने लगती है। एक कुलीन युवती, जिसकी सज-धज कुछ भी नहीं है, एक सब प्रकार से सजी रूपवती वेश्या से अधिक सुन्दर दिखाई देती है। कुलीन युवती लज्जावती और संयमी होती है। वेश्या में ये गुण नहीं होते। इसके कारण उसके रूप और सजावट भी घृणास्पद बन जाते हैं। मधुरभाषी शीलवान् व्यक्ति, कटुभाषी, दम्भी पुरुष की अपेक्षा रूप में भी अधिक सुन्दर दिखाई देता है।

बुद्धि—रूप की अपेक्षा मनुष्य की बुद्धि उसके व्यक्तित्व का अधिक महत्त्व का अंग है। उसकी बुद्धि के गुण उसके शरीर की बनावट के समान जन्मजात होते हैं, किन्तु उसकी बुद्धि का विकास उसके अपने प्रयत्न तथा शिक्षा पर निर्भर करता है। शरीर की बनावट में प्रयत्न द्वारा मौलिक परिवर्तन नहीं हो सकते, किन्तु प्रयत्न से बुद्धि सुविकसित हो सकती है और इसके अभाव में वह अविकसित रह सकती है। मनुष्य की जन्मजात बुद्धि जैसी भी हो उसकी उपयोगिता उसके विकास के ऊपर निर्भर करती है। जन्म से कोई व्यक्ति मन्दबुद्धि होता है तो कोई प्रखर बुद्धिवाला। मन्दबुद्धि को प्रखर-बुद्धि बनाना असम्भव है। इसी प्रकार प्रखर बुद्धिवाले को मन्दबुद्धि नहीं बनाया जा सकता। दोनों प्रकार की बुद्धियों की उपयोगिता घटाई या बढ़ाई जा सकती है। यह उपयोगिता उनके विकास के ऊपर निर्भर करती है।

मनुष्य का ज्ञान उसकी बुद्धि के ऊपर निर्भर होता है। मन्द बुद्धिवाले को वैसा ज्ञान नहीं दिया जा सकता जैसा प्रखर बुद्धिवाले को दिया जा सकता है। बुद्धि ही उनकी विशेष प्रकार की रुचियों का कारण होती है। जिस व्यक्ति में जिस विषय के समझने की योग्यता नहीं होती, उस विषय के प्रति रुचि भी उसमें नहीं होती। इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्य के मन का विकास अधिकतर उसकी बुद्धि के ऊपर निर्भर रहता है। प्रखर बुद्धिवाले व्यक्ति को चरित्रवान् बनाना मन्द बुद्धिवाले व्यक्ति की अपेक्षा अधिक सरल होता है। चरित्र-गठन के लिए ज्ञान की वृद्धि की परमावश्यकता है।

व्यक्ति के भाव—मनुष्य के व्यक्तित्व का एक प्रधान अंग व्यक्ति के भाव हैं। किसी में भावों की प्रबलता जन्म से ही अधिक होती है और किसी में कम। कुछ लोग स्वभाव से प्रसन्नचित्त रहते हैं और कुछ लोग

दुखी। मनोवैज्ञानिकों ने भावों की दृष्टि से निम्नलिखित चार प्रकार के व्यक्तित्व बताये हैं—

(१) प्रफुल्ल[1]।
(२) उदास[2]।
(३) क्रोधी[3]।
(४) चंचल[4]।

उपर्युक्त सभी व्यक्तित्व अवाञ्छनीय हैं। किन्तु इन चारों में प्रफुल्ल व्यक्तित्व सबसे अच्छा है। प्रफुल्ल स्वभाववाला व्यक्ति हर समय खुशी का प्रदर्शन करता है। वह जब देखो तब हँसी मजाक करता रहता है। उसमें गम्भीरता नहीं रहती किसी काम को वह बड़ी जिम्मेदारी के साथ नहीं कर सकता। वह किसी परिस्थिति के दुखद पहलू पर विचार नहीं करता। वह जो कुछ करता है उसमें सम्पूर्ण सफलता की आशा पहले से ही करता है, चाहे इस प्रकार की आशा करना सर्वथा निराधार क्यों न हो। इस प्रकार का व्यक्ति जीवन में बहुत से धोखे खाता है। जीवन की सफलता के लिए मनुष्य में गम्भीर स्वभाव की उतनी ही आवश्यकता है जितनी प्रफुल्लता की। प्रफुल्ल स्वभाववाला व्यक्ति अत्यधिक आशावान् होता है। उसका अत्यधिक आशावान् होना ही जीवन में उसे असफल बनाता है।

प्रफुल्ल स्वभाव के प्रतिकूल उदास स्वभाव है। जहाँ प्रफुल्ल व्यक्ति सब स्थितियों में आशा और सफलता ही देखता है, वहाँ उदास स्वभाव-वाला व्यक्ति सभी स्थितियों में निराशा और असफलता देखता है। वह सुखों का उपभोग भी ठीक तरह से इसलिए नहीं कर सकता कि उसे कल दुख होने की आशंका है। वह किसी स्थिति में सुखी नहीं रहता। दुख तो उसे दुख देते ही हैं, सुख भी उसे दुःखरूप दिखाई देते हैं।

क्रोधी स्वभाववाला व्यक्ति चिड़चिड़ा होता है। वह किसी भी दशा में शान्त रहना पसन्द नहीं करता। वह सदा किसी न किसी से लड़ने की खोज में रहता है। जब तक वह दूसरों को ठुकराता रहता है, अपने आप-को सुखी समझता है। जब उसे कोई लड़ने-भिड़नेवाला नहीं मिलता तो वह अत्यधिक दुखी होता है। अपना क्रोध प्रकट करने के लिए जब कोई दूसरा नहीं मिलता, तो वह आस पास की चीजों पर ही क्रोध करने लगता है। उन्हें तोड़-फोड़ डालता है। कभी कभी वह अपने शरीर पर ही क्रोध

---

1. Elated. 2 Depressed 3 Irritable. 4. Unstable.

प्रकट करता है, छाती और सिर पीटने लगता है। क्रोधी स्वभाव का होना अपने को दुखी बनाना है।

चंचल स्वभाववाला व्यक्ति किसी एक स्थिति में नहीं रह सकता। एक क्षण में वह प्रफुल्लित हो जाता है, तो दूसरे क्षण में उदास। इस प्रकार की मनोवृत्ति के परिवर्तन के लिए कोई विशेष कारण नहीं होते। कोई भी तुच्छ घटना उसके मन की स्थिति को एकाएक बदल देती है। वह एक अन्तिम सीमा से दूसरी अन्तिम सीमा पर एकाएक पहुँच जाता है।

मनुष्य के व्यक्तित्व के घटक

मनुष्य का व्यक्तित्व दो प्रकार के तत्वों का बना हुआ है। एक प्रकार के तत्व उसे माता पिता से प्राप्त होते हैं, अर्थात् जन्म-जात हैं और दूसरे प्रकार के तत्व-वातावरण से प्राप्त होते हैं। मनुष्य अपने माता पिता से अपने शरीर की बनावट, अपना स्वास्थ्य और शरीर निर्वाह सम्बन्धी कुछ प्रवृत्तियाँ प्राप्त करता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार वह वशानुक्रम-द्वारा विशेष प्रकार की बुद्धि और चरित्र के गुण भी प्राप्त करता है।

वंशानुक्रम का प्रभाव—वशानुक्रम का मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में क्या स्थान है, इसके विषय में पिछली सदी में बड़े महत्व की खोजें हुई हैं। गाल्टन महाशय ने अनेक प्रतिभावान लोगों की जीवनियों का पता चला कर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि मनुष्य में प्रतिभा जन्म से आती है; कुछ परिवारों में वशानुक्रम के कारण अधिक प्रतिभा दिखाई देती है, अर्थात् प्रतिमावान लोगों के बच्चे भी प्रतिभावान होते हैं।

डगडेल, विशिप और स्ट्राबुक महोदयों ने अमेरिका के ज्यूक परिवार के लोगों के विषय में खोज करके यह निश्चय किया कि मन्द बुद्धि और निकम्मे लोगों की सन्तान भी मन्दबुद्धि और निकम्मी होती है। ज्यूक नामक एक नाविक ने एक मन्द-बुद्धि तथा निम्न आचरण की स्त्री से शादी की। इस शादी के परिणाम स्वरूप बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक सत्ताइस सौ व्यक्ति हुये। ये लोग अमेरिका के विभिन्न स्थानों में बस रहे हैं। उनकी जीवन-यापन की खोज करने से पता चला कि वे प्रायः सभी निकम्मे हैं। उनमें बहुत से जेल के निवासी हो चुके हैं, कुछ ने निन्द्य पेशाओं को अपना लिया है और कुछ दूसरों की दया पर जीवित हैं। इस खोज से यह पता चलता है कि यदि किसी व्यक्ति के माता-पिता निकम्मे होते हैं तो उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्यवान होना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है।

उक्त निष्कर्ष का समर्थन कुछ ऐसे परिवारों के अध्ययन से भी होता है, जिनमें एक ही व्यक्ति ने एक बार योग्य महिला से विवाह किया और दूसरी बार अयोग्य से। योग्य महिला के बच्चे अमेरिका में बड़े-बड़े ओहदे प्राप्त किये और अयोग्य के सामान्य स्तर से ऊँचे न उठ सके। जोड़ुआ लड़कों के जीवनी के अध्ययन से भी वंशानुक्रम का मानव-व्यक्तित्व के विकास में महत्व का स्थान दिखाई देता है। वर्तमान काल की बुद्धिमापक परीक्षायें भी वंशानुक्रम की महत्ता दर्शाती हैं। जिन बालकों के माता-पिता प्रतिभावान होते हैं, उनकी सन्तान भी प्रायः प्रतिभावान होती है। बुद्धिमापक परीक्षाओं में इनकी बुद्धि ऊँची दिखाई देती है।

वंशानुक्रम के प्रभाव का कारण मनुष्य की जन्म से आई हुई शारीरिक बनावट होती है। प्रत्येक मनुष्य का शरीर चौबीस जोड़ी क्रोमोजोन का बना रहता है, जिनमें से बारह जोड़ी क्रोमोजोन बच्चे को माँ की ओर से मिलते हैं और बारह जोड़ी पिता की ओर से। यही बारह जोड़ी क्रोमोजोन एक गार्भित अण्डे में रहते हैं, जो माँ के गर्भाशय में रहता है। प्रत्येक क्रोमोजोन अगणित जीन्स का बना हुआ रहता है। इनमें से प्रत्येक जीन्स मनुष्य के शरीर अथवा मानसिक विशेषता का रखने वाला होता है। मनुष्य के व्यक्तित्व में कोई भी विशेषता जन्मजात जीन्स से ही आती है। ये जीन्स पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक से ही रहते हैं। वे जल्दी से परिवर्तित नहीं होते। यदि प्राणी के किसी एक पीढ़ी को कोई शारीरिक विकृति हो जाय तो जीन्स की अक्षुण्णता के कारण यह विकृति उसकी सन्तान में नहीं जाती।

अर्जित गुणों का वितरण कहाँ तक पीढ़ी-दर-पीढ़ी होता है, इसके विषय में जर्मनी के विद्वान वाइजमैन ने महत्व का प्रयोग किया है। उसने साठ पीढ़ियों तक चूहों की दुम काटी परन्तु हरेक पीढ़ी में पैदा हुआ चूहा दुम के साथ ही पैदा होता था। इस प्रयोग से भी बहुत कुछ यह निष्कर्ष निकलता है कि वंशानुक्रम का प्रभाव मनुष्य के व्यक्तित्व के बनावट में बड़े महत्व का होता है। वातावरण का प्रभाव वंशानुक्रम के प्रभाव के सामने नगण्य है।

वातावरण का प्रभाव—वर्तमान शताब्दी के नये प्रयोग उपर्युक्त धारणा को भ्रमात्मक मानते हैं। रूस और अमेरिका दोनों ही प्रगतिशील देशों के मनोवैज्ञानिक मनुष्य के व्यक्तित्व की बनावट में जितना वातावरण का महत्व देखते हैं, उतना मनुष्य के वंशानुक्रम का नहीं देखते। इनके कथनानुसार मनुष्य की शिक्षा-दीक्षा, उसका लालन-पालन और उसके बचपन का संस्कार ही उसके व्यक्तित्व के प्रधान निर्माता हैं। फ्रांस के प्रसिद्ध

विद्वान् कैण्डोल महाशय ने इंगलैंड की रायल सोसाइटी, पेरिस की फ्रेंच एकेडमी और बर्लिन की विद्वत् परिषद् के अनेक विद्वानों की जीवनियों का अध्ययन करके यह बताया है कि सभी लोगों को अपने व्यक्तित्व की उन्नति करने के लिए पर्याप्त साधन प्राप्त हुये थे, उनके माता-पिता प्रायः पढ़े-लिखे और शिष्ट थे, पढ़े लिखे लोगों के बीच में उनका बचपन बीता, घर में गरीबी नहीं थी, अतएव शिक्षा-दीक्षा के लिये पर्याप्त सुविधा मिली और समाज तथा राज्य ने उन्हें अपनी विशेष प्रतिभा को विकसित करने के लिये काफी प्रोत्साहित किया। आज भी दूसरी जगह अनेक ऐसे प्रयोग हो रहे हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि यदि किसी सामान्य बालक को योग्य वातावरण में रखा जाय, तो उसके व्यक्तित्व का विकास कल्पनातीत हो सकता है। बोरिंग और लैंगफील्ड महोदयों ने अपनी 'फाउन्डेशन्स ऑफ साइकोलाजी' नामक पुस्तक में यह बताया है कि वातावरण के परिवर्तन से मनुष्यों की न केवल बुद्धि और व्यवहार में उन्नति हो जाती है वरन् उनके शरीर की बनावट में भी अनुकूल परिवर्तन हो जाते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन इटली से अमेरिका में आये हुये लोगों के चेहरे की बनावट में देखा गया है। उनका चेहरा लम्बे के बदले कुछ गोल-सा हो गया, अर्थात् अन्य अमेरिका निवासियों के समान ही उनका भी चेहरा बन गया। इसी प्रकार का अनुकूल परिवर्तन योरप से आये यहूदी लोगों के शरीर में भी हो गया। इन प्रयोगों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि किसी व्यक्ति को अच्छे वातावरण में रखा जाय और उसकी शिक्षा-दीक्षा भले प्रकार के वातावरण में हो, तो उसका व्यक्तित्व काफी ऊँचा उठ सकता है, अर्थात् वह अपने जीवन में अनेक अच्छे-अच्छे गुण दिखा सकता है।

वातावरण के अंग

मनुष्य का व्यक्तित्व जिस वातावरण से प्रभावित होकर विकसित होता है, वह उतना प्राकृतिक वातावरण नहीं, जितना मानवीय वातावरण है। प्रकृति मनुष्य को शिक्षा अवश्य देती है और इस शिक्षा में मनुष्य लाभ उठाता है परन्तु प्रकृति की शिक्षा बिना योजना के रहती है। इसके प्रतिकूल मानवीय शिक्षा योजना-युक्त होती है। प्रकृति नहीं जानती कि बालक के व्यक्तित्व को वह किस ओर मोड़ेगी। मानव यह जानता है कि उसके अधीन रहने वाले व्यक्ति को किस ओर मोड़ा जाय और यह कार्य किस प्रकार किया जाय। मानवीय वातावरण तीन प्रकार का होता है—घर, स्कूल तथा समाज।

घर का वातावरण—प्रत्येक व्यक्ति का जीवन किसी घर में, शुरू होता है। घर वह परिस्थिति है जहाँ व्यक्ति के सामाजिक जीवन का प्रारम्भ होता है। माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी तथा व्यक्ति के दूसरे सगे-सम्बन्धी अपने आचार-व्यवहार, अपने निर्देशों से बालक के व्यक्तित्व के बनाने में बहुत महत्व का प्रभाव डालते हैं। घर का प्रभाव किसी व्यक्ति के जीवन पर आजन्म रहता है, अतएव घर के लोगों के व्यवहार उसके सपूर्ण व्यक्तित्व के अंग बन जाते हैं। हमारे विचार ही अपने माता पिता भाई बहनों के विचार से प्रभावित नहीं होते। वरन् हमारे उद्वेग-आवेग और मनोभाव भी उनकी भावात्मक वृत्तियों से प्रभावित होते हैं। घर में देर तक रहने से मनुष्य के विशेष प्रकार के स्थायीभाव बनते हैं। मानव जीवन के विकास में जो महत्व बचपन के इन स्थायीभावों का है, वह बाद के अनुभवों का नहीं होता।

गेस्टाल्ट-सिद्धान्त के अनुसार यह आज हम जानने लगे हैं कि मनुष्य जो कुछ भी देखता है अथवा जो कुछ वह निर्णय करता है, जो कुछ विचार वह मन में लाता है उनका विशेष प्रकार का ज्ञान केवल बाहरी अनुभवों के कारण नहीं होता। हमारे प्रत्येक प्रकार के ज्ञान का विशेष अर्थ उस पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है, जिस पृष्ठभूमि पर वह स्पष्ट ज्ञान प्रकाशित होता है। इन पृष्ठभूमि की आवश्यकता जैसी बाहरी ज्ञान के लिए है उसी प्रकार यह हमारे विशेष प्रकार विचारो और निष्कर्षों के लिए भी है। हम जो कुछ भी विचार करते हैं, हम किसी परिस्थिति में जिस किसी प्रकार का निर्णय करते हैं उसकी विशेष 'पृष्ठभूमि होती है, इस पृष्ठभूमि के अभाव में कोई निर्णय सम्भव ही नहीं। यह पृष्ठभूमि बचपन में घर की बनी रहती है। इसी पृष्ठभूमि पर एक मनुष्य अण्डा खा लेने पर कुछ भी ग्लानिका अनुभव नहीं करता और एक दूसरा व्यक्ति यदि अण्डा खाले तो रात भर सो नहीं सकता। एक व्यति देश की स्वतन्त्रता के लिए युद्ध का मार्ग सर्वश्रेष्ठ मानता है, दूसरा अहिंसा का। एक नौकरी करने के लिए सदा लालायित रहता है, दूसरा व्यापार के लिए। हमारे जीवन के मूल्य कुछ उसी समय निर्धारित हो जाते हैं, जिस समय इन मूल्यों के विषय में विचार करने की हममें चमता ही नहीं रहती। भले घर में पला बालक सहज ही दूसरों की भलाई करता है, इसके प्रतिकूल स्वार्थी घर में पले हुए बालक में उदारता के भाव कदाचित होते हैं।

आधुनिक मनोविश्लेषण की खोजों ने बताया है कि बालक की नैतिक बुद्धि के विकास में स्कूल और समाज की अपेक्षा घर का ही अधिक

प्रभाव होता है। जिस बालक के पिता स्वयं चरित्रवान हैं, उसे अपने जीवन के आदर्श खोजने के लिये अपने घर से बाहर नहीं जाना पड़ता। बालक अपने पिता को प्यार करता ही है और उसे महान समझता है, पिता के अनुशासन में रहना वह अपने लिये हितकारी मानता है। बालक अपने पिता से इस तरह तादात्म्य स्थापित कर लेता है। फिर यह पिता के प्रति आदर का भाव नैतिक बुद्धि या सुसत्व (सुपरइगो) बन जाता है। वे बालक बड़े ही अभागे हैं जिनके माता-पिता व्यभिचारी या दुराचारी हैं। जब माता-पिता का चरित्र अच्छा नहीं होता तब बालक अपने घर से बाहर किसी ऐसे आदर्श व्यक्ति की खोज करता है जिससे वह आत्मसात कर ले। प्रत्येक व्यक्ति में उर्ध्व गामिता जन्म-जात है। जब जीवन के आदर्शों की ओर बढ़ने के लिए प्रेरणा घर के वातावरण में नहीं मिलती तो इसको हम घर के बाहर के वातावरण से प्राप्त करते हैं। घर से बाहर आदर्श की खोज करने से एक नुकसान भी होता है। हमारे आदर्श सत्व का और पिता-माता के प्रति स्नेह के भाव का हमारे मन में झगड़ा हो जाता है, इससे मानसिक गठन में कठिनाइयाँ होती हैं। कभी-कभी इसके कारण मनुष्य के व्यक्तित्व का विभाजन हो जाता है और व्यक्ति को अनेक प्रकार के मानसिक रोग हो जाते हैं।

हम देखते है कि कुछ साधारण लोगों में तो सहज विनय शीलता है और कुछ लोग पण्डित होने पर भी विनय नहीं पाते। वे स्वयं भी चाहते है कि वे विनयशील बनें, पर वे इस कार्य में असमर्थ रहते हैं। दुर्योधन ने अपनी इस असंयम की मनोवृत्ति को चित्रित करते हुए यह कहा था।

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानामि पापं न च मे निवृत्तिः। केनाऽपि देवेन हृदयस्थितेन यथानियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥

आखिर दुर्योधन की इस प्रकार की मनोस्थिति क्यों हुई? उसकी अधर्म पथ गामिता का कारण उसके पिता की स्वार्थ बुद्धि थी। धृतराष्ट्र को हमारे शास्त्रकारों ने वाह्य चक्षु विहीन ही नहीं, धर्म चक्षु-विहीन भी चित्रित किया है। वह अपने बच्चों के मोह में इतना फँसा हुआ था कि प्रारम्भ से ही उसने उनके दुराचारों के लिये उन्हें डाटा डपटा नहीं वरन् मोहवश अपने बेटों के वस में ही अपने को कर लिया था। इस मोह ने ही उसके बेटों को दुर्बुद्धि बना दिया।

स्कूल का वातावरण—बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिए दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव स्कूल का होता है। स्कूल में जानबूझ कर बालक का बौद्धिक और चारित्रिक विकास किया जाता है। घर बालक का प्रथम स्कूल है घर और स्कूल के प्रभाव में भेद इतना ही है कि घर का प्रभाव

बालक पर जानबूझ कर तथा अनजाने भी डाला जाता है। घर के प्रभाव के लिये कोई विशेष योजना नहीं बनाई जाती। स्कूल का प्रभाव पूर्व-योजना के अनुकूल होता है। यदि हम नवीन मनोविज्ञान की भाषा में घर और स्कूल के प्रभाव का भेद करें तो हम कहेंगे घर बालक के अचेतन मन को ही अधिक प्रभावित करता है, उसे विशेष प्रकार का बनाता है और स्कूल उसके चेतन मन को। स्कूल के द्वारा बालक संसार के बड़े-बड़े विद्वानों के विचारों से अपने को लाभान्वित करता है और वह अपनी अल्पज्ञता के स्थान पर विद्वत्ता प्राप्त कर लेता है। समाज में अच्छे स्कूल में शिक्षित होने के कारण बालक समाज में प्रशिक्षित होता है।

बालक के व्यक्तित्व का निर्माण घर और स्कूल के अतिरिक्त समाज से भी होता है। समाज बालक को उसकी संस्थाओं के द्वारा रीति और परम्पराओं के द्वारा तथा समाज के प्रचलित मूल्यों के द्वारा प्रभावित करता है। व्यक्ति की सामाजिक शिक्षा पूर्व नियोजित नहीं रहती, इस शिक्षा को सहज शिक्षा कहा जाता है। जिस प्रकार मछली पानी में रहकर ही जीती है और पानी से बाहर रहकर वह क्षण भर भी नहीं ठहर सकती उसी प्रकार समाज-द्वारा प्रस्तुत विचार और भावों के वातावरण में ही रहकर व्यक्ति जीता और परितुष्ट होता है, उन्हें छोड़कर वह जी ही नहीं सकता, समाज में प्रचलित मूल्य उसके अनजाने ही उसके व्यक्तित्व के अंग बन जाते हैं जिस बात को समाज उचित अथवा अनुचित समझता है प्रायः उसी बात को उस समाज का सामान्य व्यक्ति भी उसी प्रकार उचित अथवा अनुचित मानता है। इसी तरह सौंदर्य-असौंदर्य का मूल्यांकन करने के, सत्यासत्य जानने के उसके तरीके भी वहीं होते हैं जो समाज के होते हैं।

समाज में रहकर मनुष्य के व्यक्तित्व में परिपक्वता आती है, परन्तु एक समय ऐसा भी आता है जब व्यक्ति अपनी दूरदर्शिता में, भावों की उदारता में, सौंदर्य के मूल्यांकन में, समाज से भी ऊपर उठ जाता है। ऐसा व्यक्ति समाज का नेता बन जाता है। प्रगतिशील समाज ऐसे व्यक्ति को आदर का स्थान देता है और उसकी सूझ और समझ से तथा प्रतिमा से लाभ उठाता है। परन्तु कभी-कभी समाज उसी के हित-चिन्तकों को दण्डित भी करता है। संसार के कुछ महान पुरुषों को, जो समाज के हित में लगे हुए थे दण्डित होना पड़ा अथवा प्राण खोने पड़े। इमरसन के इस कथन में मौलिक सत्य है कि 'महान होना अपने आपको समाज-द्वारा गलत समझे जाना है' संसार के महापुरुष किसी पुरस्कार के विचार से प्रेरित होकर कार्य नहीं करते, वे कर्तव्य दृष्टि से ही कार्य करते हैं।

व्यक्तित्व और प्रणाली विहीन ग्रंथियाँ[1]

आधुनिक मनोविज्ञान की चिन्तनप्रणाली शरीर को व्यक्तित्व निर्माण का केन्द्र मान लेती है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक मनुष्य की मानसिक क्रियाओं को शारीरिक क्रियाओं का परिणाम मात्र मानते हैं, अर्थात् मानसिक क्रियायें सूक्ष्म प्रकार की शारीरिक क्रियायें ही है, इस दृष्टि से मनुष्य के व्यक्तित्व का प्रधान आधार उसका शरीर ही है, अर्थात् उसके शरीर की जन्म जात बनावट और उसका स्वास्थ। व्यत्तित्व में अनेक प्रकार की मानसिक बातों का समावेश होता है, परन्तु इन सभी मानसिक बातों का मूल आधार मनुष्य का शरीर ही है। शरीर ही क्रिया करता है। इसी में अनेक प्रकार के भावों और इच्छाओं की अनुभूति होती है। शारीरिक क्रियाओं के द्वारा ही मनुष्य अनेक प्रकार के कला कौशल सीखता है, ज्ञानोपार्जन करता है और शारीरिक क्रियाओं के अभाव में वह अपने आपको निकम्मा बनाये रखता है।

आधुनिक काल में मनुष्य के शरीर के बनावट पर बहुत महत्व पूर्ण खोजें हुई हैं। इन खोजों के परिणाम स्वरूप यह ज्ञात हुआ है कि मनुष्य के शरीर में उपस्थित ग्रन्थि प्रणालियाँ विशेष प्रकार का रस स्राव करती हैं और यह रस का स्राव मानव स्वभाव को नरम अथवा कठोर, चिड़चिड़ा अथवा शात, बहादुर अथवा भीरु बना देता है। मनुष्य के भावों और उसके संवेगों का आधार प्रणाली-विहीन ग्रन्थियों के द्वारा किया गया विशेष प्रकार का रस-स्राव ही है। इन ग्रन्थियों की चर्चा हम इस पुस्तक के दूसरे प्रकरण में कर आये है। उसे यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि मनुष्य के स्वभाव का विशेष प्रकार का झुकाव बहुत कुछ इन्हीं प्रणाली-विहीन ग्रन्थियों की क्रिया के कारण होता है।

प्रणाली विहीन ग्रन्थियाँ अपनी क्रियाओं से मनुष्य के शरीर को रोगग्रस्त अथवा आरोग्यवान बनाती हैं। इन प्रणाली विहीन ग्रंथियों का बार बार उत्तेजित होना मनुष्य के स्वास्थ के लिए बड़ा घातक होता है। ऐड्रिनल ग्रन्थि के रस-स्राव से मनुष्य को विनाशकारी संवेदन की अधिक अनुभूति होती है। एड्रिनल के स्राव से मनुष्य में शक्ति आती है परन्तु जब इस ग्रन्थि का कार्य अत्यधिक हो जाता है, तब यह मानव-स्वास्थ को विनाशक बन जाती है।

---

1. Ductless Glands.

मनुष्य के स्वास्थ और उसके व्यक्तित्व में बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है। अंग्रेजी में कहावत है कि स्वस्थ मन स्वस्थ शरीर में ही रहता है। सुयोग्य व्यक्तित्व की रचना के लिये यह आवश्यक है कि मानव स्वास्थ अच्छा बना रहे। जो लोग अपने को सर्वथा निकम्मा बनाये रखते हैं अथवा जो अत्यधिक दौड़ धूप में पड़े रहते है, वे दोनों ही अपने स्वास्थ को बिगाड़ लेते है। उनके शरीर की प्रणाली विहीन ग्रन्थियाँ जहरीले रसों का स्राव करती हैं और इससे उनके व्यक्तित्व का विघटन प्रारम्भ हो जाता है। अमेरिका के प्रसिद्ध मानसिक चिकित्सक जेकबसन महोदय ने प्रयोगात्मक ढग से सिद्ध किया है कि यदि मनुष्य अपने स्नायुविक खिंचाव को कम कर सके, तो वह न केवल अपनी कार्य क्षमता को ही बढ़ा लेता है वरन् अपने स्वभाव में आमूल परिवर्तन कर लेता है। शारीरिक खिंचाव के कम करने का उपाय उन्होंने अपनी हाल की प्रकाशित "यू मस्ट रिलैक्स"[1] नामक पुस्तक में बताये हैं। स्नायुविक खिंचावों के कम होने से प्रणाली विहीन ग्रन्थियों के कार्य सुचारु रूप से होते हैं और इससे मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास की प्रणाली भी बढ़ जाती है।

व्यक्तित्व-विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य के व्यक्तित्व की चार विभिन्न अवस्थाएँ बताई हैं:—शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था और प्रौढ़ावस्था। हम जो किसी व्यक्ति को परिपक्व अवस्था में देखते हैं वह परिपक्वता एकाएक नहीं आ गई है। यह बहुत दिनों के अनुभव का परिणाम है। प्रत्येक व्यक्ति को अनेक प्रकार के वातावरण में रहना पड़ता है, उसे बहुत से कष्ट सहने पड़ते हैं, वह अनेक भूलें करके नई बातें सीखता है। इस तरह उसके अनुभव के संचित होने से उसमें परिपक्वता आती है।

फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक रूसो ने अपनी शिक्षा-शास्त्र पर लिखी गई 'इमील' नामक पुस्तक में यह दर्शाने की चेष्टा की है कि मनुष्य की अवस्था के अनुसार उसका मानसिक विकास को चार भागों में विभक्त किया जाता है। उसने बताया है कि बालक की शिक्षा-दीक्षा उसके स्वाभाविक विकास के अनुसार होनी चाहिए, अर्थात् बालक की विशेष अवस्था को ध्यान में रखकर उसे शिक्षा दी जानी चाहिए। ये विकास की अवस्थायें प्राकृतिक हैं। इनसे होकर सभी व्यक्तियों को जाना पड़ता है। प्रत्येक अवस्था की विशेष प्रकार की इच्छायें, आकांक्षायें और योग्यतायें होती हैं। बालकों की उचित शिक्षा में इनका ध्यान रखा जाता है।

1. You Must Relax

शैशवावस्था—जन्म से ५ या ६ वर्ष की अवस्था तक बालक की शैशवावस्था होती है। इस अवस्था में बालक अपने माता-पिता पर अत्यन्त निर्भर करता है। दो वर्ष तक का शिशु माता के द्वारा ही लाला-पाला जाता है। वह माँ की गोदी में रहना चाहता है। वह माँ के स्तन से ही दूध पीना चाहता है। बहुत सी मातायें बालक को बहुत जल्दी ही स्तन से दूध पिलाना छुड़ा देती हैं। इससे बालक के व्यक्तित्व के विकास में विशेष कठिनाई हो जाती है। बालक का भीतरी मन माँ के इस निर्दय-व्यवहार को सह नहीं सकता। जिस व्यक्ति का माँ के स्तन से दूध पीना समय के पूर्व छुड़ा दिया जाता है वह स्वभाव में निर्दय बन जाता है। ऐसा व्यक्ति प्रौढ़ होने पर कृपण होता है। कुछ कृपण लोगों के बचपन के जीवन के अध्ययन से पता चला कि उनकी कृपणता और उनके माँ के स्तन से दूध प्राप्ति में निराशा में बहुत कुछ सम्बन्ध है। जिस बालक को माँ का उचित प्रेम नहीं मिला वह दूसरों से प्रेम पाने की क्या आशा कर सकता है, और जो व्यक्ति दूसरों से प्रेम नहीं पाया वह दूसरों को प्रेम कैसे देगा? हम उसी बात को दूसरों को देने का भाव अपने आप में रखते हैं जो हम दूसरों से पाते हैं। यदि बच्चे को शैशवावस्था में माता-पिता और समाज का प्रेम मिला है तो वह बड़ा होने पर दूसरे लोगों को प्रेम देगा ही।

देखा गया है कि जिन बालकों की मातायें बरबस स्तन से दूध पिलाना छुड़ाती हैं वे कृपण अथवा निर्दय होते हैं; इसके प्रतिकूल यदि बालक की माँ ही एक वर्ष के पूर्व मर गई हो तो इससे बालक के व्यक्तित्व पर स्थायी बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। जिस बच्चे का दूध जबरन छुड़ाया जाता है वह अंगूठा पीने लगता है और जब बालक को इसके लिये भी डाँटा-डपटा जाता है तो बालक निराशावादी और दुःखी बन जाता है। कभी-कभी ऐसे बालकों में दाँत से नख काटने की आदत पड़ जाती है। यह एक सांकेतिक क्रिया है, जिसका अर्थ है कि बालक किसी नजदीक के सम्बन्धी से बहुत असन्तुष्ट है और वह उससे बदला लेना चाहता है।

जिस प्रकार समय के पूर्व बालक को स्तन-पान करने से विरत करना अनेक प्रकार की मानसिक उलझनों का कारण हो जाता है, इसी प्रकार बच्चे को शौचादि के लिये बाध्य करने से भी बालक के व्यक्तित्व में कई अड़चनें उत्पन्न हो जाती हैं। डा० फ्रायड के कथनानुसार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की मौलिक बातें उसके शैशवावस्था में ही उसमें आ जाती हैं। यदि बालक को कठोर वातावरण में रखा गया तो वह निराशावादी और दुर्बल व्यक्तित्व का व्यक्ति बनता है और यदि शैशवावस्था में बालक को

आत्म-प्रकाशन का पर्याप्त अवसर मिला तो वह आशावादी और सुदृढ़ व्यक्तित्व का व्यक्ति बनता है।

बाल्यावस्था—शैशवावस्था के बाद बाल्यावस्था आती है। यह ६ से १२ वर्ष तक रहती है इस अवस्था में बालक अपने घर से स्वतन्त्र होने की चेष्टा करता है। वह अपनी माँ पर इतना अधिक आश्रित नहीं रहता। वह अब घर से बाहर बालकों के गिरोह में रहना पसन्द करता है। वह चाहता है कि उसके इस प्रकार गिरोह में रहने के काम में घर के लोग बाधा न डालें।

इस समय बालक का विरोध बड़े लोगों से इसलिये ही होता है कि घर के लोग बालक को उतनी स्वतन्त्रता नहीं देना चाहते जितनी स्वतन्त्रता बालक चाहता है। इस विरोध के दो परिणाम होते हैं—या तो बालक माता-पिता के विरोध से दब जाता है और फिर वह निकम्मा तथा सामर्थ्य-हीन व्यक्ति बन जाता है अथवा वह उनके अधिकार के प्रतिकूल विद्रोह करता है। इस प्रकार के विद्रोह से बालक के मन में अनेक प्रकार की उलझनें उत्पन्न हो जाती हैं।

बालक में इसी काल में अनेक प्रकार के सामाजिक गुण आते हैं। जिन सामाजिक गुणों को हम विकसित रूप में किसी व्यक्ति की प्रौढ़ावस्था में देखते हैं, उनकी नींव बाल्यकाल में ही रहती है। इस काल में यदि बालक में कोई कमी हुई तो बालक को हीनता की भावना उत्पन्न हो जाती है। यह हीनता की भावना उसे फिर जीवन भर त्रास देती रहती है।

जब किसी घर में अनेक बच्चे होते हैं और किसी विशेष बालक को उतना सम्मान नहीं दिया जाता जितना किसी दूसरे बालक को दिया जाता है तो बालक जीवन से ही निराश हो जाता है। वह घर के दूसरे बालकों से ईर्ष्या करने लगता है और इसके कारण वह उनका नुकसान भी करने के लिये उद्यत हो जाता है। यदि किसी बालक के घर में सौतेली माँ हुई तो फिर उसका जीवन और भी भार रूप बन जाता है। इस काल में बालक को खेल-कूद के लिए पर्याप्त अवसर मिलना चाहिये ताकि वे अपने व्यक्तित्व की शक्तियों को प्रकाशित करके उनको विकसित कर सकें।

किशोरावस्था—बाल्यावस्था के बाद किशोरवस्था आती है। यह १३ से १८ वर्ष तक रहती है। कभी-कभी इस अवस्था को मनोवैज्ञानिकों ने मानव-जीवन का बसन्तकाल कहा है। इस काल में बालक का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक हो जाता है। उसके मन में अनेक प्रकार की अभिलाषायें और उमगें उठती हैं। वह चाहता है कि दुनिया की जितनी अधिक जानकारी वह प्राप्त कर सकता है उतनी अधिक जानकारी वह प्राप्त करे। स्टेनले

हाल महोदय ने इस काल का विशेष अध्ययन किया है। उनका कथन है कि बाहर घूमने से देशाटन करने की प्रवृत्ति किशोर बालकों में अत्यन्त प्रबल हो जाती है। इसी के कारण वे कभी-कभी घर से भाग जाते हैं। नवीनता का ज्ञान करना इस समय बालक को बहुत रुचता है। बालक अनेक प्रकार के साहस के कामभी करना चाहता है। जब बालक को अपने पौरुष दिखाने का अवसर नहीं मिलता तो उसका जीवन नीरस बन जाता है।

बालक इस समय ऐसे काम करना चाहता है जिससे उसे दूसरों की प्रशंसा मिले। उसमें सामाजिक भावों की वृद्धि बहुत हो जाती है। वह चाहता है कि वह भी समाज के कामों में हाथ डाले। वह आगा पीछा नहीं सोचता। जिस काम को वह ठीक समझता है उसमें वह अपने आपको डाल देता है। समाज के सभी प्रकार के सुधारक और राजनैतिक नेता किशोर बालकों को अपने कामों की ओर आकर्षित करते हैं। इन बालकों में त्याग करने की शक्ति होती है अतएव इनके द्वारा ही बड़े-बड़े सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलन सफल हो जाते हैं। भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के इतिहास में हमारे देश के किशोर बालकों का बड़ा महत्व का स्थान रहा है।

किशोरावस्था भावों की प्रबलता की अवस्था है। बालक जिस बात को मन से पकड़ लेता है वह उसे छोड़ता नहीं। इस काल में बालकों में आपसी प्रेम भी बहुत प्रबल होता है। एक किशोर बालक अपने दूसरे साथी के लिए अपना सभी कुछ त्याग करने के लिए तत्पर हो जाता है। किशोर बालकों में आदर्शवादिता रहती है। इस आदर्शवादिता का सहयोग भावों से होने पर बालक समाज का बहुत भारी उपकार करता है, अन्यथा कोरी भावुकता बालक को निकम्मा बना देती है।

किशोरावस्था में बालक यौनिक भूख का अनुभव करने लगता है। वह अपनी इस भूख की तृप्ति के लिये अनेक प्रकार की चेष्टायें करता है। ये चेष्टायें बालक को कभी कभी कुमार्ग पर ले जाती हैं। जब वासना के आवेश में आकर वह कोई ऐसा काम कर डालता है जिसकी भर्त्सना उसकी नैतिक भावना करती है, तब बालक के मन में अनेक प्रकार की मानसिक ग्रंथियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। उसके मन में हीनता का भाव आ जाता है। इस हीनभाव के कारण वह समाज के सामने आने में झेंपने लगता है। उसमें निर्भीकता से दूसरों से बातचीत करने की हिम्मत नहीं रहती। ये सभी बात बालक को उसके यौनिक बातों के विषय में उचित ज्ञान न रहने के कारण होती है। शिक्षकों का कर्तव्य है कि वे एक ओर बालक का यौनिक

बातों में अनुचित रुचि पैदा न करें और दूसरी ओर वे ऐसी बातों को उन्हें बता दें जिनकी जानकारी के अभाव में बालक को अनेक प्रकार के मानसिक संघर्षों को झेलना पड़ता है।

किशोरावस्था बुद्धि के विकास की भी अवस्था है। इस समय जिन विषयों में बालकों की रुचि उत्पन्न हो जाती है, वे विषय उसे जीवन भर प्रिय लगते हैं, अतएव यह आवश्यक है कि बालक की इस काल की शिक्षा में वे सभी विषय पढ़ाये जायें जो उसके जीवन को सफल बनाने में उसे सहायक होंगे।

प्रौढ़ावस्था—किशोरावस्था के बाद व्यक्ति की प्रौढ़ावस्था आती है। पहले की सभी अवस्थायें प्रौढ़ावस्था की तैयारी हैं। मनुष्य की मुख्य समस्यायें चार हैं—आजीविका सम्बन्धी, विवाह सम्बन्धी, धर्म सम्बन्धी और सामाजिक अनुकूलन सम्बन्धी। जो व्यक्ति इन सभी समस्याओं का हल ठीक से कर लेता है वही जीवन-संग्राम में सफल होता है।

व्यक्तित्व के प्रकार

व्यक्तित्व के प्रकार के विषय में सबसे पहले चिन्तन यूनान देश के लोगों ने किया है। उन्होंने मनुष्य की शरीर की बनावट के आधार पर विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व की कल्पना की है। उनका विभाजन चिकित्सा विज्ञान के विचारों से प्रभावित था। आज इस प्रकार के विभाजन को नहीं माना जाता। आज प्रचलित सिद्धान्त युग महोदय तथा प्रयोगवादी मनोवैज्ञानिकों का है।

युङ्ग का सिद्धान्त—युङ्ग महाशय का कथन है कि मनुष्यों में व्यक्तित्व के जन्मजात भेद होते हैं। जिस प्रकार उनके दूसरे मानसिक भेद उनके बचपन में स्पष्ट नहीं होते, उसी तरह उनके व्यक्तित्व के भेद मन की अपरिपक्व अवस्था में नहीं स्पष्ट होते। जिस मनुष्य का मानसिक विकास भले प्रकार से हुआ है, उसी में ये भेद देखे जाते हैं। साधारणतः मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—एक बहिर्मुखी और दूसरे अन्तर्मुखी। इस प्रकार का वर्गीकरण हमारे पुराने ऋषियों ने किया है और आधुनिक मनोविचार के प्रमुख पण्डित डाक्टर युङ्ग ने भी किया है।

बहिर्मुखी व्यक्ति बाह्य विषय के राग में आसक्त रहता है। वह सदा ऐसे ही विषय का चिन्तन करता है। वह संसार के सभी लोगों से सम्बन्ध रखने की चेष्टा करता है। उसे सभा-सोसाइटी में जाना अच्छा लगता है। उसे अकेला रहना बुरा लगता है। यदि उसे अकेला रहना पड़े तो वह पागल हो जाय। भोजन करना, घूमने जाना, आदि सभी कामों में उसे साथी की आवश्यकता रहती है। बहिर्मुखी व्यक्ति अनेक कामों में हाथ डालता है और उनमें असफलता मिलने पर भी उनमें लगा रहता है।

अन्तर्मुखी व्यक्ति का स्वभाव ठीक इसके प्रतिकूल होता है। उसके मन पर सांसारिक विषयों का प्रभाव नहीं रहता। वह अपने मन को विषयों में लिप्त होने से सदा रोकता है। उसे अकेला रहना अच्छा लगता है। उसे सभा-सोसाइटी में जाना अच्छा नहीं लगता, यदि उसे अनेक लोगों के समुदाय में जाना भी पड़े, तो वह वहाँ से निकल आने का प्रयत्न करता रहता है। उसका जितना समय हँसी-मजाक, खेल-तमाशे, सभा-सोसाइटी आदि में जाता है, उतने समय को वह व्यर्थ खर्च हुआ समझता है। वह नये काम में हाथ डालने से सदा बचता रहता है। वह जो कुछ काम करता है, कर्तव्य-दृष्टि से ही करता है। ऐसे व्यक्ति के मित्र अनेक नहीं होते। उसे अपने साथियों को प्रसन्न रखने की अधिक परवाह नहीं रहती। अतएव उसके व्यवहार से लोग प्रायः असन्तुष्ट रहते हैं। जिन बातों में बहिर्मुखी व्यक्ति अपूर्ण पाया जाता है, उन्हीं बातों में अन्तर्मुखी पूर्ण पाया जाता है। इसी तरह अन्तर्मुखी व्यक्ति की जो कमियाँ होती हैं, उनमें बहिर्मुखी निपुण पाया जाता है। बहिर्मुखी व्यक्ति व्यवहार-कुशल होता है, पर वह अपने-आपको किसी एक ही चीज में दक्ष नहीं कर पाता। अन्तर्मुखी व्यक्ति एक ही वस्तु में अपने-आपको लगा सकता है और उसमें दक्षता प्राप्त कर लेता है, पर उसमें व्यवहार कुशलता नहीं होती। अन्तर्मुखी के लिए सामाजिक जीवन कठिन होता है और बहिर्मुखी को अकेलापन।

अन्तर्मुखी और व्यक्ति की पहचान रुपया कमाने और शादी के कार्यों में सरलता से होती है। बहिर्मुखी मनुष्य रुपया कमाने के लिए भारी-भारी उद्योग करता है, जितना रुपया उसे अधिक मिलता है, वह अपने को उतना बड़ा समझता है। शादी करने में भी उसे बड़ी प्रसन्नता होती है। वह अनेक स्त्रियों से प्रेम पालता है। अन्र्मुखी की लगन न तो पैसा कमाने में रहती है और न शादी में। शादी के पहले वह अनेक बार विचार करता है। एकाएक वह शादी में नहीं पड़ जाता। उसे गृहस्थ-जीवन भाररूप मालूम होता है। इस प्रकार के बहुत से लोग शादी करते ही नहीं और करते हैं तो कर्तव्य के विचार से।

वर्तमान काल के बहुत से मनोवैज्ञानिक चार्ल्स युंग के व्यक्तित्व के प्रधानतः दो प्रकार के सिद्धान्त के होने को नहीं मानते। कोई व्यक्ति न तो सर्वथा अन्तर्मुखी होता है और न बहिर्मुखी। वह कुछ बातों में अन्तर्मुखी होता है और कुछ में बहिर्मुखी। इसी तरह ओसवाल्ड महोदय के व्यक्तित्व के चार प्रकार में विभाजित करने के सिद्धान्त को अनुभव-सिद्ध नहीं पाया

जाता। कुछ लोगों ने व्यक्तित्व को उदास और चंचल के रूप में विभाजित किया है। ये सभी प्रकार के विभाजन वैज्ञानिक नहीं हैं।

व्यक्तित्व की जांच

बोरिंग और लेंगफील्ड के अनुसार मनुष्य का व्यक्तित्व अनेक प्रकार के गुणों का बना है। उसे हम उसके व्यवहार में प्रकाशित होते देखते हैं। कई प्रकार के गुण माने गये हैं। उनमें से ३५ गुण अधिक स्पष्ट माने गये हैं। इन गुणों को १२ भागों में विभक्त किया गया है। इस तरह व्यक्तित्व की आधुनिक मनोवैज्ञानिक कल्पना अधिक व्यवहार-सिद्ध है।

किसी व्यक्ति के गुणों की जाँच करने के लिए अनेक प्रकार के उपाय निकाले गये हैं। इनमें से कोई भी एक उपाय सर्वथा निर्दोष नहीं है, परन्तु सब उपायों को मिलाकर किसी भी व्यक्तित्व का उचित मूल्यांकन किया जा सकता है। व्यक्तित्व के पहचानने की पाँच प्रमुख विधियाँ हैं—साक्षात्कार विधि, रेटिंग विधि प्रश्नावली विधि, काम कराने की विधि और कल्पना-परीक्षण विधि।

साक्षात्कार विधि की खूबियों और बुराइयों के विषय में हम सभी जानते हैं। कोई भी साक्षात्कार सर्वथा निर्दोष नहीं होता, तिस पर भी इसके बिना हमारा काम नहीं चलता। साक्षात्कार होने पर मनुष्य के चरित्र के ऐसे बहुत से गुण अथवा दोष प्रकट हो जाते हैं जो अन्यथा नहीं होते।

रेटिंग विधि में किसी व्यक्ति के विषय में भिन्न-भिन्न लोगों से पूछा जाता है कि वे उसकी विशेष प्रकार की योग्यता के बारे में क्या सोचते हैं और उसे किस श्रेणी में रखते हैं तथा उसे इस योग्यता में कितने नम्बर दे सकते हैं। कई लोगों के इस तरह मूल्यांकन का औसत निकाल कर मनुष्य की योग्यता के बारे में राय बनाई जाती है।

प्रश्नावली एक दूसरी व्यक्तित्व के गुणों को जानने की विधि है। प्रश्न स्वयं उसी व्यक्ति से पूछे जाते हैं अथवा उसके मित्र अथवा उसके सम्बन्धियों से। उनके प्रश्नों के उत्तरों से अनुमान लगाया जाता है कि वे किस प्रकार के व्यक्ति हैं।

व्यक्तित्व जानने का सबसे विश्वसनीय उपाय किसी व्यक्ति को ऐसी परिस्थिति में डाल कर जिसमें उसको विशेष गुण का प्रकाशन आवश्यक है, देखा जाता है कि कहाँ तक उसमें वह गुण है। ये परिस्थितियाँ स्वाभाविक होती हैं अथवा प्रयोगकर्ता द्वारा निर्मित होती हैं। फौज के लिए अफसर चुनने में इस विधि का प्रयोग किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति की हिम्मत की

परख करना है तो उसे ऐसी परिस्थिति में डाला जाता है जहाँ उसे हिम्मत के प्रयोग की आवश्यकता होती है।

कल्पना की जाँच द्वारा भी मनुष्य के व्यक्तित्व का पता चलाया जाता है। मानसिक रोगियों के व्यक्तित्व की जाँच इस विधि से की जाती है। मानसिक रोगियों के जाँच में यह विशेष प्रकार से महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। इसे कभी कभी प्रक्षेपण विधि अथवा प्रोजेक्टिव टेकनिक कहा जाता है। इसके दो प्रमुख प्रकार रोशा टेस्ट थेमेटिक एपरसेप्शन टेस्ट हैं। पहले में कुछ स्याही के धब्बे व्यक्ति को दिखाये जाते हैं और उससे पूछा जाता है कि वह इन धब्बों में क्या देखता है। इसके उत्तर से उसके भीतरी मन में चलनेवाली क्रियाओं का पता चलता है। इसी प्रकार दूसरे टेस्ट में व्यक्ति को कुछ तसवीरें दिखाई जाती हैं और उनसे पूछा जाता है कि इनके आधार पर वह एक कहानी बनावे। इस कहानी से उसकी भीतरी मनोवृत्ति का पता चलाया जाता है। प्रयोगवादी मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि यह विधि बहुत कम विश्वसनीय है। रोगियों की मनोवृत्ति का भले ही पता चल जाय पर सामान्य लोगों के व्यक्तित्व की जाँच के लिए निर्दोष नहीं है। हमें किसी भी एक विधि पर अवलम्बित नहीं होना चाहिए। सभी का उपयोग करना चाहिये।

चरित्र मनुष्य के व्यक्तित्व का वह भाग है जिसको मनुष्य प्यार करता है और जिसका उसे अभिमान होता है। यह चरित्र मनुष्य के अनेक प्रकार के सामाजिक व्यवहारों का परिणाम है। चरित्र के निर्माण में समाज काम करता है और स्वयं व्यक्ति भी यत्न करता है। चरित्र प्राप्ति के लिये ही मनुष्य को सबसे बड़े पुरुषार्थ करने पड़ते हैं। जिस मनुष्य के पास चरित्र धन है, उसके पास सभी धन है और जिसके पास यह धन नहीं है वह सभी धन के होते हुए भी दुःखी रहता है। अंग्रेजी में कहावत है कि यदि पैसा चला गया तो कुछ नहीं गया, यदि स्वास्थ्य चला गया तो बहुत कुछ गया और यदि चरित्र चला गया तो सभी कुछ चला गया।[1] मूल कहावत से चरित्र की मानव जीवन में महत्ता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। व्यक्तित्व के गुणों का सगठित रूप है। यह मनुष्य के व्यक्तित्व का सार भाग है।

व्यक्तित्व और चरित्र

चरित्र क्या है? इसके विषय में विभिन्न चिन्तकों के विभिन्न मत हैं। फिर यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है यह और भी कठिन विषय है।

1. "If money is lost nothing is lost, if health is lost some thing is lost, if character is lost every thing is lost."

चरित्र शब्द अधिकतर नैतिक मूल्यों के विषय में ही उपयुक्त होता है। चरित्र नैतिक आचरण का परिणाम है। नैतिक आचरण की परिभाषा करते समय व्हील राइट महोदय ने बताया है कि नैतिक आचरण वह आचरण है, जिसमें मनुष्य को प्रलोभनों के प्रतिकूल जाना पड़ता है अर्थात् यह दुर्गम पथ गामिता है। अतएव चरित्र का एक लक्षण हम कह सकते हैं कि वह मनुष्य में उन प्रेरकों के प्रतिकूल जाने की शक्ति है जो सामान्य लोगों के कामों को अभीप्रेरित करते हैं। चरित्र नैसर्गिक प्रवृत्तियों के बदले अपने बनाये अवस्था स्वय के द्वारा स्वीकृत आदर्शों के अनुसार चलने की शक्ति है।

मेगड्गल महाशय ने चरित्र का स्वरूप निरूपण करते हुये बताया है कि यह वह ताक्त है जो मनुष्य को अपने आप द्वारा स्वीकृत सिद्धान्त के अनुसार चलने की शक्ति देती है। अब प्रश्न यह है कि मनुष्य में यह शक्ति कहाँ से आती है? अनुभववादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यह शक्ति वातावरण के सम्पर्क से उसी प्रकार मिलती है जिस प्रकार उसे समाज से भाषा, कला कौशल तथा समाज के साथ सफल व्यवहार करने की विधियाँ मिलती हैं। चरित्र प्राप्ति का दूसरा कोई मार्ग नहीं है। मेगड्गल महोदय के अनुसार मनुष्य के व्यक्तित्व के सगठन का परिणाम चरित्र है। मनुष्य का कुछ स्वभाव जन्म जात है जो उसकी नैसर्गिक प्रवृत्तियों (सहज वृतियों) से व्यक्त होता है और कुछ स्वभाव अर्जित है। अर्जित स्वभाव उसकी आदत और स्थायी भावों से व्यक्त होता है। मनुष्य के स्थायी भाव उसकी नैसर्गिक प्रवृतियों पर नियन्त्रण रखते हैं। ये स्थायी भाव फिर आपस में सगठित हो जाते हैं। यह स्थायी भावों का सगठन स्वत्व के स्थायी भावों में समाविष्ट हो जाता है। यही मनुष्य का चरित्र है। चरित्र मनुष्य के व्यक्तित्व का वह सगठन है जो उसके जीवन की विभिन्न क्रिया त्मक प्रवृत्तियों में एकीकरण लाता है और जो उन्हें एक सिद्धान्त के द्वारा नियोजित करता है।

आध्यात्मवादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार चरित्र मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति की क्रिया का परिणाम है। इनके कथनानुसार मनुष्य का व्यक्तित्व केवल वशानुक्रम और वातावरण के सस्कारों का ही नहीं बना है। ये दोनों तो परिस्थितियाँ है। इन परिस्थितियों को मनुष्य की आत्मा अपने ढग से काम में लाती है। मनुष्य की उन्नति और उसके विकास का मापदण्ड वातावरण के सस्कारों का विशेष प्रकार से व्यक्ति को प्रभावित करना नहीं है, वरन् उसका स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का उसके कामों में प्रकाशित

होना है। यह स्वतंत्र इच्छा-शक्ति ही मनुष्य के व्यक्तित्व का संगठन करती है और इसी संगठन का परिणाम चरित्र है।

स्वतंत्र इच्छा-शक्ति और व्यक्तित्व

हमने ऊपर मनुष्य के व्यक्तित्व बनाने वाले दो तत्वों की चर्चा की है। एक उसका जन्म जात स्वभाव, जो उसके वंशानुक्रम और शारीरिक बनावट पर निर्भर करता है और दूसरा उसका वातावरण, जिसमें उसके घर और स्कूल तथा समाज द्वारा डाले गये संस्कार आते हैं। संसार के प्रायः सभी मनोवैज्ञानिक इन दो तत्वों के अतिरिक्त एक तीसरे तत्व की भी कल्पना करते हैं। यह तीसरा तत्व मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा शक्ति, अर्थात् उसकी आत्मा है। इस तत्व की चर्चा प्लेटो ने अपनी 'रिपब्लिक' नामक पुस्तक में तथा 'येडिटस मैलो' और 'थियाडो' नामक ग्रंथों में की है। यह तत्व अजन्मा है। यह न तो वंशानुक्रम से पैदा होता है और न वातावरण से। काण्ट महाशय ने इसको मूल वस्तु के नाम से, (डिंग इन-आइन्-ज़िश) पुकारा है। यह तत्व प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा है। इसकी उपस्थिति उन्होंने अपनी 'क्रिटिक ऑफ प्रैक्टिकल रीजन' नामक पुस्तक में की है। यह देश-काल की सीमाओं के परे हैं। वर्गसन् महोदय ने इसी तत्व का नाम इलान् वाइटल कहा है।[1] इंगलैंड के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री टी॰ पी॰ नन ने इस तत्व की मान्यता के आधार पर अपने समस्त शिक्षा-सिद्धान्तों को बनाया है। उनका कथन है कि जब हम इस तत्व की उपस्थिति को स्वीकर नहीं करते, तब जीवन के किसी प्रकार के अन्तिम मूल्य निरर्थक हो जाते हैं। जब मनुष्य इन अन्तिम मूल्यों की अवहेलना करके किसी प्रकार के व्यक्तित्व-निर्माण का कार्य प्रारम्भ करता है, यह व्यक्तित्व चाहे स्वयम् का हो अथवा अपने आश्रितों का, तो वह इस कार्य में कदापि सफल नहीं हो सकता।

व्यक्तित्व-विकास का अन्तिम लक्ष्य एक विशेष प्रकार के स्वत्व (इन्डिविजुवैलिटी)[2] का निर्माण है। यह विशेष स्वत्व है क्या? टी॰ पी॰ नन के कथनानुसार यह मनुष्य की आत्मा ही है। मनुष्य संसार में जब आता है, तब वह विशेष प्रकार की रुचियाँ और योग्यताएँ लेकर आता है। वह अपनी इन रुचियों और योग्यताओं को अपने वातावरण की सहायता से प्रमित करता है। वंशानुक्रम और वातावरण दोनों ही व्यक्ति के स्वयं के विकास के लिए अथवा आत्म-साक्षात्कार करने के लिए साधन मात्र हैं।

1. Elan Vital 2. Individuality.

य दोनों परिस्थितियाँ हो हैं। इनका उपयोग प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति अपने-अपने ढंग से करती है। नन के कथनानुसार मनुष्य का वंशानुक्रम चाहे जितना अच्छा क्यों न हो और उसे चाहे जितनी योग्य परिस्थिति में क्यों रखा न जाय, यदि उसमें आत्मोन्नति की प्रेरणा भीतर से नहीं है, तो जीवन की सभी प्रकार की सहूलियत के होते हुए भी वह नगण्य-कोटि का व्यक्ति बनेगा। इसके प्रतिकूल एक ऐसा व्यक्ति भी हो सकता है, जिसका वंशानुक्रम विशेष सुन्दर नहीं और न जिसे अपने को सुशिक्षित करने का उचित वातावरण ही मिला, परन्तु तिस पर भी वह व्यक्ति अपने जीवन में बड़े-बड़े कामों के करने में समर्थ हुआ। हजरत ईसा, कबीर, नानक, मार्टिन लूथर, मैजिनी तथा अब्राहमलिंकन इसी तरह के व्यक्तियों में से थे। उनकी अन्तर्प्रेरणा और स्वतन्त्र इच्छा शक्ति ने उन्हें अपने कामों में ऐसी लगन उत्पन्न की, जिसके कारण वे समाज के बहुत उपयोगी कार्य कर सके। यह मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति उसके सभी प्रकार के व्यक्तित्व के मूल्यों का आधार है। बिना इसकी उपस्थिति स्वीकार किये न तो नैतिक मूल्यों का और न दूसरे प्रकार के व्यक्तित्व के मूल्यों का कोई अर्थ रह जाता है।

यहाँ हमें यह कहना आवश्यक है कि मनोविज्ञान अनुभवात्मक अथवा प्रयोगात्मक विज्ञान है। मनोविज्ञान में कार्य कारण की शृंखला के बाहर नहीं सोचा जा सकता। जब हम कार्य-कारण के नियम की अवहेलना कर देते हैं, तब वैज्ञानिक ही नहीं रहते। अतएव जो लोग अपने ज्ञान का प्रधान आधार वैज्ञानिक विधि से सोचना ही रखे हैं उनके लिए किसी प्रकार के अध्यात्मिक मूल्यों के निर्माण की विधि बनाना संभव ही नहीं। यह कार्य दार्शनिकों का है। यह यथार्थवादी विज्ञान है। मनोविज्ञान केवल यह बता सकता है कि मानव-जीवन में अध्यात्मिक मूल्य होते हैं। वह यह भी बता सकता है कि इन मूल्यों का रोपण किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में कैसे किया जाय। वह यह नहीं बता सकता कि मानव-जीवन के सर्वोच्च मूल्य क्या है और वे कहाँ से आते हैं। यह काम दार्शनिकों का है। व्यक्ति के चरित्र-निर्माण में इस बात के जानने की हमें आवश्यकता होती है। अतएव मनोवैज्ञानिक जब अच्छे व्यक्तित्व निर्माण में सहायता की अपेक्षा रखता है, तब उसे दार्शनिक की सहायता लेनी पड़ती है। मनोविज्ञान जीवन के आदर्श निश्चित नहीं कर सकता। वह केवल समाज में उपस्थिति विशेष प्रकार के आदर्शों को किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में डालने की विधि मात्र बता सकता है।

व्यक्तित्व के मूल्यों का उपार्जन

हमने ऊपर व्यक्तित्व के अनेक प्रकार के मूल्यों की चर्चा की है। ये व्यक्तित्व के मूल्य बौद्धिक, नैतिक अथवा सौन्दर्य सम्बन्धी होते हैं। इन मूल्यों की प्राप्ति के लिए अपने ज्ञान की योग्यता बढ़ाना पड़ता है, नये कामों का करना सीखना पड़ता है और विशेष प्रकार की भावात्मक मनोवृत्ति को उत्पन्न करना होता है। इन बातों के प्राप्त करने में घर स्कूल और समाज की महत्ता को हमने दर्शाया है। मनुष्य जिस प्रकार के वातावरण में रहता है उसी तरह के उसके मनोभाव बन जाते हैं। उसकी पढ़ाई लिखाई का उसके अभ्यास का और उसके भावानुभूतियों का स्थायी भाव उसके व्यक्तित्व पर पड़ता है।

हरबार्ट महाशय का कथन है कि हम यदि मनुष्य को चरित्रवान बनाना चाहते हैं तो उसके मन में ऐसे विचार हमें डालना चाहिए जो नैतिक हों और जिसमें नैतिक आचरणों को प्रशंसित किया गया हो। इस प्रकार के विचार साहित्य और इतिहास में ही सबसे अधिक पाये जाते हैं। इसलिए ऐसे ही विचारों की बालक की शिक्षा में प्रधानता रहनी चाहिए। हरबार्ट का कथन है कि वे ही विचार मनुष्य के आचरण को प्रभावित करते हैं जो दूसरे विचारों से सम्बन्धित और सुगठित हैं। उसकी धारणा थी कि मूर्ख अथवा अपढ़ व्यक्ति सच्चरित्र नहीं हो सकता[1] जितना ही हम व्यक्ति की रुचियों का विकास करते हैं उतना ही हम उसे दुर्व्यसनों से बचाते हैं। मनुष्य ऐसे ही काम करता है जिसमें उसकी रुचि होती है। बार-बार के भले कामो के करने से मनुष्य की आदतों का तथा चरित्र का निर्माण होता है। मनुष्य की रुचियाँ उसके ज्ञान पर निर्भर करती हैं। अतएव मनुष्य को चरित्रवान बनाने के लिए उसके ज्ञान का प्रसार करना आवश्यक है।

व्यक्तित्व का सगठन

यदि कोई मनुष्य मनोवैज्ञानिक खोजों के आधार पर व्यक्तित्व सम्बन्धी दार्शनिक चर्चा में पड़ जाय तो न तो व्यक्तित्व के नित्य मूल्यों की सिद्धि होती है और न व्यक्तित्व का संगठन ही सम्भव है। मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व के मूल्यों की चर्चा वहीं तक करता है जहाँ तक वह अनुभव-सिद्ध और प्रयोग-सिद्ध है। उसे अनुभव से ज्ञात होता है कि मनुष्य के व्यक्तित्व भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। समाज के लोग मनुष्यों के व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न

1. A Stupid person can not be Virtuous. Pedagogies.

प्रकार के गुण मानते हैं और वे यह भी जानने की कोशिश करते हैं कि किस व्यक्ति में कोई गुण किस हद तक है। कभी कभी एक ही व्यक्ति में दो विरोधी गुण पाये जाते हैं। इन विरोधी गुणों का समन्वय स्थापित करने की चेष्टा कोई भी समझदार व्यक्ति करता है। अभी तक व्यक्तित्व की जैसी कल्पना मनोविज्ञान में उपलब्ध है, वह अनेक प्रकार के गुणों का इकठ्ठा रहना ही है। इन गुणों को एक सूत्र में कौन-सा तत्व पिरोता है, इस तत्व की कल्पना प्रयोगवादी मनोविज्ञान ने नहीं की है। यदि ऐसा कोई सूत्र सम्भव भी हो तो वह परिवर्त्तन-शील होगा। मनोविज्ञान आत्मा परमात्मा जैसे विचारों को अपने चिन्तन में स्थान नहीं देता।

स्थितप्रज्ञ क्या है ?

संसार का सर्वोच्च व्यक्ति स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। स्थितप्रज्ञ वही व्यक्ति है जो अपनी सभी प्रकार की इच्छाओं पर विजय प्राप्त किये हुए है। इच्छाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने आपको विभिन्न प्रकार की इच्छाओं के अतिरिक्त कोई दूसरा तत्व भी मानें। स्थितप्रज्ञ और चरित्रवान व्यक्ति एक ही हैं। इनके उदाहरण हम कृष्ण, गुरु रामदास, हजरतईसा, स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरुषों में पाते हैं।

स्थितप्रज्ञ बनने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य निष्काम कर्म करे। मनोवैज्ञानिक विचार धारा के अनुसार सर्वथा निष्काम मार्गी बनना सम्भव ही नहीं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्थितप्रज्ञ वह व्यक्ति है, जो अपने तुच्छ स्वार्थों से प्रेरित न होकर व्यापक स्वार्थों से अभिप्रेरित होता है, अर्थात् जो अपने आपको सदा ससार् के कल्याणों में लगाए रखता है। काम करना छोड़ कर मनुष्य को किसी प्रकार की मौलिकता प्राप्त नहीं होती। काम करते रहने से ही मानव-स्वभाव का परिष्कार होता है। भगवान कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ के कार्यों के हेतु बताते हुए कहा है कि ऐसा व्यक्ति शरीर से, बुद्धि से अथवा केवल इन्द्रियों से आत्मा की शुद्धि के हेतु कार्य करता है—

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियोरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वाऽत्मशुद्धये॥ गीता।

हेडफील्ड महोदय ने बताया है कि बालक को सदा रचनात्मक काम में लगाये रखने से उसका चारित्रिक विकास होता है और उसकी निम्नकोटि की वासनायें परिष्कृत हो जाती है। वे फिर उच्चकोटि की इच्छाओं को अपना स्थान दे देती हैं, अर्थात् मनुष्य रचनात्मक कार्य में जैसे-जैसे अपने

आपको लगाता है, व्यक्तिगत स्वार्थ से धक्का लगाने वाली घटनायें उसको उद्विग्न-मन नहीं करतीं। वह स्वयम् प्रसन्न मन रहता है और अपनी सेवा से तथा अपनी उपस्थिति मात्र से दूसरों को प्रसन्नता प्रदान करता है। ऐसा स्थितप्रज्ञ व्यक्ति समाज के लिये वरदान है।

मनुष्य के स्वत्व के गुप्त स्तर

मन के तीन भाग—नवीन मनोविज्ञान की खोजों के परिणाम-स्वरूप यह निश्चय हुआ कि मानव-स्वत्व के तीन भाग हो सकते हैं—चेतन मन[1], चेतनोन्मुख[2] और अचेतन[3]। चेतन मन, मन का वह भाग है, जिसमें मन की समस्त ज्ञात क्रियाएँ चला करती हैं। चलना, फिरना, बोलना, लिखना, पढ़ना, सोचना आदि क्रियाओं का नियन्त्रण चेतन मन करता है। चेतन मन की क्रियाओं का हमें अहंकार रहता है। यदि इन क्रियाओं में कोई भूल होती है, तो हम अपने-आपको जिम्मेदार समझते हैं। हमारा कोई भी विचार चेतन मन में ही आकर प्रकाशित होता है।

चेतन मन के परे चेतनोन्मुख मन है। मन के इस स्तर में वे भावनाएँ, स्मृतियाँ, इच्छाएँ तथा वेदनाएँ रहती हैं, जो प्रकाशित नहीं है, किन्तु जो चेतना पर आने के लिए तत्पर हैं। कोई भी विचार चेतन मन में प्रकाशित होने के पूर्व चेतनोन्मुख मन में रहता है। यदि किसी विचार को, जो कि चेतनोन्मुख मन में वर्तमान है, हम चेतना पर लाना चाहें, तो वह आ जाता है।

चेतनोन्मुख मन के परे अचेतन मन है। अचेतन मन के विचार तथा भावनाएँ न हमें ज्ञात रहती हैं और न प्रयत्न करने से ही वे चेतना के स्तर पर आती हैं। उन्हें चेतना के ऊपर लाने के लिए अथवा उनकी अचेतन मन में उपस्थिति जानने के लिए एक विशेष विज्ञान की आवश्यकता होती है।

मन की नाट्यशाला—फ्रायड महाशय ने हमारे समस्त मन की तुलना एक नाट्यशाला से की है। चेतन मन नाट्यशाला की रंग-भूमि के उस भाग के समान है, जहाँ रंग-भूमि के अनेक पात्र अभिनय दिखाने के लिए आते हैं। वे अपने खेलों को दिखाकर अदृश्य स्थान में विलीन हो जाते हैं। अचेतन मन नाट्यशाला की सजावट के कमरे के समान है, जहाँ पर पात्र अभिनय के लिए अनेक प्रकार की तैयारियाँ करते हैं चेतनोन्मुख मन रंगशाला में घुसने के दरवाजे के समान है। हम जिन विचारों का दमन करते हैं, वे नष्ट नहीं होते। वे हमारे मन के किसी न किसी कोने में पड़े रहते हैं।

---

1. Conscious mind, 2. Prec5nscious, 3. Unconscious.

यहाँ रहकर वे निष्क्रिय नहीं रहते। वे हमारे व्यक्तित्व के प्रतिकूल षडयन्त्र रचा करते हैं। जब दमन की गई भावनाओं का समूह अधिक हो जाता है, तो मनुष्य के व्यक्तित्व में अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाते हैं। मनुष्य की अनेक प्रकार की कुचेष्टाओं और मानसिक बीमारियों का प्रधान कारण दबी हुई भावनाएँ ही होती हैं। स्वप्न की उत्पत्ति इन्हीं के कारण होती है।

अचेतन मन की भावनाएँ और स्वप्न—अचेतन मन की भावनाओं के प्रकाशित होने का एक प्रधान मार्ग स्वप्न है। हमारी बहुत सी भावनाएँ, इच्छाएँ या स्मृतियाँ चेतना को अप्रिय होती हैं। इन भावनाओं, इच्छाओं और स्मृतियों का हमारी चेतना दमन करती है। हम अपने अप्रिय अनुभव को भुलाने की चेष्टा करते हैं। जिस अनुभव के स्मरण से हमें शोक अथवा आत्म ग्लानि होती है, उसे हम भूल जाना चाहते हैं। इसी तरह जिन वासनाओं को हम अनैतिक मानते हैं, उन्हें भी चेतना के स्तर पर नहीं आने देना चाहते; उन्हें हम स्वीकार भी नहीं करना चाहते हैं। ऐसी स्मृतियाँ और वासनाएँ हमारी स्वप्नावस्था में अनेक रूप धारण कर प्रकट होती हैं। स्वप्न दबी स्मृतियों और इच्छाओं का कार्य है। फ्रायड महाशय ने स्वप्न की भाषा समझने के लिए महत्त्व का प्रयास किया है। दबी हुई भावना स्वप्न में बड़े गुप्त रूप से प्रकट होती है। उसे पहचानने के लिए विशेष प्रकार की कुशलता और सूक्ष्म दृष्टि चाहिए, किन्तु इतना निश्चित है कि दबी हुई भावना को जानने का प्रमुख साधन स्वप्न-अध्ययन ही है।

गुप्त वासनाओं का प्रतिबन्धक[1]—चेतन और अचेतन मन के बीच एक प्रतिबन्धक व्यवस्था रहती है। यह प्रतिबन्धक-व्यवस्था मनुष्य की नैतिक धारणाओं की बनी रहती है। यह एक पहरुआ का काम करती है। जिस तरह पहरुआ घर के भीतर जानेवाले लोगों की छानबीन करता है, उसी तरह यह प्रतिबन्धक चेतन मन पर आनेवाली भावनाओं की छानबीन करता है। इसके डर के कारण कोई अनैतिक भावना चेतन मन के स्तर पर प्रकाशित नहीं होती। यह प्रतिबन्धक स्वयं चेतना के नीचे की सतह से काम करता है; अर्थात् जब किसी व्यक्ति की कोई अनैतिक वासना प्रतिबन्धक के द्वारा दबाई जाती है, तो स्वयं उस व्यक्ति की चेतना को यह ज्ञात नहीं रहता कि उसकी कोई वासना दबाई जा रही है। इसके कारण मनुष्य को अपनी ही गुप्त भावनाओं को जानने में बड़ी कठिनाई होती है। कभी-कभी इस प्रति-

---

1. Censor.

बन्धक के कारण मनुष्य अपने आपको, जैसा वह है, उसके ठीक प्रतिकूल जानता है।

इसी प्रतिबन्धक के कारण हम अपने स्वप्नों में कुछ-का-कुछ देखते हैं, अर्थात् हमारा प्रकट स्वप्न उसके वास्तविक अर्थ से बिलकुल भिन्न होता है। जिस तरह सतर्क खुफिया पुलिस से चोर डाकू डरा करते हैं और उनकी ऊँघने की अवस्था में अनेकों स्वाँग रचकर बाहर निकलते हैं, उसी तरह दमित अनैतिक भावनाएँ मनुष्य की सुप्त अवस्था में अनेक स्वाँग रचकर बाहर आती हैं और स्वप्न-रूप में प्रकाशित होती हैं। इस तरह वे आत्मतुष्टि प्राप्त करने की चेष्टा करती हैं। स्वप्नों के द्वारा मनुष्य की अतृप्त वासनाओं की व्याजरूप से तृप्ति होती है। जिन व्यक्तियों की भोग की इच्छाएँ जितने अधिक कठोर नियन्त्रण में रहती हैं, उन्हें उतने ही अधिक भोग-सम्बन्धी स्वप्न होते हैं।

विशेष अध्ययन के लिए सहायक ग्रंथ

1. Boring and langfield · Foundations of Psychology, Chap VII

2. T. P. Nunn · Education, its data and First Principles, Chap. III

3. Ross : Ground work of Educational Psychology. Chap. IV.

4 Jha : Modern psychology of Education. Chap. III

5. Jung · Psychological Types.

6 Freud · An Introduction to Psycho Analysis.

प्रश्न

१—व्यक्तित्व शब्द के अर्थ क्या हैं ? मनुष्य के व्यक्तित्व और उसके पूर्ण स्वत्व में क्या भेद है ?

२—व्यक्तित्व-निर्माण में वातावरण का क्या महत्व है ? हम किसी सामान्य योग्यता के बालक को शिक्षा के द्वारा कहा तक सुधार सकते हैं ?

३—चरित्र और व्यक्तित्व में क्या सम्बन्ध है ? चरित्र निर्माण के उपायों को स्पष्ट बताइए।

४—मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में उसकी स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का क्या स्थान है ? चरित्र की दृष्टि से व्यक्ति को कहां तक 'स्वनिर्मित प्राणी' कहा जा सकता है ?

५—मनुष्य के व्यक्तित्व के गुप्त स्तरों के बारे में आधुनिक काल में कौन सी मनोवैज्ञानिक खोज हुई है। मनुष्य के जीवन की सफलता और असफलता पर उसकी मानसिक ग्रन्थियों का क्या प्रभाव पड़ता है?

६—स्थितप्रज्ञ की मनोवैज्ञानिक परिभाषा क्या हो सकती है? मनुष्य को जीवन में सफल होने के लिये समाज से हटकर आत्म-ज्ञान और आत्म-शुद्धि का यत्न करना चाहिए अथवा समाज में रहकर अपनी योग्यता के अनुसार काम करना चाहिए। मनुष्य अपना मानसिक सन्तुलन किस विधि से बनाये रख सकता है?

———

शब्दावली (हिन्दी-अंग्रेजी)

अ

अभ्यास Practice
अभ्यास-जन्य क्रियाएँ Habitual actions
अक्ष तन्तु Axon
अर्जित Acquired
अर्जित मानसिक गुण Acquired mental trait
अर्जित मानसिक प्रवृत्ति Acquired tendency
अन्तर्गामी नाड़ी Afferent nerve
अर्थशास्त्र Economics
अभ्यासात्मक Habitual
अभद्र Vulgar
अभ्यास का नियम The Law of Exercise
अदृश्य मन Inner mind
अचेतन मन Unconscious mind
अकारण भय Meaningless fear, Phobia
अवांछनीय उत्तेजना Undesirable urge
अन्वय व्यतिरेक Method of agreement and difference
अवाञ्छनीय स्थायीभाव Undesirable sentiment (complex)
अन्तर्दर्शन Introspection
अनिच्छित ध्यान Involuntary attention
अनुत्रिका Sacral
अनुभवात्मक विज्ञान Positive science
अन्वेषणात्मक विचार Inductive reasoning
असाधारण भूल Abnormal forgetting
अवकाश Space
अनुकरणात्मक सीखना Imitative learning
अनायास प्रतिक्रियाओं का होना Random responses
अवरोध Inhibition
अन्तर्द्वन्द्व Mental conflict
अनुकरण Imitation
अकेलेपन का भाव The feeling of loneliness
अन्तर्मुखी व्यक्ति Introverted character
अनिद्रा की बीमारी Insomnia
अपराध Crime
अप्रकाशित इच्छा Inhibited desire
अप्रमा False knowledge
अयथार्थ ज्ञान Wrong knowledge
अनुरूप उत्तर-प्रतिमा Positive after-image
अनुरूप रंग Complementary colours

अर्ध बिन्दु Blind spot
अन्तरीय पटल Retina
अर्द्धचकाकार नालियाँ Semicircular canals

आ

आदर्शवादी कल्पना Idealistic imagination
आत्मनिर्देश Auto-suggestion
आवरण Cover
आकृति Form
आकार Size
आवृत्ति Revision
आत्म हीनता Negative self-feeling
आत्मप्रकाशन की प्रवृत्ति Instinct of assertion
आश्चर्य Wonder
आदेशात्मक स्वप्न Prognostic dream
आत्महीनता की ग्रन्थि Inferiority complex
आध्यात्मिक शक्ति Will power, spirit
आकस्मिक निर्णय Accidental decision
आसमानी Blue
आदत Habit
आत्म-ज्ञान Self knowledge
आत्म वचना Self-deception
आमाशय Stomach
आँत Spleen
आदतजन्य Habitual
आदर्शात्मिक विज्ञान Normative science
आत्मनिरीक्षण Self-examination

इ

इन्द्रिय ज्ञान Sense knowledge
इच्छा शक्ति Will
इन्द्रिय Sense
इच्छित ध्यान Volitional attention
इच्छाविहीन ध्यान अथवा प्राकृतिक ध्यान Spontaneous attention

उ

उपयोग और अनुपयोग का नियम The law of use and disuse
उमग Mood
उत्तेजना की प्रबलता Intensity of stimulus
उपचुल्लिका Parathyroid
उपतारा Iris
उत्तेजना Stimulus
उत्तेजना का परिवर्तन Substitute stimulus
उत्साह Elation
उत्सुकता Curiosity
उद्वेगात्मक Emotionol
उद्वेग Emotion
उत्तर प्रतिमाएँ After images
उन्नतोदर ताल Convex lens
उष्णता की संवेदना Sensation of heat

उपानुबद्ध Conditioned
उत्तेजना Stimulation

ए

एकाग्रता Concentration
एड्रीनलीन Adrinalin
एड्रिनल्स Adrinals
एक आँख के साधन Monocular factors

क

क्रियात्मक मनोभाव Conation
क्रियात्मक Conative
कर्तव्यशास्त्र Ethics
कामोद्दीपक Sex gland
कामभाव Sex
क्रियात्मक पहलू Conative aspect
क्रियात्मक मानसिक प्रवृत्तियाँ Conative urges
क्रमिक विरोध Successive contrast
कारणारोपण Rationalization
क्रियाओं की संवेदना Organic sensation
कनीनिका Choroid
कोषाणु Cell
कड़वा Bitter
कण्ठकर्ण नली Eustachion tube
केन्द्रीय नाड़ी-मण्डल Central Nervous System
क्रियावाही नाड़ी Motor nerve
कर्प Fissure
क्रियमाण Active
क्रिया उत्पादन स्थल Motor area
क्रिया प्रान्त Motor area
कण्ठमणि (चुल्लिका) Thyrod

ग

घ्राण कल्पना Olfactory imagery
घ्राण Sense of smell
घूमघुमैया Labyrinth

च

चैतन्यवादी Spiritualists
चेतनमन Conscious mind
चित्तवृत्ति Psychosis
चित्तविश्लेषण विज्ञान Psycho-analysis
चेतना Consciousness
चक्र अथवा गंड Gland
चेतन Conscious
चैतन्यवाद Spiritualism
चेतनोन्मुख मन Preconscious
चिन्तन Thinking
चिकित्सा विज्ञान Science of medicine
चरित्र Character
चलने-फिरने की संवेदना Conative sensation
चक्षु नाड़ी Optic nerve
चलने-फिरनेवाले स्वप्न Somnambulism

छ

छींकने की सहज क्रिया Sneezing reflex

ज

जड़वादी Meterialists
जन्मजात आदत Inborn habit
जटिल ग्रंथ Complex
जीवन शक्ति Libido
जड़ Idiot
जड़वाद Matertalism
जलीय रस Vitrious humour
जन्मजात Inborn
जड़वाद Materialism

झ

झक Obsession
झिल्ली Membrane

ट

टेंटुआ (गले की घंटी) Throat
टेटनी रोग Critinism

ड

डण्डा Rod

ढ

ढोल Drum

त

तन्तु Fibre
तत्परता का नियम The law of readiness
तर्क-बुद्धिप्रधान Rational
तीव्रबुद्धि Superior intelligence
तरल पदार्थ Liquid
ताल Lens
तिकोना शीशा Prism
तर्कविज्ञान } Logic
तर्कशास्त्र }
तत्त्वविज्ञान Philosophy
तत्त्ववेत्ता Philosopher
तरंगमयी कल्पना Fanciful imagination

द

दृष्टि-कल्पना Visual imagery
दुःखात्मक भाव Feelings of pain

उपाधियुक्त Conditioned
उत्तेजना Stimulation

ए

एकाग्रता Concentration
एड्रीनलीन Adrinalin
एड्रिनल्स Adrinals
एक आँख के साधन Monocular factors

क

क्रियात्मक मनोभाव Conation
क्रियात्मक Conative
कर्तव्यशास्त्र Ethics
कामोद्दीपक Sex gland
कामभाव Sex
क्रियात्मक पहलू Conative aspect
कियात्मक मानसिक प्रवृत्तियाँ Con ative urges
कियात्मक सीखना Learning by doing
कामेच्छा Sex desire
कामशक्ति Libido
कामुकता Lust
करुणा Distress
काम प्रवृत्ति Pairing instinct
कामवासना Sex
क्रोध Anger
कल्पना Imagination, Hypothesis
कला Art
क्रिया-कल्पना Motor imagination
क्रमिक विरोध Successive contrast
कारणारोपण Rationalization
क्रियाओं की संवेदना Organic sensation
कनीनिका Choroid
कोशाणु Cell
कड़वा Bitter
कण्ठकर्ण नली Eustachion tube
केन्द्रीय नाड़ी-मण्डल Central Nervous System
क्रियावाही नाड़ी Motor nerve
कर्प Fissure
क्रियमाण Active
क्रिया उत्पादन स्थल Motor area
क्रिया प्रान्त Motor area
कण्ठमणि (चुल्लिका) Thyrod

ग

गन्ध संवेदना Olfactory sensation
गतिशीलता Movement
गतिरोध Motor amnesi
गिल्टियाँ Glands
गुर्दा Kidney
ग्राही तन्तु Dendrites
गतिवाही Motor

घ

घेघा Goitre
घुटना झटकारने की सहज क्रिया Petular reflex
घृणा Disgust

घ्राण कल्पना Olfactory imagery
घ्राण Sense of smell
घूमघुमैया Labyrinth

च

चैतन्यवादी Spiritualists
चेतनमन Conscious mind
चित्तवृत्ति Psychosis
चित्तविश्लेषण विज्ञान Psychoanalysis
चेतना Consciousness
चक्र अथवा गंड Gland
चेतन Conscious
चैतन्यवाद Spiritualism
चेतनोन्मुख मन Preconscious
चिन्तन Thinking
चिकित्सा विज्ञान Science of medicine
चरित्र Character
चलने-फिरने की संवेदना Conative sensation
चक्षु नाड़ी Optic nerve
चलने-फिरनेवाले स्वप्न Somnambulism

छ

छींकने की सहज क्रिया Sneezing reflex

ज

जड़वादी Meterialists
जन्मजात आदत Inborn habit
जटिल ग्रंथ Complex
जीवन शक्ति Libido
जड़ Idiot
जड़वाद Matertalism
जलीय रस Vitrious humour
जन्मजात Inborn
जड़वाद Materialism

झ

झक Obsession
झिल्ली Membrane

ट

टेटुआ (गले की घंटी) Throat
टेटनी रोग Critinism

ड

डण्डा Rod

ढ

ढोल Drum

त

तन्तु Fibre
तत्परता का नियम The law of readiness
तर्क-बुद्धिप्रधान Rational
तीव्रबुद्धि Superior intelligence
तरल पदार्थ Liquid
ताल Lens
तिकोना शीशा Prism
तर्कविज्ञान, तर्कशास्त्र } Logic
तत्त्वविज्ञान Philosophy
तत्त्ववेत्ता Philosopher
तरंगमयी कल्पना Fanciful imagination

द

दृष्टि-कल्पना Visual imagery
दुःखात्मक भाव Feelings of pain

दुःखात्मक संवेग Painful emotions
दि्व्यक्तित्व Double Personality
दक्षिण गोलार्द्ध Left hemisphere
दृष्टि सम्बन्धी Visual
दृष्टिस्थल Areos of vision
दलित वासना Repressed desire
द्रव्य Liquid
दृष्टि-संवेदना Sense of vision
द्वन्द्व की प्रवृत्ति Instinct of pugnocity
दिशा Direction
दूरी Distance
दूसरों की चाह Gregariousness
दमन Repression

ध

ध्वनि-संवेदना Auditory sense, Sense of hearing
ध्यान-स्वातंत्र्य Independence of attention
ध्यान Attention
ध्वंसात्मक संवेग Destructive emotion
ध्यान की एकाग्रता Concentration of attention
ध्यान का वशीकरण Conquest of attention
ध्वनि-कल्पना Auditory imagery
धारणा Retention
ध्वनि की लहर Sound wave
ध्वनि Sound

न

नैतिक बुद्धि Moral sense, Conscience
निष्प्रयासात्मक इच्छित ध्यान Uneffortful voluntory attention
निरोध Inhibition
निद्रा Sleep
नशा Narcotic sleep
नियतिवाद Determinism
निर्णय Decision
निर्देश Suggestion
निरीक्षण Observation
निकट दृष्टि का रोग Myopia
नाड़ियों के छोर Nerve ends
निहाई Anvil
नेत्र-गोलक Eye-ball
निर्गामी Efferent
नीला Indigo
नारंगी Orange
नाड़ी कोषाणु Nerve cell
नियम Law
नाड़ी तन्त्र Nervuos system
नियमित Mechanical

प्र

प्रयोग Experiment
प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ Natural
भावहीन उत्तेजना Ineffective stimulus

प्रणालीयुक्त गिल्टियाँ Glands with ducts
प्रदत्त Data
प्रत्यक्षीकरण Perception
प्रणालीविहीन गिल्टियाँ Ductless glands
प्रत्यक्षज्ञान Perceptual knowledge
प्रतिमा Image
प्रमा Right knowledge
पुनरावृत्त्यात्मक कल्पना Reproductive imagination
पदार्थ-विज्ञान Science
पुनर्विचारात्मक निर्णय Re evaluative decision
पुन शिक्षा Re education
प्रत्यय Conception
प्रत्ययन शक्ति Conceptual Power
प्रत्यक्षात्मक विचार Perceptual thinking
प्रत्ययात्मक विचार Conceptual thinking
प्रवृत्ति Urge
प्रतिभाशाली Genius
प्रखर बुद्धि Superior intelligence
प्रतिबन्ध व्यवस्था Arrangement Censor
प्रतिबन्धक Censor
प्रतिबन्ध Inhibition
प्रफुल्ल Elative
प्रसन्नता Amusement
प्राकृतिक निद्रा Natural sleep
प्रकाशन Exhibition, Expression
प्रतिक्रिया Reaction
प्रयत्न और भूल Trial and error
प्रतिक्रियाओं में परिवर्तन Modification of reaction
प्रतिक्रिया का परिवर्तन Substitute response
प्रतिक्रियाओं का एकीकरण Combination of response
परिणाम का नियम The law of effect
पैतृक संस्कार Hereditary dispositions
पैतृक Hereditary
प्रसारात्मक संवेग Expansive emotions
परम्परागत Traditional
प्रयत्नात्मक इच्छित ध्यान Effortful voluntary attention
प्रतिभा Genius
प्रमाण Proof
पारस्परिकप्रतिक्रियावाद Interaction
प्राकृतिक चुनाव का नियम Law of natural selection
पिनियल Pinial
पिच्यूटरी गाँठ Pitutary gland
प्राणी विज्ञान Biology
प्रयुक्त मनोविज्ञान Applied Psychology
पदार्थ विज्ञान Physical science
पुतली Pupil

पलक गिरने की सहज क्रिया The winking reflex
पेशियाँ Muscles
पूरी और विभाग रीति The whole and dart method
पहचान Recognition
पारदर्शी कोष Transparent cell
पीला Yellow
पीतबिन्दु Fobia
पारदर्शी Transparent
पलक Eyelid
परावर्तन क्रिया Reflex action

ब

बहिरंग कारण Gbjective conditions
बोधजन्य ज्ञान Apperceptive Knowledge
बाध्य उत्तेजना Repressed stimulus
बाध्य अनिच्छित ध्यान Forced involuntary attenction
बोनाचन Criticism
बुद्धि Intelligence
बहिर्मुखी Extraverted
बहुव्यक्तित्व Multiple personality
बरौनी Eyelash
बनफशी Violet
बाल मनोविज्ञान Child psychology

भ

भावना ग्रंथि Complex
भावनात्मक वृत्ति Affective state
भेजा Brain
भय Fear
भावप्रधान Affective
भागने की प्रवृत्ति Instinct of flight
भूख Appetite
भ्रम Illusion
भोजन ढूँढने की प्रवृत्ति Food-seeking Instinct
भावात्मक Affective
भीतरी कान The internal ear

म

मानसिक चेष्टाएँ Mental reaction
मूलप्रवृत्ति Instinct
मूल प्रवृत्यात्मक Instinctive
मनोविश्लेषण Psycho analysis
मानसिक चिकित्सा Psycho the

मस्तिष्क Brain
मध्यम Middle
मध्य पटल Sclororatic
मध्य कान The middle ear
मुद्गर Hammer
मध्यन्तराकर्ष The fissure of Rollondo
मर्मस्थल Sensitive area
मार्गान्तरीकरण Redirection
मूल प्रवृत्तियों में परिवर्तन Modification of instincts
मूर्छा Coma
मनोराज्य Day dream
मूर्ख Idiot
मन्दबुद्धि Dull
मूल प्रवृत्यात्मक Instinctive
मूलरस संवेदना Basic gestutary sensations
मानसिक संस्कार Dispositions
मानसिक ग्रन्थियाँ Complexes
मानसिक आयु Mental age
मानसिक अन्तर्द्वन्द्व Mental conflict
मानसिक प्रतिमा Mental image
मानसिक विक्षेप Mental disturbance
मानसिक प्रक्रियायें Mental reactions

य

याद करना या सीखना Learning

र

रक्तवाहक कोष Blood cells
रस संवेदना Seusation of taste
रूपान्तरण Modification
रुचि Interest
रुझाव Interest
रेशेदार मांस पेशियाँ Fibre muscles
रंग संवेदना Colour sensations
रंग मिलानेवाला यन्त्र Colour mixer
रचनात्मक क्रिया Creative action
रस-कल्पना Gastric imagery
रचनात्मक कल्पना Creative imagination
रेचन Catharsis
रचना की प्रवृत्ति Instinct of construction
रचनात्मक आनन्द Feeling of creativeness
रोचकता Interest
रागद्वेषात्मक वृत्तियाँ Feeling
रचनात्मक संवेग Creative emotions

ल

लक्ष्य Ideal, aim
लड़ने की प्रवृत्ति Pugnacity
लेखरोध Agraphic
लघु मस्तिष्क Cerbellum

व

व्यवहारवाद Behaviourism
व्यवहारवादी Behaviourists
विरोध Contrast
व्यर्थ प्रतिक्रियाओं का निवारण Elimination of response

पलक गिरने की सहज क्रिया Thei winking reflex
पेशियाँ Muscles
पूरी और विभाग रीति The whole and dart method
पहचान Recognition
पारदर्शी कोष्ठ Transparent cell
पीला Yellow
पीतबिन्दु Fobia
पारदर्शी Transparent
पलक Eyelid
परावर्तन क्रिया Reflex action

ब

बहिरंग कारण Gbjective conditions
बोधजन्य ध्यान Apperceptive knowledge
बाध्य उत्तेजना Repressed stimulus
बाध्य अनिच्छित ध्यान Forced involuntary attenetion
बौनापन Criticism
बुद्धि Intelligence
बहिर्मुखी Extraverted
बहुव्यक्तित्व Multiple personnality
बुद्धि उपलब्धि Intelligence quotient
बुद्धिभाव की परीक्षा Intelligence test
बाध्य-निर्णय Forced decision
बाहरी कान The external ear
बरौनी Eyelash
बनफशी Violet
बाल मनोविज्ञान Child psychology

भ

भावना ग्रंथि Complex
भावनात्मक वृत्ति Affective state
भेजा Brain
भय Fear
भावप्रधान Affective
भागने की प्रवृत्ति Instinct of flight
भूख Appetite
भ्रम Illusion
भोजन ढूँढ़ने की प्रवृत्ति Food-seeking Instinct
भावात्मक Affective
भीतरी कान The internal ear

म

मानसिक चेष्टाएँ Mental reaction
मूलप्रवृत्ति Instinct
मूल प्रवृत्यात्मक Instinctive
मनोविश्लेषण Psycho analysis
मानसिक चिकित्सा Psycho therapeutics
मनोवेग Urges
भेजा Brain
मेरुदण्ड Spinal column
मूलप्रवृत्ति-जनित इच्छा Instinctive desire

मस्तिष्क Brain
मध्यम Middle
मध्य पटल Sclororatic
मध्य कान The middle ear
मुद्गर Hammer
मध्यन्तराकर्ष The fissure of Rollondo
मर्मस्थल Sensitive area
मार्गान्तरीकरण Redirection
मूल प्रवृत्तियों में परिवर्तन Modification of instincts
मूर्छा Coma
मनोराज्य Day dream
मूर्ख Idiot
मन्दबुद्धि Dull
मूल प्रवृत्यात्मक Instinctive
मूलरस संवेदना Basic gestutary sensations
मानसिक संस्कार Dispositions
मानसिक ग्रन्थियाँ Complexes
मानसिक आयु Mental age
मानसिक अन्तर्द्वन्द्व Mental conflict
मानसिक प्रतिमा Mental image
मानसिक विक्षेप Mental disturbance
मानसिक प्रक्रियायें Mental reactions

य

याद करना या सीखना Learning

र

रक्तवाहक कोष Blood cells
रस संवेदना Sensation of taste
रूपान्तरण Modification
रुचि Interest
रुकाव Interest
रेशेदार मांस पेशियाँ Fibre muscles
रंग संवेदना Colour sensations
रंग मिलानेवाला यन्त्र Colour mixer
रचनात्मक क्रिया Creative action
रस कल्पना Gastric imagery
रचनात्मक कल्पना Creative imagination
रेचन Catharsis
रचना की प्रवृत्ति Instinct of construction
रचनात्मक आनन्द Feeling of creativeness
रोचकता Interest
रागद्वेषात्मक वृत्तियाँ Feeling
रचनात्मक संवेग Creative emotions

ल

लक्ष्य Ideal, aim
लड़ने की प्रवृत्ति Pugnacity
लेखरोध Agraphic
लघु मस्तिष्क Cerbellum

व

व्यवहारवाद Behaviourism
व्यवहारवादी Behaviourists
विरोध Contrast
व्यर्थ प्रतिक्रियाओं का निवारण Elimination of response

विचारात्मक सीखना Learning through insignt and understanding
व्यवहार Behaviour
विचार प्रधान Thoughtful
व्यक्तित्व Personality
वासना Desire
व्यावहारिक कल्पना Practical imagination
व्यावहारिक समस्या Practical Problem
व्यावहारिक विचार Deductive reasoning
विरोधी उत्तर प्रतिमा Negative after image
वशानुक्रम Heredity
वृहत् मस्तिष्क Cerebrum
विक्षिप्तता Insanity
व्यापार मनोविज्ञान Industrial Psychology
विस्तार Amplitude
वेदना Feeling
वाक् स्थल Speech area
वातावरण Environment
विकर्षण Repulsion
वैयक्तिक Individual
वर्गीकरण Classification
त्वक् नाड़ी मण्डल Peripheral nervous system
विचार Thinking, Thought
वाम गोलार्ध Left hemispeere
वमन करना Vomiting

विचारात्मक Rational
वेदनात्मक Affective
वशपरम्परागत Hereditary
विकृत स्थायीभाव Undesirable sentiment
विश्लेपणात्मक रीति Analytic method
विक्षिप्त मनोविज्ञान Psychology of insanity
विक्षिप्तता Insanity
विलियन Inhibition
विनीतता की प्रवृत्ति The instinct of submisson
विकर्षण की प्रवृत्ति The instinct of repulsion
वास्तविक आयु Actual age
विवेक युक्त निर्णय Rational decision
विस्मृति *Forgetting*
विरोध Contrast
विचारों के सम्बन्ध Association of ideas
वर्णच्छत्र Spectrum
विषम रग सवेदना Colour-contrast

श

शब्द सवेदना Auditory sensation
शरीर-विज्ञान Physiology
शिक्षा विज्ञान Educational Psychology

शब्दावली (अंग्रेजी-हिन्दी)

A

Ability योग्यता
Abnormal असाधरण, असामान्य
Abstraction प्रत्याहार
Acquired अर्जित
Adjustmet समायोजन, अनुकूलन
Affective भावात्मक
Afferent अतर्गामी
Afferent (sensory) neurones ज्ञानवाही नाड़ी-तन्तु
After image उत्तरप्रतिमा
After sensation अनुसवेदना
Ambivent उभयमुखी
Apperception अन्तर्बोध
Aptitude अभिरुची
Assertion आत्म प्रकाशन
Associtation साहचर्य
Association centre साहचर्य केन्द्र
Association of contiguity सान्निध्य साहचर्य
Association of contrast विरोध साहचर्य
Association of Similarity समान साहचर्य
Associationism साहचर्यवाद
Attainment सम्प्राप्ति
Attention ध्यान
Attention, voluntary ऐच्छिक ध्यान
Attention, non voluntary अनैच्छिक ध्यान
Attitude अभिरुचि
Automatic action स्वायत्त क्रिया
Autonomous nervous system स्वतत्र नाड़ी मडल
Auto-suggestion आत्म-निर्देश
Axone मुख्य-तन्तु

B

Behaviour व्यवहार
Behaviourism व्यवहारवाद
Biological science जीवन विज्ञान
Blind spot अन्ध बिन्दु
Brain मस्तिष्क

C

Capacity क्षमता
Case history method व्यक्ति इतिहास पद्धति
Censor प्रतिबन्धक
Central nervous system केन्द्रीय नाड़ी मडल
Cerebellum लघु मस्तिष्क
Cerebrum बृहत् मस्तिष्क

Chracter चरित्र
Chronological age वास्तविक आयु
Coefficient of correlation अनुबन्धक
Cognition ज्ञान
Cognitive ज्ञानात्मक
Colour contrast रंगों का विरोध
Coma मूर्छा
Complex भावना-ग्रन्थि
Compound reflex मिश्रित सहज क्रिया
Conation क्रिया
Concept प्रत्यय
Conditioned Reflex action सम्बद्ध सहज क्रिया
Conditioned reflex प्रत्यावर्तित सहज क्रिया
Conditioning सम्बन्धीकरण
Conduct आचरण
Conflict of motives प्रेरक संघर्ष
Congenital जन्मजात
Conscious चेतन
Consciousness चेतना
Constrained association आबद्ध साहचर्य
Construction रचना
Contiguity सान्निध्य
Control of emotion संवेग-नियन्त्रण
Curiosity जिज्ञासा
Correlates अनुबध्य
Cortex वल्क

D

Date प्रदत्त
Day dream दिवा स्वप्न
Deductive निगमनात्मक
Dendrites शिखातन्तु
Derived emotion व्युत्पन्न संवेग
Determinism नियतिवाद
Development विकास
Diagnosis निदान
Displacement of emotion संवेग का आरोपण
Disgust घृणा
Disposition स्वभाव
Distribution वितरण
Distribution and massed practice वितरित और एकत्रित अभ्यास
Dream content स्वप्न वस्तु
Dynamic गत्यात्मक

E

Educational of Psychology शिक्षा मनोविज्ञान
Eduction of correlates सम्बन्धित बोध
Eduction of relations सम्बन्ध बोध
Effector प्रभावक
Efferent निर्गामी

Eidetic image प्रतिमा दर्शन
Elation उमंग
Emotion संवेग, मनःक्षोभ
Empathy समानुभूति
Environment वातावरण
Experience अनुभव
Experiment प्रयोग
Experimental प्रयोगात्मक
Experimental method प्रयोगात्मक पद्धति
Extensity विस्तार
Extrovert बहिर्मुखी

F

Fatigue थकान
Feeling type extrovert भाव प्रधान बहिर्मुखी
Feeling भाव
Figure and ground आकार और आधार भूमि
Forgetting विस्मरण
Focus of consciousness चेतना का केन्द्र
Free association सहज साहचर्य
Functional कार्यात्मक

G

Generaliation, सामान्यीकरण, व्याप्ति
Genetic method जननि पद्धति
Gland ग्रन्थि
Group test of intelligence सामूहिक बुद्धि परीक्षा
Group testing सामूहिक माप
Guidance निर्देशन

H

Habit आदत
Hallucination विभ्रम
Heredity वंशानुक्रम
Horme मूल शक्ति
Homogeneous समावर्ती
Hypnosis सम्मोहन
Hypothesis अनुमान, धारणा

I

Ideal आदर्श
Ideas विचार
Ideational attention विचारात्मक ध्यान
Ideo motor action विचार क्रिया
Idiot जड़
Illusion भ्रान्ति
Image प्रतिमा
Image auditory श्रवण प्रतिमा
Image smell घ्राण प्रतिमा
Image taste स्वाद प्रतिमा
Image touch स्पर्श प्रतिमा
Image visual दृष्टि प्रतिमा
Imagery प्रतिमा भाव
Imagination कल्पना
Imbecile मूढ़
Imitation अनुकरण
Impression संस्कार
Inattention अनवधान

Inborn जन्मजात
Inclination रुझान
Individuality व्यक्तित्व
Individualistic वैयक्तिक
Inductive आगमनात्मक
Inferiority feeling हीनता की भावना
Inhibition निरोध
Innate नैसर्गिक
Insanity विक्षिप्तता
Insomnia अनिद्रा
Instinct मूल प्रवृत्ति
Instinctive tendency जन्मजात प्रवृत्ति
Integration सम्बद्धता
Intellectual बौद्धिक
Intelligence बुद्धि
Intelligence quotient बुद्धि उपलब्धि
Intensity सघनता
Interaction पारस्परिक प्रतिक्रिया
Interest रुचि
Introspection अन्तर्दर्शन
Introvert अन्तर्मुखी
Involuntary अनैच्छिक
Involuntary attention अनैच्छिक ध्यान

L

Latent dream अव्यक्त स्वप्न
Latent dream content अव्यक्त स्वप्न वस्तु
Law of conservation of energy शक्ति-सचय नियम
Law of disuse अभ्यास नियम
Law of effect प्रभाव नियम
Law of effect and satisfaction परिणाम और सतोष का नियम
Law of exercise अभ्यास का नियम
Law of natural selection प्राकृतिक चुनाव का नियम
Law of readiness तत्परता का नियम
Law of similarity समानता का नियम
Laws of learning सीखने के नियम
Learning सीखना
Learning process सीखने की प्रक्रिया
Learning by imitation अनुकरणात्मक सीखना
Learning by trial and error प्रयत्न और भूल से सीखना
Learning through insight सूझ द्वारा सीखना
Libido जीवन शक्ति
Liminal सीमान्तिक परिणाम

M

Manifest dream अभिव्यक्त स्वप्न

Marginal consciousness चेतना सीमान्त
Master sentiment प्रमुख स्थायीभाव
Maturation परिपक्वता
Memory स्मृति, स्मरण शक्ति
Memory, active सक्रिय स्मृति
memory, immediate अनन्तर स्मृति
Memory, permanent स्थायी स्मृति
Memory, span of immediate अनन्तर स्मृति का विस्तार
Mental मानसिक
Mental activity 'मानसिक क्रिया
Mental age मानसिक आयु
Mental engram मनोभाव
Mental laws मानस नियम
Mental measurement मानसिक माप
Method पद्धति
Mood भाववृत्ति
Moron मद
Motivation प्रेरणा
Motor निर्माणी, क्रियात्मक
Motor area चेष्टाक्षेत्र
Motor organs कर्मेन्द्रियाँ
Motor-nerve क्रियावाहा.नाड़ी

N

Nature प्रकृति, स्वभाव, प्रवृत्ति
Natural science प्रकृति विज्ञान
Nerve नाड़ी
Nerve association नाड़ी साहचर्य
Neurone नाड़ी तन्तु
Neurotic सनकी
Nervous arc नाड़ी चाप
Nervous system नाड़ी तन्त्र
Normal सामान्य
Normal intelligence सामान्य बुद्धि
Normative नियमात्मक
Normative science नियमात्मक विज्ञान
Norms प्रतिमान
Non-verbal अशाब्दिक
Nucleus केन्द्र

O

Objectiv विषयात्मक
Objective method वस्तुगत पद्धति
Observation निरीक्षण
Organism जीव
Organization सगठन

P

Parental instinct वात्सल्य मूल प्रवृत्ति
Partially constrained अर्द्ध नियंत्रित
Passive निष्क्रिय
Percept प्रत्यक्ष
Perception प्रत्यक्षीकरण

Perceptual thinking प्रत्यक्षात्मक चिन्तन
Performance test of intelligence क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षा, कौशल-प्रदर्शक बुद्धि परीक्षा
Peripheral nervous system त्वक् नाड़ी मंडल
Personality व्यक्तित्व, स्वत्व
Personality, double द्विव्यक्तित्व
Personality, multiple बहुव्यक्तित्व
Phobia अकारण भय
Physical science पदार्थ विज्ञान
Physiology शारीरिक विज्ञान
Physiological शारीरिक
Pitutary gland पीयूष ग्रन्थि
Plateau of learning सीखने का पठार
Positive विधायक
Positive science विज्ञान
Practical imagination क्रियात्मक कल्पना
preconscious चेतनोन्मुख मन
Principal सिद्धान्त
Process प्रक्रिया
Projection आरोपण प्रक्षेपण
Projective प्रक्षेपक
Propensities स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ
Psychic मानसिक
Psycho-analysis मनो-विश्लेषण
Psycho analytic method मनोविश्लेषणात्मक पद्धति
Psycho-physical मनोभौतिक
Psychology मनोविज्ञान
Psychology, abnormal असामान्यमनोविज्ञान
Psychology, analytical विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान
Psychology, animal पशु-मनोविज्ञान
Psychology, applied प्रयुक्त मनोविज्ञान
Psychology, child बाल-मनोविज्ञान
Psychology, clinical चिकित्सा मनोविज्ञान
Psychology, experimental प्रयोगात्मक मनोविज्ञान
Psychology, general सामान्य मनोविज्ञान
Psychology, industrial औद्योगिक मनोविज्ञान
Psychology, medical चिकित्सा मनोविज्ञान
Psychology, Physiological शारीरिक मनोविज्ञान
Pugnacity युयुत्सा, द्वन्द्व प्रवृत्ति
Purpose प्रयोजन

R

Random behaviour अनियमित व्यवहार
Rating method मूल्यकरण पद्धति
Rational बौद्धिक
Rationalization कारणरोपण
Raw score प्राप्तांक
Reaction प्रतिक्रिया
Reaction time प्रतिक्रिया काल
Reasoning तर्क
Reasoning, deductive निगमनात्मक तर्क
Reasoning inductive आगमनात्मक तर्क
Recall पुनरावर्तन, पुन स्मरण
Recency निकटता
Receptor ग्राहक
Recognition पहचान
Redirection मार्गान्तरीकरण
Reflex सहज क्रिया
Reflex action सहज क्रिया
Reinforcement पुनर्योग
Remembering स्मरण
Representative प्रतिरूपक
Repressed दमित
Repression दमन
Retention धारणा
Retroactive inhibition प्रतिगामी निरोधन
Rote memory कंठस्थ स्मृति

S

Satisfaction संतोष
Scientific imagination वैज्ञानिक कल्पना
Self स्व, आत्मा
Self-control स्वनियन्त्रण
Self-consciousness आत्म-चेतना
Self regarding sentiment आत्म सम्मान का स्थायीभाव
Sensation संवेदना
Sensation visual दृष्टि संवेदना
Sensation, olfactory घ्राण संवेदना
Sensation, tactile स्पर्श संवेदना
Sensation, auditory श्रोत्र संवेदना
Sensation, gustatory रस संवेदना
Sensation cutaneous त्वचा संवेदना
Sensation of pressure दबाने का संवेदना
Sensation of pain पीड़ा की संवेदना
Sensation of cold शीत संवेदना
Sensation of heat उष्णता की संवेदना
Sensation type extrovert संवेदन प्रधान बहिर्मुखी
Sense इन्द्रिय

Sensory nerve ज्ञानग्राही नाड़ी
Sentiment स्थायीभाव
Sex काम
Six desire कामेच्छा
Sexual वासनामय
Situation परिस्थिति
Sleep निद्रा
Spinal chord सुषुम्ना
Spontaneous सहज
Stimulus उत्तेजक, उत्तेजना
Stimulus and response उत्तेजना तथा प्रतिक्रिया
Subconscious अर्द्ध चेतना, अवचेतना
Structural रचनात्मक
Subconscious mind अर्द्ध चेतन मन, अवचेतन
Subject (प्रयोग) विषय
Subjective आत्मगत
Subjective method अन्तर्निरीक्षणात्मक पद्धति
Subjectively उद्देश्यात्मक
Sublimation शोध
Submission विनीतता
Substitute response प्रतिक्रिया का परिवर्तन
Substitute stimulus उत्तेजना का परिवर्तन
Suggestion निर्देश
Symbolism प्रतीकत्व
Symbolization प्रतीकीकरण
Sympathy सहानुभूति
Synapse नाड़ीसम्बन्ध

T

Temperament स्वभाव
Test, of intelligence बुद्धि-परीक्षा
Theory मत
Theoretical सैद्धान्तिक
Threshold सीमान्तिक परिमाण
Thinking चिन्तन
Thinking, imagination कल्पनात्मक विचार
Thinking, perceptual प्रत्यक्षात्मक विचार
Thinking coneeptual प्रत्ययात्मक विचार
Thinking extrovent, विचार प्रधान बहिर्मुखी
Thought विचार
Trait गुण
Trial and Error प्रयत्न तथा भूल

U

Uuconscious अचेतन
Unconscious mind अचेतन मन

V

Validity यथार्थता
Vocational guidance व्यवसाय निर्देशन
Volition इच्छा-शक्ति
Voluntary action ऐच्छिक कार्य

W

Will power इच्छा-शक्ति